मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और
पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

सम्पादक—
योगीराज
उमेशचन्द्र जी

रामतीर्थ

वर्ष—६ अंक—१०
जनवरी १९६६

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 62899
विज्ञापन
तार—प्राणायाम दादर

लेख	लेखक	पृष्ठ

सूचना—रामतीर्थ के पांच वार्षिक ग्राहक बनाने पर एक वर्ष तक रामतीर्थ मुफ्त दिया जायेगा।

लेख	लेखक	पृष्ठ

मुखपृष्ठ का परिचय

स्नायु संस्थान का दर्शन कीजिये, विशेष विवरण हेतु इसी अंक के पृष्ठ ८ पर देखें।

विशेष सूचना–'रामतीर्थ' मध्यप्रदेश व राजस्थान सरकार के शिक्षण विभाग की ओर से प्राथमिक, माध्यमिक उच्चतर व बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों व सार्वजनिक व पंचायत समिति पुस्तकालयों के उपयोग के लिये स्वीकृत हो चुका है।

— मुफ्त भेंट —

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की १ बड़ी बोतल अथवा २ छोटी बोतलों के खरीददारों को एक आकर्षक बहुरंगी १९६६ का कैलेन्डर मुफ्त दिया जायेगा।

रामतीर्थ मासिक के ग्राहक यदि मुफ्त कैलेन्डर चाहते हों तो उन्हें डाकव्यय हेतु ८५ पै. के डाक टिकिट भेजने चाहियें। ——व्यवस्थापक

लेखकों से आग्रह है कि वे अपने हित के लिये "लेखकोंसे" पृष्ठ को अवश्य पढ़ें।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० आर्थर रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्सेन्ट स्क्वेर स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

ग्राहकोंसे

१. 'रामतीर्थ' अंग्रेजी मासकी पहली तारीख को प्रकाशित होकर ग्राहकों को डाक से भेजा जाता है।

२. वार्षिक शुल्क रु. ५ विदेशों के लिए १५ शिलिंग अथवा रु. ७॥ है।

३. रामतीर्थ का नया वर्ष अप्रैल से शुरू होकर मार्च में पूरा होता है। परन्तु ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

४. ग्राहकों को अंक विशेष देखभाल से भेजा जाता है तिस पर भी यदि किसी को १५ तारीख तक अंक न मिले तो अपने डाक घर से पूछिए वहाँ से जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेज दीजिए ताकि उस पर गौर किया जावे।

५. पताबदलने के लिए कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचना साफसाफ अक्षरों में लिखे पतेके साथ मिलनी चाहिए। वह भी अधिक समय के लिए पता बदलना हो तभी हमें लिखें।

६. ६५ न० पै० मिलने पर ही नमूना अंक भेजा जाता है परदेशवालों को एक शिलिंग भेजना चाहिए।

७. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपना पता तथा ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

८. वार्षिक शुल्क मनीआर्डर से भेजना लाभदायक है क्योंकि वी० पी० से एक तो रजिस्ट्री खर्च लगकर ६ रु० पड़ेगा दूसरे देरी से अंक मिलेगा तथा विदेश में वी० पी० तो होती ही नहीं।

९. रामतीर्थ के साथ पुस्तकें आदि नहीं भेजी जातीं।

१०. व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पतेपर करें।

व्यवस्थापक

रामतीर्थ मासिक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर

लेखकों से

'रामतीर्थ' मासिक में स्वीकार करने योग्य मुख्य विषय -

शारीरिक रोग निवारण, सशक्त एवम् सदानिरोगी मानसिक रोग र करके मन की शांति, एवम् आत्म साक्षात्कार करने योग्य, उपरोक्त लाः प्राप्त करा देने योग्यअष्टांग योग, (यम, नियम आसन, प्रणायाम, प्रत्याहा धारणा, ध्यान, समाधी, राजयोग, भक्ति योग, लय योग, मंत्रयोग शिवस्वरोदय, वेद उपनिषद, गीता ,रामायण, महाभारत, महात्माओं क जीवन चरित्र एवम् उपदेश, प्राकृतिक चिकित्सा, (आकाश, वायु, तेज जल तथा पृथ्वी द्वारा इलाज) महिलाओं के जीवन सुधार के लिये बालकों के संस्कार सुधारने के लिये, अनुरूप लेख, कहानी, धारावाहिक उपन्यास, गीत, कविता, निबंध, प्रवास वर्णन, नाटक, धर्मकथादि रचनायें स्वीकारकी जाती हैं कागजकी एक ओर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी हुई रचनायें भेजनी चाहिये, अश्लील विषयोंकी रचनायें स्वीकार नहीं की जायेंगी।

विशेषः—अन्यत्र प्रकाशित रचनायें रामतीर्थ मासिक के लिये न भेजे. केवल स्वीकृत रचनाओं की सूचना एक मास बाद दी जाती है, अस्वीकृत रचना वापस नहीं भेजी जायगी, अतः लेखकों कोभेजे जाने वाले लेखकी नकल अवश्य रखना चाहिए, स्वीकृत रचनायें समयानुकूल छपेंगी, लेखकोंको चाहिये कि वे इस विषय में बारंवार पत्र लिखने का कष्ट न लें, रचना प्रकाशित होने के बाद, रचना जिसमें छपी होगी वह मासिक अंक और आश्रम की ओर से निर्धारित किया गया पुरष्कार भेजा जायेगा, रचना में लिया गया कोई द्रष्टांत हो तो वह किस ग्रन्थ के आधार से लिया गया है य अवश्य लिखें। अन्य पत्र पत्रिकाओंमें रामतीर्थ मासिककी रचन अन्य भाषाओं में अनुवादित की इच्छावालोंको रामतीर्थ मासिकके संपादकसे लिखित अनुमति लेना आवश्यक है रचना भेजनेका पताः निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११.

भद्र कर्णेभिः श्रणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

वर्ष ६] जनवरी १९६६ [संख्या १०

वैदिक-प्रार्थना

भग प्रणेतर भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन् नः ।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर भग प्र नृभिर नृवन्तः स्याम ।

ऋ. वे. म. सू. ७-४१-३

भावार्थ :— हे भगवान् ! तुम हमारे नेता हो । हे भगवान् ! सत्य ही तुमारा धन है । हे भगवान् ! हमको तुम अच्छी मति देनेवाले बनकर, उस बुद्धि की रक्षा करो हे भगवान् ! तुम गाय, अश्व आदि भौतिक वैभव से हमें समृद्ध करो तथा हे भगवान् ! मानवों से युक्त कर हमें पुत्र पौत्रादि संतति से युक्त करो ।
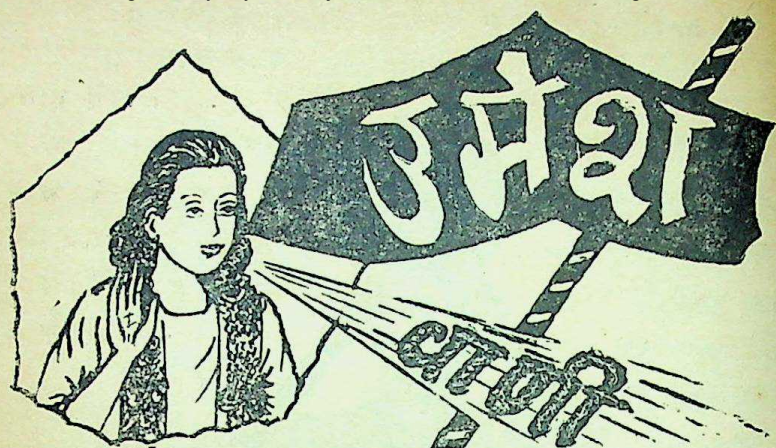
(२५०) शिव स्वरोदय शास्त्र आप नहीं जानते हों तो अभ्यास करियें। आप ही आपका भविष्य जान सकोगे। नाड़ियों का ज्ञान, कतिपय आसन, प्राणायाम, त्राटक पंच तत्त्व का अनुभव, पांच प्रकार के वर्णों का अनुभव, समय एवं मन की एकाग्रता के अभ्यास से शिव स्वरोदय (ज्ञान स्वरोदय) का ज्ञान प्राप्त होता है ।

(२५१) शुभ कर्म के आरंभ के लियें वार, तिथि, दिन, घड़ी, नक्षत्र, सलाह सूचना का आधार लेना पड़ता है। बुरे कर्म के लियें उपरोक्त किसी का आधार नहीं देखना पड़ता है। बुरे कर्म का फल कितना बुरा है इसके बारेमें कई लोग जानते हुये भी अनजान बनकर उसमें पड़ जाते हैं। अत्यंत दुःखी होने के पश्चात् रोते-चिल्लाते घूमते हैं। यह दुनियादारी में रहनेवालों में अधिकांश लोगों का अनुभव है।

(२५२) भगवान् की कृपा बिना हम प्रगति नहीं कर सकते किन्तु साथ साथ पुरुष प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

परमात्मा साकार स्वरूप में अनेक तरह से भासमान होता है। निराकार स्वरूप में एक है। अनजान अवस्था में अनेक स्वरूप समझना उचित है। सत्-चित् आनन्द स्वरूप का ज्ञान होने के पश्चात् भेद वृत्ति, भेद दृष्टि मिट जाती है "यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र ब्रह्मदर्शनम्" का अनुभव होता है। कर्म, उपासना तक साकार स्वरूप के ऊपर मन दौड़ता है। ज्ञानावस्था में मन आत्म शक्ति में लय होता है।

(२५३) जगत् में जितने धर्म हैं उन सभी में अल्प अथवा अधिक अंश में योग तथा वेदांत का अंश छिपा हुआ है। आपत्ति काल में शांति प्रिय लगती है। अहिंसा यह धर्म की नींव है। किन्तु अनर्थकारियों को वश में करने के लिये योग्य रूप से हिंसा का आधार लेना बुरा नहीं है, जैसे भगवान् श्रीकृष्ण ने पापी दुर्योधन तथा उसके वंशजों का नाश किया ऐसे ही भगवान् श्री रामचन्द्र ने रावण का नाश किया। 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' के अनुसार अनाचारी के लिये साम, दाम, दण्ड तथा भेद यह चार उपाय शास्त्रोंने बताये हैं।

(२५४) प्रसन्न चित्त सदा के लिये रखना यह जीवन के लिये महत्वपूर्ण विषय है मनोरंजन के कार्यक्रमों से बनावटी रूप में प्रसन्न चित्त अल्प समय के लिये रहता है। बुरी आदत बनी रहती है। अपवित्र संस्कार बढ़ जाते हैं। दुःखी मानव बन जाता है। परोपकार, योग का अभ्यास, ज्ञानियों की तन, मन, धन से सेवा करनी चाहिये। देश रक्षा के लिये प्रयत्न चालू रखना चाहिये।

योग और नाड़ी संस्थान

वैज्ञानिक ढंग से प्रकृति ने मानव शरीर के विभिन्न अंगों में नाड़ियों की रचना की है। एक सामान्य नाड़ी अनेक नाड़ी सूत्रों के गुच्छों से बनती है। नाड़ी का सबसे बाहरी आवरण बहिःसूत्रावरण (EPINEURIUM) गुच्छों के ऊपर का आवरण परिसूत्रावरण (PERINEURIUM) तथा गुच्छ गत प्रत्येक सूत्र का आवरण अन्तःसूत्रावरण (ENDONEURIUM) कहलाता है।

नाड़ी सन्धि (SYNAPSE)

नाड़ियों की परस्पर संधि को 'नाड़ीसंधि' कहते हैं। नाड़ी की क्रियाओं में इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग होता है, जो आगे बतलाया जायगा।

चेष्टावह नाड़ियों का पेशियों में वितरण

परतंत्र पेशियों में चेष्टावह नाड़ियों का अंत विशिष्ट रचनाओं में होता है, जिन्हें अन्त्य भाग (ENDPLATES) कहते हैं। पेशियों में आनेपर नाड़ीसूत्रों का विभाग होने लगता है, जिससे प्रत्येक पेशीसूत्र में एक एक नाड़ीसूत्र पहुँच जाता है और मांसावरण में परिणत हो जाता है। चेष्टावह नाड़ियों के अतिरिक्त संज्ञावह नाड़ियों के अन्त्यभाग भी पेशी में होते हैं।

स्वतन्त्र पेशियों में नाड़ीसूत्र जो अधिकांश अभेद से होते हैं, चक्रों और जालकों के रूप में पहुँचते हैं।

चक्र और नाड़ी समूह

अनेक नाड़ीसमूह के एकत्र स्थान का नाम चक्र है। मनुष्य शरीर में ये शक्ति के केन्द्र हैं। शरीर के विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानों में केन्द्रित होकर अनेक प्रकार के विशिष्ट काम करते हैं। ये चक्र इसलिये कहलाते हैं कि अन्तर्दर्शियों को ये तन्तु चक्रों के समान दिखते हैं। ये छः नाड़ी जाल हैं। स्थानान्तर से भिन्न भिन्न नाम धारण करते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार से रूप, रंग, क्रिया, देवता, गुण, लाभ के अनुसार सारे शरीर यंत्र को चलाते हैं।

छः चक्रों का नाम तथा स्थान

(१) मूलाधार (मलद्वार के समीप) (२) स्वाधिष्ठान (लिंग के सामने) (३) मणिपुर (नाभी के सामने)

(४) अनाहत (हृदय के सामने) (५) विशुद्धि (कंठ के सामने) (६) आज्ञा (भ्रू मध्य) (७) सहस्राधार (मूर्धन) (मस्तिष्क)।

उपरोक्त चक्रों की गति-विधियों का सम्बन्ध शिरसे पावों के अंगुष्ठ तक अनवरत स्थिति में लगातार चालू रहता है हृदय, फुफ्फुसें, लघु मस्तिष्क, बृहद् मस्तिष्क तथा अन्य मुख्य अवयवों एवं पंच ज्ञानेन्द्रियों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। बलहीन, बलवत्तर, तेजोहीन, तेजोवर्धक, स्फूर्तिदायक जीवन, सदा सन्तोषी, सदा निरोगी, सदा आनन्द स्वभाव, सदा पवित्र जीवन बनाये रखने की आदत, सद्गुणमय जीवन, आत्मदर्शन की तीव्र इच्छा, योगाभ्यास में अत्यन्त अभिरुचि, जिस समय जो मिले उसीसे समाधान मानने की शक्ति प्राप्त होती है।

रामतीर्थ मासिक के मुखपृष्ठ को गहराई से देखिये। स्थूल, सूक्ष्म एवं अति सूक्ष्म नाड़ियां सारे शरीर के हरेक अंग-उपांगों में फैली हुई हैं। नाड़ियों की अनियमित गति से शारीरिक तथा मानसिक रोग होते हैं। आत्मदर्शन के लिये अनधिकारी होते हैं। सांसारिक एवं पारमार्थिक सुखों से अलिप्त रहना पड़ता है।

नाड़ियों की शुद्धि कैसे की जाये?

कपालभाति कर्म:— सुखासन में बैठ जाइये। दोनों नथुनों से १० बार श्वास-प्रश्वास की क्रिया करिये अधिक

वेग अथवा अधिक धीरे नहीं अपितु साधारण गति से १० बार घर्षण करिये। इस समय दीर्घ काल तक श्वास-प्रश्वास की क्रिया करनी चाहियें। गला, नाक के आंतरिक भाग, फेफड़े, हृदय आदि अवयवों के ऊपर किसी प्रकार से धक्का नहीं पहुँचना चाहिये। श्वास केसमय वक्षस्थान विकसित होना चाहियें। प्रश्वासके समय फेफड़े संकुचित होने चाहियें। आंखें बन्द रखी जायें। १० घर्षण के बाद दोनों छिद्रों से पूरक चार मात्रा तक करें। १६ मात्रा तक कुम्भक करें। कुम्भक के समय जालंदर बंध करिए। रेचक ८ मात्रातक करिए। रेचक, पूरक तथा कुम्भक के समय मूलबंध करिए। यह एक बार कपालभाति क्रिया हुई। ऐसी क्रिया ८ दिन तक ३ बार, ८ से १८ दिन तक ४ बार पश्चात् ४ से ६ बार करियें। रेचक, पूरक, कुम्भक के समय यथा शक्ति के अनुसार बढ़ा सकते हो।

लाभ

नाड़ी समूह को शुद्ध करने के लियें कपालभाति कर्म लाभप्रद है। मन की एकाग्रता के लियें अनुकूल है।

आसन प्रयोग

शीर्षासन १५ से २५ मिनिट, शवासन ५ से ८ मिनिट, उर्ध्वे सर्वांगासन २ से ५ मिनिट करें।

मुद्राएँ

सप्त चक्रों के (मूलाधार, स्वधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत,

विशुद्धि, आज्ञा और सहस्राधार) शुद्धिकरण तथा बलवान बनाने के लिये अनेक प्रकार की मुद्राओं में एक मुद्रा की विधि बताते हैं। प्रथम जानु शिरासन की अवस्था में पांच रखें। (अर्थात् बांया पांव मोड़ के तथा दाहिना पांव सीधा रखें) दोनों हाथों के पंजे सीधे रखते हुये पांव के घुटने में रखें। नाक के दोनों छिद्रों से ५ बार घर्षण करें। बाईं नाड़ी से (चन्द्रनाड़ी से) पूरक करें । ४ मात्रा तक पूरक करें। १६ मात्रातक कुम्भक करें, कुम्भक के समय सिर को दाहिने घुटने पर रखें। दोनों हाथों की उंगुलियों से दाहिने पांव के अंगुष्ठ को पकड़ के रखें। पश्चात् दाहिनी तथा बायीं नाड़ियों से रेचक ८ मात्रातक करें। यह एक बार कपालभाति कर्म हुआ। हररोज इसे ६ बार करें। नाड़ी शुद्धि के लिये श्रेष्ठ है।

नाड़ी शुद्धि के लियें भस्त्रिका नं. १ हररोज ३ से ५ बार करें। भस्त्रिका नं. २ हररोज ३ से ४ बार करने से नाड़ीशुद्धि होगी। नाड़ियों के साथ सम्बन्धित अन्य अवयव निरोग तथा सशक्त बनेंगे। मनकी बीमारी मिटाने के लियें नाड़ी शुद्धिकरण अत्यन्त आवश्यक है । नाड़ी शुद्धि के लियें शीर्षासन, शलभासन, मयूरासन, तोलांगुलासन, हलासन, ताड़ासन, सूर्य नमस्कार, प्राणायाम तथा कपालभाति कर्म लाभदायक हैं।

आहार

तमोगुण आहार वर्ज्य करें। सात्विक गुण आहार ग्रहण करें। निर्व्यसनी कलियुग में महान व्यक्ति कहा जायगा।

समाज व्यसनों के गड्ढे में प्रवेश हो चुका है। परेशानी, दुःख आपत्ति, विपत्तियों से असह्य कष्ट उठा रहा है। इनसे बचना हो तो अन्य आपत्तिजनक कुमार्गों के एक कुमार्ग—व्यसनों से मुक्त रहना होगा। मनोबल, नाड़ीशुद्धि के लिए योगाभ्यास, शुद्ध आहार, सत्संग, सत् शास्त्रों का पठन आवश्यक है। नाड़ी शुद्धि होने के पश्चात् अन्य उपयुक्त प्राणायाम, कुण्डलिनी शक्ति जागृत करके ऋद्धि, सिद्धि, संयम, समाधि का महान लाभ उठाने का राजमार्ग मुद्राएँ हैं। महामुद्रा, महाबंध मुद्रा, महावेद मुद्रा, परिधानयुक्ति-परिचालन मुद्रा, विपरीत करणी मुद्रा, खेचरी, वज्रोली, ताड़न शक्ति चालन आदि अनेक महत्वनीय योग के अन्तरंग अभ्यास हैं।

योगाभ्यास से आपके जीवन में उन्नति होगी।

प्रतिदिन ३० से ६० मिनिट तक योगाभ्यास करने के अनेक प्रकार के लाभ से आप भाग्यवान बनोगे। शरीर संपत्ति, मानसिक शांति तथा आत्मदर्शन-परमात्म दर्शन प्राप्त करोगे। नहीं तो मानव जन्म व्यर्थ गुमा डालोगे। आहार, निद्रा, भय और मैथुन इन चार प्रकार के अनुभव में ही आप मत फँस जाइए। उससे परे कोई अगम्य, अचिन्त्य, अवर्णनीय सुख है ऐसी भावना रखते हुए योगाभ्यास के बारे में विशेष प्रेम रखिए। सत्पुरुषों की शरणमें जाकर आप अपना भला तथा समाज का भला कर लीजिए।

गुणकारी फल अंजीर

लेखिका— गिरिजा 'सुधा'

फलों में अंजीर का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक स्वादिष्ट फल और मेवा तो है ही, गुणकारी औषधि के रूप में भी इसका अपना महत्व है। इसे ताजे और सूखे दोनों ही रूपों में खाया जाता है।

इसकी आहार सम्बन्धी योग्यता इसमें पाये जाने वाले लवणों में शर्करा के कारण है। इसमें जितना कैलशियम पाया जाता है उतना पनीर के अलावा कुछ गिने चुने मेवों में ही पाया जाता है। हमारे यहां इसका उपयोग फल, सब्जी या मेवे के रूप में ही होता है; हमें अब इसके गुणकारी औषधि स्वरूप को भी पहिचानना चाहिए और इस गुणकारी पौधे से पूरा लाभ उठाना चाहिए।

रासायनिक तत्व

रसायन शास्त्र के विशेषज्ञों ने इस गुणकारी फल में अनेक महत्वपूर्ण तत्वों को पाया है। उनने इसमें प्राप्त रासायनिक तत्वों का वर्गीकरण इस तालिका के अनुसार किया है :—

तत्व	सूखे अंजीर	ताजे अंजीर
पानी	२०. ८ %	७९. १ %
प्रोटीन	५. ५ %	१. ५ %
ईथर निस्सार (एक्स्ट्रैट)	०. ९ %	———

कार्बोहाइड्रेटस्	६२. ८%	१८. ८%
राख	२. ३%	०. ६%
सेलुलोज	७. ३%	——
अम्ल (एसिड)	१. २%	——

हेल्थ बुलेटिन नं. ३ के अनुसार ताजे अंजीरों में कैलशियम ०.०६% और प्रस्फुरक ०.०३% बतलाई गई है। ताजे फल में शर्करा का कुल परिणाम ११.७७% के करीब पाया जाता है। सूखे अजीरों में यह प्रतिशत ५१.४ के करीब हो जाया करता है। ताजी और सूखी दोनों ही अंजीरों में विटामिन 'ए' और 'सी' पर्याप्त मात्रा में तथा 'बी' और 'डी' कुछ कम मात्रा में होता है।

गुण विवेचन

भारतीय चिकित्सा शास्त्रियों ने इसके फल को बहुत ही गुण कारी माना है! अंजीर का पका फल शीतल, स्वादु मधुर पर अव्यक्त में कषाय रसयुक्त भारी, तृप्ति दायक, क्षय, वात, पित्त और कफ को नष्ट करने वाला है।

यूनानी चिकित्सकों ने इसके फल को मधुर; ज्वर हर, बलदायक, बाजीकरण और रेचक बतलाया है। वैसे भी कई दृष्टियों से यह फल काफी गुणकारी है। खाद्यांश इसमें अन्य फलों की अपेक्षा अधिक रहता है। अंजीर के ताजे फलों में ८४ प्रतिशत गूदा तथा १६ प्रतिशत

छिल्का रहता है। अन्य फलों की तुलना में इसमें पोषक तत्व भी बहुत ही अधिक रहते हैं।

पूर्ण भोजन के बदले यदि ५०० ग्राम दूध और १५० ग्राम सूखे अंजीर ले लिया जाए तो यह तृप्तिकर एवं पूर्ण भोजन हो जायगा। हमारे शरीर को प्रतिदिन जितने परिमाण में पोषक पदार्थों की आवश्यकता होती है, उसका काफी अंश अकेले इस फल में प्राप्त हो सकता है।

घरेलू उपयोग

हमारे घरों में अंजीरों का प्रयोग कई प्रकार से होता है। ताजे हरे कच्चे फलों की सूखी और रसदार सब्जी बनतीं है। उनकी चटनी और आचार भी बनाया जा सकता है। इसके अलावा अंजीर पाक, पानक जैम, शरबत, पापड़, पिष्टक आदि भी बनाये जा सकते हैं। कुछ विशिष्ट पदार्थों को बनाने की विधियां यहां प्रस्तुत हैं :—

पापड़

खूब पके हुए अंजीर चुन चुन कर उन्हें अच्छी तरह से साफ करलें और कलईकार बरतन में रखकर इन्हे खूब अच्छी तरह से कुचल लें। इसके बाद इस कुचले पदार्थ को कपड़े से छान लें और इस छने हुए गूदे को मामूली घी लगाकर थालियों में फैलाकर धूप में सुखा लें। (शेष पृष्ठ १२४ पर)

आज की कृत्रिम सभ्यता के प्रभाव से मानव के मन में अनेक गुत्थियां उत्पन्न हो रहीं हैं और इसके परिणाम स्वरूप उसकी चिंतनशैली परिवर्तित हो रही है। विज्ञान के विकास ने हमारी कई सुनहरी मान्यताओं को; हमारे विश्वास को, हमारी श्रद्धा को समाप्त कर दिया है यह निश्चित है कि कहानीकार भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। वह काम (सेक्स) की ओर भागता है। मन के अवचेतन और अचेतन स्तर का विश्लेषण करता है !

आधुनिक हिन्दी कहानी में वर्णन से अधिक विश्लेषण, घटना से अधिक चरित्र, सहज पात्रों से अधिक असहज, भावुकता से अधिक बौद्धिकता, अप्रत्याशितता के स्थान पर क्रमिक विकास चरम परिणति और स्थूलताके स्थान पर सूक्ष्मता एंव विभिन्न

मनः स्थितियों के प्रतीकों का प्राधान्य पाया जाता है
यही कहानी का मनोविज्ञान से संधि स्थल है।

यद्यपि मनोविज्ञान की प्रमुख भूमिका यथार्थ ही
फिर भी जुंग आदि मनोवैज्ञानिक उसमें आदर्शवाद
प्रतिष्ठा कर सके हैं। आधुनिक हिन्दी कहानीकार
अपने जीवन दर्शन के अनुरूप आदर्शवाद या यथा
वाद की स्थापना कर सकता है। कहानीकार
मनोविज्ञान कहानी के पात्रों के मनोविज्ञान की सृ
करता है। इसके साथ ही समाज एंव समूह मनोविज्ञा
का हिन्दी कहानी में प्रवेश हुआ है, यह आंचलि
कहानियों से स्पष्ट है। कहानी मनोवैज्ञानिक अध्यय
का एक रूप है और वह अध्ययन मात्र जीवन के ए
अंग का हो सकता है।

कहानी के प्रांरभिक युग से ही मनोविज्ञान उस
निकट रहा है। किन्तु यह निकटता आंशिक निकटता थी
आरंभिक युग की कहानियों में मनोविज्ञान का आभा
तथा रूढ़ प्रयोग मिलता है उनमें मानव मतका विश्ले
षण किया गया और आधुनिक हिन्दी कहानी त
आते आते मनोविज्ञान जीवन का पर्यायवाची ब
गया है। आधुनिक हिन्दी कहानी में मानव जीवन
वैचित्र्य-वैविध्य का मानसिक स्तर पर निरीक्षण कि
गया है।

मनोविज्ञान पहले आत्मा का विज्ञान था फिर अनु
भव का, फिर मन, फिर चेतना और अब वह अवचेत

का विज्ञान बनकर रह गया है। ठीक इसी प्रकार हिन्दी कहानी भी अपने परम्परागत मूल्यों को छोड़कर नयें मूल्यों का अन्वेषण कर रही है।

कहानी वातावरण की सजग प्रतिक्रिया होती है। व्यक्ति की दबी कुचली वासनाओं, मनोविकारों और व्यापक मानसिक असंतोष से कहानी सृजन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और लेखक के बाहरी एंव मानसिक वातावरण के बीच एक अन्विति की भावना निर्मित हो जातीं है। लेखक की यह अनुभूति इतनी स्वचालित हो जातीं है कि स्वयं से परिचित और कई बार अपरिचितरहस्यों का भी उद्घाटन कर देतीं है।

मनोविज्ञान जीवन को समझने का साधन है, साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है और कहानी साहित्य की एक समर्थतम विधा होने के फलस्वरूप जीवन के एक अंग की कहानी है, मनोविज्ञान कहानी के विशेष पात्र का मनो विश्लेषण। स्वयं प्रेमचन्द के अनुसार सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।

आधुनिक कहानीकार ने अपनी हर समस्या को मनोविज्ञान के आधार पर ही सुलझाने का प्रयत्न किया है। यह मनोविज्ञान कहीं अलग से नहीं आया, बल्कि स्वयं पात्रों के सहज चरित्र में घुल मिलकर उतरा है। मनोविज्ञान के विश्लेषण में कहानीकार अधिक सूक्ष्म, अधिक स्पष्ट और अधिक संतुलित रहता है।

हिन्दी का प्रथम कहानीकार 'प्रसाद' है, अ
सन् १९०९ में लिखी उनकी कहानी 'ग्राम' हिन्दी की प्र
कहानी है। इससे पूर्व की कहानियों में मौलिक
का नितांत अभाव था। 'प्रसाद' की कहानियोंमें प्रतीकात्मक
है, पर उनमें भावुकता अधिक है। उन
कहानियों में मनोविज्ञान घटना से नहीं, भावना से सं
लित होता है। कौशिक की 'ताई' में बाल मनोवि
एवं नारी के अभावजन्य मनोविज्ञान का अच्छा चित्रण

प्रेमचंद ने चारित्रिक मनोविज्ञान की सृष्टि की
वह मनोविज्ञान आदर्शात्मक अधिक है। उनके पा
निरंतर ऊँचे उठते गये हैं। कहानीकार के इस सहा
भूति परक स्पर्श को अमनोविज्ञानिक तो कहा ही नहीं
सकता'। प्रेमचंद में अति समाजीकरण और अति सामान्य
करण तो कुछ सीमा तक अवश्य है।

इलाचंद्र जोशी की १९२० में लिखित कहानी 'सजन
आधुनिक मनोवैज्ञानिक हिन्दी कहानियों का समारम्भ
करती है। आधुनिक हिन्दी कहानी पर बंगला,
अंग्रेजी एवं पंजाबी के प्रभाव भी पड़े हैं एवं उसके रू
में निखार आता जा रहा है। आधुनिक हिन्दी कहा
की पार्श्व भूमि में अनास्था अधिक रही है और कहा
का नायकत्व भविष्यहीन आयुवृद्धों के दुर्बल कंधों
आ गया है आज कितने ही कथाकार खुद नहीं जा
कि वे अपनी कथा का ताना बाना आखिर बुनते कि
लिये हैं ?

आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहानी लेखकों में विष्णु प्रभाकर, अज्ञेय, पहाड़ी, यशपाल, अश्क, जैनेन्द्र, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्वदा; राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, मन्मथ नाथ गुप्त, रमेश बक्षी, ज्ञानी, कमलेश्वर, रेणु आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

अश्क, पहाड़ी और यशपाल तीनों ही कहानीकार ने 'सेक्स' की समस्या पर कई कहानियां लिखी हैं। किन्तु यशपाल में वीभत्स और घृणा अधिक है, पहाड़ी में तीव्रता अधिक है, अश्क में दोनों की अपेक्षा संतुलन है। पहाड़ी स्वयं मानते हैं "नग्न चीज जैसे वीभत्स लगती है पर मुँह छिपाकर चलना एक नैतिक अपराध है।" .... कहानी का पूरा ढांचा मैं पहले कभी नहीं बनाता हूँ वह स्वयं ही बनता है।" पहाड़ी की कहानियों में न वीभत्स है, न नैतिक अपराध और न बनावट ही। उनकी मालायती कहानी की नायिका 'मालायती' एक ग्रामीण सुन्दरी है जो किसी एक सिपाही से प्रेम करती है और उसमें असफल होने के कारण सब में अपना प्रेम बांटती है। फ्रायड के मनोविज्ञान के अनुसार यह उसकी अतृप्त भावना और असंतुष्ट राग का उदात्तीकरण है जो कला और संगीत के रूप में फूट निकला है।

अश्क की एक कहानी है 'पलंग'। कहानी का नायक केशी माँ के प्रति आकर्षण रखता है, यह उसकी मातृ प्रणयन अर्थात् इडिपस ग्रंथी है। यह ग्रंथी भी फ्राइड द्वारा आविष्कृत की गई थी। यशपाल में यौनवाद

और मार्क्स वाद दोनों की साथ-साथ झलकियां मिलती हैं। जैनेन्द्र की कहानियों में दार्शनिकता अधिक है और अपरिपक्व यौन भावनाओं के बड़े सजीव चित्र मिलते हैं। 'अज्ञेय' आधुनिक युग के सर्वाधिक सशक्त कहानीकार हैं। उनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिकता की निष्कम्प लौ है, प्रसाद की भाँति उनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिक उत्ताप की कृत्रिमता नहीं हैं। साहचर्य नियम (Laws Of Association) के आधार पर कुछ कहानियां लिखी गई हैं। चाहे उनकी क्रांतिकारी जीवन की कहानी हो, या असफल प्रेम की वैयक्तिकता एवं सामाजिकता दोनों धरातलों पर मनोविज्ञान का प्रतिबिम्ब उनकी कहानियों में उतरा है। 'रोज' (इसका नाम गेंग्रीन भी है) कहानी में विवाहोत्तर मानसिक स्थिति का श्रेष्ठ छवि अंकन है। उनकी कहानियों में स्व-वार्तालाप की प्रवृति अधिक दिखलाई देती है। इनमें वक्ता और श्रोता एक ही है।

इलाचन्द्र जोशी एक अध्ययन शील कहानीकार हैं, उनकी कहानियों में इस जीवन एवं जगत की गहन अध्ययनशीलता स्पष्ट झलकती है। उनकी बौद्धिक सहानुभूति सर्वहारा वर्ग के साथ है। (जबकि अज्ञेय की सहानुभूति पूंजीपति वर्ग के प्रति है)। जोशी जी ने अपने वर्ग की भावनाओं को कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। फ्रायड और एडलर दोनों का ही उन पर प्रभाव है।

प्रभाकर माचवे ने अमेरिकन जीवन पर कई अच्छी कहानियां लिखी हैं। 'जेनी' एक अमेरिकन नारी है।

कहानी में समाज, मनोविज्ञान और गाँधी दर्शन की स्पष्ट छाप है। उनकी हास्य कहानियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

चन्द्र गुप्त विद्यालंकार को प्रभाव प्रधान कहानियां लिखने में अद्वितीय सफलता मिली है। वे मनोविज्ञान के सहारे गहराई में पैठते हैं और उनका सूक्ष्म विश्लेषण कर देते हैं।

विष्णु प्रभाकर की 'नाग फांस' कहानी का मनोविज्ञान बहुतों को पसंद आया। नाग फांस की मां भारतीय मोहासक्त माँ की प्रतीक है। यह प्रतीक सामान्य पात्र नहीं है, इस माँकी स्थिति ठीक इल्लती (Compulsion nearotic) के रोगी जैसी स्थिति है, जिसे अपनी हरकतों का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता।

निर्गुण ने भी मनोवैज्ञानिक आदर्श वाद की कुछ अच्छी कहानियां लिखी हैं।

'रेणु' की तीसरी कसम अर्थात् मारे गये जुलफाम एक अविस्मरणीय कहानी है। वे एक कुशल कथा-नायक हैं और जीवन की स्वर-लिपि में प्रेम की स्वर लिपि में यह कहानी लिखी गई है। इस कहानी में जीवन का मनोविज्ञान है। रोमांटिक संवेदन और लोक जीवन के सशक्त चित्र इसमें हैं। निम्न वर्ग की सीमाओं का श्रेय मनोविश्लेषण है।

रांगेय राघव की 'जदल' कहानी मानव मनकी गहराइयों को सरल स्वाभाविक ढंग से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करती है। इस कहानी में असाधारण, अपरिचित

अजनवी नारी के चित्रण की ओर लेखक का अधिक ध्यान है।

कमलेश्वर में आंचलिकता नहीं है, किन्तु अपनी जन्म भूमि मैनपुरी के कस्बे की भावसिकता, उसके निवासियों और वातावरण के प्रति तीव्र सहानुभूति परक आकलन अवश्य है। 'राजा निरवासियां' उनकी बहुचर्चित आंचलिक और मनोवैज्ञानिक कहानी है। इस कहानी की वस्तु पुरानी है, पैसे के दबाव से किसी स्त्री को प्राप्त करना......फिर भी मानसिक अंतर्द्वन्द्व है। लेकिन कल्पना से आकस्मिक पर-पुरुष संपर्क के दोष को चमत्कार के द्वारा जिस सहजता से मिटा दिया है, उसे वास्तविक लोक जीवन में इतना भयंकर रूप मिलता है यह मनोविज्ञान नहीं तो और क्या है ?

'मार्कण्डेय' की 'आवाज' कहानी में सांकेतिकता, प्रतिकात्मकता और मनोविज्ञान की विधा से गहरा सम्पर्क है। कहानी में वर्णन काफी पारदर्शक एवं चित्रात्मक है। प्रस्तुत कहानी में ध्वन्यात्मकता, नाटकीयता और आवाज के आरोह अवरोह से सरकारी अफसर का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। कभी आवाज शक्लें बनने लगतीं हैं, कभी ठोस अर्थ, कभी शब्द की तरह सार्थक भी और यहां तक कि दृश्य और स्पर्श्य भी। कहानी आक्रोश में समाप्त हो जाती है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद स्पष्ट है।

मोहन राकेश में औद्योगिक जीवन की व्यस्तताओं का विश्लेषण है, उनकी कला, शिल्प और वस्तु की तीव्रता सभी सहज हैं। अनुभव का अपनापन उनका एक विशिष्ट कोण है जो उनकी विभिन्न कहानियों में उभरता है। 'आदमी और दीवार' या राही दीवार पर बनी हुई आंख को चाकू से मिटा देना चाहता है लेकिन वह विकृत आंख पहले से ज्यादा विकृत होकर उसके बनाये हुये सूराख में से घूमती रहती है।

राजेन्द्र यादव में मोहन राकेश की भाँति दुःखद करुण और ट्रेजिक नियति की भावना पाई जाती है। उनकी लगभग प्रत्येक कहानी में मन के किसी न किसी धरा-तल को उजागर करने की कोशिश की है। जहां लक्ष्मी कैद है में रूपक है कि धन और बेटी को या धन को व्यक्ति बेटी की तरह ही न भोग सकता है, न किसी को दे सकता है।

निर्मल वर्मा की कहानियों पर भी अकेले और भटकते हुयें सायें मंडराते रहते हैं। उनका कमेरे में बंद अस्तित्व जैसे निरंतर मुखर होता गया है।

सत्येन्द्र शरत् की 'सूक्ष्म बात' कहानी में चित्रकार के लियें सौन्दर्य बोध की कमी और नारी मन की अतृप्त वासना सूक्ष्म बात के रूप में प्रगट होती है। इसलियें और कि कलाकार के लियें कोई बात अनैतिक नहीं होती।

डॉ. रघुवंश की कहानियों में वातावरण की सजीवता है। परिस्थिति जन्य प्रतिक्रिया की सचेष्टा क्रिया के आकलन में वे पूर्ण सफल रहे हैं।

'अमेरिकन बीट्स' या 'सार्त्र' जैसे अस्तित्ववादी लेखकों की रचना से हिन्दी कहानीकारों में रघुवीर-सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शरद देवड़ा, राजकमल-चौधरी, धर्मवीर भारती आदि कहीं न कहीं प्रभावित अवश्य हैं।

पुरुष कहानीकारों की सहानुभूति पुरुष पात्रों के साथ हो न हो किन्तु वे नारी को पुरुष की भाव भूमि से और पुरुष को पुरुष की भावभूमि से जानते हैं महिला कहानीकारों ने पुरुषों को ममतामयी और विद्रोहमयी नारी दोनो भाव भूमियों से जाना है। वे स्वयं को पहिचान गई हैं और उनका कहानी सृजन जागरण का प्रभाती राग है ....। महिला कहानीकारों में पुरुष कहानी-कारों की अपेक्षा भारतीय संस्कार और मर्यादा अधिक है और इसी कारण स्वच्छंदता कम है अभीप्सित स्वतंत्रता अवश्य है और यही कारण है कि उनकी मनोवैज्ञानिक कहानी उच्छृंखलता के मैदान से निकल कर धीरे-धीरे उदात्तीकरण (सब्लमेशन) के दायरे में आती जा रही हैं।

उषा प्रियम्वदा, चद्रकिरण सौनरिक्सा, मन्नूभण्डारी, कृष्णा सोबती, रजनी पनिकर, शिवानी, मालती परूलकर, सोमावीरा; उषा देवी मित्रा आदि महिला कहानीकारों की रचनाओं में मनोवैज्ञानिकता के अवसर पर्याप्त अधिक आये हैं।

उषा देवी मित्रा की कहानियों में समाज के विविध पक्षों और उनसे सम्बंध रखने वाली समस्याओं को

चित्रण हुआ है। मित्रा के पास नारी का हृदय है, जिसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या उनकी कहानियों की सही देन है। सौनरिक्सा कई अंशों में यशपाल से प्रभावित हैं। उन्होंने समस्याओं को प्रगतिशील दृष्टिकोण से उठाने का सफल प्रयास किया है।

उषा प्रियम्वदा ने व्यक्ति के मानसिक असंतोष और उसके अकेलेपन की ट्रैजिक नियति को गहराई के साथ महसूस किया है और तीखेपन से उसे अभिव्यक्ति दी है। अमेरिकी जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाली कहानी लेखिका ने विदेशी कथा साहित्य की भांति मनो-वैज्ञानिकता के अधिक प्रसंग प्रस्तुत किये हैं।

सोमावीरा ने भी अमेरिका में जाकर एक नये संदर्भ में भारतीयता का अध्ययन किया। उनकी 'डेमोक्रेटिक प्रेम' कहानी में प्रेम की स्वच्छंदता पर प्रकाश डाला गया है किन्तु कहानी के अंत तक आते आते मानसिक तटस्थता और मानसिक-शारीरिक अकेलापन परिलक्षित होने लगता है जो कहानी का वैशिष्ठ्य है।

मालती परुलकर की 'कट्टो' एक शिशु कथा है। शिशु-मन की भावनाओं का इसमें सहज विश्लेषण है।

रजनी पनिकर ने जीवन के विविध पहलुओं के चित्र चित्रित किये हैं। 'सिगरेट के टुकड़े' में मानसिक अस्वस्थता एवं मानसिक अस्थिरता के आकलन किये गयें हैं।

मन्नू भण्डारी पर्लबक की संवेदना और डैफिन डी-मोरियत, की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति लेकर हिन्दी कहानी साहित्य में उतरी है। फ्रांसीसी कथा लेखिका फ्रेस्वा सांगा की भांति इनकी कहानियों की नारी पात्रायें आधुनिक युग की समस्त जटिलताओं से युक्त हैं। उनकी नारियां अपने मानसिक तनाव का समाधान प्रेम में ढूंढ़ती हैं। वे सांगा की भांति किसी प्रकार की कुण्ठा से ग्रस्त नहीं हैं। 'घुटन' कहानी इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस कहानी का केन्द्र विन्दु उसका वातावरण है जिसके रेशे-रेशे में एक अजब किस्म की मजबूरी और घुटन व्याप्त है।

इतना अवश्य है कि महिला कहानीकारों का मनोविज्ञान आज भारतीयता की गंध के अधिक निकट है अपनी संस्कृति के संयमी स्वरूप और उसकी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अनुसार ही वे दिशायें खोज रही हैं। उन्होंने एक नवीन युग पार कर लिया है।

निष्कर्ष यह है कि साहित्य एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है रचनाकार अपने वातावरण के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को कलात्मक माध्यम के द्वारा अभिव्यक्त करता है, इसी लिये साहित्य में मनोवैज्ञानिक निरूपण होना अनिवार्य सा हो जाता है। व्यक्तिपरक और वस्तु परक दोनों ही प्रकार के साहित्य में मनोवैज्ञानिकता निश्चित रूप से होतीं है। विषयानुकूल उसकी मात्रा घटतीं बढ़तीं रहती

है। प्रत्येक युग में प्रत्येक साहित्य में यह मनोवैज्ञानिकता आंशिक रूप से अवश्य विद्यमान रहती है। फ्रायड के अनुसार जीभ की फिसलन (स्लिप आफ टंग्स) का मूल हमारे अवचेतन मन के चिंतन और रागात्मक में बोध होता है। यह सिद्धांत सूर की गोपियों द्वारा ले दही के स्थान पर ले कृष्ण की रट में स्पष्ट ध्वनित होता है। किन्तु मनोविज्ञान का यह प्रारंभिक स्वरूप है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानी में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अधिक अवसर आते हैं। आज की हिन्दी कहानी में सांकेतिकता बिम्ब प्राधान्य और प्रतीकात्मकता बढ़ती जा रही है। सस्ती भावुकता से मुक्ति दिलाकर हिन्दी कहानी में आज के लेखक ने भीतरी, और भीतरी अस्तित्वों की सार्थक खोज प्रस्तुत की है। कतिपय विभिन्न विचित्र प्रकार के असामान्य पात्र गढ़े गए हैं। उन्हें एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करने की चेष्टा आधुनिक हिन्दी कथाकारों ने की है। विषय वस्तु और शैली दोनों में ही मनोविज्ञान का सहारा लिया गया है। आज कहानी अधिकाधिक सूक्ष्म होती जा रही है, मन के परमाणुओं से भी अधिक लघुपरमाणुओं का अन्वेषण विश्लेषण कर रही है।

कहानी की परिभाषा निरंतर परिवर्तित होती जा रही है। प्रत्येक युग में कहानी नया स्वरूप धारण कर लेती है, हम जब तक परिभाषा स्थापित करने का प्रयास करते है, वह अपनी पुरानी जगह छोड़ चुकी होती है। मनो-

विज्ञान पर भी इस स्थिति का प्रभाव अवश्य पड़ता है सचाई यह है कि कहानी या कोई भी मानव विज्ञान परिभाषा की सीमा में बंधकर रह सके यह संभव नहीं प्रतीत होता। कुछ निराशावादी आलोचक सदैव ही भविष्य के बारे में चिंतित रहते हैं। इस बात की संभावना है कि मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति जीवन की जटिलता की वृद्धि के साथ और अधिक बढ़ती जायेगी। आधुनिक कहानी के भविष्य के विषय में जो भी अनुमान लगाये जायेंगे वे सर्वथा सत्य नहीं हो सकते।
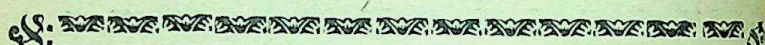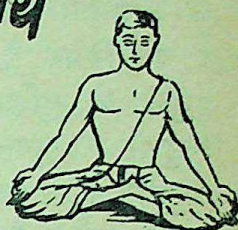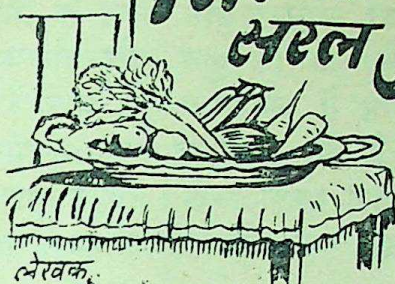
उजड़ा हुआ गांव फिर बसाया जा सकता है, गये हुये धन क्षेत्र और धाम पुनः प्राप्त कियें जा सकते हैं। शरीर से शुभाशुभ कर्म तो होते रहते हैं, परन्तु यह मनुष्य शरीर बार बार प्राप्त होना दुर्लभ है। अनेक प्रकार की असहनीय वेदनाओं से त्रस्त को भी शरीर छोड़ने की इच्छा नहीं होतीं, फिर भी इस शरीर के प्रति इतनी उपेक्षा क्यों ? ऐसे दुर्लभ शरीर को दुर्व्यसनों द्वारा बर्बाद करना कहां तक उचित है। यह तो महानतम अज्ञानता ही कही जा सकतीं है, अतः सत्कर्मों द्वारा स्वस्थ रहकर, इस शरीर की सार्थकता का ध्यान हमें अवश्य करना चाहियें।

"आहारशुद्धौ तत्वशुद्धिः तत्शुवद्धौ ध्रुवा स्मृतिः" शरीर की रक्षा के लिये अन्न ही प्रधान है। धर्म की रक्षा के लियें शरीर की आवश्यकता हैं। धर्म से मन शुद्ध होता है, शुद्ध मन से भक्ति ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति होती है। अतः सम्पूर्ण सिद्धि निरोगिता से ही प्राप्त

होती हैं, तथा शरीर का निरोग रहना शुद्ध आहार पर ही संभव है। मनुष्यता का सौभाग्य प्राप्त करने के लिये मन की निर्मलता आधेय है, जो कि शुद्ध और सात्विक आहार पर निर्भर है। सृष्टि में समस्त वस्तुएं प्राप्य हैं। यह मनुष्य की बुद्धिमत्ता है कि उनमें से अपने उपयोग की वस्तुओं को चुन-चुन कर इकट्ठा करले। आहार विहार का समुचित ध्यान रखकर ही अपने कार्य को संपन्न करना मानव का कर्तव्य है।

गीता के १७ वें अध्याय में आहार के तीन विभाग सात्विक, राजस, तामस बताये गये हैं। तदनुसार अपनी भोजन व्यवस्था करने से मनुष्यमात्र का बड़ा हित होगा कृष्ण ने कहा है:—

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रितिविवर्द्धना-
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहारा सात्विक प्रिया
कट्वम्ल-लवणात्युष्ण-तीक्ष्ण-रूक्षविदाहिना-
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकाभय प्रदा ॥
(गीता अध्याय १७। ८-९)

अर्थात् आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख प्रीति बढ़ाने वाले एवं रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय आहार अर्थात् भोजन सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं कड़वे, खट्टे, लवण युक्त और अति गरम तथा तीक्ष्ण, रूखे और दाहकारक एवं दुख, चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार

राजस लोगों को प्रिय होते हैं, तथा जो भोजन अध-पका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, एवं बासी उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र है वह भोजन तामस लोगों को प्रिय होते हैं।

रस्या— मधुर, कषाय, तिक्त, कटु, अम्ल और लवण ये ६ रस हैं। मधुर रस सर्व श्रेष्ट है क्योंकि इसमें पौष्टिकता अधिक रहती है। जैसे चावल, गेहूँ, बाजरा आदि अन्न तथा सकरकन्द, आलू, खजूर, दाख, बादाम, पिस्ता, नारियल, अखरोट, अनार, आम, ईख, कन्दमूल, मेवा तेलहन प्रकृति से मधुर रसयुक्त पदार्थ अपने लिये हित-कर हैं।

स्निग्ध प्राकृतिक स्नेहयुक्त मधुरस प्रधान आहार पदार्थ अर्थात् जो खेतों में पककर तैयार होता है। जिन अन्नों में सफेद दूध, जब वे खेतों में पककर तैयार होते हैं। तब उनकी पूर्ण स्निग्ध अवस्था है। स्निग्ध आहार बड़े ही उपयोगी व स्वास्थ्य वर्धक होते हैं कृत्रिम एवं अप्राकृतिक आहार मनुष्य को अकाल मृत्यु की ओर ले-जाते हैं। राज निघन्टु में लिखा गया है:—

व्रीहिर्गौरी मधुरशिशिरः पित्तहारी कषायः·
स्निग्धो वृष्यः कृमिकफहरस्तापरक्तापहश्च।
पुष्टिं दत्ते श्रमवमनकृदः वीर्यवृद्धि विधत्ते:
रुच्योऽत्पत्तं जनयति मुदंवातकृन्मेचकोऽन्यः॥

सफेद चावल मधुर कषाय रस युक्त शीतल, पित्त शामक, स्निग्ध, बस्तिशोधक, कृमि एवं कफ नाशक,

रक्त की बढ़ी हुई गर्मी को शांत करने वाला, अत्यन्त रुचि पैदा करने वाला, और चित्त को प्रसन्नता देने वाला पौष्टिक एवं थकावट दूर करने वाला, वीर्य बर्द्धक होता है। अन्य श्यामवर्ण चावल वातवर्द्धक होता है। चावल को पकाने के बाद उसमें से लोग मांड़ निकाल लेते हैं, वास्तविक तत्व तो मांड़ में ही होता है। मांड़ का गुण आयुर्वेद में इस प्रकार बताया गया है यथा :—

क्षुद्बोधनो वस्तिविशोधनश्च प्राणप्रद: शोणितवर्धनश्च
ज्वरापहारी कफपित्तहन्ता वायुं जयेदष्ट:गुणो हि मण्ड: ।

अर्थात् भूख बढ़ाना, मूत्राधार को साफ करना, प्राण शक्ति देना, खून बढ़ाना, ज्वर को हटाना, बढ़े कफ पित्त को छोड़ना तथा वात दोष को शांत करना ये आठ मांड़ के गुण हैं। अतः चावल पकाते समय मांड़ नहीं निकालना चाहिये।

इसी प्रकार गेहूं भी हमारे लिये कितना उपयोगी है किस प्रकार हमें उनका सेवन करना चाहिये यह निम्न श्लोक से व्यक्त हो रहा है:—

गोधूमो बहुदुग्धः स्यादश्यो म्लेच्छभोजनः,
यवनो निस्तुपः क्षीरी रसालः सुमनश्च सः;
गोधूम: स्निग्ध–मधुरी वातघ्नः पित्तदाहकृतत् ।
गुरुः श्लेष्मामदो बल्यो रुचिरो वीर्यवर्द्धनः ॥

गेहूं में प्रकृति से ही पर्याप्त मात्रा में दूध होता है इसलिये उसका नाम बहुदुग्धः है। गेहूं को पीसकर, दलिया, बनाकर; दूध से मिलाकर अनेक पदार्थ बनाते हैं। गेहूं

स्निग्ध, मधुर, वातनाशक, उष्णताप्रद, भारी, कफ शामक, बलप्रद, स्वादु और वीर्य वर्धक है। गेहूं एवं चावल में प्रकृति से पूर्ण पौष्टिक तत्व विटामिन ए. बी. सी. डी. स्थित हैं। सफेद दूध वाले दूसरे अन्नों की अपेक्षा चावल तथा गेहूं स्निग्धता तथा रसपूर्ण हैं अतः ये अत्यधिक पौष्टिक हैं तथा फलों की महत्ता भी भोजन में अति अनिवार्य है, यथा :—

दाहघ्नी मधुरास्त्रपित्तशमनी तृष्णार्तदोषापहा,
शीता श्वासकफश्रमोद्‌यहरा संतर्पणी पुष्टिदा।
वह्नेर्मान्द्यकरी गुरुर्विषहरा हृद्या च दत्ते बलं;
स्निग्धा वीर्यविवर्द्धनी च कथिता पिण्डाख्याखर्जूरिका॥

पिण्ड खजूर दाह को दूर कर, मधुर अम्लपित्त-नाशक, प्यास शांत करने वाला, ठंडा, श्वास-कफ-थकावट दूर करने वाला, स्थिर, विष-दोषशामक, हृदय के लिये हितकर, बलप्रद, तथा वीर्य बढ़ाने वाला होता है। इसके अतिरिक्त पक कर सूखी हुई दाख, शीतल, रक्त-पित्तनाशक मधुर, पाक में चिकनी, अत्यन्त रुचिकर, आंखों को हितकर, श्वास-कास-थकावट को दूर करने वाली, सूजन को दूर भगाती तथा अत्यन्त तृप्तिकर व जिन पुरुषों का शुक्र समाप्त हो गया हो उन्हें भी कार्य-क्षम बनाती हैं। यथा :—

शीताः पित्तास्त्र दोषं दमयति मधुरा स्निग्धपाकातिरुच्या,
चक्षुस्या श्वास-कास श्रम वमिशमनी शोक तृष्णाज्वरघ्नी।
दाहाध्मान भमादीनभवति परा तर्पणी पक्वशुष्का;
द्राक्षा सुक्षीणवीर्यानपि मदनकला केलिदक्षान् विद्यते॥

इसके अतिरिक्त नारियल चिकना, ठण्डा एवं पित्त नाशक है। अधपके नारियल का जल प्यास मूत्र प्रणाली गत शोष को हटाता है। पूरा पका हुआ नारियल बहुत देर से हजम होता है। तथा पूरा पका नारियल बहुत देर से हजम होता है तथा पूरा पका नारियल ठंडा पित्त-नाशक, बलप्रद, पौष्टिक, वीर्य वर्द्धक व कांति को बढ़ाने वाला होता है। तथा अखरोट,

अक्षोटो मधुरो बल्य: स्निग्धोष्णो वातपित्तजित्
रक्तदोषप्रशमन: शीतल: कफकोपन: ॥

अर्थात् अखरोट मीठा, चिकना, बलप्रद, वात-पित्त शामक; रक्त संबन्धी दोषों का नाशक, तथा कफ को कुपित करता है। इस प्रकार दैनिक उपयोग में आने वाले खाद्य पदार्थों के उचित सेवन से सर्वदा निरोग रहा जा सकता है।
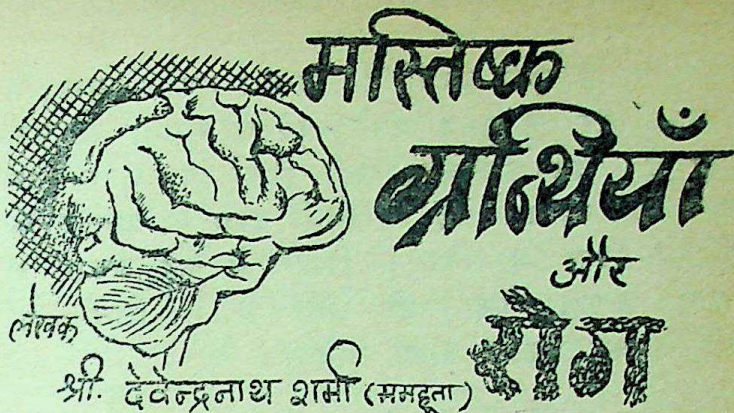
वास्तव में मनुष्य का शरीर मनुष्य नहीं कहलाता बल्कि उसका ज्ञान कोष उसके मस्तिष्क की आदर्शता, निरोगता एवं मस्तिष्क का चमत्कार ही उसे वास्तविक मानव के योग्य बनाता है। जिस मनुष्य में जितना अधिक ज्ञान, सोचने की शक्ति (स्मरण शक्ति) उच्च रहती है, जिसके विचार विचित्र अर्थात् साधारण व्यक्ति के लियें असाधारण रहते हैं। उस मनुष्य की गणना उतने ही महान पुरुषों में होतीं है। शरीर से तो सभी मनुष्यों में समानता रहती है। एक मजदूर के भी दो पैर, हाथ, नेत्र आदि होते हैं और एक चिकित्सक, न्यायाधीश, प्रोफेसर, आदि के भी, पर मस्तिष्क का जहां प्रश्न उठता है। वहीं उस मजदूर तथा चिकित्सक में काफी अंतर होता है। इतना ही नहीं प्रोफेसर और चिकित्सक के मस्तिष्क में भी फर्क पड़ जाता है तथा न्यायाधीश; प्रोफेसर के मस्तिष्क में भी। जैसे ही व्यक्ति के दिमाग में विकार उत्पन्न होता है कि लोग उसे पागल कहने लगते हैं।

समाज उससे घृणा करता है। उसका मखौल उड़ाता है। दिमाग-विकार से पुरुष अपने आप को भूलता सा नजर आता है। वह कब कौन कार्य किया या करेगा उसे स्मरण नहीं रहता। यह भी किसी दशा में पागलों की श्रेणी में लिया जा सकेगा। दिमाग में कई प्रकार के विकार स्वतः पैदा हो जाते हैं। जिन पर आगे चलकर प्रकाश डाला जायेगा।

मस्तिष्क ग्रन्थियों के संबन्ध में वियना के डाक्टर फ्रायड ने अद्भुत खोज की। उनका कहना है कि (१) मानव के दिमाग से उसके मन का संबन्ध है। मानव का मन कई स्तरों का बना हुआ होता है। हम अपने जितने मन को जानते हैं, वह उसका ऊपरी भाग ही है। इसकी तुलना समुद्र की सतह से की जा सकती है और इसी सतह के नीचे हमारा मन है तथा मानसिक ग्रंथियां इसी मन में रहती हैं। उनका कहना है, हमारे मन में अनेक प्रकार की उमंगें तथा भावनानायें सर्वदा उठती रहती हैं। वही भावनायें हमारे चेतना मस्तिष्क पर आ जाती हैं, वह अपना खेल दिखा कर स्वतः शांत हो जाती हैं। फिर वह हमारे ज्ञात व्यक्तित्व का अंग बन जाती हैं। वे उसे बली बनाती हैं। जिन भावनाओं, उमंगों तथा इच्छाओं को प्रकाश में आने का अवसर नहीं दिया जाता वे मानव के अचेतन में चली जाती हैं और वहां पहुँचकर मानव के व्यक्तित्व के प्रतिकूल षड्यन्त्र रचा करती हैं। एक दलित भावना अथवा इच्छा दूसरी

अनेक दलित भावनाओं अथवा इच्छाओं से अपना मेल जोड़ लेती हैं। इस तरह ये भावनायें मानव मन के भीतर एक ग्रंथि अथवा गुट के रूप में संघठित हो जाती हैं। फिर वे मानव के व्यक्तित्व का बल घटाने में लगी रहती हैं। ये ग्रंथियां मानव के जीवन में अनेकानेक कार्यों में विघ्न उपस्थित कर सकती हैं। ये हमारे मन को अशांत बनाये रखती हैं। जब ये ग्रंथियां अधिक प्रबल हो जाती हैं तो वे मानव की विचार शक्ति और उसके विवेक को नष्ट कर देती हैं। मानव को विवेकहीन होकर पशु जैसा आचरण करने के लिये विवस कर देती हैं। (मनोविज्ञान चिन्तामणि पृष्ठ २९)

मानव की मानसिक ग्रंथियां उसे खुद ज्ञात नहीं रहती वे मानव के चिन्तन और आचरण को विशेष प्रकार का बना देती हैं। मानसिक ग्रंथियां किसी व्यक्ति के प्रति किसी पदार्थ के प्रति, किसी विचार के प्रति अथवा अपने आपके प्रति ही बन जाती हैं। ये एक प्रकार के अस्वस्थ स्थाई भाव हैं। हमारे मनमें अनेक प्रेम और घृणा के स्थाई भाव रहते हैं। हम जिसे भला समझते हैं उससे प्रेम करते हैं और जिसको बुरा समझते हैं उसको घृणित रूप में देखते हैं। हमारे इस प्रकार के अनुभव हमारे स्वभाव के अंग बन जाते हैं। मनुष्य में चिन्तन करने की शक्ति है। इसी के कारण वह अन्य सभी प्राणियों का स्वामी कहलाता है। जब मनुष्य भला चिन्तन करता है तो वह अपने सम्पर्क में आनेवाले हजारों लोगों को सुखी बना देता है और जब उसका चिन्तन बुरा होता है तो हजारों

व्यक्ति उससे दुःखी हो जाते हैं। शुभ चिन्तन से हमारी आत्मा का प्रसार होता है और बुरे चिन्तन से वह विकसित नहीं हो पातीं।

अनेक प्रकार के मानसिक रोग जैसे विषाद, हिस्टिरिया, किसी प्रकार की झक, बाह्य विचार, सांकेतिक चेष्टायें, जैसे हाथ का बारम्बार धोना, बार-बार मुँह पर हाथ फेरना, ओठों का काटना, नाखून चबाना आदि मानसिक ग्रंथियों की उपस्थिति के कारण ही होते हैं। कितने ही लोगों को सफाई की इतनी झक रहती है कि वे दिनभर घर को धोते रहते हैं, धोबी के धुले कपड़े को फिर से धुलाते हैं। बाहर से घूमकर आने पर चप्पलों को भी पानी से धोते हैं। बाजार की प्रत्येक वस्तु जो वे खरीदते हैं धोकर रखते हैं। यह सब कार्य मानसिक ग्रंथियों के कारण होते हैं। मानसिक ग्रंथियों की उपस्थिति में मनुष्य बड़ा हठी, अहंकारी और दम्भी बन जाता है। उसका विनय और शील भी एक ढोंग मात्र होता है। इस प्रकार की मनोवृत्ति से वह आत्मविनाश कर लेता है।

मानसिक ग्रंथियां ही ब्लडप्रेसर आदि रोगों को पैदा करती हैं, साथ ही मस्तिष्क के अन्य रोग भी स्वतः पैदा होने लग जाते हैं। वह व्यक्ति अपने आप को शून्य सा समझने लगता है, उसकी हरकतें, अंगों का संचालन-कार्य ही उसके मानसिक रोगों को प्रकट कर देती है। शरीर की बीमारी में धमनियां विकारग्रस्त हो जाती हैं उनकी कार्यक्षमता धीरे-धीरे नष्ट होने लगती है।

शरीर की किसी बीमारी में धमनियोंमें मैल की तह जमने के कारण भीतरसे संकुचित हो जाती हैं और उनकी सतह खुरदुरी हो जाती है, जिससे ब्लडप्रेसर बढ़ जाता है और रूखड़ेपन के कारण समय पाकर रक्त के थक्के पैदा हो जाते हैं। जब तक ब्लडप्रेसर ऊँचा रहता है थक्के शरीर के अन्दर चक्कर लगाया करते हैं। ब्लड प्रेसर गिरने पर ये थक्के कहीं न कहीं रुक जाते हैं। यदि हृदय को पोषण पहुँचानेवाली धमनियों में ये थक्के रुके तो उसे 'कारनोरी थ्राम्बोसिस' कहते हैं और इसमें हार्टफेल होने की आशंका बनी रहती है। जब मस्तिष्क की धमनियों में थक्के रुकते हैं तो उसे सेरेब्रल थ्राम्बोसिस कहते हैं। पण्डित गोविन्द वल्लभपन्त का इसी बीमारी से देहावसान हुआ था। रुग्णावस्था में उनकी जो दशा थी उससे इस रोग की भयंकरता की कुछ जानकारी हो सकती है। रक्त में थक्कें बनने के कई और कारण भी हैं। किसी व्यक्ति के रक्त में थक्का बनने की प्रवीणता पायी जाती है। डिप्थीरिया, टाइफाइड इनसेफल, इरिस आदि जीवाणुजन्य रोगों तथा मधुमेह, उपदंश और भयंकर रक्ताल्पता में भी रक्त के थक्के बनते देखे जाते हैं। गर्भावस्था में भी यह रोग देखा गया है। इस रोग में खतरा दूर करने के लिये हृदय को बल देने और रक्त परिभ्रमण को बढ़ाने का उपाय किया जाता है ताकि थक्का अपनी जगह से हट जाये। बिना सोचे विचारे रेचक दवा लेना या उपवास करना खतरनाक है।

प्रादाहिक रोग

मेनिंजाइटिस और इनसेफलाइटिस नामक मस्तिष्क के दो प्रादाहिक रोगों में अक्सर चक्कर पैदा होता है। इन दोनों ही रोगों में ज्वर, भयानक सिरदर्द, वमन, अड़कन, अपने आप टट्टी पेशाब होना या उनका रुक जाना, बकना झकना, बेहोशी आदि खतरनाक उपद्रव दृष्टिगोचर होते हैं। बाद में अक्सर किसी न किसी अंग का पक्षाघात भी हो जाता है और रोगी पूर्ण रूप से चेतनाशून्य हो जाता है। ये दोनों ही प्राणघातक रोग हैं और बच्चों में अक्सर पैदा होते हैं यदि इन रोगों का शीघ्र निदान हो जाता है तो आधुनिक औषधियों की सहायता से इन्हें ठीक किया जा सकता है। अतः चिकित्सा में जरा भी विलम्ब नहीं करना चाहिए। रोगी के मस्तक पर ठण्डे जल की पट्टी रखनी चाहिए या बर्फ की थैली का प्रयोग करना चाहिए। पथ्य अपथ्य का ध्यान रखना अनिवार्य है।

मस्तिष्क का अबुर्द

मस्तिष्क के भीतर अनेक भागों में और अनेक किस्म के अबुर्द (ट्यूमर) पैदा होते हैं यह कठिन और दुःखदायी बीमारी है और इसके लिए अक्सर शल्य चिकित्सा का सहारा लेना होता है। इसमें कभी कभी सिर का चक्कर पैदा होता है और इसके चक्कर में पैर अधिक लड़खड़ाते हैं। सिरदर्द वमन तथा आंखों के आगे अंधेरा पैदा होना इस रोग के अन्य महत्वपूर्ण लक्षण हैं कभी कभी रोगी की दृष्टि शक्ति पूर्णतया नष्ट भी हो जाती है। अन्य लक्षणोंमें अड़कन, वाकशक्ति का लोप, अनजान में पेशाब टट्टी का होना, श्वास क्रिया की

गड़बड़ी अंगों की शून्यता, पक्षाघात, मोटापा, पुरुषत्व का नाश, सूत्रमेह, मधुमेह, मृगी की तरह दौरा आदि शामिल हैं। इस बीमारी में भी रोगी अक्सर बेहोश रहा करता है। रोग पुराना पड़ने पर सोचने विचारने की शक्ति नष्ट हो जाती है, रोगी उन्मादग्रस्त सा रहता है। सुखदुःख का उसे ज्ञान नहीं रहता और न समय तथा स्थान का ही उसे बोध होता है। कभी-कभी वह भयंकर रूप से उत्तेजित हो उठता है तो कभी बिल्कुल मन्द रहता है।

ये सभी उपद्रव अबुर्द के सभी रोगी में देखने को नहीं मिलते। मस्तिष्क के जिस हिस्से में अबुर्द होता है; उसी के अनुसार किसी रोगी में कुछ उपद्रव रहते हैं तो किसी में कुछ। बीमारी साधारण रहने पर स्मरणशक्ति का किंचित् ह्रास चिड़चिड़ापन और मानसिक एकाग्रता का अभाव आदि कुछ हलके उपद्रव दिखाई देते हैं, जिससे रोग की प्रकृति पर किसी का ध्यान नहीं जाता। धीरे-धीरे जब रोग बढ़ जाता है तब उसका स्वरूप प्रकट होता है। इस रोग पर दवाओं का विशेष प्रभाव नहीं होता और शल्यचिकित्सा का प्रायः सहारा लेना पड़ता है। सम्भवतः होमियोपैथिक इलाज इस रोग में कारगर हो सकता है।

मानव जीवन की चौथी अवस्था में सभी अवयव शिथिल और क्षमताहीन हो जाते हैं और वे काम पूर्ववत् नहीं कर पाते। स्नायु संस्थान विशेष रूप से प्रभावित होता है जिससे अगणित स्नायुविक या वात उपद्रव पैदा होते हैं। कितने ही

वृद्धों की आंख, नाक, कान ठीक से काम नहीं करते । पूरे शरीर में जलन होती है चुनचुना होती है और दर्द हुआ करता है उसके हाथ-पांव नियंत्रित ढंग से काम नहीं करते और न उनकी याददास्त ही दुरस्त रहती है । चलते फिरते उठते-बैठते उनका सिर चकराने लगता है और उन्हें बार बार अपनी छड़ी का सहारा लेना होता है । अपनी असहाय अवस्था पर कितने ही वृद्ध क्लेश में डूबे रहते हैं पर इस क्लेश से उन्हें मुक्त करने का अभी कोई सर्वसुलभ एवं कारगर उपाय नहीं निकल सका है । रूस और अमेरिका में वृद्धावस्था की शिकायतों पर व्यापक रूप से अनुसन्धान होता रहा है । सम्भव है कि भविष्य में वृद्धों को कुछ विशेष राहत दी जा सके, पर जो गरीब हैं उन्हें अवश्य ही आरम्भ में सुविधा प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना होगा ।

प्राचीन भारतमें रसायन विज्ञान

लें० श्याम मनोहर व्यास एम्. एस-सी.

रसायन विज्ञान का मुख्य उद्देश्य भिन्न पदार्थों के गुणों की जानकारी प्राप्त करना है। रसायन विज्ञान में भारतीयों ने प्राचीन काल में काफी उन्नति की थी। प्राचीन काल में मुनियों ने रसायन विद्या में कई नये तथ्यों को खोज निकाला था। कपिल मुनि की यह मान्यता थी कि पदार्थ पांच तत्त्वों के संयोग से बनता है। आगे चलकर कणाद ऋषि ने वैशेषिक दर्शन की रचना की जिसमें उन्होंने लिखा है कि पदार्थ छोटे से छोटे कणों से मिलकर बनता है! उनका सिद्धान्त कणवाद या परिमाणुवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

कणाद ईसा से ५०० वर्ष पूर्व हुयें थे। भारतीय रसानयज्ञ ने परमाणु से भी अधिक छोटे कणों की कल्पना की थी। महाभारत काल में रसायन विज्ञान काफी विकसित हो चुका था। इस काल में कांच बनाने की विधि भी भारतीय रसायनज्ञ जानते थे।

भारतीय रसायनज्ञ पारे को सोने में परिवर्तित करने की कला में बड़े पारंगत थे।

जन साधारण में ऐसी अनेक किमवदन्तियां प्रचलित हो गयी कि पर्वतों से आये एक साधू ने कुछ पारा औषधियों सहीत चिलम पर रखा और फिर फूँक लगाई पारा देखते ही देखते सोने में बदल गया।

भारत में रसायन की परम्परा का प्रारंभ तीन दृष्टियों

से हुआ। आयुर्वेद के सहारे, उद्योग धन्धों के सहारे और दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर।

उद्योग धन्धों के लिये रसायन का जो उपयोग हुआ उसका लिखित विवरण कम ही मिलता है।

स्वर्णकारों ने सोने व चांदी के शोधन के लिये अम्लों का निर्माण किया।

महाभारत काल में भवन निर्माण कला के लिये नये-नये रासायनिक पदार्थों का भी आविष्कार हुआ। विभिन्न प्रकार के रंगों का निर्माण करना रसायनज्ञों ने खोजा। दर्शन शास्त्र की पद्धति पर ऋषियों ने प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थों के स्वरूप को जानने का प्रयत्न किया। अणु व परमाणु पर भी खोज हुई।

पश्चात् बौद्ध और जैन दार्शनिकों ने भी रसायन पर काफी खोज की। पदार्थ के सूक्ष्म रूप को जानने का उन्होंने प्रयास किया।

आयुर्वेद के सहारे भी रसायन विज्ञान में काफी खोज हुई। आयुर्वेद में अनेक रासायनिक क्रियाओं द्वारा नई-नई जीवनोपयोगी औषधियों का निर्माण हुआ। भारतीय इतिहास में सबसे बड़ा रसायनज्ञ नागार्जुन हुआ था। इसे भारतीय रसायन का प्रवर्त्तक भी माना जा सकता है नागार्जुन कब हुआ ? इसके बारे में इतिहासज्ञो के भिन्न २ मत है।

अधिकांश इतिहासज्ञों ने नागार्जुन का समय काल सातवी शदाब्दी माना है।

नागार्जुन के समकालीन तीन अन्य और रसायनज्ञ हुयें थे —

(१) देव (२) अश्व घोष (३) कुमारलब्ध।

नागार्जुन का जन्म एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में विदर्भ के एक गांव में हुआ था।

उसकी शिक्षा-दीक्षा मगध के नालन्दा विश्वविद्यालय में हुई। वहां वह बौद्ध भिक्षु बन गया और थोड़े वर्षों पश्चात् वह वहां का उपकुलपति बन गया।

रसायन विज्ञान में वह प्रकाण्ड पंडित था।

किवंदन्ती है कि एक बार नालन्दा में घोर दुर्भिक्ष पड़ा, बौद्धों में जीवन संकट में पड़ गया। नागार्जुन अपनी रसायन विद्या से सामान्य धातु से सोना बनाना जानता था। इस कला से उसने बौद्ध भिक्षुओं की आर्थिक सहायता की।

नागार्जुन ने "रस रत्नाकर" नामक एक रसायन-विज्ञान संबन्धी रचना की।

इसके कुछ समय पश्चात् ही गन्धार के एक भिक्षु असंग ने "योगाचार भूमि शास्त्र" लिखा। इसमें उसने पातंजलि के योग का भी समावेश किया।

अमोघवज्र नामक भिक्षु ने (७४६-७७२) चीन में जादु-टोने के मंत्रों के सहारे रसायन विज्ञान का प्रचार किया।

अनेक भारतीय रसायनज्ञों ने तिब्बत में भी भारतीय रसायन विज्ञान का प्रचार किया।

"रसरत्नाकर" ग्रंथ में चांदी को सोने में बदलने की विधि का वर्णन इस प्रकार है:—

किमत्र चित्रं यदि पति गंधकः
पला शनिर्यासिरसेन शोधितः।
आरण्यकैरूत्पलकैस्तु पाचितः
करोति तारं त्रिपुटेन कांचनम्॥

अर्थ :— [अर्थात् इसमें आश्चर्य क्या यदि पीला गंधक पलाश-निर्यास रससे शोधित होने पर तीन बार गोबर के कंडों पर गरम करने पर चांदी को सोने में परिवर्तित करदे।]

मिश्रित व अशुद्ध धातु से शुद्ध धातु निकालना भी रसायनज्ञ जानते थे।

नास्ति तल्लोहमातंगो यत्र गन्धक केशरी।
निहन्याद् गन्ध मात्रेण यद्वा माक्षिक केशरी॥
(७। १३८ — १३९)

अर्थ :—[ऐसा कोई लोह अर्थात् धातुरूप हाथी नहीं है जो गन्धक रूप सिंह से न मारा जा सके, या जो माक्षिक रूप सिंह के गन्ध मात्र से न मारा जा सके।]

प्राचीन रसायनज्ञ यशोधर ने किसी भी धातु को स्वर्ण में परिवर्तित करने की एक विचित्र विधि लिखी हैं:—

रसकं दरदं ताप्यं गगनं कुनरी समम्।

रक्तस्नुहीपयोभिश्च मर्द्दयोर्द्दनसप्तकम् ॥
जल यन्त्रेण वै पाच्यं चतुर्विंशति यामकम् ।
तेन वेध्यं द्रुतं ताम्रं तारं वा नागमेववा ॥
सह (शत) वेधी तु तत्कल्को जायते नात्र संशयः।

अर्थ :— [रसक (Calamine), दरद, ताप्य और गगन कुनटीसम, इन सबको लाल स्नुही के दूध में सात दिन तक मले और फिर ३ दिन तक जल यन्त्र में पकाए। अब इसमें गला हुआ ताँबा, चाँदी या सीसा मिलाओ इस प्रकार जो योग तैयार होता है; वह अपने से सौगुनी या हजार गुनी धातु को भी सोने में परिणत करने का सामर्थ्य रखता है। इसमें कुछ भी सशय नहीं है।]

प्रचीन रसायन सम्बन्धी और ग्रन्थ जैसे रसार्णव, रसप्रकाश सुधाकर, रसराज लक्ष्मी एवं धातुरत्नमाला आदि भी मिलते हैं।

लवण व क्षार के बारे में एक ग्रन्थ में लिखा है :—

सौवर्च्चलसैन्धवकं चूलिकसामुद्ररोमकविडानि ।
षड्लवणान्येतानि तु सर्जीयवटंकणाः क्षाराः ॥

अर्थ :— [सौवर्च्चलं (शोरा), सैन्धवक (Rock Salt) चूलिक, सामुद्र, रोमक और विड ये छः लवण हैं। सर्जिकक्षार, यवक्षार और टंकण (Borax) ये तीन क्षार हैं।]

मिश्र धातुओं का भी उल्लेख मिलता है।
पीतल, कांस्य एवं वर्तलोह इन तीन मिश्र धातुओं का वर्णन मिलता है।

रसरत्नसमुच्चय में निम्न यन्त्रों का वर्णन मिलता है

जो धातुओं के शुद्धिकरण एवं पदार्थों के उबालने के काम में आते थे।

ढोला यन्त्र, पातना यन्त्र, दीपिका यन्त्र, नालिका यन्त्र, विद्याधर यन्त्र एवं धूप यन्त्र आदि।

इस लेख में प्रचीन भारतीय रसायन विज्ञान का थोड़ा सा दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। १९वीं शताब्दी में भारत में पाश्चात्य विधियों का प्रवेश हुआ था। पर भारत में प्राचीन कालसे ही अर्थात् पूर्व वैदिक कालसे ही रसायन विज्ञान पर खोज शुरू हो गई थी। मध्य युग में भारतीय कीमियागर अपनी कला में बड़े प्रवीण थे। यदि प्रचीन भारतीय रसायन पद्धति से कुछ लाभ उठाया जा सके तो यह हमारे लिये गौरव की बात होगी।

प्रात स्मरणीय जगद्वन्द्य गोस्वामी श्री तुलसीदास जी हिन्दू जाति की रक्षा करनेवाले एक क्रान्तिकारी नेता थे। ब्रह्मज्ञानी ऋषिमुनियों और परम प्रतापी चक्रवर्ती सम्राटों तथा तत्त्वदर्शी विद्वानों एवं कवियोंसे उद्दीप्त हिन्दू जाति की रक्षा करने के लिये मानो उन्होंने अवतार लिया था। कविता तो अपनी बातों को सरस और हृदयग्राही बनाने के लिये उनका एक साधन मात्र थी।

तुलसीदास जी के जमाने में मुसलमानी शासन से हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म पर आघात-पर-आघात पड़ रहे थे और अपने धर्म ग्रन्थों में अपनी रक्षा की शक्ति रखते हुए भी वह उससे अनभिज्ञ थी तथा भीतर ही भीतर छिन्न-भिन्न हो रही थी। तुलसीदास जी ने उसके नष्ट-भ्रष्ट होने का कारण खोज लिया और एक वीर पुरुष की तरह वे उसकी रक्षा के लिये छाती ठोककर खड़े हो गये। मानस उन्हीं के उद्देश्य का एक लिखित रूप है।

मुसलमानी धर्म इस देश में बाहर से आया। वह भारतीय संस्कृति से मेल नहीं खाता था, पर उसमें अशिक्षित जनता के लिये जबर्दस्त प्रलोभन था। मुसलमानी मजहब में एक ही खुदा था, जो बहिश्त में दरबार लगाकर रहता था और वह शासकों की तरह मुसलमानी धर्म न माननेवालों को दण्ड देता था ओर माननेवालों के अपराध भी क्षमा कर देता था। उनके मुकाबले में हिन्दुओं में सैकड़ों देवता थे, जिनमें प्रत्येक मुँह माँगा वर देने वाले, परम स्वतंत्र और महान् शक्तिशाली थे। प्रत्येक हिन्दू-धर्मानुयायी किसी न-किसी देवता का उपासक था। मुसलमानों की एक ही पुस्तक थी, जिसमें लिखी हुई बातों को मानना ही मुख्य धर्म था, जबकि हिन्दुओं के पास कम-से-कम चार ग्रन्थ-वेद थे। हजरत मुहम्मद ही एक मात्र खुदा के आज्ञावाहक थे। मुसलमानों में विचार-स्वातंत्र्य बिलकुल नहीं था। इसके सिवा मुसलमानों के सामाजिक जीवन के नियम भी ऐसे थे, जिससे उनका संगठन प्रति सप्ताह और प्रति वर्ष नये सिरे से ताजा एवं पुष्ट होता रहता था। वे सप्ताह में एक दिन जुमा-शुक्रवार को मस्जिद में एकत्र होते और साथ बैठकर नमाज पढ़ते तथा सामाजिक एकता को पुनर्गठित कर लेते थे। वहीं एकान्त में वे 'हिन्दुओं के साथ किस प्रकार मोर्चा लिया जाय' इस विषय पर निर्भयता के साथ खुलकर बातें करते और आगे का कार्यक्रम निर्धारित करते थे। वर्ष में एक दिन मीलों दूर के मुसलमान दरगाह में एकत्र होते, आपस में गले मिलते और अपना सामाजिक बल बढ़ाने की तरकीबें सोचते और घर लौटकर उसी के अनुसार बर्ताव करते थे। उनके जैसा संगठन हिन्दुओं में नहीं था।

हिन्दुओं में ही नहीं, ईसाई, यहूदी, पारसी, चीनी आदि किसी जाति में भी, जिनके पास ईश्वरीय धर्मग्रन्थ पाये जाते हैं, समाज को संगठित बना रखने की ऐसी युक्ति नहीं पायी जाती। उनके मुकाबले में हिन्दुओं में जप, ध्यान, स्तुति प्रार्थना आदि भी एकान्त में अलग बैठकर करने के नियम प्रचलित हैं। इस प्रभाव से हिन्दुओं की वे जातियाँ, जो उच्च वर्ग वालों से प्रताड़ित थीं, स्वभावतः हिन्दू समाज से और हिन्दू धर्म से विरक्त हो रही थीं। उनकी मानसिक स्थिति भी डाँवाडोल थी, धर्मग्रन्थ भी कोई एक नहीं था। विचार-स्वातंत्र्य इतना खुला हुआ था कि चार्वाक, जो वेद और ईश्वर को नहीं मानता, उसका दर्शन भी शिक्षा का एक विषय बना दिया गया था। पाँच हजार वर्ष पहले भी विचारों की यह विभिन्नता समाज में व्याप्त थी। महाराज युधिष्ठिर ने अपने समय की इस दशा का चित्रण इन शब्दों में किया है —

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नैको ऋषियस्य मतं प्रमाणम।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः।

महाभारत ३-३१३-११७

'तर्क की कहीं स्थिति नहीं है, श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। एक ही ऋषि नहीं है कि जिसका मत प्रमाण माना जाय तथा धर्म का तत्व गुहा में निहित है अर्थात् अत्यन्त गूढ़ है। अतः जिससे महापुरुष जाते रहे हैं, वही मार्ग है।'

महाजन का भी कोई निश्चित पंथ नहीं था। सबका चुनाव अलग-अलग था।

पाँच हजार वर्ष पहले जिस जाति में ऐसा मतान्तर ग्र किये हुए था और वह पांच हजार वर्षों तक लगातार बढ़ता ही रहा था, वह जाति एक धर्म और बल वर्द्धक सामाजिक नियमों से सुसगंठित मुसलमान जाति का मुकाबला कैसे कर सकती थी ? हिन्दुओं में तो भगवान् की शरण में आकर भी एक साथ बैठकर जप, तप, ध्यान, पूजन और भजन करने का नियम नहीं था। सप्ताह की तो बात ही क्या, वर्ष भर में भी कोई एक निश्चित दिन नहीं था जब कि हिन्दू लोग मित्र और भाई-भाई की तरह सा बैठकर अपने समाज की दशा पर विचार करते और इस पर भी तर्क-वितर्क करते कि नये आये हुए धर्म और उसके माननेवाले विधर्मी शासकों से अपनी जाति और धर्म की रक्षा कैसे की जाय। तुलसीदास जी ने हिन्दू-जाति की इस कमजोरी को पहचान लिया और उन्होंने उसके दुर्गुणों को दूर करने के लिए प्रयोग शुरू किया। वह प्रयोग ही 'मानस' है। उन दिनों हिन्दुओं में खासकर संतों और वेदान्तियों में, निर्गुण ब्रह्म की चर्चा जोरों पर थी, किन्तु उन मतों के माननेवालों के लिये परलोक में सांसारिक सुखों की वे सुविधाएँ नहीं थीं, जो मुसलमानी धर्म में थीं। उनका स्वर्ग तो एक नगर सा बसा हुआ था, जिस में हूर और गिलमें तक मिलते थे। इससे निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या न समझ सकनेवालों को मुसलमानी स्वर्ग ज्यादा सुलभ और स्पृहणीय लगने लगा था। विचार-स्वातंत्र्य तो इतना बढ़ गया था कि शैव और वैष्णव एक दूसरे का सिर फोड़ना भी अपने धर्म का अंग समझने लगे थे।

अथर्ववेद के 'संगच्छध्वं संवदध्वम्' वचन से तो शैव और वैष्णव दोनों अभिज्ञ न थे, पर उसका अनुसरण कोई नहीं करता था। ऊपर से विधर्मी शासकों का उत्पात तो सांस ही नहीं लेने देता था। इसका दिग्दर्शन तुलसीदास जी ने 'बाल काण्ड' में इस प्रकार किया है –

देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि विधि होई धर्म निमूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गावं पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव विप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअन वेद पुराना॥

\+ + + + +

जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दस सीसा।
आपुन उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ठ अचारा भा संसारा धर्म सुनइ नहिं काना।
तेहि बहुविधि त्रासइ देस निकासइ जा कह वेद पुराना॥

बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कौन मिति॥

एक ओर हिन्दू जाति पर ऊपर से यह मार-पर-मार पड़ रही थी, दूसरी ओर सामाजिक विश्रृंखलता ऐसी फैल रही थी कि हिन्दू-जाति बिना पतवार की नाव हो रही थी। तुलसीदास के समकालीन हिन्दू-समाज की जो दशा थी, उसका भी वर्णन उत्तर-काण्ड में इस प्रकार किया गया है –

कलि मल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सद्ग्रंथ ।
दंभिन्ह निज मति कल्प करि, प्रगट किए बहु पंथ ॥
भए लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।
सुनु हरिजान ज्ञान निधि, कहहुँ कछुक कलिधर्म ॥

× × × ×

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी ।
श्रुति विरोध रत सब नर नारी ॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन ।
कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा ।
पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई ।
ता कहुँ संत कहइ सब कोई ॥
सोइ सयान जो परधन हारी ।
जो कर दंभ सो बड़ा आचारी ॥
जो कह झूठ मसखरी जाना ।
कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना ॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी ।
कलिजुग सोइ ग्यानी सो विरागी ॥
जाके नख अरु जटा विसाला ।
सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

असुभ वेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं ।
तेइ जोगी तेइ सिद्धनर, पूज्य ते कलियुग माहिं ॥
जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ ।
मन क्रम बचन लबार, तेइ बकता कलिकाल म

× + + +

गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी ।
भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥
सौभागिनी बिभूषन हीना ।
विधवन्ह के सिंगार नवीना ॥

+ + + +

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं ।
उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥
नारि मुई गृह संपति नासी ।
मूड़ मुड़ाइ होंहि सन्यासी ।
विप्र निरच्छर लोलुप कामी ।
निराचार सठ बृषली स्वामी ॥
सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना ।
बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥

× × × ×

तपसी धनवंत दरिद्र गृही ।
कलि कौतुक तात न जात कही ॥
सुत मानहिं मातु पिता तबलौं ।
अबलापन दीख नहीं जबलौं ॥
ससुरारि पिआरि लगी जबतें ।
रिपु रूप कुटुंब भए तब तें ॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै ।
बिनु अन्न दुखी सब लोग परै ॥

तामस धर्म करहिं नर, जप तप व्रत मख दान ।
देव न बरसहिं धरनि पर, बुए न जामहिं धान ॥

× × + + +

नहिं तोष विचार न सीतलता।
सब जाति कुजाति भए मगता॥
इरिषा परुषाच्छर लोलुपता,
भरि पूरि रही समता विगता॥
सब लोग वियोग बिसोक हुए।
बरनाश्रम धर्म अचार गए॥

ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक समाज की यही स्थिति थी। तुलसीदासजी को मालूम था कि हिन्दू-जाति को जो क्षयरोग लग गया है, उसकी अमोघ औषधि उसके धर्मग्रंथों में है, जिसे वह भूल गई है। उनको तो अपने पास से केवल इतना ही करना था कि औषधि निकाल कर सामने रख देना।

उन्होंने निर्गुण ब्रह्म के समकक्ष सगुण ब्रह्म की उपासना सामने रखी और राम को एवं उनके चरित्र को एक केन्द्र बनाया। खुदा का तो कोई मानव चरित्र था ही नहीं, इससे लोग रामचरित्र की ओर आप-से-आप झुके। वह चरित्र बोध गम्य और अनुकरणीय था।

'तोबा' कहने से खुदा अपराध क्षमा कर देता है, तो राम का नाम लेने पर पाप निकट आता ही नहीं, अपराध कैसे होगा?

राम राम कहि जे जमुहाहीं।
तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं॥

मुसलमान शासकों ने बहुत-से हिन्दुओं को जबर्दस्ती मुसलमान बना लिया था। तुलसीदासजी ने राम-नाम जप कराके उनको शुद्ध कर लेने का संकेत किया है।

स्वपच सबर खल जमन जड़, पांवर कोल किरात।
राम जपत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥

इसमें जमन (यवन) शब्द विशेष ध्यान देने का है। निम्न वर्ग के प्रति उच्च वर्ग की जो घृणा थी, उससे हिन्दू जाति का बल बहुत क्षीण हो रहा था। तुलसीदासजी ने उसे ऊपर उठाने का उदाहरण राम के चरित्र में प्रस्तुत किया। सबसे पहले अछूत जाति का केवट मिला। तुलसीदासजी ने उसको राम और उनके गुरु वशिष्ठ दोनों के गले लगाया। वह आजीवन राम का भक्त ही नहीं, बल्कि राम का पक्ष लेकर भरत से लड़ने को भी तत्पर हो गया। यह उदाहरण प्रस्तुत करके तुससीदासने यह दिखलाया है कि समाज में उचित सम्मान पाकर इसी तरह निम्न वर्ग के लोग समूची हिन्दू जाति की रक्षा कर सकते हैं। राम ने जटायु गिद्ध को अपने पिता के समान मानकर सम्मानित किया। वानर हनुमान को पहली ही मुलाकात में लक्ष्मण से दूना प्रिय कहा और गले लगाया—

'तब रघुपति उठाइ उर लावा।
निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥
सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना।
ते मम प्रिय लछिमन ते दूना।'

शबरी-भीलनी के हाथ से राम को फल खिलायें गये। तुलसीदासजीने मानस में जगह-जगह 'सुराज' की प्रशंसा की है। क्या यह हिन्दुओं को संकेत नहीं था कि 'अपना राज्य कायम करो।' तुलसीदास त्रिकालदर्शी महात्मा थे।

मानो वे देख रहें थे कि तीन सौ वर्षों बाद भारत को स्वराज्य दिलानेवाला कोई पुरुष आयेंगा। उसके लियें पहले से उन्होंने रथ तैयार कर रखा था। राम ने जिस रथ की व्याख्या की है, उस रथ के अंगों-उपांगों का मिलान महात्मा गांधी के जीवन से कीजियें—

रावन रथी विरथ रघुवीरा ।
देखि विभीषन भयउ अधीरा ।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा ।
बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना ।
केंहि विधि जितब बीर बलवाना ॥
सुनहु सखा, कह कृपानिधाना ।
जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहिं रथ चाका ।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
वल विवेक हम परहित घोरे ।
छमा कृपा समता रजु जोरे ।
ईस भजन सारथी सुजाना ।
बिरति धर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा ।
बर बिग्यान कठिन को दंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना ।
सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद विप्र-गुरु-पूजा ।

यहि सम विजय-उपाय न दूजा ॥
सखा धर्म मय अस रथ जाकें।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥
महा अजय संसार-रिपु, जीति सकइ सो वीर।
जाके अस रथ होई दृढ़, सुनहु सखा मति धीर ॥
—लंकाकाण्ड

आश्चर्य की बात है कि जिस ग्रंथ में ऐसे रथ का माहात्म्य वर्णित है, उसका पाठ महात्मा गांधी को पितामह से विरासत में मिला था और सचमुच उसी रथपर बैठकर महात्मा गांधी ने विजय प्राप्त की थी।

महात्मा तुलसीदास को क्या यह भी मालूम था कि सुराज या स्वराज्य का जो संचालन करेंगे, वे हिन्दू धर्मग्रन्थों का सहारा नहीं लेंगे और धर्म-निरपेक्ष राज्य चलावेंगे? उन्होंने उनके लिये राम के मुख से हनुमानजी को अपने अनन्य भक्त का स्वरूप इस तरह कहलाया है—

सो अनन्य जाकें असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत ॥

अर्थात् ईश्वर को नहीं मानते हो, तो यह चराचर जगत् ही ईश्वर का रूप है, इसी के सेवक बनो। तुलसीदासजी ने मानसभर में राम का कोई एक निश्चित रूप निर्धारित नहीं किया। बल्कि उनके समय में जितने मत, सम्प्रदाय और उपासना के अन्य केन्द्र थे, राम को सब से सम्बद्ध बताया है। शिव राम के भक्त थे और राम शिव के भक्त थे। इस तरह वैष्णव और शैव-दो बड़े सम्प्रदायोंका कलह शान्त हुआ।

कागभुसुंडि कौवा था, जो पक्षियों में चाण्डाल गिना जाता है, उसे ऊँचे आसन पर बैठाकर उसके मुख से राम-कथा कहलायी, जिसे पक्षियों के राजा गरुड़ ने आसन से नीचे बैठकर सुना। इस तरह गुण को जाति पांति से ऊँचा दिखलाया और उच्च वर्ग का मार्ग-प्रदर्शन किया।

तुलसीदासजी ने राम को आदर्श पुरुष और महाराज दशरथ के परिवार को आदर्श परिवार का रूप दिया है तथा महाराज दशरथ के परिवार के स्त्री-पुरुषों के स्वभावों का चित्रण उसी प्रकार किया है, जिस प्रकार के स्वभाववाले पात्र उस समय के हिन्दू-परिवारों में थे। इससे पात्रों को अपने गुण-दोषों का तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने के लियें एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है।

सारा मानस भक्ति के प्रसंगों से भरा है। तुलसीदासजी ने व्यक्तिगत चरित्र की शुद्धि को ही राम की भक्ति में प्रमुख स्थान दिया है। जैसे ——

जातें वेगि द्रवउँ मैं भाई। सो सम भगति भगत सुखदाई॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहं जानै दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक शरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके॥
बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा विश्राम॥

—अरण्यकाण्ड

इस तरह एक-एक व्यक्ति का जीवन भक्तिमय होकर शुद्ध हो जायेगा तो उससे बना समाज सुदृढ़ और उन्नतिशील बन जायगा।

तुलसीदासजी ने हिन्दुओं को एक साथ मिलने-जुलने, बैठने-उठने और विचार-विनिमय के लियें कई केन्द्र स्थापित कियें, जैसे-कीर्तन, रामलीला, तीर्थ माहात्म्य, गंगाजी का 'दरस परस मज्जन अरु पाना' राम-कथा का श्रवण आदि।

तुलसीदासजी अपने वर्तमान काल को देखते हुयें अपने प्रयोग की रक्षा में भी जागरूक थे। उन्होंने कलियुग में हिन्दू जाति की दुर्दशा का चित्रण तो किया, पर अपने किसी ग्रंथ में 'हिन्दू' शब्द नहीं आने दिया, क्योंकि संभव था कि 'हिन्दू' शब्द से मुसलमान शासकों के कान खड़े हो जाते और वे मानस को ही निर्मूल करने में लग जाते।

मानस हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म की रक्षा और वृद्धि के लियें तुलसीदास का एक प्रयोग है। जो गत तीन सौ वर्षों से निरन्तर चल रहा है और यह तब तक चलता रहेगा, जबतक देश में रामराज्य नहीं कायम हो जायगा।

प्रिय पाठकों के अध्ययन हेतु भगवान् श्री कृष्ण के मुखकमल से निःसृत् कुछ वचनामृत का पान पूर्व अंक में कराने का सौभाग्य मुझे मिला। उसी श्रृंखला की यह दूसरी कड़ी है। (गीता जी से)

परंतप श्री कृष्ण अर्जुन को युद्ध करने की प्रेरणा देते हैं। मरने पर उसे स्वर्ग मिलेगा एवं जीतने पर पृथ्वी का निष्कंटक राज्य। अतएव युद्ध तो करना ही है। सुख दुःख, हानि लाभ और जय पराजय को समान समझ कर उसके बाद युद्ध के लिये तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा——

सुख दुःखे समे कृत्वा लाभा-लाभौ जया जयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ (गीताजी २/३८)

उनका महा वचन है— (गीता जी २/४७)

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि॥

तेरा कर्मों में ही अधिकार है, उनके फलों में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मों के फल की वासना वाला मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

उनके लघुवचन सूक्तियां बन कर प्रचलित हो गये हैं —— यथा — "योगः कर्मसु कौशलम्," "नियतं कुरुकर्मत्वं," "श्रद्धा वाँल्लभते ज्ञानं," "क्लैव्यं मा स्मगमः,।" आदि।

उनके वचनों का श्रवण, अध्ययन निस्संदेह कल्याण कारी है — योगस्थः कुरुकर्माणि संगत्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ (२\४८)
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जाग्रति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥ (२\६९)
विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः सशांतिमधिगच्छति ॥ (२\७१)

"श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥" ३ – ३५

अर्थात् अच्छी प्रकार आचरण में लायें हुए पराये धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्म में मरना भी श्रेष्ठ है, परंतु पराया धर्म भय-कारक है। (–इन पंक्तियों में जो धार्मिक संकीर्णता की शंका करते हैं, उनकी अक्ल पर पर्दा पड़ गया है।—)

"ये यथा माँ प्रपद्यन्ते तांस्त थैवभजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ (४–११)
युक्तः कर्म फलंत्वक्त्वा शांति माप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः काम कारेण फलेसक्तो निबध्यते ॥ (५–१२)

श्री मद्भगवद्‌गीता के षष्ठम् अध्याय में (श्लोक ५) में इन का कथन है — "अपने द्वारा अपना उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही आप अपना शत्रु है।

उद्धरे दात्मनात्मानंनात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु रात्मैव रिपुरात्मनः ॥ और
युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (६-१७)
"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वंच मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मेन प्रणस्यति ॥ (६-३०)

अर्थात् जो पुरुष सर्वत्र मुझ भगवान् वासुदेव को ही देखता है, और सबको मुझ वासुदेव में देखता है, उसके लियें मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता।

आगे वे कहते हैं — महाबाहो! निःसंदेह मन चंचल व कठिनता से वश में होने वाला है, परंतु कुन्तीं पुत्र अर्जुन यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है। (गीता ६ - ३५)

असंशयं हि महावाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तुकौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।" और
चतुर्विधा भजन्तेय माँ जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ (७-१६)

अष्ठम् अध्याय के श्लोक ५/६-७ पर दृष्टिपात करें-

" अंत काले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति समद्भावंयाति नास्त्यत्र संशयः ॥
यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदातद्भाव भावितः ॥
तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च ।
मय्यर्पित मनोवुद्धिर्मा मेवैष्यस्य संशयम् ॥ "

अर्थात् जो पुरुष अंतकाल में भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह मेरे भाव को - स्वरूप को प्राप्त होता है । इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । कुन्तीं पुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अंतकाल में जिस - जिस भी भाव का स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस - उस को ही वह प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है । अतएव अर्जुन ! तू सब समय में मेरा निरन्तर ध्यान कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन बुद्धि से मुक्त होने पर तू निस्संदेह मुझ को ही प्राप्त होगा । "

आगे देखिए — (श्लोक १२ - १३, अध्याय ८)

सर्वे द्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राण मास्थितो योगधारणाम् ॥
ओमित्येंकाक्षरं ब्रह्मव्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं सयाति परमां गतिम् ॥ "

भगवान् उन लोगों के योग क्षेम का भी वहन करते हैं -- जो (अनन्य प्रेमी भक्त जन) निरंतर चिंतन करते हुए उन्हें निष्काम भाव से भजते हैं। (९ - २२)

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभि युक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्यु पहृत मश्नामि प्रयतात्मनः ॥ (९ – २६)
"मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायणः ॥ (९ – ३४)

अध्याय १० / ८ में वे कहते हैं :—

अहं सर्वस्व प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव समन्विताः ॥

हे अर्जुन तुझे तो शत्रुओं के मारने में निमित्त मात्र बनना है अन्यथा वे शूर-वीर तो भगवान् द्वारा पहिले से ही मारे जा चुके हैं और इस समय वे लोकों का संहार करने में प्रवृत्त हैं अतएव अर्जुन के न मारने पर भी वे नहीं बचेंगे । (गीता – ११ -- ३२ – ३३)

"कालोऽस्मिलोक क्षय कृत् प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तु मिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यंति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वाशत्रून् भुंक्ष्वराज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्त मात्रं भव सव्य साचिन् ॥"

तदुपरांत भयभीत अर्जुन भगवान् की स्तुति करता है — यह स्तुति नित्य पाठ करने के योग्य है उसके द्वारा प्रमाद व अज्ञान में जो अपराध हो गये हैं, उन्हे भगवान् उसी प्रकार क्षमा कर दें जैसे कि पिता पुत्र के, मित्र मित्रों के, प्रिय प्रिया के अपराधों को को सहन करने के योग्य हो कर क्षमा करते हैं। (असहिस्णु तो क्षमा करना ही नहीं जानता।)

"अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी स्वकर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शांति की प्राप्ति होतीं है।"

"श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात् कर्मफल त्याग स्त्यागाच्छांति रनन्तरम् ॥" (१२-१२)

श्री भगवान् को इस प्रकार का भक्त प्रिय है :— गीता — (१२, १६ - १७)

"अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः
सर्वारम्भ परित्यागी यो मद्भक्तः समेप्रियः॥
योन हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान् यः समे प्रियः।"

जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में परमेश्वर को नाशरहित और समभाव से स्थित देखता है, वही यथार्थ देखता है। — (१३ - २७)

"समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरं।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥"

भगवान् श्री कृष्ण ही सब भूतों के पिता हैं औ प्रकृति माता हैं। यह कथन (अ. १४ \ ४) दर्शनीय है

"सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रदः पिता॥"

वेद के तात्पर्य को कौन जानता है, इसका उत्त वे इस प्रकार देते हैं — (अ. १५ - १)

"ऊर्ध्वं मूल मधः शाखमश्वत्थं प्राहुर व्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥"

आगे कहा गया है कि जो मनुष्य शास्त्र विधि त्याग कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न सुख को और न परम गति को ही। अतएव कर्तव्य और अकर्तव्य की अवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है — ऐसा जानकर तुझे शास्त्र विधि के अनुसार नियत कर्म ही करना चाहिए (१६, २३ - २४

"यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्या कार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तु मिहार्हसि॥"

त्रिविध दान का स्वरूप सत्रहवें अध्याय के २० २१ - २२ वें श्लोक में बताया गया है। सात्विक दा का स्वरूप इस प्रकार है — (२०) 'देना ही कर्त है; ऐसा मान कर जो दान देश, काल और पात्र प्राप्त होने पर उपकार न करने वाले के प्रति दिया जात है, वह दान सात्विकदान कहलाता है —

"दातव्य मिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥"

जिसने सब कर्मों का फल त्याग दिया, सचमुच वही सच्चा त्यागी है। —

"न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्य शेषतः ।
यस्तु कर्म फल त्यागी स त्यागी त्यभिधीयते ॥ (१८ - ११)

"स्वे स्वे कर्मण्य भिरतः संसिद्धिं लभतेनरः ।
स्वकर्म निरतः सिद्धिं यथाविन्दति तच्छृणु ॥" (१८ - ४५)

अभिप्राय है — अपने - अपने स्वाभाविक कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। और (१८ - ४७)

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वभाव नियतं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम् ॥

तात्पर्य है — सुचारू रूप से आचरण किये हुए पर धर्म की अपेक्षा गुण रहित भी स्वधर्म श्रेष्ठ है, क्यों कि स्वभाव नियत स्वधर्म रूप कर्म का आचरण करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता ।

गीता की उपदेश पदावली को समेटते हुए वे कहते हैं — (गीता - १८ / ६५ - ६६)

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामे वैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वे धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वे पापेभ्यो मोक्ष यिष्यामि माशुचः ॥

अर्जुन ! तू मुझ में मतवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझको ही प्राप्त होगा। यह मैं तुझ से सत्य कहता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यंत प्रिय है। सब धर्मों को त्याग कर तू केवल एक मुझ परम पुरुषोत्तम परमेश्वर श्री कृष्ण की ही शरण में आजा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।"

(अगले अंक में सम्पूर्ण)
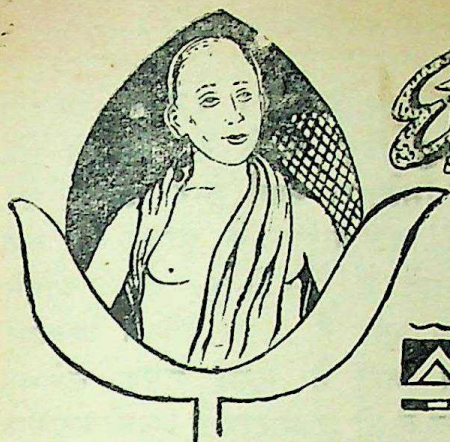
(गतांक से आगे)

बाइबल में हम पढ़ते हैं कि "मांगो जिससे तुमको मिलेगा स्वर्गद्वार ठोको जिससे यह तुम्हारे लिये खुलेगा" हिन्दू कर्म के सिद्धांत का जो उपदेश करते हैं उसका तात्पर्य भी यही है कि इच्छा के साथ फल सिद्धि का सम्बन्ध रहता है। हरेक इच्छा और संकल्पको इसी समय अथवा बाद भविष्य में भी फलीभूत तो अवश्य होना है, राम को अभी इस विषय पर कुछ भाषण देना नहीं है। मात्र संकेत करना ही हाल पूरा है। बागीचे की हरेक कली जैसे समय पर फल देती है, वैसे ही पशु पक्षी आदि प्राणियों की आशा भी अभी या देरी से एक बार जरूर पूरी उतरनी है। जगत में कोई भी शक्ति या पदार्थ का नाश नहीं होता। तो फिर मानसिक क्रियायें इच्छा और संकल्प वगैरह मानसिक वस्तुओं का कैसे विनाश हो सकता है ? सत्वर अथवा देर से

हरेक इच्छा सफल होनी ही चाहिये। कर्म के सिद्धां का यही रहस्य है; परंतु हिंदू कहते हैं कि जो तु "मांगो जिससे तुमको मिलेगा; स्वर्ग द्वार ठोको व तुम्हारे लिये खुलेगा।" इस बाईबल के वाक्य का अ सामान्य लोग जैसा समझते हैं वैसे ही तुम करना चाहते हो, तो यह तुम्हारी बड़ी भूल है, अपने जीवन व्यवहार में यह नियम वर्तमान नहीं है ऐसा तुमको लगेगा परंतु बाईबल के इस वाक्य में जो अध्याहार है इसको सामान्य लोग समझते नहीं है और इसको समझने की परवाह भी नहीं करते। तुमको उसकी भी कीमत देनी पड़े ऐसा है परंतु ऐसा न समझो कि कीमत देने की खास जरूरत है इस कीमत के सम्बन्ध में हम बाईबल में देखते हैं कि जो अपना जीवन बचाना चाहते हैं उनके जीवन का नाश होता है, इसका अर्थ क्या ? "मांगो जिससे दूर और त्यागो उसके आगे" इस लोकोक्ति के अनुसार जो मनुष्य इच्छा, तृष्णा और वासना से भरा हुआ है, उसको कुछ मिलता नहीं है इच्छा और तृष्णा रखकर हम अपना जीवन बचाना चाहते हैं; परंतु "जो अपना जीवन बचाना चाहता है उसके जीवन का अवश्य नाश होता है।"

ईशुकी प्रार्थनामें ऐसा वाक्य आता है, कि हमको "आज तुम हमारा रोज का अनाज दो" बादमें फिर हम प्रार्थनामें ऐसा भी कहते हैं कि "मात्र अन्न से ही मनुष्य जिन्दा नहीं रहता" इन विरोधी वचनोंको तुम बराबर समझो "हमको

आज तुम रोजका अन्न दो" इस प्रकार जब प्रथम बार प्रार्थना करनेमें आई होगी, तब उसका ऐसा अर्थ नहीं होगा कि तुम हमेशा मांगा ही करो। कुछ न कुछ इच्छा रखतेही रहना; और जो नित्य के खान पानसे निश्चित हैं उन्होंने वैसेही दूसरे लोगों से हररोज मंगते रहना; अथवा भौतिक पदार्थ के लिये स्तुति करतेही रहना, उसका सच्चा अर्थ तो यह है कि राजा हो अथवा रंक हो, सामान्य मनुष्य हो अथवा सन्त पुरुष हो, उन्होंने अपने नजदीकका जो द्रव्य, संपत्ति, वैभव अथवा रमणीय पदार्थ हैं, वे मेरे नहीं हैं; परन्तु ईश्वरके हैं. ऐसा मानना चाहिये. इसका अर्थ मांगना नहीं परंतु त्याग करना है "हमको आज हमारा भोजन दो" इन शब्दोंका तुम पूरा विचार करो तो उसका अर्थ मांगना नहीं परन्तु त्याग करना है" ईश्वरको समर्पण करना, ऐसा समझमें आयेगा। एक राजा जिस समय वैसी प्रार्थना करता है तब वह सब जवाहरात, राज्यपाट अपना और राजका सब वैभव इन सबका वह त्याग करता हैं इन सबको ईश्वरको समर्पण करता हैं इन सब परसे वह अपना हक्क उठालेता है ऐसा विचार करके जब राजा इस प्रकारकी प्रार्थना करता है तब वह हमको जरासा भी अयोग्य लगती नहीं है अर्थात् राजाने सर्व संगका त्याग करके, निःसंग होकर अपना जीवन चलाना चाहिये, इस प्रकार राजा सन्यासी का भी सन्यासी है। वह भी यह कहता है, जो कुछ मुझे प्राप्त होता है, वह मेरे प्रेम स्वरूप "परमेश्वर द्वारा ही प्राप्त होता है इस प्रर्थना का वह ऐसा अनुभव करता है "हमको आज, आज का भोजन

दो।" इन वचनों का हमने अभी जो वर्णन किया, उस प्रकार यदि तुम उसका अर्थ करोगे, तो मनुष्य का जीवन मात्र अन्न के आधीन ही नहीं है इस प्रकार अर्थ समझने से ही तुमको इस बाईबल के वाक्य समझने में विरोध नहीं दिखेगा, और अन्य प्रकार से उसका अर्थ करें तो बचनों में विरोध रहेगा ही।

विशेष हम बाईबल में पढ़ते हैं कि, "स्वर्ग का साम्राज्य प्राप्त करो जिससे तुमको सर्व वस्तुयें प्राप्त होंगी।" इन वचनों में भी रहस्य समाया हुआ है। इन वचनों में भोजन के लिये की हुई प्रार्थना का परमात्मा का उत्तर था फिर हमको एक ऐसा वाक्य मिलता है। कि "शोक में उसने बालक को जन्म देना" इन वाक्यों में कुछेक पद कम पड़ते हैं ऐसा हमको प्रतीत होता है। इच्छाओं का फल तो अवश्य मिलने का ही है। जो तुम चाहते हो, वह सब प्राप्त होगा ही; परंतु आप को उदासीनता के रूप में उसकी कीमत देनी पड़ेगी "शोक में उसने बालकों को जन्म देना" इन वचनों को केवल स्त्रियों को ही लक्ष में रख कहने में नहीं आया; परंतु वह हरेक मनुष्य को लागू होते हैं "शोक में" इस शब्द का भी खुलासा करने की आवश्यकता है। समस्त इच्छाओं का परित्याग यह शोक का अर्थ है। जो अपनी इच्छाओं में दृढ़ रहते हैं और जो अपना तन, मन और सर्वत्र अपनी इच्छा को बेचते हैं वह क्या सफलता का अनुभव करते हैं? नहीं! परंतु

जो मनुष्य अपनी इच्छा पर सम्पूर्ण सत्ता रखते हैं; निस्पृह और तटस्थ वृत्ति से अपनी यथेष्ट इच्छाओं को पोषण देते हैं; वे ही मनुष्य अपनी इच्छा और अभिलाषा सफल होने का अनुभव करते हैं।

लोग कहते हैं कि हमारी प्रार्थनायें सुनने में आती है। हमारी प्रार्थनाओं का फल हमको मिलता है परंतु इच्छा करना, याचना, स्पृहा करना, ऐसा ही यदि प्रार्थना का अर्थ करने में आता हो तो प्रार्थनाओं का कभी भी फल मिलता नहीं है, तुम ऐसी प्रार्थना कितनी ही करो, परंतु उसका तुमको कभी भी फल मिलता नहीं है इच्छा में आये उतनी चीजें मांगो, परंतु वह तुमको मिलेंगी ही नहीं 'प्रार्थना शब्द का अर्थ उच्च प्रकार का है, इच्छा के उस पार पहुँच कर "हे प्रभु! तेरी इच्छा अनुसार हो" इन वचनों के साथ एकतार होना यही प्रार्थना शब्द का अर्थ है याचना करना, इच्छा करना, अथवा मेरी इच्छा पूर्ण हो; ऐसा इसका अर्थ नहीं है अपनी इच्छानुसार हो ऐसा ही प्रार्थना शब्द का अर्थ लोग समझते हैं और वे आत्मा शब्द का अर्थ भी क्षुद्रात्मा, अल्पात्मा और याचना करता हुआ जीव, ऐसा ही करते हैं; परंतु "हे प्रभु! तेरी इच्छा अनुसार हो।" ऐसी भावनामें ही प्रार्थना शब्द का सच्चा रहस्य और महत्व छिपा हुआ है। तुम्हारा जीवन अनेक उपाधि, अनेक प्रकार के संकटों से घिरा हुआ तो भी तुम्हारे हृदय की गहराई में से "हे प्रभु! तेरी इच्छा अनुसार हो।" ऐसा ही उद्गार

निकलना चाहिये। कदाचित तुम्हारा शरीर व्याधिग्रस्त हो। आसपासका सब वातावरण आपत्तिमय बन जाये तो भी तुम्हारे हृदय गर्भ में से "हे प्रभु! मेरी इच्छा अनुसार नहीं, परंतु तेरी इच्छा अनुसार हो" ऐसा ही भाव स्फुरण होना चाहियें। इसी का नाम आत्म संयम, इसी का नाम आत्मत्याग और इसी का नाम आत्म समर्पण है। हृदय से की हुई प्रार्थना का सच्चा रहस्य प्रार्थना का चेतन और प्रार्थना का आत्मा यही है, जिस प्रार्थना का स्वार्थी इच्छाओं में अवसान होता है। ऐसी प्रार्थनायें कभी सुनने में नहीं आतीं और सफल नहीं होतीं। जहां यह शरीर, शरीर नहीं है, जहां यह मन मन नहीं है, जहां जगत के किसी प्रकार के सम्बन्ध नहीं रहते अर्थात् सब सम्बन्धों को भूलना पड़ता है ऐसी भूमिका प्राप्त होकर, सम्पूर्ण एकाग्रता प्राप्त कर जब हमारा मन अल्प काल भी दैवी भाव में स्थिर होता है; उस समय जो-जो प्रार्थना करने में आती हैं। उन सभी प्रार्थनाओं का स्वीकार होता है अर्थात् वे सभी प्रार्थना सफल होतीं हैं। ऐसी स्थिति भले ही पल मात्र रहे तो भी चिंता नहीं। ऐसी स्थिति में से जाग्रत होकर व्यवहार दशा में आते हुये जो हमको कोई भी इच्छा का स्फुरण हो, वह इच्छा अवश्य पार पड़ेगी। जब मनुष्य सम्पूर्ण इन्द्रिय दमन, सम्पूर्ण आत्म संयम, सम्पूर्ण अहंता का त्याग, सम्पूर्ण संसार त्याग, सम्पूर्ण आत्म समर्पण और सम्पूर्ण आत्म निवेदन की उच्च स्थिति

में पहुँचता है। तब जो प्रार्थनायें करने में आतीं हैं वे सब अवश्य फलित होतीं हैं, परंतु ऐसी प्रार्थनाओं की भिक्षा मांगने की और याचना करने की प्रार्थना नहीं करनी चाहियें।

कितनेक लोग ऐसे हैं, जो कि वे नित्य नियमानुसार प्रार्थना करते नहीं हैं और प्रार्थना की उनको सुधि भी नहीं रहती। फिर भी उनकी सभी इच्छायें फली भूत होतीं हैं। परंतु ऐसी कौन सी स्थिति में होता है और वह मनुष्य किस वर्ग के और किसके समान होते हैं यह हमें देखना चाहियें। तुम किसी एक वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा किया करते हो। परंतु जब तक तुम भिखारी की अवस्था में हो तब तक तुमको कोई भी चीज मिलने की नहीं, तुम ठीक तरह से जानते हो कि जब किसी बड़े आदमी को मिलने के लियें जाना होता है तब उसकी योग्यता के अनुसार हमें पोशाक पहननी होती है। ईश्वर महान् से महान्, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और सब वासनाओं से परे है! इसलियें तुमको इस महान् प्रभु के पास जाना हो तो उनके पास जाने के लियें योग्य वस्त्र धारण करके जाना चाहियें किसी भी प्रकार की इच्छा अथवा स्पृहा रूपी मलिनता से रहित बनकर ही जाना होगा तुमको भिखारी और दूकानदारी की पोशाक से रहित होकर जाना चाहियें। कारण कि जगत में भिखारी को कोई भी नहीं चाहता भिखारी सब जगह अपमान करके हकाल देने में आते हैं, जो

तुम्हें भी ईश्वर प्राप्ति करना है तो ईश्वरी पोशाक दैवी संपत्ति धारण करना होगा। यह पोशाक ऐसी है कि जिसका पहनने से हमको किसी प्रकार की न्यूनता स्पृहा अथवा इच्छा रहती नहीं है जब तुम निरिच्छ और निस्पृह बनोगे। तभी तुम ईश्वर की तरफ से सम्मान प्राप्त कर सकोगे।

जिस मनुष्य को इच्छा, तृष्णा और आकांक्षा है अहर्निश जो इसी चिंता में रहते हैं जिसको कुछ न कुछ अपूर्णताही दीखने में आती है। ऐसे मनुष्य को कभी सुख नहीं मिलता जब तक तुम याचना करोगे और वासना किए जाओगे। तब तक तुम अशांति का अनुभव करोगे! इच्छा जो सुख के रूप में प्रतीत होतीं है वह कभी प्राप्त नहीं होगी। इच्छा और इष्ट प्राप्ति का सुख इन दोनों के बीच महान विरोध है तुम्हारी इच्छा यह तुम्हारी दीनता है। — क्रमशः

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों के समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या का समाधान चाहते हों तो लिख भेजें—सम्पादक]

श्री एस. सी. बाफना मद्रास

पत्र नं. १

प्रश्न नं. १— मुझे कान से कम सुनाई देता है इसलिये आप उपचार के लिये आसन एवं प्राकृतिक इलाज बताइये।

प्रश्न नं. २— धारणशक्ति एवं स्मरण शक्ति के लिये आसन, प्राकृतिक इलाज व आयुर्वेदिक दवाइयों के नाम बताइये।

प्रश्न नं. ३— शीर्षासन करने का समय एवं स्थिति बताइये। शीर्षासन करते समय आंख खुली रखनी चाहिये या बन्द ? शीर्षासन ज्यादा से ज्यादा कितने मिनट तक करना चाहिये ?

उत्तर १— कानों के अंदर के सूक्ष्म अवयवों में किसी कारणवशात् हानि पहुँची होगी, विषमज्वर, वायु विकृति अचानक अधिक भय के कारण से कानों के ज्ञान-क्रिया तंतुओंका काम स्थगित हो जाता है। जलमें तैरते समय कानों के पर्दे में धक्का पहुँचना, ऐसे कारणों से सुनने में नहीं आता है। प्रथम किस कारण से हुआ है वह जाने बिना इलाज बताने में संदेह होना स्वाभाविक है। अशक्ति या वायु के विकारों से यह बीमारी का कारण होगा तो निम्नांकित इलाज करिये। प्रातःकाल स्नान के बाद पूर्ण पद्मासन २ मिनिट, मत्स्यासन नं. १, २ मिनिट, मत्स्यासन नं. २, १ मिनिट, अर्धमत्स्येंद्र सन ४ मिनिट, कर्ण पीडनासन २ मिनिट, सर्वांगासन २ मिनिट विपरीत करणी ३ मिनिट, शवासन ४ मिनिट।

अन्य लाभदायी उपचार।

तीन दिन में एक बार प्रातःकाल स्नान के प्रथम कान में तेल छोड़कर कानों के छिद्रों में उंगुली रखकर उंगुलियों से कानों को अंदर से हिलावें। यह स्पंदन धीरे से करें। प्रकृति को अनुकूल हो, ऋतु अनुकूल हो उस तेल का व्यवहार करें तिल्ली, नारायण तेल. खोपरे का, सरसों का, ब्राह्मी का लहसुन से तैयार किया गया खोपरे के तेल का भी व्यवहार कर सकते हो। स्नान के बाद सिर में ५ मिनिट तेलमालिश करें। कान में मल होवे तो निकाल लेवें। कान में तेल छोड़ने के बाद कान से मल निकालने में सुविधा होगी। एकान्त में बैठकर मुख से ॐ की ध्वनि निकालें। प्रथम पद्मासन में बैठकर पूरक कर ओं की ध्वनि मुख से दीर्घकाल तक निकालें

इस समय कानों में उंगली रखें और मन में भावना करें कि सुनने में ध्वनि आती है। प्रेम तथा आनन्द की भावना मनमें अधिक होना जरूरी है। अच्छा प्रदेश हो। हरियाली वनौषधि हो। वनौषधियों से प्रसार होकर के वायु कानों के छिद्रों में प्रवेश करती है। वहां यह प्रयोग करने में अधिक लाभदायक होगा। ऐसे स्थान का अभाव होने पर स्वच्छ, निर्जन तथा सुगंधीयुक्त फूल, उदबत्ती होवे तो अनुकूल होगा। इस ध्वनि का प्रभाव नाभिमंडल से लेकर मस्तिष्क तक के सूक्ष्म अवयवों के ऊपर पड़ता है। अजागृत इन्द्रियां जागृत अवस्था में आतीं हैं, और जागृत इन्द्रियां कार्यकुशल बन जाती हैं। ॐ की ध्वनि जितने दीर्घ काल तक होगी उतना लाभदायक सिद्ध होगा। फेफड़े में श्वास भर लेने की क्षमता का प्रथम अभ्यास करना होगा। परावाणी से पश्यन्ति, पश्यन्ति से मध्यमा, मध्यमा वाणी से वैखरी वाणी द्वारा मधुर आवाज आकाश तथा वायुमंडल में प्रवेश होने के समय आकाश तथा वायु के सूक्ष्म तत्त्व अर्थात् आकाश का शब्द तन्मात्र तथा वायु का स्पर्श तन्मात्रा का प्रभाव सूक्ष्म रूप से कानों के पर्दे के ऊपर पड़ते हैं। इस प्रयोग से अवश्य लाभ होगा। हानि होने की संभावना नहीं है। कानों के पर्दे को जागृत-सचेतन एवं कार्य-क्षमता में ले आना है। अन्य अनेक प्रयोग हैं किन्तु यह प्रयोग तुम्हारे लिये अनुकूल होगा।

प्राणायाम

उज्जयी प्राणायामः— सुखासन में बैठकर नाकके दोनों छिद्रोंसे पूरक करें। कुम्भक के बाद दाहिनी नाड़ी बंद रखें।

बाईं नाड़ी से रेचक करें। यह एक प्राणायाम हुआ। ४ मात्रा तक पूरक, १६ मात्रातक कुम्भक तथा ८ मात्रा तक रेचक करें। ऐसे प्राणायाम प्रातःकाल आसनों के बाद ३ से ९ तक प्रतिदिन करें। प्राणायाम के समय आरंभ से अंत तक मूलबंध कुम्भक के समय जालंदर बंध तथा रेचक के समय उड़ीयान बंध करें।

आहार

शरीर व प्रकृति के अनुकूल आहार का प्रबंध करें। वात प्रकृति होवे तो भोजन के समय लाल प्याज बीट-रूट, लाल मूली, अधरक, सालिड की पत्ती, टमाटर का सलाद बना करके सेवन करें।

उत्तर २— धारणाशक्ति एवं स्मरणशक्ति के लिये शीर्षासन १० से ३० मिनिट, शवासन ६ मिनिट, सिद्धासन २० मिनिट करें।

ब्राह्मी की चटनी, ब्राह्मी का घृत, ब्राह्मी के तैल की शरीर मालीश करने से स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिये अनुकूल होता है। गाय के दूध में शंखावली का चूर्ण प्रति सेवन करने से स्मरणशक्ति की वृद्धि के लिये अनुकूल होता है। दूध, फल तथा सात्विक भोजन से धारणा तथा स्मरण शक्ति की वृद्धि होने में सहयोग प्राप्त होता है।

उत्तर ३— शीर्षासन प्रातःकाल स्नान के बाद अनुकूल होगा। किसी कारणवशात् प्रातःकाल समय नहीं मिले तो सायंकाल पेट खाली हो तब कर सकते हों। शीर्षासन की अवधि के बारे में निश्चित काल ठीक रूप से बताना अनुकूल

नहीं होता है। शक्ति, प्रेम तथा मुख्य कारण के ऊपर निर्भर रहता है। १० से २० मिनिट कियें विना लाभ प्राप्त नहीं होगा शक्ति तथा अनुकूल होने पर २० मिनिट से ६० मिनिट अथवा अधिक भी कर सकते हैं। २० मिनिट के बाद हाथ, गले, ब्रह्मरंध्र तथा पांवों में थकावट नहीं लगेगी। सारे शरीर में नवीन चैतन्य का संचार हो रहा है ऐसा प्रतीत होगा। बुद्धि में स्थिरता, मन में आनन्द, चित्त में शांति का आभास, अहंकार में भेदभावना का द्वंद्व नष्ट होने लगेगा। कदाचित पांवों की उंगलियों में थोड़ी देर तक रक्त का परिभ्रमण नीचे की ओर होने से झनझनाट का भास होगा उस समय दोनों पैरों की उँगुली तथा पैरों के तलों को हिलावें, उंगुलियों से संकोच विकास करें। ३० मिनिट के बाद बाह्य जगत के आनन्द से मन मुक्त बनकर अपने मालिक आत्मा में लीन हो जायगा। बुद्धि स्थिर हो जायगी। आत्मा स्वयं अपने निजी आनन्द में रहेगा। इस समय मन को स्थिर करने के लिये आंखें बन्द रखनी होंगी। मनके अनेक विचारों को रोक कर किसी एक विचार में एकाग्र करना होगा। वह एक विचार परम पवित्र, अत्यन्त प्रेम बढ़ानेवाला, आनन्द में मग्न होने के लिये सहायभूत होना चाहिये। आरंभ में जड़ जगत् का साकार रूप का भी ध्यान कर सकते हो। अर्थात् किसी व्यक्ति विशेष, मूर्ति, फूल, सुन्दर दृश्य अथवा अन्य कोई सुयोग्य वस्तु। समयानुसार उस विचार में परिवर्तन होवे तो बारम्बार उसी वस्तु का ध्यान करना। पश्चात् वह साकार वस्तु निराकार अवस्था में लीन हो जायगी।

तब आनन्द प्राप्त होगा। यह अनुभव समाधि अवस्था में प्राप्त होता है। दीर्घ काल तक शीर्षासन के अभ्यास काल में भी यह अवर्णनीय, अचिन्त्य, अनहद प्रेम के भंडार का अनुभव होता है। श्री रामतीर्थ योगाश्रम में ६० मिनिट से अधिक समय शीर्षासन के अनुभव लेने वाले योग साधक हैं। मेरा स्वानुभव कुमारावस्था से है। किंतु शीर्षासनसे शारिरीक तथा मानसिक लाभ अवश्य है किंतु उच्च रक्तचाप, क्षयरोग, अनहद अशक्तिवान व्यक्ति, जुकाम, दमा से परेशान व्यक्ति आंखों में उग्रता बढ़ गई हो ऐसे लोग शीर्षासन नहीं करें। अथवा योगाभ्यास के तज्ञों की सलाह लेकर करें।

श्री कन्हैया दुबे, ६३ फिल्ड रेजमेन्ट C/o ५६ ए. पी. ओ.

पत्र संख्या १ प्रश्न १— मेरी आयु ३२ वर्ष की है। आज एक वर्ष से मुझे पित्त का विकार हो गया है, जो अधिक मात्रा में है। जो तीनों रंगों यानी सफेद, लाल, पीला है, ज्यादा सफेद ही है, चार पांच दिनों के बाद उलटी सी होती रहती है। मैं कई तरह की आयुर्वेदीय दवा ले चुका हूँ। परन्तु कोई लाभ नहीं है।

भोजन के दो तीन घंटे बाद छाती और गले में जलन होने लगती है जो तीन घंटे तक रहती है। भोजन में रोटी चावल और मूंग की दाल लेता हूँ। करीब ६ माह से मिर्च मसाले भी छोड़ दिया हूँ, सिर्फ नमक खाता हूँ।

प्रश्न २— पित्त के साथ कफ भी हो गया है। कफ से कभी २ गला भी बन्द हो जाता है और हमेशा कफवाला थूक आता रहता है अतः कृपा कर इन दोनों का यौगिक या

आयुर्वेदीय उपाय बताइये जिससे मैं इनसे छुटकारा पा जाऊँ। इसके वजह से काफी दुःखी रहता हूँ। शेष आपकी कृपा है।

उत्तर १— पित्त दोष के आपने जो कारण, चिह्न बताये हैं वे बिलकुल ठीक हैं। पथ्य ठीक रूप में पालन कर रहे हो। आराम होना चाहिये था। कुछ विशेष रूप में विकारों का दौरा होगा। चिन्ता नहीं रखें। आराम पाओगे। भोजन के बाद २ घंटे तक कंठ में जलन रहती है। इसका कारण भोजन के पश्चात् पित्त तथा वायु के संमिश्रण से उर्ध्व वायु द्वारा पित्त का प्रकोप बढ़ जाना है। संभव है वायु के दोष से मलावरोध रहता होगा। पित्त का गुण है अम्लता उत्पन्न करना। अम्लता के साथ वायु के मिश्रण से मल के गुदा द्वार से, निकलते समय रुकावट होती होगी। सर्व लक्षण, विकारों के वर्णन करना दरदी लोग भूल जाते हैं।

प्रथम चिकित्सा:— आहार के बारे में विशेष ध्यान देना होगा। वात, पित, कफ ये त्रिधातुएँ समप्रमाण में रहती हुई आरोग्यवर्धन के लिये मदद करें। सफेद गन्ने का रस प्रातःकाल १२ औंस तथा ४ बजे अपराह्न में सेवन करें। गन्ने के रसमें अद्रक नहीं, नींबू का रस छोड़ सकते हैं। भुने हुये चने प्रातःकाल नाश्ते के समय में २ मुट्ठी तथा सायंकाल ६ बजे सेवन करें। भोजन के समय गेहूँ की रोटी कम लें अथवा ३ महिने के लियें बंद रखें। चावल, मूंगकी दाल, तुवर की दाल और हत्ते में एक दिन उड़दकी दाल का उपयोग करें। पित्त शमन के लियें गाजर उत्तम है। भोजन में गाजर और मूली अवश्य लेना चाहियें। लवकी, पीले रंग की दूधी, भिंडी,

चौलाई की भाजी, सुरण का उपयोग करें। चाय, हिंग, बैंगन तेलहन पदार्थ वर्ज्य हैं। हप्ते में २ दिन रागी (नागली चांचणी, राई के बीज के समान है, अनाज की दुकानवाले के पास प्राप्त होती है) को पीस डालें। ४ तोला रागी का आटा और १२ तोला चावल के साथ मिलावट कर उबालें। जल अधिक हो। यह चावल तथा रागी पक जाने के बाद ठंडे करकेचालू भोजन के बदले खायें। जैसे चावल की कांजी बनाई जाती है उस ढंग से रागी तथा चावल की कांजी तैयार कर रातको अथवा मध्याह्नमें भोजन करें। उपरोक्त प्रमाण केवल अंदाजा से बताया गया है। पाचन के आधार से प्रमाण घटा-बढ़ा सकते हो। चाय के बदले में रागी को गरम करके पीस के रख लीजिये। एक कप जल में एक छोटा चमचा रागी को छोड़कर उबालें; पश्चात् चीनी शक्कर तथा दूध मिलाकर सेवन करिए। वात, पित्त कफ विकारों का शमन करने के लिये लाभप्रद है। पित्त शमन रागी से होता है। हप्ते में २ दिन नींबू शर्बत लीजिये।

योगासनः— प्रातःकाल स्नान के बाद वृक्षासन २ मिनिट, हस्त पादांगुष्ठासन १ मिनिट, उत्कटासन १ मिनिट, विपरीत करणी २ मिनिट, विपरीत करणी अवस्था में पद्मासन, नौकासन नं. २ तथा ३, २ मिनिट, शवासन ७ मिनिट,

प्राणायामः— चंद्रभेदन प्राणायाम ३ से ६ बार करें। विधि इस प्रकारः— पद्मासन में बैठ जायें। दाहिने हाथ के अंगूठे से सूर्यनाड़ी बन्द करके चन्द्रनाड़ी से ४ मात्रा तक पूरक करियें। १६ मात्रा तक कुम्भक करने के पश्चात् ८ मात्रातक

दाहिने हाथ के अंगुष्ठ को ढीला करके अनामिका तथा कनिष्ठिका उंगुलियों से चन्द्रनाड़ी बन्द रखके सूर्यनाड़ी से ८ मात्रा तक रेचक करें। यह चन्द्रभेदन प्राणायाम एक बार हुआ है। तीन बंधोंका लगाना आवश्यक है। तीन बंधोंका विस्तार रूप से इसी मासिक के पत्र नं. १ के उत्तर में समझाया गया है। प्रतिदिन ३ से ६ बार चन्द्रभेदन प्राणायाम तथा ३ बार उज्जई प्राणायाम (पत्र नं० १ के उत्तर में लिखे गये हैं।) करियें। चन्द्रभेदन प्राणायाम से पित्त शमन तथा उज्जई प्राणायाम से वायुदोष का शमन होगा। वात, पित्त, कफ को समानत्व में रखने हेतु रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में अनेक महत्वपूर्ण जड़ी-बूटियां, नीबू, हरी धनिया, लवकी छोड़ी गई है। हप्ते में २ बार रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से सारे शरीर तथा शिर में मालिश ३० मिनिट करने के २० मिनिट के बाद स्नान करें। स्नान ठंडी के दिनों में साधारण गरम पानी से करें। स्नान के बाद शिर में रामतीर्थ ब्राह्मी तेल लगावें।

उत्तरः— २ जब कफ का दौरा हो तब नीबू शर्बत तथा चन्द्रभेदन प्राणायाम मत करियें। अन्य सर्व उपचारों से अवश्य लाभ होगा। कफ के दौरान में शरीर मालिश के समय रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में चौथाई हिस्सा तिल्ली का अथवा सरसों का तेल मिलावट करियें।

श्री रामनाथ कुरुवंशी बालोदा बाजार

प्रश्न नं० १ आंवला तथा हरितकी का प्रयोग चाय के समान उपयोग करने से कोई हानि तो नहीं।

क्या आंवला का जीवन सत्व अधिक उबालने से नष्ट हो जाता है ?

प्रश्न नं० २ ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत ऋतु में कौन-कौन से पथ्य उपयोग करने चाहियें जो स्वास्थ्य एवं शारीरिक दृष्टि कोण से उपयुक्त हों साथ ही साथ सस्ते एवं सुलभ हों।

प्रश्न नं० ३ दुग्ध का स्थानापन्न पेय वस्तु कौन कौन से पेय पदार्थ हो सकते हैं जो दुग्ध के विशिष्ट गुणों की पूर्ति कर सकें। साथ ही साथ सस्ते एवं सर्व सुलभ हों।

उत्तर नं० -१ कारण से कार्य किया जाता है। आप आंवला तथा हरीतकी किस वास्ते सेवन करना चाहते हो यह नहीं बता सके। आरोग्य के लिये चाय वर्जित है। उमर, प्रकृति ऋतु की समझ तथा प्रमाण प्रथम अवगत होने के पश्चात् आयुर्वेद औषध सेवन करने से अधिक लाभ होगा। आपके गांव में आयुर्वेद औषधियों की जानकारी वैद्यराज की सलाह लेने से अनुकूल होगी।

अवलेह, तैल, कषाप आदि अनेक प्रकार की औषधियां विशेष रूप से उबाल कर के तैयार की जातीं हैं।

उत्तर नं० २ ऋतु के अनुकूल अमुक ऋतु में उत्पन्न होने वाले फल आरोग्य के लिये लाभ प्रद हैं। ग्रीष्म ऋतु में आम, अंजीर, द्राक्ष, जामुन, पपीता आदि फलों से आरोग्य बढ़ जायगा। गाय का दूध, चना, उड़द, मूंग,

चावल, घी, साग-सब्जी, हरीपत्ती की सब्जियां सस्तीं तथा लाभ प्रद हैं। शरद तथा हेमंत ऋतु में मेथी, सालम मिश्री, बूंदी, बदाम-पिस्ता के लड्डू से पौष्टिक तत्व का अंश पूर्ण होगा। सेव (सफरचन्द) संतरा, मोसंमी, सीताफल, अमरूद, बेर, पपीता आदि फल। तथा गाजर, मूली लालप्याज, टमाटर, बाजरा, घी, जव, उड़द, साग-सब्जियां आरोग्य के लिये अच्छी हैं। इन दिनों में बकरी का दूध श्रेष्ठ है। हेमंत तथा शरद ऋतु में बकरी के दूध से अधिक लाभ होगा। बकरी के दूध का स्वाभाविक गुण उष्ण एवं सप्त धातुओं का शुद्धी करण करते हुए शक्ति का बढ़ावा करना है। सर्व सुलभ है।

उ. ३-दूधका स्थानापन्न जो ठीक रूपमें उसका स्थान ले सके कोई वस्तु नहीं है और जो फल और मेवे हैं वे सर्व सुलभ न होने से उपयोगी नहीं। वैसे तुलनात्मक दृष्टि से दूध की उपयोगिता समझकर उसका उपयोग करें।

बकरी का दूध सर्व श्रेष्ठ एवं सर्व सुलभ प्राप्त होता है। धारोष्ण दूध से अधिक बल एवं आरोग्य बढ़ जायगा। जंगलों में घूमने वाली वनौषधि सेवन करने वाली बकरी का दूध सर्वोत्तम है। इसी कारण से पूज्य महात्मा गांधीजी घर में एवं प्रवास में बकरी को साथ में रखते थे। अनेक दिव्य औषधियों का सेवन करके उसके मुख्य गुणों को दूध के रूप में स्तन के बाहर निकालतीं है। बकरी का बच्चा दूध पीकर के छोड़ देने

के बाद का दूध भोजन करके सेवन करने से निष्पाप एवं सप्तधातुओं का शुद्धी करण करते हुए रूप-लावण्य, इन्द्रियों की शक्ति तथा हरेक ऋतु में त्रिधातुओं (वात, पित्त, कफ) में किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते हुए शरीर बलवतर रखने वाला होगा। क्षय, दमा आदि अनेक प्रकार के रोगियों के लिये भी बकरी के दूध से अधिक लाभ होता है। दूसरे नंबर में गाय का दूध (हरी घास खाने वाली जंगल में चरने वाली) लाभ देगा। गोरोचन वाली (दूध में पीला रंग स्वाभाविक रूप में अधिक हो तथा धारोष्ण दूध अधिक स्वाद के साथ थोड़ी देर में पच करके भूख लगे)। गौ माता के दूध के सेवन के समय में भी निष्पाप अवस्था में अर्थात् गाय के बच्चे के दूध पीने के बाद बचे हुये दूध का ग्रहण करने से पुण्य संपादन होगा और शारीरिक लाभ अवश्य प्राप्त होगा। दधि, मखन, घी के लिये भैंस के दूध का उपयोग करो, भैंस के दूध से बुद्धि मंद होने का संभव रहता है। बड़े शहरों में बकरी तथा गाय के दूध की अभाव अवस्था में भैंस के दूध का सेवन किया जाता है। भैंस के दूध में शरीर पोषण लिये जीवन तत्व कम हैं शरीर में मेद बढ़ेगा; बुद्धि तीव्र नहीं रहेगी। सप्त धातु की समप्रमाण से वृद्धि तथा शुद्धी के लिये बकरी अथवा गाय का दूध अच्छा है।

रामतीर्थ
ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
(रजिस्टर्ड)
REGD. SPECIALS
BOMBAY - INDIA

दायी है ऊपरोक्त रेखाचित्र में माता अपने बच्चो के सिर में रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की मालिश करके सौन्दर्य, स्मरण शक्ति वृद्धि तथा आंखों की दृष्टि अच्छी बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल सिर के बालों के लिये ही नहीं है, किन्तु शरीर मालिश के लिये भी लाभ दायक है। आगे के रेखा चित्र में आप देख सकते हैं कि लोग अपने हाथों से तैल मालिश कर सारे शारीरिक अवयवों को नीरोग एवं सशक्त बना रहे हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के १० मिनट पहले सारे शरीर तथा सिर की तैल मालिश १० से २५ मिनिट तक अवश्य करें। ऊंचाई और आयु के हिसाब
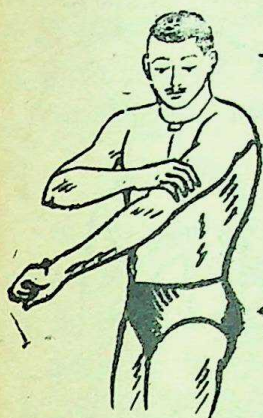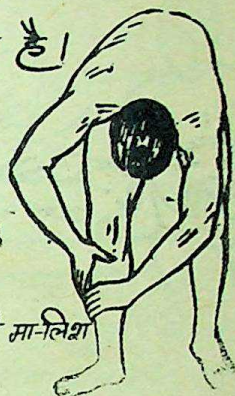
से शरीर का वजन कम होने से वजन बढ़ जायगा। अधिक वजन होने की हालत में आहार परिवर्तन के साथ २ रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का प्रयोग करने से आवश्यक परिमाण में रहेगा।

आप आगे के रेखाचित्र को सूक्ष्म दृष्टि से देखिये। हाथों को, पेट को तथा पीठ के ऊपर मालिश करने के सुलभ तरीके बताए गये हैं। अनेक महिलाओं तथा पुरुषों का विचार है कि अपने हाथों से तैल मालिश अच्छी प्रकार से नहीं कर सकते हैं। दूसरों से करानी पड़ेगी। यदि दूसरों से मालिश कराने की सुविधा होवे तो अवश्य करा सकते हैं। सुविधा न होने पर आलस्य, शंका, और शर्म को छोड़कर अपने हाथों से हर दिन मालिश करने की आदत डालें, किसी कारण से

यदि हर रोज मालिश न हो सके तो सप्ताह में १ से ३ बार रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य मालिश करें या करावें।

विशेष सूचना और लाभ

आपने ऊपर छपे सर्व रेखा चित्रों को देखकर यह समझ लिया ही होगा कि रामतीर्थ ब्राह्मी तैल की मालिश से आबाल वृद्ध-बालक, माता, (महिला) तथा पुरुष वर्ग कितने आरोग्य-मय सुडौल शरीर वाले तथा आकर्षक मुख मुद्रा वाले और कितनी सुन्दर केशभूषा वाले हैं। इतना ही नहीं हरेक अवयवों को हृष्ट-पुष्ट बनाने में सामर्थ्यवान बन गये हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के प्रयोग से गहरी नींद, स्मरण शक्ति की वृद्धि, बाल काले, घने तथा लम्बे बनाने में अनुकूल है तथा इससे बालों का झड़ना बन्द कर गंजा पन दूर करने में लाभ

दायी है। कान में डालने से कान के सूक्ष्म अवयव निरोग बने रहते हैं। ऐसे अनेकानेक महत्त्वपूर्ण लाभों की दृष्टि से ही वैद्यराज, डाक्टर, प्रख्यात विद्वान् वर्ग, राजनीतिज्ञ और अन्य प्रतिष्ठित वर्गों से रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के गुणों के विषय में स्वानुभव पूर्ण अनेक प्रमाण पत्र प्राप्त हो चुके हैं।

छात्र वर्ग के लिये लाभदायक

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, ऋषि-मुनि, साधु-सन्त, त्यागी-वैरागी उदासीन वृत्ति के लोगों को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अनेक प्रकार के लाभ अवश्य ही प्राप्त होंगे।

महत्वपूर्ण जड़ी बूटियों के कारण से छात्र-छात्राओं, (बेसिक स्कूल, मिडिल स्कूल, हायस्कूल तथा कालेज के) को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य लाभ प्राप्त होगा। जैसे, आंखों की दृष्टि सतेज रहेगी। मस्तिष्क शान्त रहेगा। स्मरण शक्ति बढ़ जायेगी। शरीर मालिश से शरीर में स्फूर्ति बढ़ेगी, स्नायु संस्थान तथा रस ग्रंथियों में शक्ति का संचार होगा।

वैसे तो त्वचा की कान्ति, रक्त परिभ्रमण के साथ २ स्वस्थ रहना, चर्मरोग निवारण, शारीरिक जोड़ों में बल, समस्त शरीर में समशीतोष्णता आदि अनेक लाभ सबको प्राप्त होता है। यदि आपने अभीतक रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का उपयोग कर लाभ नहीं लिया हो तो आज ही अपने शहर अथवा गांव के दवा बेचने वाले अथवा जनरल मर्चेन्ट से खरीद करें दो साइजों में प्राप्त है।

न मिलने पर निम्न पते पर लिखें।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.

तिरंगा ही मेरा कफन हो

ले.— एम. आर. गुप्त

श्री सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय ने मुझसे सभा की समाप्ति के पश्चात् मंच के पास मिलने का वादा किया था। वे बैठे थे, नेताओं के बीच मंच के ऊपर, जबकि मैं बैठा था जन साधारण के बीच जमीन पर। पाण्डेय जी को ढूंढ़ने में मुझे विलम्ब न हुआ। वे मेरी प्रतीक्षा में निश्चित स्थान पर तथा स्थिर भाव से खड़े थे, जैसा कि उनका स्वभाव है। निकट पहुंचते ही उन्होंने मुझे ऐसे गले लगा लिया, जैसे बहुत वर्षों के पश्चात् ही मिल रहे हों। कहने लगे कहो आज की सभा कैसी रही?" मैंने कहा बहुत अच्छी रही। मैंने तो इसके पूर्व फूलबाग में इतनी बड़ी सभा कभी देखी ही नहीं थी। आज के नेताओं के भाषण से तो पता चलता था कि भारत माता जिस कारागार में बंद थीं, उसके कपाट ही नहीं खुले हैं, बल्कि हमारे नेताओं के हृदय कपाट भी खुल गये हैं। क्या जोश था आज लोगों में और कैसी भावनात्मक एकता थी कि होली, ईद और क्रिस्मस की आज फूलबाग में त्रिवेणी बह चली। अगर ऐसी ही भावनात्मक एकता और ऐसा ही उत्साह बना रहा, तो हम अपनी गुलामी के दिनों को बहुत ही जल्द भूल जायेंगे।"

पाण्डेय जी ने मुस्कराते हुए कहा 'मैं तो आज तुममें भी जोश देख रहा हूँ। जोश में ही आकर तो

तुमने एक छोटा-मोटा भाषण दे डाला। फिर हंसते हुए मेरा हाथ पकड़ कर चल दिये शहर की ओर।

रास्ते में पाण्डेय जी ने कहा "कामरेड तुमने एक बात आज की मीटिंग में देखी थी कि नहीं ?" मैंने कहा 'जो कुछ मैंने देखा था, उसका तो बखान मैं पहले ही कर चुका हूँ।' इस पर पाण्डेय जी बोले 'मैं तो यही कहूंगा कि तुमने कुछ भी नहीं देखा। कामरेड गुप्ता खून देने वाले मजनू और होते हैं। यहां जो मजनू जमा हुए थे, उनमें ९० प्रतिशत दूध पीने वाले मजनू थे और समझते हो कि मंच पर किन नेताओं की भीड़ थी?" मैंने कहा— 'मंच पर वे ही राष्ट्रीय कार्यकर्ता तथा देश-भक्त नेतागण रहे होंगे, जिन्होंने देश के लिये कुर्बानी की होगी।" पाण्डेय जी हंसने लगे और कहने लगे 'तभी तो मैं कहता हूँ, कि तुमने कुछ भी नहीं देखा। आज तो मंच पर उन नेताओं की अधिक भीड़ थी, जो जेल के नाम से डरते थे, या बीमार पड़ गयें थे अथवा वे इतने अन्डर ग्राउन्ड हो गये थे कि उन्हें खोदकर ही बाहर निकालना पड़ा था। कहां थी यह भीड़ और कहां था यह जोश, उस समय, जब लाठियां और गोलियां चलती थीं ? कितने आदमी इस भीड़ में से जेल गयें थे ? किन्तु स्वराज्य मिल जाने पर अब उसमें हिस्सा बटाने के लिये वे ही लोग आगे-आगे हैं। अगर देश-भक्ति का यह जोश सच्चा होता तो हमारा देश सैकड़ों वर्षों तक गुलाम न रहता

और १८५७ की क्रांति विफल न होतीं। इसीलिए कहता हूं कि इनमें खूब खून देने वाले मजनू बहुत थोड़े थे।"

मैंने देखा पांडेय जी में इस समय क्रान्तिकारी जोश उमड़ पड़ा था। उसके पश्चात् वे कुछ गंभीर हो गये मैंने भी और अधिक उन्हें छेड़ना इस समय उचित नहीं समझा। जब हम लोग डी. ए. वी. कालेज के पास पहुंचे तो पांडेय जी ने कालेज के फाटक के पास वाली सड़क पर से मिट्टी का मेरे माथे पर टीका लगा दिया। मैं हैरान होकर पांडेय जी की मुह की तरफ देखने लगा।

मौन भंग करने का यह उचित अवसर समझ कर मैंने पांडेय जी से प्रश्न किया "पांडेय जी फूलबाग से यहां तक रास्ते में मिट्टी ही मिट्टी मिली, लेकिन किसी अन्य स्थान की मिट्टी को यह सम्मान क्यों नहीं मिला?" मेरी इस उत्सुकता को पांडेय जी ताड़ते हुए कहने लगे "कामरेड और सब स्थानों की मिट्टी निरी मिट्टी ही थी, किन्तु इस स्थान की मिट्टी नहीं, बल्कि सोना है, और शायद सोने से भी अधिक मूल्यवान। "वह कैसे?" मैंने प्रश्न किया। इस पर पांडेय जी ने कहा तुम्हें मालूम नहीं कामरेड! इस मिट्टी को एक शेर ने अपने खून से पवित्र किया है। उसी मिट्टी का टीका लगा कर हमने अपना माथा पवित्र किया है।" मैंने आश्चर्य से कहा, "पांडेय जी! आप क्या कह रहे हैं। शेर तो

खूनी होता है। उसका खून भला कब पवित्र हो सकता है ?" पांडेय जी ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "उस शेर की जब तुम कहानी सुनोगे तो स्वयं कहोगे कि हां उसका खून पवित्र ही नहीं, बल्कि पवित्रतम था। मैंने कहा "पांडेय जी फिर तो मुझे कृपया उस शेर की कहानी अवश्य सुनाइये।" पांडेय जी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। हम दोनों पास में ही ग्रीन-पार्क में पड़ी एक बेंच पर जा बैठे।

पांडेय जी जिनका बात-बात में 'कामरेड' कहने का तकिया कलाम था, मेरे कंधे पर हाथ रख कर कहने लगे "कामरेड ! मैं तुम्हें जंगल के शेर की कहानी नहीं, बल्कि उस शेर की कहानी सुनाना चाहता हूं जो हमारी और तुम्हारी तरह से बोलता, बातें करता, और खाता-पीता था। और जो इन्सानों के बीच रहता था। लेकिन उसके अंदर जो दिल था, वह शेर का दिल था। तुमने चन्द्रशेखर आजाद का नाम सुना ही होगा जो क्रान्तिकारी फौज के कप्तान थे। वे शेर नहीं थे, बल्कि शेरों के शेर थे। श्री सालिग राम शुक्ल कप्तान तो नहीं, उस फौज के एक वीर सिपाही जरूर थे। जिनके अंदर शेर का दिल था और वह बहादुरी में आजाद भाई से किसी भी तरह कम नहीं थे। इसी कारण आजाद भाई उन्हें अपना छोटा भाई मानते थे। आजाद के इसी छोटे भाई के खून ने उस मिट्टी को पवित्र बना दिया है, जिसे अभी हम दोनों ने माथे में

लगाया है। श्री सालिग राम शुक्ल हम इन्सानों बीच शेर ही थे।"

पांडेय जी ने आगे कहा "यों तो भारत में न जाने कित सालिग राम होंगे, किन्तु वीरों की मृत्यु मरने वाल यही सालिग राम था और सालिग राम जीना जानने होंगे, लेकिन मेरा सालिग राम मरना जानता था, और वह शान से मरा कि मां की कोख को धन्य कर गया और क्रान्तिकारी पार्टी के सम्मान को चार चांद लगा गया। कामरेड आप को याद होगा कि हमारे प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू ने रावी तट पर २६ जनवरी, सन् १९२९ को राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्मुख पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव रखा था, और अंग्रेजी सरकार को चेतावनी दी थी कि यदि आजरात के १२ बजे तक अंग्रेजी सरकार भारत के पूर्ण स्वाधीनता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर लेती है तो उसके पश्चात् हमारा अंग्रेजी सरकार के साथ किसी भी शर्त पर समझौता नहीं हो सकता।" हां याद है पांडेय जी और आगे बताइए। मैंने कहा।

"अंग्रेजी सरकार भला हमें कब मानने वाली थी! लोगों ने उस समय यह भी प्रतिज्ञा की थी कि तिरंगा अब हमारा पूर्ण स्वतंत्रता का झण्डा होगा, और जब हमें इसकी शान को बट्टा नहीं लगने देना है। उसी प्रतिज्ञा को उसके पश्चात् हर वर्ष दोहराया जाता रहा।

आज १५ अगस्त को जाकर हमारी यह प्रतिज्ञा पूरी हुई। इसी तिरंगे के लिए बलिदान हुए। भले नौजवानों ने लाठियां और गोलियां खाई, किन्तु उसकी शान को बट्टा न लगने दिया। किन्तु किन नौजवानों ने?" पांडेय जी ने प्रश्न वाचक दृष्टि मुझ पर डाली, और फिर स्वयं ही आगे बोले 'उन नौजवानों ने जिन्हें तुमने आज फूलबाग में गला फाड़-फाड़ कर इनकलाब जिन्दा-बाद के नारे लगाते देखा, या जिन्हें तुमने तिरंगा झण्डा ऊँचा उठाते हुए, ऊँचे स्वरों से गाते सुना विजयी विश्व तिरंगा प्यारा झण्डा ऊँचा रहे हमारा। इस झण्डे की शान न जाने पायें, चाहें प्राण भले ही जायें।', इस झण्डे की शान! इन चिल्लाने वालों और नारा लगाने वालों ने कायम नहीं रखी है। इस झण्डे की शान को कायम रखा है, उन नौजवानों ने जो उसके लियें अपना शीश चढ़ा गयें। कामरेड सालिग राम शुक्ल इन्हीं इने-गिने नौजवानों में से एक थे।" इस समय मैंने देखा पांडेय जी का चेहरा सुर्ख हो रहा था, और उस पर न जाने कितने वीरोचित भावों का प्रदर्शन हो रहा था। मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूं कि दूध पीने वाले मजनू और होते हैं, और खून देने वाले मजमू और होते हैं। मुझे सन् १९३० का वह जमाना भी याद है। जब २६ जनवरी को फूलबाग में राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाने वाला था और अंग्रेजी सरकार का दमन चक्र जोरों पर चल रहा था। कानपुर

की जनता के सम्मुख प्रश्न था, २६ जनवरी को फूलबाग में राष्ट्रीय ध्वजोतोलन का, किन्तु इस पताका को उड़ाये कौन, और गोली खायें कौन ? फूलबाग में हथियार बन्द पुलिस का पहरा था। उसके बीच से होकर जाना और पहले से गढ़े खम्भे पर पताका का फहराना, मौत के मुंह में जाना था।

२५ जनवरी को क्रांतिकारी पार्टी की बैठक कुली बाजार में हुयी। भारत माता का चित्र दीवार पर लटकाया गया, जिसके बाल बिखरे थे, जिसकी आंखों में खून के आंसू थे, जिसका ताज जमीन पर पड़ा हुआ था और जिसका हाथ पताका विहीन था। मां के कदमों में गोलियों से भरा रिवाल्वर रखा गया। अब प्रश्न यह नहीं था कि उस ताज को मां के सिर पर कौन रखे, और मां के हाथ में तिरंगा झण्डा कौन पकड़ाये। इस काम को तो उस भीड़ का कोई भी दूध पीने वाला मजनू कर सकता था। लेकिन यहां तो जरूरत थी, खून देनेवाले मजनू की, जो कल प्रातः काल २६ जनवरी को सूर्योदय के पूर्व ही सर पर कफन बांध कर फूलबाग पहुंच कर, उस खम्भे पर तिरंगा झण्डा फहराकर, भारत माता के जय का नारा लगा दे।

इसका बीड़ा उठाया, कामरेड सालिग राम शुक्ल ने। उन्होंने अपने रक्त से भारत मां के भाल पर रक्त-तिलक किया, और मां के चरणों पर सिर रख कर

प्रतिज्ञा ली "मां मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक तेरा यह भूमि पर पड़ा हुआ ताज तेरे सिर पर ससम्मान नहीं रख जाता है, और तेरे हाथो में तिरंगा झण्डा नहीं लहराता है, सालिग राम तेरे उद्धार के लिए बराबर लड़ता ही रहेगा।" फिर सालिग राम ने पिस्तौल उठाकर यह प्रतिज्ञा ली "अगर मैं फूलबाग में कल प्रातःकल झण्डा फहराकर तेरी शान को, मां! न बढ़ा सका और तेरी जय का नारा न बोल सका तो फिर इस पिस्तौल की गोलियां इस तुच्छ सेवक के सीने के तरफ पार होंगी, और तिरंगा झण्डा ही उसका कफ़न होगा।" इस प्रतिज्ञा के साथ श्री सालिग राम ने भारत मां के पैर चूमे, और उनके गले में जयमाल डाल दी, और सबने बारी-बारी से उन्हें गले लगा लिया।

यह पार्टी का सवाल था। पार्टी की शान का सवाल था। फांसी के तख्ते पर चढ़ने वाला और सीने पर गोली खाने वाला तो कोई क्रांतिकारी ही हो सकता था। अगर २६ जनवरी को फूलबाग में झण्डा न चढ़ाया जाता, तो जनता इस पार्टी को मुर्दा ही समझती। यह पार्टी को कब मंजूर था कि वह मुर्दा समझी जाय, और लोग सोचें कि कानपुर वीर क्रांतिकारी नौजवानों से विहीन हो गया है? यही प्रतिष्ठा का प्रश्न तो आजाद और भगत सिंह के सामने था कि जिस सांउडर्स ने सन् १९२८ में पूज्य लाला लाजपत राय पर लाठियां बरसाई थीं, और अपमानित किया था।

उससे बदला कौन ले ? वह बदला सांउडर्स के रूप में अंग्रेजी सरकार से लेना था और उसे लिया गया, और बड़ी शान के साथ लिया गया, इसे तुम जानते हो। लेकिन उस बदले के शिवाय एक क्रांतितारी के और कौन ले सकता था। यह दम-खम तो एक क्रांतिकारी में ही हो सकता था।

मैंने प्रश्न किया पांडेय जी फिर २६ जनवरी को फूलबाग में झण्डा लगा कि नहीं ?" "लगता क्यों नहीं ? लगा और बड़ी शान के साथ।" पांडेय जी ने इन शब्दों को सगर्व कहा और फिर बताया २६ जनवरी की प्रातःकाल जबकि सूर्य भगवान् अभी दर्शन देने की तैयारी कर रहे थे और फूलबाग के बन्दूकधारी पहरेदार अभी अपनी रात की खुमारी दूर करने में व्यस्त थे कि उन्होंने सुना, इनकलाब जिन्दा बाद, भारत माता की जय। तो होश-हवाश में खो बैठे। इधर-उधर भागने लगे और देखने लगे कि गैर कानूनी नारों का उस वेला कौन उच्चारण कर रहा है। वह कौन दीवाना है जो उनकी गोलियों का शिकार होना चाहता है। जब उन्होंने उस खम्भे के ऊपर गौर किया तो देखा, उस पर तो तिरंगा लहरा रहा है। उनके मुंह से एक ही आवाज सुनी गयी गजब हो गया। अब क्या होगा ?

मेरे मुंह से अनायास ही निकल गया। शाबाश

सालिग राम ! शाबाश ! तुम सचमुच शेर-दिल थे ! पांडेय जी ने कहा सालिग राम ने अपनी प्रतिज्ञा तो इस प्रकार पूरी कर दिखाई, किन्तु अभी हम लोगों को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना शेष थी। इस प्रकार पांडेय जी ने मेरी जिज्ञासा को जागृत कर दिया। मैंने कहा पांडेय जी मैं तो इस कहानी को अंत तक सुनना चाहता हूं। और यह बताइये कि आपने अपनी कौन सी प्रतिज्ञा पूरी की थी ? इसपर पांडेय जी ने कहा अच्छी बात है। कहानीका अंत भी सुनाता हूं और यह भी बताता हूं कि हम लोगोंने अपनी कौन सी प्रतिज्ञा और किस तरह पूरी की। पांडेय जी ने मेरी उत्कंठा की तीव्रता को देख कर आगे बताया। श्री सालिग राम अपने साथ में साइकल ले गये थे। जिसे उन्होंने एक किनारे पर खड़ा कर दिया था और पहले इसके कि बन्दूकारी सिपाही सालिगराम को अपनी बन्दूक का निशाना बना पाते, श्री सालिगराम साइकिल पर सवार हो नौ दो ग्यारह हो गयें थे। सारे शहर में फूलबाग में झण्डा लगने की खबर बिजली की तरह फैल गयी। हर एक की जबान पर एक ही प्रश्न था, कौन था वह शेर-दिल नौजवान, जिसने गोलियों की परवाह न कर, तिरंगे को ऊंचा फहरा कर कानपुर की नाक ऊंची कर दी है।" आप समझते हैं क्या पुलिस इस समय खामोश बैठ सकती थी। अंग्रेजी भक्त पुलिस पर तो यह एक प्रकार का वज्राघात ही था। पुलिस शक्ति के लिए तो यह खुली चुनौती ही

थी। सारे शहर में पुलिस ने अपना जाल बिछा दिया पुलिस के कुत्तों की नाक बड़ी तेज होती है। उसे न जाने कैसी गंध लग गयी कि वह शेर डी. ए. वी. कालेज की ओर गया है और वहां हो न हो ग्रीनपार्क के कछार में, जहां आज हम लोग बैठे बातें कर रहे हैं, छिपा हो। फिर क्या था, डी. ए. वी. कालेज और उस कछार को चारों तरफ से घेर लिया गया। यह छेड़ खानी भला शेर को कब बर्दाश्त होती। शेर गुर्राता हुआ कछार से निकला तो कितने पुलिस के कुत्तों ने दुम दबाकर भाग जाने की कोशिश भी की। सालिगराम के हवाई फायरों ने उनकी हवा खिसका दी। किन्तु इसी समय पीछे की ओर सरकारी हथियार खाना (आर्मरी) के एक संतरी ने धोखा देकर गोली चला दी। सालिग राम शुक्ल इनकलाब जिन्दा बाद कहते हुए फिर ऐसी मस्ती से सड़क पर ही सो गयें कि उठाये न उठे, और जगायें न जागे हम लोगों ने उनकी इस चिर निद्रा में कोई भी विघ्न न डाला, और ऊपर से उन्हें तिरंगे की चादर उढ़ा दी।

दाद और दमा से मैं कैसे मुक्त हुआ ?

मेरी उमर ५५ वर्ष की है। सन् १९४० से सन् १९४३ साल तक विश्वयुद्ध के समय में पोस्टल डिपार्टमेंट की ओर से मुझे विदेश जाना पड़ा। वहां खान-पान का परिवर्तन, शयन तथा अन्य सुविधा की अपूर्णता से मुझे पैरों में दाद-खुजली और दमा की बीमारी चालू हो गई। वहां से भारत आने के बाद यह दोनों बीमारियां बढ़ती गई। अनेक वर्षों तक दवा-इन्जेक्शन का इलाज करवाया। धन और परिश्रम तथा विश्वास के साथ लंबे समय तक प्रयत्न में निष्फल मिला। वर्तमान काल में बम्बई (दादर) डाकखाने में काम कर रहा हूँ। बीमारियों से जीवन बरबाद हो रहा है ऐसा सदा भास होता रहता था। मेरे पुराने मित्र ने कहा तुम इतने परेशान क्यों हो। मेरे विश्वास के साथ योगाभ्यास का आरंभ करो देखो अल्पावधि में कौनसा चमत्कार

देखोगे । उनके कथन के अनुसार श्री रामतीर्थ योगाश्र (दादर डाकखाने से समीपवर्ति है) में जाकर नेति, धोति नवली, त्राटक, कपालभाति, आसन, प्राणायाम का अभ्यास आश्रम के संचालक के आदेशानुसार करने लगा। आहार परिवर्तन किया। मैं गृहस्थी हूँ। ब्रह्मचर्य के नियम का आद करने लगा।

जहां चमत्कार वहां नमस्कार

इस कहावत का पूर्ण अर्थ मुझे २ महिने में मालूम पड़ा पथ्य पालन, ब्रह्मचर्य के नियम, दाद के ऊपर मिट्टी का लेप मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम के आधार से २ महिने नहीं दमा और नहीं दाद-खुजली। योगाभ्यास में सच्च चमत्कार है। मेरी सर्विस की अवधि अल्प है। अर्थात्- ५ वर्षों से नोकरी कर रहा हूँ। योग विद्या से मुझे चमत्का पूर्ण लाभ मिला। प्राण त्यागने तक योगाभ्यास नहीं छोडूँगा। अन्य व्यक्तियों को योगाभ्यास के प्रति प्रचार प्रसार के लिये प्रयत्न चालू रखूँगा।

सर्व सुखाभिलाषी

—कलुसकर

कल्याण (बम्बई)

(जिला :- थाना)

मनोरंजन के लिये साहित्य आवश्यक है। जीवन सुधारने योग्य मनोरंजक साहित्य उच्च गिना जाता है। 'रामतीर्थ' मासिकमें कहानी, कविता आदि अनेक प्रकार की रचनाएँ प्रकट होतीं हैं, वह मनोरंजन के लिए तथा जीवन सुधारने योग्य भी है।

सौ. प्रमीला ताई वघमारे,
मूर्तिजापुर (महाराष्ट्र)

यात्रा का अधिक महत्व वे ही जानते हैं कि जो पैदल जाते हैं। कष्ट बिना सुख का अनुभव नहीं होता। सुख बिना शांति नहीं है। रामतीर्थ मासिक पत्र का अवलोकन एवं तद्वत स्वयं अनुभव से यह पता लगा कि मैं जीवन भर दुःख का ही वर्णन करता था। अब सुख का वर्णन करता हूँ। यह रामतीर्थ मासिक का प्रताप है।

पं. भूपेन्द्र सा. तिवारी
बांदा (उ. प्र.)

रामतीर्थ मासिक के आधार से मेरे परिवार और मित्रगण मुझसे प्रसन्न हैं क्यों कि मेरे स्वभाव में कुछ परिवर्तन देख रहे हैं। व्यसनों में फस गया था वह छुट रहा है। तमोगुण प्रधान था अब सात्विकगुण का उदय हो रहा है।

कंचन लाल डी. रांदेरिया,
बारडोली (गुजरात)

गुण बढ़ जाने से अवगुण दूर कर देता है। सद्‌गुण से आराम तथा आनन्द प्राप्त होता है रामतीर्थ मासिक से मुझे बौद्धिक लाभ अधिक पहुंचा है। सन्यासियों का यह जीवन रहता है कि सदा आनन्द में रहना।

स्वमी शंकरानन्द सरस्वती
इन्दौर (म. प्र.)

पढ़ाई बढ़ रही है। जब से स्वराज्य प्राप्त हुआ तब से भाषाओं के झगड़े निर्माण हुए भिन्न-भिन्न प्रांत के लोग अपने अपने मंतव्य अवश्य बताते हैं। वे स्वतंत्र हैं किन्तु अंत में सबके मत दुग्ध--नीर के समान एक करने होंगे वह हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दी के बारे में 'रामतीर्थ' मासिक राष्ट्रभाषा में होने से देश परदेश के लोग हजारों संख्या में मंगवा करके प्रेम से केवल पढ़ते ही नहीं किन्तु स्वयं, परिवार तथा समाज के सुधार के लिये प्रयत्न शील हैं। मैं रोम वासी हूँ (इटली) हिन्दी का अभ्यास किया हूँ। रामतीर्थ मासिक पढ़कर के स्वयं परिवार तथा समाज की उन्नति के लिये प्रयत्न कर रहा हूँ। सफलता की वृद्धि हो रही है। धन्य है हिन्दी जगत के भारत वासियों को धन्य है। योगाभ्यास प्रेमी भारत वासियों को धन्य है रामतीर्थ मासिक के सारे पाठक गणों को।

आपका प्रेमाभिलाषी
रेनोल्ड मोस्कोरेनो
रोम (इटली)

हम गाते कुछ मजबूरी है।

योजक—श्री रामगोपाल परदेशी

इन्सानों की इस बस्ती में हम खोज खोज कर हार गये,
इन्सान नहीं मिलता कोई, शैतान हजारों मिलते हैं।

सब यूं ही बाने हैं
बातों में चलतीं घातें हैं
सुख में लुटें दुःख में भूलें
यह मित्रों की सौगाते हैं

हर रोज हमें हररोज नये मन बहलाने को सिर्फ यहां
हम दर्दों के हम दर्द भरे फरमान हजारों मिलते हैं।

वह वक्त गया वह यार गयें,
दिल तोड़ यहां दिलदार गयें,
जीने से पहले गयें जिला,
मरने से पहले मार गयें,

सुख के साथी तो बने सभी दुख में न किसी ने साथ दिया,
सुधि करते हैं तो सुधियों के तूफान हजारों मिलते हैं

आंखों के आगे दूरी है,
दिल की हर बात अधूरी है,
कहने का मतलब सिर्फ यही,
हम गाते, कुछ मजबूरी है,

अरमान किसी के दुनियां में निकले होंगे हम क्या जानें,
हमको तो अपने इस दिल में अरमान हजारों मिलते हैं।

खाली खाली पैमाने हैं।
जो मिलते सिर्फ सयाने हैं,

हम जीते हैं सच पूछो तो–
जीने के सिर्फ बहाने हैं।
द करें रोएं किसको यह लिखा हमारी किस्मत
हम प्यार करें जिनको उनसे ईमान हजारों मिलते हैं।

सपने थे सुन्दर टूट गयें,
हां हमको असमय लूट गये।
कुछ ऐसी ठोकर लगी गिरे,
वह हाथ से हाथ छूट गयें।
कल शाम गिरे हम, आज वहां कहता था कोई रो-रो
परचित न यहां कोई मिलता निजान हजारों मिलते हैं।

हम गयें वहां, हम गयें जहां
प्यासा देखा हर एक यहां,
इस दिल की प्यास बुझाने को
घूमे हम जाने कहीं कहां
हम जाते जिसके पास वही उपदेश हमें देने लगता
ज्ञानी न यहां मिलता कोई नादान हजारों मिलते हैं।

मस्जिद देखी। देखा मंदिर,
दिखलाई सब में पड़ी कसर,
पत्थर के सिवा वहां हमने
देखा न कहीं कुछ इधर उधर।
देखा जब नजर झुका खुद में चुपके से कहा किसीने यूं
निर्धन निर्बल के भेषों में भगवान हजारों मिलते हैं।
इन्सानों की इस वस्तीं में हम खोज खोज कर हार गये।
इन्सान नहीं मिलता कोई शैतान हजारों मिलते हैं।

(कहानी)

जापर कृपा क्लर्क की होई

लेखक--महावीर प्रसाद अग्रवाल

घरमें घुसते ही घरवालीने पूछा—"क्योंजी, अब आप क्या बन गए ?" मैंने अपने आप को एक बार देखा और जब कुछ भी खास परिवर्तन न देखा तो अपने को घरवाली के रहम पर छोड़ते हुए बोला—"क्या मतलब ? आदमी, अगर तुम मानो तो, पहले भी था अब भी।

"—यों न छिपाओ, साफ साफ बताओ।"

लगा कि जैसे कोई अपराधी बनकर जज के सामने खड़ा हो। छिपाने या बनाने की बात ही नहीं थी जबकि कुछ नया घटित ही नहीं हुआ था। सामने पहेली थी। मैं बोला 'क्योंजी आपको यह क्या मजाक सूझा कि घरमें घुसते ही, न चाय न पानी, बैठने को, न आराम को और डाल दिया उलझन में। यह सब तो पीछे भी हो सकता था।" मेरा स्वर उलाहने का था।

मैं अपने हाथ के थैले को अभी हाथ में लटकाये था क्योंकि 'उसमें रखी मिठाइयों को अपने हाथों से बच्चों में बांटकर उन पर कुछ रोब डालना चाहता था। लेकिन इस नई समस्या ने थैला उन्हें थमाने पर विवश कर दिया। थैला थमाते हुये मैंने पूछा—"भला, चुन्नू-मुन्नू-घुन्नू सब कहां हैं ? आज तो कोई भी दिखाई नहीं दे रहा।"

"—वे तो इधर-उधर ही होंगे, आ ही जायेंगे किन्तु मेरी बात बीचमें ही मत उड़ाओ। सुनो, क्या तुम बड़े आदमी बन गये ?"

"बड़े आदमी ?" तो क्या मैं अबतक छोटा आदमी था। देखो कई बच्चों का बाप और........"

"—हां जी बड़े आदमी तो पहले भी थे और अब भी हैं लेकिन शायद मेरी बातों को न समझने का बहाना कर रहे हैं ताकि बात टल जाये। आपने मेरी बातों को टालने की कसम खा रखी है। साफ क्यों नहीं कह देते कि दफ्तर में तुम "किलरक"—निगोड़ा क्या नाम है—हो गये। क्यों जी क्या यह कोई बड़ा ओहदा होता है ?

"ओह"—मैं हंस पड़ा। सचमुच मैं आज बड़े प्रयत्नों से क्लर्क—दफ्तर का क्लर्क हो गया था। उनका कहना भी ठीक था कि मैं बड़ा आदमी बन गया था—अभी तक मात्र एक अध्यापक था—यह कहना कठिन है कि उस समय मैं छोटा आदमी था। खैर, मैंने बात को आगे बढ़ाते हुये पूछा "तो तुम्हें कैसे पता लगा, वैसे घर पर मैंने कोई ऐलान भी नहीं किया - तुम्हारे पास यह कौनसा बेतारका तार लगा ?"

"आप समझते हैं कि हमें पता ही न लगे। आपका बस चले तो हर बात को पचा जाओ पर ऐसा नहीं हुआ। गंजेको राम नाखून न दे।"

"तुम्हें मेरे सरकी सौगंध, यह बताओ कि यह रहस्य तुम्हें किसने बताया।"

"ऊंहूं, जब तुम्हीं नहीं बताते तो पूछने क्यों लगे हो ?" वह थैले को टटोलने लगी थी।

"मैं तुमसे कोई बात नहीं छिपाता, हां जरा ढंगसे बताता हूं ताकि सुनने में आनन्द आये। हां तो बताओ।"

वे हंसी तो कुछ आशा बंधी। "अच्छा तो बताओ"—वे बोली—"आज थैले में क्या लाये हो ?"

"यही बच्चों के लिये मिठाई वगैरा, रोज मांगा करते थे न।

"लेकिन पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ। खैर यह बताइये कि आज बच्चे तुम्हारे पास मिठाई वगैरा लेने के लिये दौड़े क्यों नहीं आये ?"

"—लो, तुम्हींने कहा था न कि खेल रहे हैं। जब याद होती है तो चीज नहीं, चीज होने पर चाह नहीं। लेकिन इन सब बातों का मतलब ?"

"बस एक बात और, आज आते ही तुमसे सब्जी लानेकी शिकायत क्यों नहीं हुई ?"

"—भई, अजीब बात है, तुम प्रश्न ही प्रश्न किये जाओगी या कुछ पहेली भी सुलझाओगी ?"

"तो सुनो आज सुबह से ही अनेक परिचित-अपरिचित आ चुके जिन्होंने तुम्हें बाबू बनने के उपलक्ष्य में बधाई के साथ साथ भेठ-पूजा भी भेजी है। बस, बच्चे उनमें से अपने मतलब की चीजें पाकर खेलने में मस्त और मैंने आपसे साग भाजी की कोई शिकायत नहीं की। हां, इतना जरूर समझ

गई कि आज आप जरूर कोई बड़े आदमी बन गये हैं वर्ना मास्टरी में तो दस साल हो गये कभी कोई उपहार या बधाई देने नहीं आया। बोलो अब तो समझ आई ?"

अब तो बात पूरी तरह समझ में आ गई थी।

"...मैंने सोचा कि तुमने एक बार कहा था कि शीघ्र ही हमारी किस्मत बदलनेवाली है। कहा था न ?"

"हां कहा था और वह सच भी हो गई।"—मैं आश्चर्य में पड़ गया कि इस क्लर्की की इतनी शान होगी यह सोच भी नहीं पाया था।

"तो तुम क्या बने हो जरा विस्तार से बता दो न।"

"प्रिये, अब तक तो मैं मास्टर था अब मास्टरों का क्लर्क हो गया हूँ।"

"मास्टरों पर क्लर्क, लेकिन तुम्हें यह सूझी क्या ?"

'सूझी क्या, तुमने सुना नहीं 'जापर कृपा क्लर्क की होई, तापर कृपा करहिं सब कोई।' हाथ कंगन को आरसी क्या—चमत्कार तो पहले दिन ही देख लिया न। अब तो अपनी कृपा के लियें न जाने कितने लोग तरसा करेंगे और इस कृपा का मौल होगा मेरी जरा-सी कलम की कृपा और तुम्हारी साड़ी।"

"साड़ी ?"

"हां हां साड़ी ही तो।"

"लेकिन मास्टर..............."

"लेकिन वेकिन कुछ नहीं, मास्टरी जायें भाड़ में। तुम तो मास्टर की पत्नी रह चुकी हो न, भला क्या मजा पाया इसमें। मास्टर कंजूस होता है लेकिन क्लर्क लोगों की जूती चाटने में माहिर और उन्हें चने चटाने में पटु होता है, अपने को और अपने बीवी बच्चों को रुलाकर क्लर्कों की कृपा की कीमत चुकाता है।"

"तुम्हें ऐसा करते डर या झिझक नहीं होती?"

"डर या झिझक? अरे राम भजो, जाके डर कालहू डेराई उसे कैसा डर। लिखा-पढ़ी का सारा काम अपने ही हाथ में होता है, कोई कुछ लिखेगा भी तो वह हम तक ही तो आयेगा और हम उसे उलटा फँसाकर सारी अकड़ काफूर करदें। बाद में पहले से ज्यादा वही हमारे चरणों में नाक रगड़ता फिरे और अपनी गलती के लिये माफी मांगे।"

"और तुम माफ कर देते हो?"

"हां, लेकिन विजय गर्व के साथ कि बच्चू आइन्दा ऐसी भूल की तो बहुत महंगा पड़ेगा और माफ करने में एक राज की बात भी है, माफ करके हमें उसे दुबारा मूंडने की तैयारी जो करनी होती है।"

"तो यह सब तुम कैसे मांगते हो?"

मैं हंस पड़ा—"क्यों क्या तुम्हें भी ऐसा ही काम करना है।"

"जिसका काम उसी को साजै, मुझे क्या...."

"अब तुम ही देख लो कि यह तुम्हारे पास आनेवाली चीजें मांगी गईं—समझदार को इशारा काफी होता है। हां, कुछ अनाड़ी ऐसे होते हैं जो हमारे इशारे नहीं समझते, उन्हें

रास्ते पर लाने के लिये दूसरा तरीका काम में लाना पड़ता है। आज ही पहले दिन की बात लो, आजकल फाइनेनशियल ईयर—अरे यही हिसाब-किताब बन्द करने का समय, जब कलर्कों को अंग्रेजी ज्यादा बोलने का अभ्यास हो जाता है—खत्म होने को है। कई माहिर और अनाड़ी आते हैं। यही तो हमारा सीजन है। वैसे ही एक अनाड़ी से आज पाला पड़ा बहुत। उलट-सुलट देखा किन्तु उससे कुछ प्राप्त होते न बना तब यकायक एक युक्ति सूझी। मैंने देखा कि उसकी जेब में दो पैन हैं। बहाना बनाते हुये मैंने उससे कहा—"जरा आप अपना पैन देना यह कलम दवात तो ठीक काम नहीं कर रहे। क्या करें, साहब सरकार कोई कण्टै जैसी समय पर नहीं देती, स्याही तक घरसे लानी पड़ती है।"

"इतनी झूठ से क्या मिला ?"

'क्या मिला वही तो मैं बता रहा हूँ। बस फिर क्या था उसने अपना एक पैन निकाल कर मुझे थमा दिया, यद्यपि झिझक के साथ। उसीसे सारा काम करता रहा, गप्पें भी मारता रहा ताकि चलते समय उसे इस पैन की याद न आये। लेकिन ऐसा न हुआ, वह न भूला किन्तु हम भी क्या कम थे, मजबूरी जताकर बादमें भिजवा देने का वायदा किया। एक पैन से भी उसका काम मजेसे चल गया होगा।"

"तो उस वायदे के पैन को कब भेज रहे हो ?"

"लगता है अभी तुम उसी मास्टर की तरह सोचती हो, कलर्की वायदे देने के लिये होते हैं पूरा करने के लिये नहीं। बस वह लौट गया, अब यह बच्चों के काम आयेगा।"

"मुझे तो पैन आठ आने--बारह आने से ज्यादा का नहीं लगता। खैर, तब तो तुम्हारा रोब दफ्तर में काफी होगा?"

रौब की बात सुनते ही मेरा चेहरा चमक उठा। अरी रौब न होता तो आज यह हर ओर नमस्कार में जुड़े हाथ या हर जगह यें स्वागत की बातें न होतीं।

"लेकिन यह सब मेरे आगे न चलेगा" — मुसकराते हुए, थैला हाथ में से लेते हुए लेकर वे आगे बढ़ी तो मैंने रुकने को कहा लेकिन वे यह कह कर कि यह दफ्तर नहीं, घर है, यहां तुम्हारा रौब न चलेगा. अंदर चली गई। मैं बन्दर बना देखता रहा। चिल्लाया भी लेकिन ....

"हैं, क्या बात है, आप चिल्ला क्यों रहे हैं? क्या आज उठाना नहीं? आज तो ३१ मार्च है तब भी सो रहे हैं। वह ग्राण्टकी रकम निकलवाने नहीं जाओगे? — श्रीमती जी हमें जगा रहीं थी।

"ओह तो क्या मैं स्वप्न देख रहा था। मैं अपने आप बड़बड़ाया फिर पत्नी से बोला — "जाऊंगा कैसे नहीं अन्यथा सारी रकम मारी नहीं जायगी। जल्दी तैयार कर दो. मैं अभी तैयार हुआ जाता हूं। ...... अरे हां जरा मेरी जेबों को भली प्रकार देख लेना कहीं उसमें दो पैन न हों। दो पैन हों तो उसे निकाल कर रख लेना। और उस कागजों के थैले में भी जरा देख लेना कि कोई फालतू चीज उसमें न हो।"

"क्यों क्या वहम आ गया? थैले में तो सिवाय कागज - पतर या एक मुहर और एक स्टाम्प पैड के कुछ नहीं है ......

"स्टैम्प पैड! उसे रहने दो.......ठहरो अच्छा जाने दो...... नहीं नहीं उसे निकाल कर रख अ अ अ लल ओ......"

(पृष्ठ १६ का शेष)

सुखाते समय बारीक कपड़े से थालियों को ढ़
देना चाहिए ताकि धूल और मक्खियों से बचाव हो
सूखने पर आप इनको अपनी इच्छा के अनुरूप वि
आकारों में काट भी सकते हैं।

जैम

जैम बनाने के लिए पके हुए अंजीर लिए
चाहिएं! फलों के डण्ठल निकाल फेंकने चाहिए!
कपड़े में इनको ढीला सा बाँधकर खौलते हुए
के घोल में तीन चार मिनट पड़ा रहने दें।
बाद फिर ठण्डे पानी से इसको खूब धोएं! कम से
७-८ बार तो धोयें ही!

एक किलो अंजीर में ५०० ग्राम चीनी के मान
चीनी लेकर पकाएं और फलों को कुचल कर
उबाल आ जाने पर चाशनी छोड़ दें। अब तेज
करके इनको पकाएं जब काफी गाढ़ा हो जाए तब
कर ठण्डा कर लें और शीशियों में या बरनियों में भर लें

अंजीर पाक

अंजीर पाक नैर्बल्य, पित्तदोष, अर्श आदि में
गुणकारी होता है। इसके लिए दो सेर सूखे अं
और एक सेर छिली हुई बादाम की गिरी को
कर चार सेर शक्कर तथा चार सेर घी लेकर
अच्छी तरह भूनें। जब यह काफी अच्छा ठण्डा
जाए तो निम्न वस्तुओं को पीस कर मिला दें—
मूसली, इलाची, पिस्ता, चिरौंजी, शीतली चीनी,
ये वस्तुएं अपनी इच्छा के अनुरूप डालनी चाहिएं।

अंजीर का सिरका

सिरके की अंजीर के लिए सूखे अंजीर आधा किलो, अंगूरी सिरका दो किलो; नमक १५० ग्राम, पिप्पली का चूरा २० ग्राम, नौसादर २० ग्राम। इन सब चीजों को चीनी के मर्तबान में डाल कर ढक्कन अच्छी तरह लगा कर १५—२० दिन तक धूप में रखने के बाद काम में लाएं।

शरबत

अंजीर का शरबत गर्मी के लिए एक स्वादिष्ट तथा गुणकारी पेय है। इसके लिए ताजे फलों का रस तथा थोड़ी सी बर्फ लेकर शरबत बनाना चाहिए।

इस प्रकार अंजीर का कई प्रकार से उपयोग हो सकता है। सूखे अंजीरों को पीस कर उनका आटा बनालें और इस आटे का हलवा बनाया जाए। वृद्धों के लिए यह हलवा बहुत गुणकारी है क्योंकि अन्य हलवों के मुकाबले यह जल्दी पच जाया करता है।

इसकी पत्तियां पशुओं को खिलानी चाहियें। पशु उनको रुचिसे खाते हैं और पौष्टिक भी वे बहुत ही अधिक होतीं हैं। ऐसी पत्तियां फसल के उपरान्त तोड़ी जानी चाहियें ताकि नुक्सान भी नहीं हो।

यदि ताजा फल प्राप्त नहीं हो सके तो सूखे फल या रासायनिक पदार्थों में सुरक्षित किये हुये और डिब्बों तथा बोतलों में बन्द अंजीर भी बाजार में बिकते हैं। उनको भी काम में लिया जा सकता है।

औषध रूप में प्रयोग

कई छोटे बड़े रोगों में अंजीर एक घरेलू औषधि का भी काम करती है। एक औषधि के रूप में प्रत्येक घर में इसका प्रयोग बढ़ाना चाहिये। विभिन्न रोगों पर किये गये कुछ नुस्खे इस प्रकार हैं:—

(१) कण्ठ सूज जाने पर अंजीरों को उबालकर काढ़ा बनालें इस काढ़े से गरारे करते रहने से सूजन उतर जाया करती है।

(२) श्वेत कुष्ठ की आरम्भिक अवस्था में इसके ताजे पत्तों का रस लगाना चाहियें। यदि चकते बहुत बड़े हो गये हों तो जड़ को घिसकर चकतों पर लगाना चाहियें।

(३) फोड़ों और कार्बकल (मधुमेह व्रण) पर अंजीरों की पुल्टिस बांधनी चाहियें। इसके लिये सूखे या हरे अंजीरों को पीस कर कल्क बना लेना चाहिये।

(४) दाद पर इसकी जड़ों को घिसकर लेप करना चाहियें। मस्सों पर कच्चे हरे फलों का रस लगाना चाहिये।

(५) प्रदर रोग में इसके ताजे पकें फलों का रस शहद में मिलाकर पिलाना चाहिये। ऐसे समय में पथ्य में मीठा दूध देना अच्छा रहता है ।

(६) मूत्र जलन या कष्ट से आने पर सूखे अंजीरों को छ गुने पानी में भिगोकर सुबह हाथों से मसल लें और शहद मिलाकर बीस दिन तक निरन्तर खाना चाहियें।

(७) गर्मीजन्य प्यास, उल्टियों आदि के समय अंजीर के पत्तों को मोटा मोटा कूटकर रातभर पानी में भिगो दें और सुबह मसलकर या छानकर पीने से गर्मी छंट जाया

करती है। अंजीरों का शर्वत भी लाभदायक रहता है।

(८) बच्चों के जिगर तथा तिल्ली के रोगों में अंजीर बहुत गुणकारी माना गया है। बच्चों को ऐसे समय में पकी अंजीर खिलाना चाहिये।

(९) अंजीर पाक का प्रतिदिन प्रातः सायं सेवन मलबन्ध को दूर करके बवासीर को शान्त कर दिया करता है।

(१०) गर्भिणी स्त्रियों को अंजीरों का नियमित सेवन करना चाहिये, क्योंकि वह गर्भ को पुष्ट करके उसका रक्षक सिद्ध होता है। प्रसव के बाद भी कुछ दिन खिलाते रहने से दूध में काफी वृद्धि हो जाया करती है।

(११) मुख के बाहर सूजे हुए मसूढ़ों के ऊपर अंजीर की गरम गरम पुल्टिस रखकर पट्टी बांध देनी चाहिए।

(१२) मुँह में छाले हो जाने पर अंजीर का दूध लगाना बहुत ही अच्छा रहता है, तुरन्त ही राहत मिलती है।

(१३) दूध में पुल्टिस बनाकर लगाने से घावों और कैंसर में से दुर्गंध दूर हो जाया करती है।

(१४) श्लैष्मिक और पुरानी खाँसी में अंजीर बलगम को पतला करके निकालने में सहायता करती है। अंजीर का पानक इसके लिए बहुत गुणकारी है।

(१५) अंजीर के काढ़े में शहद, तेल और जरा सा नमक मिलाकर कफ के रोगी को सुहाता सुहाता गरम पानी का एनिमा देना चाहिए।

इसी प्रकार कई रोगों में यह घरेलू औषधि का काम करता है। हमें रोगों में इसका प्रयोग करके इस सस्ती महौषधि का पूरा पूरा फायदा उठाना चाहिए।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम

१–इस योगाश्रम में प्रविष्ट होनेके बाद साधक को बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२–ली गई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३–टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

४–सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

५–योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६–कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७–आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के २७रु. है

८–नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी होगी समय प्रात:काल ७॥ से ९॥ और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो मेंसे किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

(महत्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचार आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

पुरुषों के लिये समय:—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

महिलाओंके लिये समयः—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सबेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आनेवाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता है।

शनिवार तथा रविवार के व्याख्यानों के साथ-साथ भजन, कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास त[illegible] व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

विशेष सूचना:— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबंध नहीं है।

तन मन विकासक सर्वोत्तम मासिक

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर मुम्बई.१४ (भारत)

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

(बम्बई १४) के

महत्वपूर्ण निर्माण तथा प्रकाशन

(घर-घर में उपयोगी)

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

(स्पेशल नं, १)

बाल, मस्तिक तथा शरीर की मालिश के लिये सभी प्रकृतिके लो[illegible] के लिये सभी ऋतुओंमें अनुकूल है। सर्वत्र प्राप्य है।

उमेश योगदर्शन

(प्रथम खण्ड)

(लेखकः—योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी)

अंग्रजी, गुजराती, हिन्दी, मराठी भाषाओंमें मिलता है। यह ६ प्र[illegible] के मलशोधन कर्म, आसन, प्राकृतिक चिकित्सासे रोगनिवारण औ[illegible] मानसोपचारका ज्ञान करानेवाला पुरुषोत्तम ग्रन्थ है। ग्लेज आर्ट पे[illegible]र विभिन्न आसनों तथा षट्कर्मों के १०८ चित्र हैं। पृष्ठ-संख्या ४[illegible] के अन्तर्गत योगाभ्यासका विस्तृत बोध कराया गया है। मूल्य १५[illegible] डाकव्यय २ रु.

योगासन चित्रपटः—योगासन चित्रपट अनेक रंगोसे तै[illegible] किया गया है। यह चित्रपट अनेकों आसनों से परिचित कराता है। इ[illegible] आधारपर अपने घरपर ही आसनों का अभ्यास करके सदैव नीरोग त[illegible] सशक्त रह सकते हैं।

मूल्यः—डाकव्यय सहित ३ रु.

रुपया भेजनेका पताः—श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, पो. दादर, (बम्बई [illegible]

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और
पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

रामतीर्थ

सम्पादक—
योगीराज
उमेशचन्द्रजी

वर्ष—६ अंक—११
फरवरी १९६६

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक
विज्ञापन } 442899
तार—प्राणायाम दादर

सूचना—रामतीर्थ के पांच वार्षिक ग्राहक बनाने पर एक वर्ष तक रामतीर्थ मुफ्त दिया जायेगा।

मुखपृष्ठ का परिचय

आमाशय तथा संलग्न अवयवों का दर्शन कीजिये विशेष विवरण हेतु इसी अंक के पृष्ठ १३ पर देखिये।

विशेष सूचना—'राम-तीर्थ' मध्यप्रदेश व राजस्थान सरकार के शिक्षण विभाग की ओर से प्राथमिक, माध्यमिक उच्चतर व बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों व सार्वजनिक व पंचायत समिति पुस्तकालयों के उपयोग के लिये स्वीकृत हो चुका है

लेखकों से आग्रह है कि वे अपने हित के लिये "लेखकोंसे" पृष्ठ को अवश्य पढ़ें।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० आर्य रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्सेन्ट स्क्वे स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

जनता के प्रधानमंत्री श्री लालबहादुरजी शास्त्री को रामतीर्थ योगाश्रम तथा रामतीर्थ पाठकवृन्द की ओर से भावपूर्ण श्रद्धांजली

आज शास्त्री जी का पार्थिव शरीर हमसे छिन गया।

है, परन्तु उनका यशस्वी स्वरूप भारत के जन मन में तब तक अवस्थित रहेगा, जब तक भारतीय संस्कृति जीवित रहेगी, क्योंकि शास्त्री जी ने इस तथ्य को "मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिये" अपने जीवन-कार्य से प्रमाणित किया।

उनका जन्म भौतिक वैभव में नहीं हुआ था परन्तु ऐसे पद पर प्रतिष्ठित हो चुके थे कि वे चाहते तो दुनिया के भौतिक वैभव एक बार तो जुटा ही लेते, परन्तु उन्होंने उसकी नश्वरता को पहचान कर उस अमरता को पसन्द किया जिसे आज का भौतिकतावादी पसन्द नहीं कर सकता है।

इसी हेतु उन्होंने अपने जीवन काल में उन्हीं तथ्यों-सेवा, और देशभक्ति को अपनाया जिसमें जीकर वे भारत के जन मानस में सदैव के लिए अमर हो गये।

दुनिया के पहले अकिंचन अमेरिका के इब्राहिम लिंकन थे और दूसरे हैं हमारे शास्त्री जी, जिन्होंने शांति को पसन्द किया परन्तु अपनी राष्ट्रीयता के मूल्य पर नहीं, जिन्होंने मानवता को पसन्द किया परंतु हैवानियत के बूते पर नहीं।

आज शास्त्री जी जो कार्य अपने अल्प प्रधान मंत्रीत्व काल में कर गये हैं, और जिस रास्ते पर उन्होंने देश को लगा दिया है वह शायद दूसरा कोई व्यक्ति इतने अल्प समय में न कर सकता।

हम सब मिलकर उनकी अमर आत्मा को श्रद्धापूर्वक श्रद्धांजली के पुष्प अर्पण करते हैं और परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे राष्ट्र की उनकी क्षति पूर्ति कराने में सहायक हों, और दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें। —सम्पादक

" त्याग और तपस्या से सृष्टि का निर्माण हुआ; कर्म से सृष्टि को स्थायित्व मिला। अगर विधाता एक क्षण के लिए भी कर्म रोक देता तो सृष्टि का चक्र रुक जाता और संसार का नाश हो जाता। "

ऐत्रेय ब्राह्मण

इन चक्रों को गतिमान रखिए...

आज भी आवश्यक है कि ये चक्र चलते रहें। उद्योग के चक्र, वाहनों के चक्र, अबाध प्रगति के चक्र, आज राष्ट्र को गतिमान रखते हैं—इन चक्रों को गतिमान रखिए। इसके लिए कुछ अधिक करने की ज़रूरत नहीं... बस थोड़ा-सा धैर्यमय त्याग और थोड़ा-सा ज्यादा काम!

मध्य और पश्चिम रेल्वे
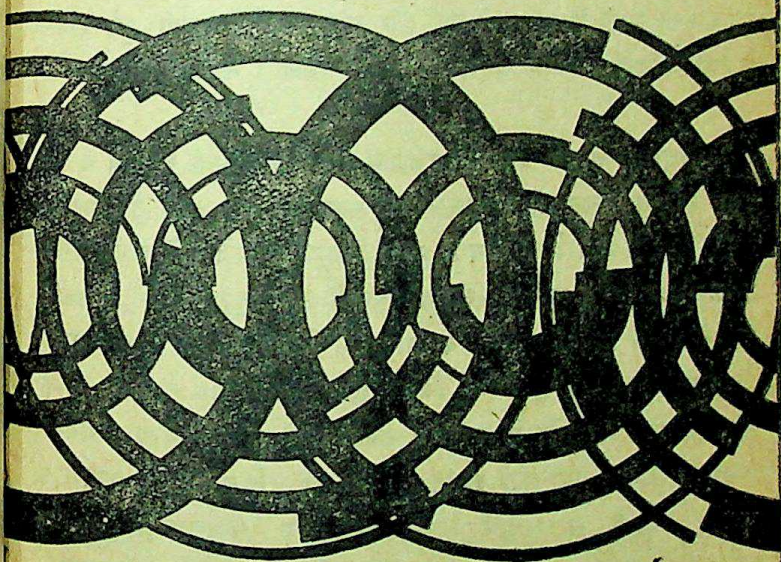
लेखकों से

'रामतीर्थ' मासिक में स्वीकार करने योग्य मुख्य विषय

शारीरिक रोग निवारण, सशक्त एवम् सदानिरोगी मानसिक रोग करके मन की शांति, एवम् आत्म साक्षात्कार करने योग्य, उपरोक्त प्राप्त करा देने योग्यअष्टांग योग, (यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्या धारणा, ध्यान, समाधी, राजयोग, भक्ति योग, लय योग, मंत्र शिवस्वरोदय, वेद उपनिषद, गीता ,रामायण, महाभारत, महात्माओं जीवन चरित्र एवम् उपदेश, प्राकृतिक चिकित्सा, (आकाश, वायु, ते जल तथा पृथ्वी द्वारा इलाज) महिलाओं के जीवन सुधार के लि बालकों के संस्कार सुधारने के लिये, अनुरूप लेख, कहानी, धारावाहि उपन्यास, गीत, कविता, निबंध, प्रवास वर्णन, नाटक, धर्मकथादि रचन स्वीकारकी जाती हैं कागजकी एक ओर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी हुई रचन भेजनी चाहिये, अश्लील विषयोंकी रचनायें स्वीकार नहीं की जायेंगी।

विशेषः—अन्यत्र प्रकाशित रचनायें रामतीर्थ मासिक के लिये न भें केवल स्वीकृत रचनाओं की सूचना एक मास बाद दी जाती है, अस्वीकृ रचना वापस नहीं भेजी जायगी, अतः लेखकों कोभेजे जाने वाले लेख नकल अवश्य रखना चाहिए, स्वीकृत रचनायें समयानुकूल छपेंगी, लेखकों चाहिये कि वे इस विषय में बारंबार पत्र लिखने का कष्ट न लें, रच प्रकाशित होने के बाद, रचना जिसमें छपी होगी वह मासिक अं और आश्रम की ओर से निर्धारित किया गया पुरष्कार भेजा जायेग रचना में लिया गया कोई द्रष्टांत हो तो वह किस ग्रन्थ के आधार लिया गया है य अवश्य लिखें। अन्य पत्र पत्रिकाओंमें रामती मासिककी रचन अन्य भाषाओं में अनुवादित की इच्छावालों रामतीर्थ मासिकके संपादकसे लिखित अनुमति लेना आवश्यक है

रचना भेजनेका पताः निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११.

ग्राहकोंसे

१. 'रामतीर्थ' अंग्रेजी मासकी पहली तारीख को प्रकाशित होकर ग्रा
को डाक से भेजा जाता है।

२. वार्षिक शुल्क रु. ५ विदेशों के लिए १५ शिलिंग अथवा रु. ७॥

३. रामतीर्थ का नया वर्ष अप्रैल से शुरु होकर मार्च में पूरा होता है
परन्तु ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

४. ग्राहकों को अंक विशेष देखभाल से भेजा जाता है तिस पर
यदि किसी को १५ तारीख तक अंक न मिले तो अपने डाक
से पूछिए वहाँ से जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेज दीजिए ता
उस पर गौर किया जावे।

५. पताबदलने के लिए कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचना साफ़
अक्षरों में लिखे पतेके साथ मिलनी चाहिए। वह भी अधिक
के लिए पता बदलना हो तभी हमें लिखें।

६. ६५ न० पै० मिलने पर ही नमूना अंक भेजा जाता है परदेश
को एक शिलिंग भेजना चाहिए।

७. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपना पता तथा ग्राहक सं
अवश्य लिखें।

८. वार्षिक शुल्क मनीआर्डर से भेजना लाभदायक है क्योंकि वी०
से एक तो रजिस्ट्री खर्च लगकर ६ रु० पड़ेगा दूसरे देरी
अंक मिलेगा तथा विदेश में वी० पी० तो होती ही नहीं।

९. रामतीर्थ के साथ पुस्तकें आदि नहीं भेजी जातीं।

१०. व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पतेपर करें।

व्यवस्थापक

रामतीर्थ मासिक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

वर्ष ६] फरवरी १९६६ [संख्या ११

वैदिक-प्रार्थना

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥

ऋ. वे. भ. सू. ७-४१-४

भावार्थ— हे भगवन् ! और भी हम (आपकी प्रेरणा से) इसी समय भाग्यशाली-भगवान् बन जायँ। जब दिवस की प्राप्ति हो और जब दिवस का मध्यकाल हो, तब भी हम भगवान् बन जायँ। इसी तरह हे भगवन् ! सूर्य के उदय के समय हम भगवान् बन जायँ। और दिव्य भावों को प्रेरणा देनेवाले देवों की जो अनुग्रहयुक्त कृपा-बुद्धि है: वह भी हमें प्राप्त हो ।
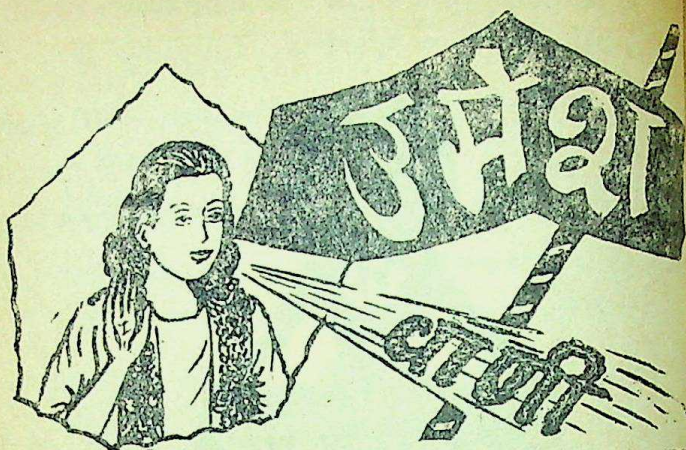
(२५५) वातप्रधान प्रकृतिवालों के लिये शरद, हेमन्त तथा शिशिर ऋतु अनुकूल हैं। संधिवात, सूजन, पेट की बीमारी, मलावरोध, अर्धांगवायु, सायटिका, स्नायुरोग आदि अनेक प्रकार की बीमारियां सताती हैं। इन दिनों में दमा के रोग, जुकाम से सिरदर्द, सिर में चक्कर आना, वायु के दबाव से हृदयशूल, कमर की वेदना बढ़ जाती है। इन रोगों के इलाज में दवाओं का आधार लेना अनुकूल नहीं होता है, अल्प समय के लिये थोड़ा सा आधार प्राप्त होता है, वह आधार भविष्य के लिये प्रतिकूल हो जाता है। आहार में परिवर्तन, सूर्यकिरण चिकित्सा, योगाभ्यास, वाष्पस्नान, तैल मालिश द्वारा सदा के लिये रोग दूर होते हैं।

(२५६) आधुनिक युग विज्ञान का युग है। नई खोजों की प्रवृत्ति अतीव वेग से चल रही है। विज्ञान-साधनों के आधार से सुख पाने के लिये अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है। अधिक धन कमाने के लिये बौद्धिक परिश्रम अत्यधिक बढ़ गया है। अधिक बौद्धिक जीवन से मानसिक रोग बढ़

गया है। ह
है। इ
है। अ
हो रहे
(
सेवन
प्रति
वस्तु
शिथि
मलाव
साध्य
से
हालत
में प्र
नहीं
पते
से भें
जाए
हो तो
निरा
शांति
से
मोह,

गया है। अमेरिका की जनता की वर्तमान काल में यही हालत है। हर तीन व्यक्तियों में एक व्यक्ति मानसिक रोग से दुःखी है। इससे छुटकारा पाने के लिये एकमात्र उपाय योगाभ्यास है। अमेरिकन लोग शनैः शनैः योगाभ्यास के प्रति आकर्षित हो रहे हैं।

(२५७) बुरा मत मानिये -सिगरेट के सेवन, बीड़ी के सेवन, तपकीर के सेवन से आप अपने शरीर में स्वेच्छा से प्रतिदिन अनेक बार नशीली वस्तु भर रहे हैं। नशीली वस्तु में विषारी द्रव्य का अंश रहता है। नाड़ियों में शिथिलता, रक्त की अशुद्धि, वायु रोग, अपचन, मलावरोध, शिरोवेदना, दृष्टिमंदता, दांत के रोग जैसे कष्ट-साध्य रोगों का घर मानव देह बन जाता है। तंबाकू के सेवन से कॅनसर रोग होने का संभव रहता है। आप किसी भी हालत में तंबाकू का सेवन करते होंगे तो उमेशवाणी के नाम में प्रतिज्ञा लेकर छोड़ दीजिये। आपका मन इस आदत को नहीं मानता होगा तो श्री रामतीर्थ योगाश्रम, बम्बई १४ के पते से पत्र व्यवहार करिए अथवा प्रत्यक्ष आश्रम के संचालक से भेंट करिए। आदत छुड़ाने के लिए सरल उपाय बताया जाएगा। आप तथा आपके परिवार को दुःख से मुक्त करना हो तो तंबाकू से अलिप्त रहना ही होगा।

(२५८) याद रखिये : १५ दिन में एक बार अवश्य निराहार उपवास करें, ताकि तन शुद्ध तथा मन की शांति प्राप्ति हो जाये।

(२५९) भूलिये मत : धन, सत्ता, युवावस्था के नशा से आधारित घटना की ओर न झुकें। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर से दूर रहें।

(२६०) अपना भला चाहते हो ? तो प्राणिमात्र के ऊपर दया, परोपकार, सात्विक आहार का सेवन, भगवान् की सेवा, गुरुजनों की सेवा में सक्रिय जीवन बनाये रखिये। योगाभ्यास सारा जीवन तक करिए।

(२६१) अवसर पर याद रखियें : अफीम तथा भांग गांजे के सेवन से नशा (जहर के समान) चढ़ जाय तो कच्चा छास पिलाइयें। खट्टी वस्तु से जहर उतर जाता है। छास में शक्कर (चीनी) मिलाकर लेने से अनुकूल होगा। शक्कर का अंश कम तादाद में हो दिन में ३ से ४ बार देने से नशा उतर जायेगा।

(२६२) तैराकी कला से प्रेम रखिए। तैरना अच्छा है यह एक कला है। किस समय किस कारण से कैसी सी आपत्ति आवेगी इसका कारण नहीं है। आरोग्य संपन्न, इंद्रियों की शांत गुण के लिये तैरना उच्च है दैव संयोग से वरुण देव के कोपायमान होने के समय अपने तथा दूसरों के प्राण रक्षणार्थ तैरने की कला काम आवेगी।

आमाशय

आमाशय की रचनाः— आमाशय अन्न नलिका का एक विस्तृत भाग है। जो आशय और पाचन अंग दोनों के रूप में काम करता है। इसके चार स्तर होते हैं। १ स्नैहिक, २ पेशीमय, ३ उपश्लैष्मिक ४ श्लैष्मिक। स्नैहिक स्तर उदरावरण का ही एक अंश है। पेशीमय स्तर के भीतर उपश्लैष्मिक स्तर होता है, जिसमें बड़ी २ रक्तवाहिनियां रसायनियां और नाड़ीचक्र उपस्थित होते हैं। श्लैष्मिक स्तर में ग्रंथियां होतीं हैं, जिनके तीन प्रकार हैं— १ हार्दिक ग्रंथियां। यह बहुत थोड़ी संख्या में हार्दिक द्वार के निकट पाई जाती हैं। २ स्कन्धीय ग्रंथियां। ३ मुद्रिकीय।

पाचनतन्त्रों में आमाशय रसका आधार।

भोजन के समय और पश्चात् आमाशयिक स्राव की सामान्य प्रक्रिया रहती है।

पाचन की प्रक्रिया मानस प्रत्यावर्तित क्रिया से आरम्भ होती है। यह थोड़ी देर तक रहती है। पश्चात् रासायनिक स्राव होता है। यह क्रिया पाचन की पूर्ण अवधि तक बनी रहती है।

इन पाचन क्रिया के साथ रस स्रावक ग्रंथियों की शक्ति बनाये रखने के लिये कुछ आसन तथा प्राणायाम आवश्यक हैं। षडरसों का यथा प्रमाण में सेवन से शरीर के हरेक अवयवों में स्फूर्तिदायक ओजस तेजस तत्व बने रहते हैं। मधुर, तिक्त, कषाय, आम्ल, कटु और लवण इन षडरसों के सेवन से आरोग्य संपन्न रहा जाता है। पित्ताशय, रासायनिक स्राव, आम्लिक स्राव आदि अनेक रासायनिक द्रव्यों से अन्न की सप्तधातु बनती हैं।

आमाशय और आसन तथा नौलीकर्म

प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के बाद निम्नांकित आसनों के अभ्यास तथा नवलीकर्म करने से आमाशय निरोग एवं अपना कार्य सुचारू रूप से करेगा। एक पाद पवन मुक्तासन २ मिनिट करें। एकपाद पवनमुक्तासन करते समय पेट में मेद अधिक होने पर श्वास बाहर निकाल कर और पेट में मेद कम होने पर श्वास भरकर करना पड़ता है। आमाशय कोष के नीचे की ओर से पांव का दबाव तथा ऊपर की ओर से फेफड़े के दबाव से रसस्रावक ग्रंथियों में अच्छी गति विधियां आरंभ करता है। निरुत्साह पूर्वक रहते हुये आमांश पुनः सजागृतावस्था में आकर पाचनक्रिया बढ़ाने का प्रयत्न चालू रखता है। पित्तादि महत्वपूर्ण रासायनिक द्रव्य

का यथायोग्य प्रमाण से उपयोग करता है। एकपाद पवन-मुक्तासन के बाद द्विपाद पवनमुक्तासन का अभ्यास करें पश्चात् नवली कर्म १ मिनिट करने से पाचन क्रिया बढ़ती है। क्षुधा बढ़ती है। मल विसर्जन अच्छा रहता है। छोटी आंतें तथा बड़ी आंतों की कमजोरी दूर होती है।

प्राणायाम

सूक्ष्मातिसूक्ष्म धातु का शुद्धिकरण प्राणायाम से होता है। अनुलोम-विलोम ३ बार तथा भस्त्रिका प्राणायाम प्रतिदिन ३ से ६ बार करना चाहियें। किसी प्रकार आमाशय की बीमारी होने पर किसी योगाश्रम के संचालक से अथवा प्राकृतिक चिकित्सा तज्ञ से सलाह लेनी चाहिए।

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा चुने धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह । मानव ज सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सु सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश--विदेशों में पर्य करके अपने स्वानुभव को बताया है । हरेक घरमें नित्य प पाठनकर सुख--शांति का लाभ लीजिये ।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४--०० डाक व्यय अलग।

बहुरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों संग्रह है । रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए र के लिये आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये । आसनों के न तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं । डा व्यय के साथ ३--०० रु.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

'अपने लिए तो सभी जीते हैं लेकिन दूसरों के लिए जीना ही जिन्दगी है।' किसी के कहे हुए इन वाक्यों में महामना पं० मदनमोहन मालवीय के जीवन से निर्विवाद तुलना की जा सकती है, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही समाज कल्याण, राष्ट्र-सेवा, धर्म-रक्षा, जाति-संगठन और शिक्षा-प्रसार के लिए अर्पित कर दिया था। ऐसे महान पुरुष विरले ही पैदा होते हैं।

पं० मदनमोहन मालवीय का जन्म तीर्थराज प्रयाग की पावन भूमि पर भागवत् के प्रकाण्ड पंडित श्री बृजनाथ जी व्यास के घर सौ० मूनादेवी के गर्भ से पौषकृष्ण अष्टमी, बुधवार वि० संवत् १९१८ दिनांक २५ दिसम्बर १८६१ को संध्या की शुभ बेला में ६ बजकर ४५ मिनट पर हुआ था। इनके पिता जी संस्कृत के अच्छे विद्वान, धर्म-निष्ठ, कर्मकाण्डी पंडित और त्यागी पुरुष थे। उन्होंने 'सिद्धांतोत्तम' नामक एक सुन्दर ग्रंथ की रचना भी की थी। अपने पिता की विद्वता तथा वाकपटुता की अमिट

छाप बच्चे पर पड़ना स्वाभाविक ही था। तदनुरूप वात-वरण के सुप्रभाव से आप को गीता - रामायण और धार्मिक ग्रंथों के बहुत से श्लोक कंठस्थ हो गए थे

पं० मदनमोहन मालवीय की प्रारम्भिक हिंदी और संस्कृत की शिक्षा प्रयाग के 'धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला' 'विद्या धर्मवर्द्धिनी सभा' और 'गवर्नमेण्ट हाई स्कूल' में हुई थी। समयानुसार इनके पिता जी की इच्छा इन्हें अंग्रेजी पढ़ाने की हुई। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रयाग के म्योर-सेंट्रल कालेज में भर्ती हुए और सन् १८८१ ई० में उन्होंने एफ० ए० पास किया और कलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् १८८४ में बी० ए० पास किया। घर की विषम परिस्थितियों के कारण उन्हें अपनी पढ़ाई स्थगित कर देनी पड़ी और इलाहाबाद-गवर्नमेण्ट हाईस्कूल में तीन वर्ष तक अध्यापन का कार्य करते रहे। सन् १८८५ से १८८७ ई० तक आपने 'इण्डियन युनियन' नामक पत्र का भी सम्पादन किया। त्याग-मूर्ति स्व० पण्डित मोतीलाल जी नेहरू आपके सहपाठी रह चुके थे।

महामना सन् १८८६ ई० में कांग्रेस के सदस्य बने और उसके वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित भी हुए। इसी बीच सन् १८८७ ई० में राजा रामपाल सिंह के 'हिंदुस्तान' नाम के अंग्रेजी पत्र का सम्पादन भी आपने सुचारू रूप से किया, जिसके फलस्वरूप कुछ ही दिनों में पत्र की बिक्री दिन पर दिन बढ़ती ही चली गई। 'हिंदुस्तान' के सम्पादन-कार्य से जो समय बच पाता

था उसमें वे कानून की पुस्तकों का अध्ययन करते थे। आखिरकार सन् १८९१ ई० में अपने परिश्रम तथा अध्यवसाय के बल से आपने वकालत की परीक्षा भी पास कर ली और सन् १८८९ ई० में 'हिंदुस्तान' का सम्पादन छोड़ कर सन् १८९२ ई० में इलाहाबाद हाईकोर्ट के वकील हो गए। इन्होंने अपने वकालतकाल में भी काफी प्रसिद्धि पाई।

अंग्रेजी शिक्षा के पारंगत विद्वान और हाईकोर्ट का सम्मानित वकील हो जाने पर भी आपके संस्कारों में तनिक भी परिवर्तन न हो सका। अभिराम धवल वेष-भूषाधारी, मंद मुस्कान भरी मुखाकृति, गौरवर्ण-उन्नत तिलकयुक्त ललाट, विशाल हृदयता, पीयूषवर्षिणी वाणी, प्रेमपूर्ण व्यवहार, प्रखर मस्तिष्क वाले पण्डित मदनमोहन मालवीय शांति और सौजन्य की प्रति मूर्ति और भारतीयता के आदर्श थे। अंग्रेजी राज्य में सांस लेते हुए भी वे दिन-रात एक ऐसे भारत का भावी-रूप देख रहे थे जो बहुत कुछ राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की नीतियों से मिलता-जुलता था।

पं. मदनमोहन मालवीय के मन में कई वर्षों से यह उत्कृष्ट लालसा बनी हुई थी कि एक ऐसे हिन्दू विश्व-विद्यालय की स्थापना हो जहां मातृ-भाषा में उच्च श्रेणी की शिक्षा दी जा सके। उस समय अलीगढ़ में मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना हो चुकी थी और सरकारी विश्वविद्यालय होने के नाते उसे हर प्रकार की

सहूलियतें प्राप्त थीं। मालवीय जी के अन्य मित्रों एवं स
श्रीमती एनी बेसेंट ने उन्हें समझाया कि यदि वे मा
भाषा के माध्यम से उच्च शिक्षा देने के सिद्धांत
बात को इस समय त्याग दें तो अंग्रेजी सरकार उन
पूरी सहायता कर सकती है। आखिर लोगों के सम
झाने--बुझाने पर वे इस बात पर सहमत हो गए औ
कुछ समय तक के लिए अपनी इस नीति को उ
स्थगित कर देना पड़ा।

सन् १९०४ ई० में सर्व प्रथम हिंदू विश्वविद्याल
की चर्चा उठी थी। शिक्षा विभाग के बड़े-बड़े अधिका
रियों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ और उन्हें
भी अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की ही भांति का
में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना पर जोर दि
बशर्ते कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो। पं० मदनमोह
मालवीय अपनी धुन के पक्के और दूरदर्शी पुरुष थे
वे इस बात को भलीभांति समझते थे कि केवल सरका
की सहायता से हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना ठी
नहीं है। ऐसा न हो कि कहीं यह भी केवल सरका
विश्वविद्यालय ही बन कर रह जाय। इसमें देश की जन
का पैसा लगना बहुत जरूरी है। मालवीय जी ने अ
इसी ध्येय की पूर्ति के लिए देश के कोने-कोने
दौरा किया। क्या राजा और क्या रंक सभी के सा
झोली फैलाई। जगह-जगह सभाएं कीं, भाषण दिए
कलकत्ता में श्रीमती एनी बेसेंट मालवीयजी के साथ

थीं और उन्होंने भी जनता से हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए दिल खोल कर दान देने की अपील की। विश्वविद्यालय की स्थापना में इनका भी बहुत बड़ा हाथ रहा है।

पं० मदनमोहन मालवीय के ओजपूर्ण भाषणों से देश की हिंदू जनता का ध्यान हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की ओर विशेष आकर्षित हुआ और इस शुभ कार्य के लिए उसने दिल खोल कर दान भी दिया। दान में मिली हुई वस्तुओं को नीलाम कर दिया जाता था। मुजफ्फरपुर में एक भिखारिन ने एक पैसा और एक व्यक्ति ने एक फटी कमीज दान में दी थी। जिसने जो कुछ भी दिया मालवीय जी ने सभी को दोनों हाथ पसार कर ग्रहण किया। इसीलिए तो उन्हें अपने समय का 'सबसे बड़ा भिखारी' भी कहा जाता है?

अंततः मालवीय जी की वर्षों की साधना पूरी होने को आई। ४ फरवरी सन् १९१६ ई० की बसंत पंचमी के दिन महात्मा गांधी की उपस्थिति में भारत के गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने काशी में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की आधार शिला रखी। शिलान्यास समारोह के अवसर पर देश के सभी गण्यमान्य व्यक्ति, सरकारी अथवा गैर सरकारी उच्चाधिकारी, बड़े-बड़े विद्वान, शिक्षा-शास्त्री और देश के राज्यों के सभी महाराजा अपने-अपने दल के साथ उपस्थित थे। महाराजा बिकानेर ने हिंदू विश्वविद्यालय के लिए मालवीय जी की बड़ी सहायता की थी।

पं० मदन मोहन मालवीय का स्वप्न साकार होने लगा। कुशल इन्जिनियरों द्वारा बनाए गए नक्शे के अनुसार विश्वविद्यालय का विशाल भवन बनना शुरू हो गया। विभिन्न विभागों के लिए अलग-अलग भवनों का निर्माण हुआ। बड़े-बड़े छात्रावास बनवाए गए जिनका नामकरण उन दान-दाताओं के नाम पर किया गया जिन्होंने इस शुभ कार्य के लिए धन अर्पित किया था और आज काशी का यह विशाल हिन्दू विश्वविद्यालय देश के विश्वविद्यालयों में सबसे बड़ा और विश्व के समस्त विश्वविद्यालयों में तृतीय श्रेणी का माना जाता है। आजकल यह विश्वविद्यालय लगभग पंद्रह मील के घेरे में बसा हुआ है और यदि इसे एक छोटे नगर की उपमा दी जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। देश-विदेश के विद्यार्थी यहां आते हैं और अनेक विषयों की शिक्षा प्राप्त करते हैं। यहां एक "इण्टरनेशनल होस्टल" भी है जिसमें विदेशों से आए विद्यार्थी रहते हैं। मालवीय जी की इच्छानुसार इस विश्वविद्यालय के मध्य भाग में संगमरमर का एक विशाल विश्वनाथ मंदिर का भी निर्माण हुआ है जो अपनी भव्यता और सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। सन् १९६१ ई० में आयोजित मालवीय जन्म-शती-समारोह के अवसर पर वर्तमान राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने विश्वविद्यालय के विशाल फाटक के बाहर मालवीय जी की एक भव्य मूर्ति का अनावरण किया था इस मूर्ति के समक्ष जाते ही स्वतः मस्तक श्रद्धा से नत हुए बिना नहीं रहता।

एक बार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी काशी आए हुए थे। विद्यार्थियों की एक सभा में उन्होंने भाषण दिया था जिसमें उन्होंने मालवीय जी के इस प्रयास की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी। उन्होंने कहा था – 'काशी का हिंदू विश्वविद्यालय मालवीय जी के जीवन का सबसे बड़ा कार्य है। उन्होंने राष्ट्र की जैसे सेवा की है वह किसी से छिपी नहीं है। उनकी सेवाओं का काशी हिंदू विश्व-विद्यालय एक नमूना है। मालवीय जी राष्ट्रीय -- दृष्टि से कितने सफल नेता हैं, इसका प्रमाण हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त हो सकता है। उनकी सफलता इसी से सिद्ध है कि इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थी अपने चरित्र को ऊंचा उठाने में अधिक त्याग करते हैं। राष्ट्रीय -- संग्राम में भी यहां के छात्रों ने पूर्ण रूप से भाग लिया, मालवीय जी की सफलता का यह भी ज्वलंत उदाहरण है।

महात्मा गांधी की तरह मालवीय जी के विचारों में कुछ मतभेद होते हुए भी समानता थी। वे अपने उद्देश्यों को साकार रूप देने के लिए अंत तक जुटे रहे। उन्होंने अछूतोद्धार सम्बन्धी अनेक भाषण दिए और हरिजनों को सार्वजनिक रूप से धर्माराधना का अधिकार भी दिया। उनका कहना था कि जो जाति संगठित नहीं है वह जीवित नहीं रह सकती। हिंदुओं को संगठित करने और उनमें धार्मिक सुधार के लिए उन्होंने "अभ्युदय" नामक साप्ताहिक पत्र निकाला और अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभा की स्थापना की। उस महा पुरुष के उद्देश्य महान थे। वे चाहते थे कि संसार में धर्म, न्याय

तथा शांति का राज्य हो, भारत को पूर्ण स्व की प्राप्ति हो; हिंदुओं को भारत में उचित गौरव सम्मान के साथ रहने की स्वतंत्रता प्राप्त हो। हिंदू मात्र के शारीरिक सुधार के लिए जगह-ज पर महावीर स्वयं सेवक दल और व्यायाम शा बनवायीं। उनका कहना था कि प्रत्येक हिंदू रोज कसरत करनी चाहिए और अपना स्वास्थ्य चाहिए। अपने भाषणों में वे सदैव आदर्श को प्राथमि देते थे। उनका कहना था कि हिंदू मात्र को आ होना चाहिए और समय निकाल कर श्री मद्भगवद् गी का पाठ और उसका अध्ययन करना चाहिए; प्र मनुष्य को दयालु होना चाहिए; स्त्रियों को कभी सता नहीं चाहिए। शास्त्र भी कहता है कि स्त्रियां घर लक्ष्मी होतीं हैं और जो उन्हें कष्ट देता है लक्ष्मी उ असंतुष्ट रहती है। प्रत्येक हिंदू को अनाथों, विधवा और मंदिरों की रक्षा का ध्यान रखना चाहिए; अ भलाई के लिए दूसरों का अहित न करना चाहिए, देशभ आत्मत्याग, सत्य और ब्रह्मचर्य का पालन करना प्र युवक का कर्तव्य होना चाहिए। एक बार मालवीय ने राष्ट्र की सभी बिखरी हुई जातियों को सम्बोधि करते हुए कहा था कि कभी राष्ट्र के कल्याण समस्या उत्पन्न हो तो प्रत्येक जाति की चाहे वह हि हो चाहे मुसलमान हो अथवा ईसाई एकता से क करना चाहिए, भले ही एक दूसरे के धार्मिक विचारों मतभेद हो, किन्तु राष्ट्र के लिये उन मतभेदों को अल

रख देना चाहिये। कलियुग में एकता में ही शक्ति है। सबकी उन्नति एकता ही में है, यदि आपस में एकता नहीं होगी तो विदेशी सदा अपना प्रभुत्व जमाए रहेंगे। इसलियें प्रत्येक देश सेवक को एकता का आदर्श लेकर आगे बढ़ना चाहिए।

महामना के कई स्वरूप थे। वे सफल पत्रकार, वक्ता, कवि, कलाकार, शिक्षा शास्त्री और अपने समय के सबसे बड़े 'भिखारी' के रूप में तो थे ही। कांग्रेस में अथक कार्य करने के कारण दो बार उन्हें राष्ट्रपति का कार्यभार संभालना पड़ा था। मालवीय जी हिन्दू विश्वविद्यालय के अंतिम समय अर्थात् सन् १९३९ ई० तक उप--कुलपति रहे। जहां गरीबों की सहायता की तो वहां अमीरों के सामने हाथ भी फैलाये। यह उन्हीं की लगन थी जिन्होंने ३४ हजार रुपये एकत्र कर 'लीडर' नामक दैनिक पत्र की स्थापना की। महामना का एक और भी रूप 'कवि मकरंद' के रूप में हमारे सामने आता है जिसके विषय में जान कर कौतूहल हुए बिना नहीं रहता। सच ही तो है कहां आजीवन समाज सुधार, सांस्कृतिक पुनर्जागरण एवं राजनैतिक स्वातंत्र्य के लिये जिसने सक्रिय रचनात्मक कार्य किया वहां एक कवि हृदय का होना कितनी बड़ी विलक्षणता का द्योतक है। उन्होंने १४ वर्ष की आयु से ही कवि "मकरंद" के उपनाम से कविताएं लिखना प्रारम्भ कर दिया था जो ब्रज भाषा में रची गई हैं और जिनमें से कहीं-कहीं संस्कृत के श्लोकों को भी दिया गया है। ज्यों-ज्यों

समयानुसार महामना की जिम्मेदारियां बढ़तीं गई, त्यों त्यों उनकी कविताओं के भावों में भी परिवर्तन आ गया। उनकी बाद की रचित कविताओं में तो नीति और उपदेशों का ही पुट मिलता है। मालवीय जी के महान आदर्श की झलक उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है

नत्वहं कामये राज्यं नस्वर्ग ना पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्रणिनामार्तिनाशनम्॥

अर्थात् मुझे न तो राज्य की कामना है और स्वर्ग की और न मैं पुनर्जन्म से मुक्ति चाहता हूं। दुख से पीड़ित प्राणियों के कष्ट दूर करने में मैं सहा-यक हो सकूं यही मेरी कामना है।"

पं० मदनमोहन मालवीय का प्रादुर्भाव एक ऐसे युग में हुआ था जब कि अंग्रेजी का ही बोलबाला था। जब वे हाईकोर्ट में वकालत करते थे उस समय उन्हें यह देख कर अत्यंत दुख हुआ कि आदलतों में अंग्रेजी और उससे भी अधिक फारसी लिपि का बोलबाला है। उनकी अभिलाषा थी कि फारसी लिपि का स्थान देव नागरी लिपि ग्रहण करे। हिंदी साहित्य सम्मेलन के द्वारा जिसकी स्थापना मालबीय जी की ही इच्छा से हुई थी उन्होंने हिंदी के आंदोलन को उठाया यह आंदोलन सफल रहा और सरकारी तौर पर यह मान लिया गया कि अदालतों में फारसी लिपि के साथ देवनागरी लिपि भी चल सकतीं है। अदालतों में देवनागरी लिपि के प्रयोग को सफलता उन्हीं के अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप मिला।

इधर काशी के हिंदू विश्वविद्यालय को विश्व में प्रथम बनाने के लिए वे जी जान से लगे हुए थे और उधर समय अपनी अबाध गति से अग्रसर होता जा रहा था। अंग्रेजों के आये दिन के नए-नए कानूनों और अत्याचारों से जनता पीड़ित हो चुकी थी। मालवीय जी सन् १८७६ ई० में कलकत्ता कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए और अपने ओजपूर्ण भाषण द्वारा अधिवेशन में खलबली पैदा कर दी। परिणाम यह निकला कि कुछ ही दिनों बाद उन्होंने अपना एक स्थान राष्ट्रीय नेताओं की पंक्ति में बना लिया। कांग्रेस का एक अधिवेशन सन् १८९२ ई० में प्रयाग में हुआ जिसमें इन्हें स्वागत समिति का मंत्री नियुक्त किया गया। सन् १९०८ ई० में कांग्रेस का एक और अधिवेशन लाहौर में हुआ जिसके सभापतित्व का भार इन पर ही आ पड़ा। भारत की दासता तथा उसके कारणों पर वे गम्भीर चिंतन किया करते थे। भारत की दिन पर दिन बिगड़ती हुई दशा को देख कर वे सदैव चिंतित रहा करते थे। जनता के विरुद्ध जब भी कोई नया कानून बनने लगता तो मालवीयजी ही वे पहिले व्यक्ति होते थे जो उसका जी खोलकर विरोध करते थे।

इधर हिन्दू विश्वविद्यालय को उन्नति के शिखर तक ले जाने की चिन्ता, उधर भारत को दासता से मुक्ति दिलाने की चिन्ता। जैसे मालवीयजी ही भारत हों और भारत

मालवीयजी। देश के लियें उन्होंने अपने शरीर की, अपने स्वास्थ्य की तनिक भी चिन्ता नहीं की। धीरे-धीरे नतीजा यह हुआ कि उनका शरीर दुर्बल होता चला गया, फिर भी अपनी लगन और काम में कोई ढिलाई नहीं आने दी।

अंग्रेज भारतीयों पर हावी होते जा रहे थे। अमृतसर जालियांनवाला बाग और चौरी-चौरा हत्या कांडों से मालवीयजी के दिल को बड़ा भयानक आघात लगा। सन् १९३० ई. में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। मालवीयजीने जगह-जगह धरना देकर बड़े-बड़े व्यापारियों से विदेशी माल न मंगाने और न बेचने और साथ--साथ स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करने का हाथ जोड़--जोड़ कर अनुरोध किया। इस नेककार्य में कांग्रेस के सभी नेताओं—सरदार वल्लभ भाई पटेल, पं. मोतीलाल नेहरू आदि को गिरफ्तार कर लिया गया। मालवीयजी को सौ रुपयें जुर्माना और पन्द्रह दिन कैद की सजा मिली। मालवीयजी कहा करते थे—जिस देश में कपिल, कणाद, महर्षि व्यास और वाल्मीकि जैसे धर्मात्मा और विद्वान हुये हैं उसकी संसार में कोई समता नहीं कर सकता। आज भले ही अंग्रेज अपने को सर्व सम्पन्न समझें लेकिन एक दिन उसे भारत का ही सहारा लेना पड़ेगा। निःसन्देह मालवीयजी की वह भविष्यवाणी सत्य होकर रही कि आज भारत विदेशों को अपने यहां बनने वाली लगभग सभी वस्तुओं का निर्यात करने में समर्थ हो रहा है और आयात भारत सरकार की नीति के अनुसार नाम मात्र को ही रह गया है।

ऊपर मैं लिख चुका हूँ कि अत्यधिक शारीरिक और मानसिक कार्य करने के कारण मालवीयजी अत्यन्त दुर्बल हो गयें थे। गिरते हुयें स्वास्थ्य को रोकने के लियें उन्हें काया-कल्प कराया गया जिससे उनके स्वास्थ्य में काफी सुधार आ गया। लेकिन यह सुधार वैसा ही था जैसा बुझते हुयें दीपक की लौ का आखिरी कम्पन। सन् १९३६ ई. की बीमारी ने तो उनकी कमर ही तोड़ दी। यहां तक उनका शरीर दुर्बल हो चुका था कि उन्हें हिलने-डुलने में भी कष्ट होने लगा। नेत्र-ज्योति तो पहले ही क्षीण हो चुकी थी। अपने अंतिम दिन उन्होंने काशी में ही बितायें क्योंकि उनकी इच्छा थी कि उनकी मृत्यु पतित पावनी गंगा के तट पर ही हो। अपना कार्य-भार बाद में उन्होंने सर राधाकृष्णन् (हमारे वर्तमान राष्ट्रपति) को सौंप दिया था जिन्होंने मालवीयजी के आदेशानुसार बड़ी योग्यता और लगन के साथ हिंदू विश्वविद्यालय का संचालन किया था।

पं. मदनमोहन मालवीय बीमारी के दिनों में चारपाई पर लेटे-लेटे देश के उद्धार की बातों को सोचने में ही निमग्न रहा करते थे। इधर अंग्रेजों की दमन--नीति में कोई भी परिवर्तन नहीं आया था। कांग्रेस के नेता कालकोठरियों में बन्द थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी पूना के आगाखां महल में नजरबंद थे। महल में गांधीजी के अनशन की बात को सुनकर मालवीयजी की आंखों में अश्रु छलछला आयें थे।

ईश्वर के घर में देर है पर अन्धेर नहीं। सन् १९४२ ई. के तोड़-फोड़ के आन्दोलन से देश में एक नई लहर आई।

सम्पूर्ण देश में साम्प्रदायिक दंगों की आग भड़क उठी। अंग्रेजों की पूर्वनियोजित चाल थी। जाते-जाते हरे-भरे चमन को वीरानगी में बदल देना, आपस के भाइयों में नफरत की आग फैला देना ही उनकी नीति थी। आखिर इंग्लैण्ड से मि० क्रिप्स समझौते की खबर लेकर आये। यह समझौता भी अंग्रेजों की घिनौनी चाल का एक नमूना ही था क्योंकि इससे राष्ट्र का विभाजन होता था। मालवीय जी इस समझौते के कतई पक्ष में नहीं थे। उन्होंने इसे राष्ट्र के लिये विष से भी घातक बतलाया। बटवारे की इस बात से पंजाब और बंगाल में साम्प्रदायिक दंगों ने इतना भयानक रूप ले लिया कि एक भाई दूसरे भाई के खून का प्यासा हो गया। इधर कांग्रेस मंत्रीमण्डल और अंग्रेजों की उपज मुस्लिम लीग में भी एक प्रकार से लड़ाई-सी छिड़ गई जिसका परिणाम दिन पर दिन भयंकर ही होता चला गया। आखिर स्थिति को देखते हुये राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बटवारे की शर्त को स्वीकार कर लिया। साम्प्रदायिक दंगों में कोई कमी नहीं हो रही थी। नोआखाली में जो बर्बरतापूर्ण हत्याकांड हुआ उसकी विभीषिका का वर्णन वे ही लोग भलीभांति कर सकते हैं जो किसी प्रकार उससे बच रहे होंगे।

पं० मदनमोहन मालवीय पर इस दोहरे आघात ने मृत्युबाण का काम किया। नोआखाली के बर्बरतापूर्ण हत्याकांड की रोंगटे खड़े कर देने वाली कहानियों को सुनकर उनका हृदय चित्कार कर उठता। प्रायः वे उन हृदय-विदारक कहानियों को सुनकर मूर्छित भी हो जाया करते थे। इस घटना से उनको इतना

सदमा पहुँचा कि वे इसे सहन न कर सके और मार्गशीर्ष कृष्ण ४, वि० संवत् २००३ दिनांक १२ नवम्बर सन् १९४६ ई० को वे स्वर्ग सिधार गये।

मैं (इस लेख का लेखक) काशी नगरी की उस सुबह को कभी नहीं भुला सकता जब हिन्दू धर्म और जाति के सच्चे हितैषी, महापुरुषों में प्रातःस्मरणीय महामना पं० मदनमोहन मालवीय के निर्जीव शरीर को फूलों से लदी अर्थी सजा कर देश की जनता करुण--क्रन्दन करती हुई काशी की गलियों से ले जा रही थी। फूलों से लदे शरीर के बीच का वह झांकता हुआ तेजस्वी, हंसमुख और शांत चेहरा आज भी जैसे आंखों के सामने तैर रहा है। किसी कविने सच ही तो कहा है—"जाने वाले कभी नहीं आते, जाने वाले की याद आती है।"

पं० मदनमोहन मालवीय के निधन का समाचार सुन कर देश की हिंदू जनता स्तब्ध--सी रह गई, सर्वत्र हाहाकार मच गया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी महामना के देहावसान के बाद एक मार्मिक लेख लिखा था जिसका एक अंश है। — "मैं तो मालवीय जी महाराज का पुजारी हूं। मैं उन्हें अपना बड़ा भाई मानता हूं। मैं उनके सम्बंध में क्या लिखूं यह मेरी समझ में नहीं आता। क्या कोई पुजारी सफलता पूर्वक स्तुति लिख सकता है? यदि लिखेगा तो अधूरी सी ही जान पड़ेगी। मैंने सन् १८९० ई० में मालवीय जी का दर्शन पहली बार अखबार में छपी

हुई एक तस्वीर के द्वारा किया था। यह चित्र विल
से निकलने वाले "इण्डिया" नामक पत्र में छपा
मिस्टर डिगवी उस पत्र का प्रकाशन करते थे।
चित्र आज भी मेरी आंखों के सामने नाच रहा है
उस छवि को आज भी मैं उसी रूप में देख रहा
उनके विचारों और लिबास में मैंने एकता पाई
इस ऐक्य में मधुरता और भक्ति--भावना छिपी
है। यौवन--काल से आज तक देश--सेवा और
का जो प्रवाह प्रवाहित होता आया है, उसमें मैंने
अनैक्य नहीं पाया। वह एक गति से बराबर चल
रहा। हिंदू विश्वविद्यालय मालवीय जी का सदा
रहा और मालवीय जी विश्वविद्यालय के प्राण।
धैर्यवान वीर संसार में उंगलियों पर गिने जा स
हैं। उदारता और प्रेम की गंगा उनके हृदय में स
प्रवाहित होती रहती थी। दयालुता की तो वह प्र
मूर्ति थे।—"

अनुपम इच्छाशक्ति, प्रखरमेधा, अपरिमित करुणा, उत
पाण्डित्य, दुर्लभ चारित्र्य, अद्भुत कार्य--क्षमता स
दृष्टियों से मालवीय जी का व्यक्तित्व विलक्षण था।
वास्तव में एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक संस्था थे
भारतीयता के प्रतीक, प्राचीन भारत की झलक औ
नवीन भारत के सृष्टा थे। अपने सार्वजनिक जीव
काल में उन्होंने जो कुछ कर दिखाया वह दूसरों
लिये अनेक जन्मों में भी सम्भव नहीं। उनके सफ

प्रयासों का प्रतीक : ताजमहल :, काशी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय जो पूर्व--पश्चिम के छात्रों की संगम--स्थली है, उनकी विलक्षण सूझ-बूझ, दूरदर्शिता और अद्भुत कार्यक्षमता का अमिट स्मारक है, जिसके लाखों स्नातक देश -- विदेश में उस तपस्वी पुरुष की कीर्ति - पताका फहरा रहे हैं। उन्होंने जो शिक्षा और ज्ञान की ज्योति जगाई है वह सर्वदा अजर -- अमर रहेगी।

स्वास्थ्य और सौन्दर्य

लेखक— डा. गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

स्वास्थ्य और सौन्दर्य का चोली और दामन का साथ होता है। दोनों एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। जहां स्वास्थ्य होता है वहां सौन्दर्य अवश्य होता है, और जहां सौन्दर्य है, वहां स्वास्थ्य का होना भी आवश्यम्भावी है और सौन्दर्य ही स्वास्थ्य। अर्थात् स्वास्थ्य और सौन्दर्य एक ही चीज के दो नाम हैं। स्वास्थ्य यदि पुष्प है, तो सौन्दर्य उसकी मनोहर सुगन्ध है। स्वास्थ्य यदि जल है, तो सौन्दर्य उसकी शांतिदायक शीतलता है। तथा स्वास्थ्य यदि चन्द्र है, तो सौन्दर्य उसकी मनोहर चन्द्रिका। इस तरह स्वास्थ्य को सौन्दर्य से, अथवा सौन्दर्य को स्वास्थ्य से अलग करना मुश्किल ही नहीं बल्कि असम्भव है।

स्वास्थ्य संयुक्त सौन्दर्य में, अथवा सौन्दर्य संयुक्त स्वास्थ्य में सच्चे एवं स्वर्गीय सुख की निधि निहित होती है। पृथ्वी पर मानवीय जीवन की सफलता के हेतु स्वास्थ्य और सौन्दर्य से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं। एक वाक्य में स्वास्थ्य और सौन्दर्य जीवन में मानव के लिये जन्म से लेकर मृत्यु तक साथ देने वाले परम विश्वसनीय सहचर हैं।

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य का अर्थ है 'स्व' उर्थात् स्वयं में-अपनी आत्मा में स्थित होना। आत्मा, परमात्मा का अंश है

के कारण, रोग-शोकादि विकारों से मुक्त होता है। उनसे निर्लिप्त होता है। अतः जब शरीर अपने आत्मा में स्थित हो अर्थात्, आत्मा के गुण जब शरीर में आ जांय तो शरीर की उस उच्च अवस्था को स्वास्थ्यावस्था कहते हैं।

भगवान् चरक का कथन है:——

सर्वधर्म परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् ।
तदभावे हि भावानां सर्वा भावः शरीरिणाम् ॥

अर्थात्, सब धर्मों का परित्याग करके मनुष्य को पहले अपने स्वास्थ्य को बनाना चाहिये। क्योंकि शरीर के स्वस्थ न रहने पर उसको सभी प्रकार के अभाव (शारीरिक, सामाजिक, धार्मिक, तथा राजनैतिक आदि उन्नति के अभाव) हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि जो वस्तु सब प्रकार का सांसारिक भाव प्रदान करे उसे स्वास्थ्य तथा जिससे सब कुछ का अभाव हो जाय—सब कुछ विनष्ट हो जाय, उसे रोग कहते हैं इसी लिये वैद्यक ग्रंथों में —

स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम् ।

कहकर स्वस्थ मनुष्य के भी स्वास्थ्य की रक्षा करने पर जोर दिया गया है। और इसी लिये धम्मपद में भगवान् बुद्ध ने स्वास्थ्य को परम लाभ कहा है। यथा—

आरोग्य परमालाभा ।

विद्वज्जन एवं विचारकों ने युवा एवं चिरायु अवस्था को मनुष्य मात्र के लिये, सर्वाधिक प्रिय वस्तु बताया नकी आधार-शिला स्वास्थ्य ही होता है। यथा:—

आयतनं सर्वं विद्यानां मूलं धर्मार्थ काम मोक्षाणाम्
प्रेयः किमन्यत् शरीरमजरामरं विहायैकम् ॥

अर्थात्, जो सम्पूर्ण विद्याओं तथा शुभ गुणों का आधार है, उस शरीर की सदा अजर अर्थात् युवावस्था एवं अमर अर्थात् चिरायु अवस्था से अधिक प्रिय वस्तु संसार में मनुष्यों के लिये और क्या होगी ?

इस लोक के जीवन के अलावा परलोक के जीवन को भी शांत तथा सुखमय बनाने का मुख्य साधन स्वास्थ्य ही है। इसीलिये शरीर-शास्त्र के आचार्यों ने कहा है :—

'धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूल मुत्तमम्।'

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, जो मानव जीवन रूपी कल्पवृक्ष के चार मधुर फल हैं, का यदि कोई श्रेष्ठ तथा मुख्य साधन है तो वह स्वास्थ्य ही है। क्योंकि यदि हमारा शरीर स्वस्थ और बलवान है तो हम अपने पुरुषार्थ से धन कमा सकते हैं, उस धन द्वारा सांसारिक सुखों का उपयोग कर सकते हैं तथा परोपकार, सबकी सेवा एवं प्रभु भक्ति आदि शुभ कार्य भी कर सकते हैं तथा :—

'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्।'

अर्थात् अपने जीवन को धार्मिक तथा सुखमय बनाने का सर्व प्रथम और मुख्य साधन स्वस्थ तथा बलवान शरीर ही है।

'स्वास्थ्य प्रकृति की अपूर्व देन है, और मानव मात्र का जन्म सिद्ध अधिकार भी।' पहला सुख निरोगी काया' लोकोक्ति भी इन्हीं अर्थों में व्यवहृत होती है, और 'तन्दुरुस्ती हजार न्यामत' नामक कहावत भी इन्हीं भावों का द्योतक है।

स्वास्थ्य ही जीवन है। रोगी-जीवन भी क्या कोई जीवन है? वह तो मृतक के समान होता है। महाभारत में आया है :—

'मृतकल्पा हि रोगिणः।'

अर्थात् रोगी व्यक्ति, मृतक के समान होता है। आगे कहा है :—

रोगार्दिता न फलान्नद्रियन्ते।
नवै लभन्ते विषयेषुतत्वम्॥
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव।
नवुद्धन्ते धन भोगान्न सौख्यम्॥

अर्थात् रोगी मनुष्य फल और अन्न का आदर नहीं करते। विषयों में भी उन्हें सुख नहीं मिलता। वे सदैव दुःखी रहते हैं। वे न तो धन के भोगों का और न सुख का ही अनुभव करते हैं।

इसके अलावा स्वास्थ्य वह अलभ्य वस्तु है कि जिसके लिये वेदों में जगह-जगह पर कामना की गयी है यथा :—

'भद्रं जीवन्तो जरणाम शीमहि।'
...,......... ऋग्वेद

अर्थात् हम शुभ एवं श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करते वृद्धावस्था को प्राप्त हों तथा —

'अश्मा भवतु नस्तनूः ॥'

...............यजुर्वेद

अर्थात् हमारा शरीर पत्थर के समान दृढ़ हो और स्वास्थ्य ही सम्पत्ति है। तथा स्वास्थ्य ही परम एवं जीवन में किसी भी प्रकार की सफलता की प्र सीढ़ी है।

स्वास्थ्य की आवश्यकता

महर्षि चरक का कथन है :—

सर्वं मन्यत परित्यज्य शरीर मनुपालयेत
तदऽभावे हि भावनां सर्वाभावः शरीरिणाम्

अर्थात् मनुष्य को अन्य सब काम छोड़कर पहले शरीर की सम्भाल करनी चाहिये। क्योंकि अन्य सब सम्पत्ति आदि पदार्थों तथा सुख-साधनों के होने भी स्वास्थ्य के बिना वे सब न होने के समान इसलिये अथर्व वेद में मनुष्य के लिये स्पष्ट आदेश है

"स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज।"

अर्थात् हे मनुष्य! तू अपने शरीर रूपी क्षेत्र में रोग रहित होकर रह।

हमारा स्वास्थ्य वस्तुतः व्यक्तिगत पूँजी ही नहीं है बल्कि वह समाज, परिवार, अपने देश तथा समस्त विश्व गौरव की निधि है। विचार के इस बिन्दु से स्वास्थ्य उपयोगिता एवं आवश्यकता का क्षेत्र अति विस्तृत है।

वेद में यह भी कामना की गई है कि "विश्वा आशा वाजपतिंजयेयम् ।" अर्थात्, मैं सब प्रकार के बलों का स्वामी बनकर सब दिशाओं में विजय प्राप्त करूं । तात्पर्य यह कि यह संसार जीवन-संग्राम भूमि है । यहां वही विजय प्राप्त कर सकता है जो स्वास्थ्य, बल एवं पराक्रम से पूर्ण है । संसार में ऐसे व्यक्ति की ओर उसका दुश्मन आंख उठाकर भी नहीं देख सकता । इसके विपरीत कमजोर मनुष्य को हर कोई सताता और पीड़ा पहुंचाता रहता है । अतः इस दृष्टिकोण से स्वास्थ्य का महत्व और भी बढ़ जाता है ।

अमरीकी जीवन द्रष्टा विलडयुरंट ने भी स्वस्थ रहने को मानव का सर्व प्रथम कर्तव्य माना है । उसके बाद ही वह अन्य कर्तव्यों को जीवन में निभाने की राय देता है । क्योंकि स्वास्थ्य है ही ऐसी चीज जिसकी उपेक्षा करना, अपने अस्तित्व की ऊपेक्षा करना है, अपने व्यक्तित्व की उपेक्षा करना है, तथा अपने जीवन की सार्थकता की उपेक्षा करना है । उपर्युक्त जीवन द्रष्टा ने तो यहां तक लिखा है कि स्वस्थ न रहना, यानी रुग्ण रहना अपराध है—पाप है । वह आगे लिखता है—'जैसे ही आपने कोई स्वास्थ्य सम्बन्धी भूल की, प्रकृति उससे आप को सावधान करने और उसका उपचार करने के लिए सक्रिय हो जाती है । प्रकृति की यह सक्रियता पीड़ा और कष्ट के रूप में भी हो सकती है । अतः यदि उस पीड़ा और कष्ट से बचना है तो स्वस्थ रहिए ।'

उत्तम स्वास्थ्य के लक्षण

आजकल का मानव, प्रकृति से इतना दूर जा पड़ा है। डाक्टर जे. एच. टिल्डन के शब्दों में इतनी लम्बी-चौ दुनिया में हजार में एक भी व्यक्ति का उत्तम स्वास्थ्य के स लक्षणों से युक्त, मिलना यदि असम्भव नहीं, तो कठिन अव है। वैसे तन, मन और आत्मा—तीनों के संयुक्त स्वास्थ्य आदर्श स्वास्थ्य कहते हैं। प्रायः देखा जाता है कि एक व्य शरीर से खूब हृष्ट-पुष्ट और पहलवान है, किन्तु उस मस्तिष्क अति निर्बल है। दूसरा एक दिग्गज विद्वान मस्तिष की शक्तियों से परिपूर्ण होते हुए भी शरीर से अति क्षीण-ही देखने में आता है। एक तीसरे व्यक्ति की आत्मिक शक्ति तो अति बलवती होती है, किन्तु उसमें शारीरिक शक्ति का ह्रास पाया जाता है। तात्पर्य यह कि तीनों प्रकार शक्तियां, जो आदर्श स्वास्थ्य के प्रतीक हैं, का पूर्ण समावे बिरले ही व्यक्ति में पाया जाता है।

हमारे शरीर की जीवनी शक्ति स्नायुओं द्वारा मस्तिष से नीचें की ओर प्रवाहित होती रहती है। क्योंकि मस्तिष ही जीवनी शक्ति का स्थायी कोष है। इस तरह मस्तिष और स्नायु मण्डल का स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है ये अंग जितने ही शक्तिशाली और निर्मल होंगे, उतनी ही अधिक जीवनी शक्ति उनमें संचित होकर समस्त शरीर में वितरित होती रहेगी। किन्तु हमारा मस्तिष्क भी तो हमारे शरीर का ही एक अंग है ? इसलिए यदि पूरा शरीर ही अस्वस्थ और निर्बल हो जाय तो उस हालत में हमारा

मस्तिष्क किसी भी तरह स्वस्थ और सबल नहीं रह सकता। और तब, शरीर एवं मस्तिष्क के अस्वस्थ होते ही हमारे आत्मा को फिर चैन कैसे मिल सकता है? अतः उसका भी उद्विग्न हो जाना स्वाभाविक है। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि उत्तम स्वास्थ्य के लिए शरीर, मन, और आत्मा—तीनों का स्वस्थ होना आवश्यक है।

आयुर्वेद में उत्तम स्वास्थ्य के निम्नलिखित लक्षण बताये गए हैं:—

"अन्नाभिलाषा भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च,
सृष्ट-विट-मूत्र-वातत्वं शरीरस्य च लाघवम्।
सु प्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुख-स्वप्न-प्रबोधनम्,
बल वर्ण आयुषां लाभः सौमनस्य समाग्निना,
विद्या आरोग्य लिंगानि विपरीते विपर्ययम्"

अर्थात्, भोजन ग्रहण करने की स्वाभाविक रुचि और अभिलाषा का होना, खाये हुये भोजन का सुख पूर्वक भली प्रकार से पच जाना, मल-मूत्र और अपान वायु का विसर्जन नियम पूर्वक भली प्रकार सरलता से हो जाना, शरीर का हमेशा हल्का-फुल्का और फूर्तीला बना रहना, इन्द्रियों में सदा-सर्वदा प्रसन्नता एवं कार्य-क्षमता का होना, निद्रा और जागरण-दोनों का बिना किसी कष्ट के सुख पूर्वक होना, तथा सोने और जागने में सुख और शान्ति का अनुभव होना, शरीर में बल, पराक्रम और आरोग्य का होना, सर्वांगों का तेजस्वी तथा सुन्दर वर्ण युक्त होना उत्तम स्वास्थ्य के लक्षण हैं।

सुश्रुत के अनुसार, जिसके वात, पित्त, कफ-तीनों दोष सम होते हैं, जठराग्नि सम होती है, धातु और मलों का कार्य ठीक-ठीक होता रहता है, साथ-ही जिसका आत्मा, मन और इन्द्रियां नित्य प्रसन्न और प्रफुल्लित रहती हैं, वह व्यक्ति स्वस्थ कहलाता है। यथा,

समः दोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

लूई कूने प्रभृति प्राकृतिक चिकित्सा विशारदों का कहना है कि पूर्ण स्वस्थ मनुष्य वही है जिसके शरीर के भीतरी और बाहरी छोटे-बड़े सभी अवयव साम्यावस्था में हों, और बिना किसी भार, कष्ट, अथवा प्रयास के अपना-अपना काम सुचारू रूप से करते हों। अवयवों का रूप उनके कार्य संचालन के योग्य और सुन्दर हो। उत्तम पाचन, नेत्रों की निर्मलता, तथा चेहरे की सुडौलता, प्रफुल्लता एवं कान्ति स्वभावतः हो। मल-विसर्जन इस प्रकार हो कि गुदा को उसके बाद जल से साफ करने की जरूरत न महसूस हो। पसीने में बदबू न हो। जीवन कभी भार स्वरूप न मालूम हो। व्यक्ति-साहसी, परिश्रमी, विजयी एवं दैवी सम्पदा से परिपूर्ण हो। वह प्रकृति उपासक हो तथा प्राकृतिक ढंग से जीवन-यापन करने वाला भी हो।

अधिक मोटा होना स्वास्थ्य का चिन्ह नहीं है। इसी प्रकार पहलवानों जैसे मोटे-मोटे पुट्ठों, और उभरी मांस पेशियों का शरीर में विद्यमान रहना भी

स्वास्थ्य का द्योतक नहीं है क्योंकि जीवन-शक्ति शरीर में केवल एक होती है। उसको यदि किसी अंग विशेष पर ही प्रभावित किया जायगा तो ऐसा करने से शरीर के दूसरे अंग उसके प्रभाव से वंचित रह जायेंगे। फल यह होगा कि वह अंग जिसपर जीवनी शक्ति का संचार विशेष रूप से हुआ है, आवश्यकता से अधिक स्वस्थ हो जायगा, पर शरीर के अन्य सब अंग जो जीवनी शक्ति के प्रभाव से वंचित रखे गये हैं, शक्ति हीन और रोगी हो जायेंगे। यह विश्वास करने की बात है कि इसी कारण पहलवानों में लगभग १५ प्रतिशत पहलवान किसी न किसी रोग में आजन्म फंसे पाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में यह समझ रखना चाहिये कि अत्यधिक बल होना एक बात है, और तन्दुरुस्त होना एकदम दूसरी बात। दोनों दो चीजे हैं।

इसी प्रकार यदि हम अपनी समस्त जीवन-शक्ति को केवल आत्मोन्नति में लगा देंगे तो परिणाम स्वरूप हमें अपने शारीरिक स्वास्थ्य से हाथ धो लेना पड़ेगा।

महात्मा गांधी ने भी एक बार लिखा था — शक्तिशाली आत्मा केवल दुर्बल शरीर में रहती है। जैसे-जैसे आत्मा की शक्ति बढ़ती जाती है, शरीर दुबला होता जाता है। शरीर पूरा स्वस्थ होते हुये भी बिल्कुल दुबला हो सकता है। बलवान शरीर प्रायः रोगी रहता है। अगर वह रोगग्रस्त न भी हो, तब भी ऐसे शरीर को बीमारी दौड़ कर लगती है। दूसरी ओर पूर्ण स्वस्थ शरीर इस छूत से पूर्णतया सुरक्षित रहता है।

शरीर पर की, एक अवयव को दूसरे अवयव से पृथक करने वाली प्राकृतिक लकीरों से स्वस्थ और अस्वस्थ शरीर का पता आसानी से लगाया जा सकता है। ये लकीरें एक स्वस्थ शरीर में बिलकुल साफ और स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं, जिसका मतलब यह होता है कि शरीर का प्रत्येक अवयव अपने उचित स्थान पर स्वस्थ, सबल, और सुन्दर रहते हुये स्थित है। ये विभाजक चिन्ह एक स्वस्थ शरीर में कानों के नीचे, चेहरे और गर्दन को अलग करते हुये, गर्दन की जड़ में गर्दन और छाती को अलग करते हुये तथा पेट के नीचे पेड़ू और पेट को अलग करते हुये साधारण रूप से देखे जा सकते हैं। पर शरीर के अस्वस्थ होते ही शरीर की इन विभाजक रेखाओं में विषमता आ जाती है, या फिर वे एक बारगी ही बिलुप्त हो जाती हैं जिसका कारण होता है— विजातीय द्रव्य का शरीर में असाधारण रूप से एकत्र हो जाना।

स्वास्थ्य—मनीषियों की दृष्टि में

रोग मुक्ति अथवा स्वास्थ्य ऐसी वस्तु नहीं जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को दे सके। स्वास्थ्य, जीवन तन्तुओं का मूलभूत गुण है जो रोगोत्पादक आदतों का त्याग करने पर स्वयं ही मिल जाता है।

.... जे० सी० थामसन

सबसे अधिक महत्वपूर्ण सम्पत्ति है स्वस्थ पुरुष और स्त्रियों की नसल। यह भूमि के उपजाऊ होने पर ही निर्भर है। इसका प्रबन्ध कर लेने पर किसी और योजना की आवश्यकता नहीं रहती।

.... सर अलबर्ट हावर्ड

मुझे स्वास्थ्य और एक दिन का बरदान दे तो मैं चक्रवर्ती राजाओं की शान को भी लजा दूंगा।

.... एमर्सन

सर्वांगपूर्ण स्वास्थ्य ही मानव-जीवन की साधारण और स्वाभाविक दशा है।

.... वर्थ सेलोन

स्वास्थ्य को स्थिर रखना धर्म है। कम ही लोगों को इस बात का भान है कि शरीर-नीति नाम की भी कोई चीज है।

.... हरबर्ट स्पेन्सर

स्वास्थ्य रहित जीवन भार स्वरूप है। स्वास्थ्य सहित वह सुखमय और आनन्ददायक है।

.... लांग फेलो

पूर्ण स्वास्थ्य, सुवर्ण से उत्तम है, और सुन्दर शरीर सारी सम्पत्ति से मूल्यवान।

.... सुलेमान

तन्दुरुस्ती हजार न्यामत है।

..........शेख सादी

मैं जीवन से प्रेम करता हूं तभी जब मैं स्वस्थ हूं।

.... अनातालेफ्रांस

विना स्वास्थ्य का सौंदर्य बेकार है।

..........सैंडो

जीवन मनुष्य का बहुमूल्य पदार्थ है और स्वास्थ्य है जो स्थिर सौन्दर्य प्रदायक है। स्वास्थ्य जीवन केवल व्यर्थ ही नहीं होता प्रत्युत वह सौ इच्छुकों के नवल नेहों में शल्य के सदृश खटकता है

.........एम० सी० सेलम

जिसके पास स्वास्थ्य है, उसके पास आशा उसके पास सब कुछ है।

स्वास्थ्य के साधारण नियम

स्वास्थ्य के नियम न बहुत अधिक हैं और मुश्किल ही। वे तो उतने सहज, सरल और आसान कि उनका पालन हर कोई कर सकता है। स्वास्थ्य उन नियमों को हर कोई जानता नहीं, ऐसी बात नहीं है। उन्हें जानते सभी हैं, पर प्रमादवश उनका कड़ाई के साथ पालन नहीं किया जाता इसलि वे फलप्रद सिद्ध नहीं होते। हालांकि इस बात को हम सभी जानते हैं कि स्वास्थ्य के नियमों को पालन करने से कोई मनुष्य जीवन के कर्तव्यों को पाल करने के योग्य नहीं बनता।

स्वास्थ्य के साधारण नियम ये हैं :—

(१) सात्विक, प्राकृतिक, एवं नियमित संतुलित भोजन

(२) शरीर की बाहरी और भीतरी सब प्रकार की स्वच्छता, मानसिक स्वच्छता, कर्म की स्वच्छता तथा वातावरण की भी स्वच्छता।

(३) संयम।

(४) नियमित आसन - व्यायाम।

(५) आदर्श दिनचर्या।

(६) विषैली औषधियों के मोह का त्याग और प्राकृतिक चिकित्सा में दृढ़ आस्था।

(७) भगवत्-प्रेम अथवा राम नाम की शक्ति में विश्वास।

२ - सौन्दर्य

सौन्दर्य की भावना और उसके प्रति आकर्षण इस जगती तल पर सभी के लिये स्वाभाविक है। जीव मात्र के मन में स्वयं सुन्दर दिखने और अन्य को सुन्दर देखने की इच्छा जन्मजात हैं। प्रकृति स्वयं सुन्दर है, और वह सदा - सर्वदा यही चाहती है कि सब सुन्दर रहें, असुन्दर कोई न रहे। सुन्दरता प्रकृति का एक आकर्षक गुण ही है। जो प्रकृति के पुजारी हैं - भक्त हैं, वे ही उसे पाने के अधिकारी हैं।

सच्चा सौन्दर्य क्या है? अब इस पर थोड़ा विचार कर लें।

पवित्र भाव, मधुर एवं सत्य वचन, तथा सदाचार रूपीसौन्दर्य ही शारीरिक लावण्य, स्वास्थ्य, बल, तेज तथा प्रताप आदि से मनुष्य को सुशोभित करता है। अतः ऐसा ही सौन्दर्य सच्चा सौन्दर्य कहलाता है। इस प्रकार के सौन्दर्य से ही रोग दुःख, तथा दारिद्रय आदि नष्ट होते हैं।

सौन्दर्य, प्राकृतिक वस्तु है। प्रकृति की मर्यादा स[...] कर उसकी उपासना से ही हम उसे प्राप्त कर स[...] हैं। केवल चर्म के सौन्दर्य से मनुष्य चर्मकार बन ज[...] है, देव वा मनुष्य नहीं बन सकता। शारीरिक सौन्[...] पवित्र भावों तथा सदाचार मय सादे जीवन से ही [...] होता है। दूषित भावों वाला व्यक्ति ऊपरी टीमटा[...] मात्र से अपने सौन्दर्य की रक्षा नहीं कर सकता। [...] सम्बंध में यह बात याद रखनी चाहिये कि शरीर [...] कृत्रिम सजावट और सच्चे सौन्दर्य में आकाश और पाता[...] का अंतर होता है। शेर है :—

'नहीं मुहताज जेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी।
कि देखो खुशनुमा लगता है कैसा चाँद बिन गहने।'

जैसे गुलाब के फूल में बेल बूटा नहीं निकाला [...] सकता, उसी प्रकार नैसर्गिक सौन्दर्य में भी सजावट [...] आवश्यकता नहीं रहती।

सौन्दर्य का मूल स्वास्थ्य है जो सदाचार से प्र[...] होता है। सच्चा और शाश्वत सौन्दर्य, श्रृंगार [...] मुहताज नहीं होता क्योंकि श्रृंगार से सुन्दरता का प्[...] विकास नहीं हो पाता।

सौन्दर्य, शरीर के लिये एक साफ-स्वच्छ दर्पण [...] काम करता है। उसमें झांक कर हम व्यक्ति के स्वास्[...] शक्ति एवं तेज का अन्दाजा लगा सकते हैं।

सौन्दर्य अथवा रमणीयता वह वस्तु है जो प्रत्ये[...] क्षण नवीन प्रतीत होता है यथा :—

'तदेव रूपं रमणीयताय क्षणे क्षणे यन्न व तामुपैतीं।'

वास्तविक रूप से जिसके ऊपर हृदय मुग्ध होकर द्रष्टा अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत हो जाय वही सौन्दर्य है। इस दृष्टि से सौन्दर्य, प्रबल आकर्षण की वस्तु सिद्ध होता है, जिसकी अभिवृद्धि में ही आकर्षण का प्राबल्य निहित रहता है

बाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ आंतरिक और व्यावहारिक सौन्दर्य प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति पूर्ण सुन्दर कहलाने का अधिकारी नहीं होता। उसमें मनुष्योचित दया, ममता शील और स्नेह का जितना अधिक सम्मिश्रण होगा उतना ही अधिक उसका आंतरिक सौन्दर्य उद्दीप्त होगा।

सौन्दर्य और यौवन - दोनों स्वास्थ्य के पीछे - पीछे चलते हैं। इसलिये यदि हम सौन्दर्य और यौवन को स्थिर रखना चाहते हैं तो स्वस्थ रहना परमावश्यक है।

जीवन और प्राण - दो और साथी सौन्दर्य के होते हैं। जहां जीवन होता है वहीं सौन्दर्य भी अवश्य होता है! मृत प्राणी सौन्दर्य हीन होता है।

शारीरिक सौन्दर्य दो प्रकार का होता है — एक प्रकृति प्रदत्त और दूसरा मनुष्यकृत। मनुष्य कृत अथवा कृत्रिम सौन्दर्य वह मृग मरीचिका है जिसकी आश से प्यास घटने के बजाय और बढ़ती ही जाती है। परंतु जब बनावटी शृंगार पटार और मेकप का आवरण हट जाता है तो वास्तविकता प्रगट हो जाने पर फिर वही सौंदर्य, सौन्दर्य नहीं रह जाता, सौन्दर्य की लाश रह

जाती है। यह बात – स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक सौं
में नहीं पायी। प्राकृतिक सौंदर्य गंगाजल की भांति
स्निग्ध, और निर्मल होता है। वह शिशु – मुसकान
भांति निर्दोष और पुनीत, मातृ स्नेह की भांति
नीय, तथा सत्य की भांति एक स्वर्गीय वस्तु होता

हमारे प्राचीन संस्कृत वांगमय में सौंदर्य की परिभा
इस प्रकार दी हुई है :—

'तत्सौंदर्य.......... प्लवमान मिवा भांति यदंग
कांति वारिणी। लावण्य मिति तत्माहु........

अर्थात् जिस गुण से ऐसा मालूम होता है कि
की कांति में शरीर मानो तैर रहा है, उसे लावण्य
सौंदर्य कहते हैं। तथा—

'अभूषितं यदषित मिवा भाति तदुपम्।'

अर्थात् जिस गुण से बिना अलंकार धारण किये
शरीर अलंकार युक्त सा प्रतीत हो वही रूप वा सौं
है। और भी :—

'अन्यूनातिरिक्तं मदंग प्रत्यंग सौष्ठवं।
सुश्लिष्ट संधि बधंयत् तत्सौंदर्यम्।'

अर्थात् शरीर का छोटा – बड़ा प्रत्येक अवयव बिल
ठीक प्रमाण में हो, जिसमें न्यूनाधिकता लेशमात्र न
वही सौंदर्य है।

इस प्रकार विद्वानों और विचारकों ने सौन्दर्य की
निर्धारित करने की कोशिश की है। पर वस्तुतः सौं
सीमाबद्ध किया ही नहीं जा सकता। हम जिसको अ

सुन्दर समझते हैं, सुन्दरता वहीं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह उससे भी कहीं बढ़ चढ़ कर और विशाल है। सच बात तो यह है कि हम जिसको अपनी समझ से अत्यन्त सुन्दर समझते हैं वह हमारे अपने परिमित विचारों की सीमा होती है, सौन्दर्य की सीमा नहीं। वास्तव में वह सौन्दर्य, सौन्दर्य नहीं जिसे सजाने के लिये अन्य साधनों की आवश्यकता पड़े। और न सौन्दर्य की सीमा ही बांधी जा सकती है। सौन्दर्य तो असीम होता है, अनन्त होता है, और अगाध होता है। वह ईश्वर की एक अमर देन है, जिसे ईश्वर ने किसी न किसी अंश में सभी को दिया है। किसी को थोड़ा, किसी को अधिक। इसी से तो बचपन में जीव मात्र का सौन्दर्य प्रत्येक सजग प्राणी को प्रभावित करता है। किन्तु हम अपनी ना समझी के कारण ईश्वरकी इस अमर देन को स्थायी बनाने की चेष्टा नहीं करते।

सौन्दर्य का मापदण्ड

सौन्दर्य के सम्बन्ध में यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि हर व्यक्ति, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष अपने को अपने-अपने दृष्टिकोण से सुन्दर ही समझता है। पर उससे भी अधिक सत्य प्रकृति का यह रहस्य है कि एक वस्तु जो एक व्यक्ति को सुन्दर प्रतीत होती है, कोई आवश्यक नहीं कि वही दूसरे की निगाह में भी सुन्दर जचे। यही कारण है कि सौन्दर्य परखने की कोई खास कसौटी आजतक न बन सकी। यही नहीं, सही अर्थों में सर्वांगपूर्ण सुन्दर व्यक्ति भी आजतक इस

भूतल पर नहीं देखा गया जो प्रकृति का दूसरा सौं सम्बन्धी रहस्य है। संसार में किसी व्यक्ति का मुख म सुन्दर है तो अंग सुडौल नहीं, किसी के नेत्र मोहक हैं मुखाकृति में न्यूनता है, तथा किसी का मुखमण्डल सुन्द और वदन भी सुडौल है तो उसका गौर वर्ण का न होना उसकी सुन्दरता पर पानी फेर रहा है। तात्पर्य यह कथित सुन्दर व्यक्तियों में से प्रत्येक में एक न एक अवश्य देखी जाती है। इसलिये यह कहना ही ठीक है कि मनुष्य चूंकि स्वयं अपूर्ण है, इसीलिये उसकी सुन्द पूर्ण कैसे हो सकती है? और इस सिद्धान्तानुसार जो अपने को पूर्ण सुन्दर समझता है, अथवा किसी दूसरे पूर्ण सुन्दर कहता है, वह या तो सुन्दरता का उपहास क है या सौंदर्य-तत्व से अनभिज्ञ होता है।

सौंदर्य के आधार

१- प्राकृतिक एवं संतुलित भोजन।
२- स्वस्थ एवं सुवर्ण त्वचा।
३- शुद्ध एवं परिपूर्ण रक्त।
४- सुडौल एवं लचीला शरीर।
५- आंतरिक और बाह्य स्वच्छता।
६- मानसिक संतुलन एवं प्रसन्नता।
७- व्यायाम तथा आवश्यक विश्राम।
८- संयम एवं सदाचार। और
९- ईश्वर-भक्ति।

ये नौ सत् सौंदर्य के आधार हैं। इनके नियमित सेवन से मनुष्य शारीरिक, मानसिक, तथा आत्मिक—तीनों प्रकार के सौंदर्य का भागी हो सकता है।

विद्वानों की नजर में सौन्दर्य

सौन्दर्य, शिव, और सत्य ज्ञान—तीनों बहने हैं।

—टैनिसन

सुन्दर और शिव एक ही वस्तु है।

—सुकरात

जब अनन्त सीमित हो जाता है, तो उसी को सुंदर कहते हैं।

—हर्बर्ट स्पेन्सर

जिन वस्तुओं में क्रम, सुडौलपन, सौष्ठव, तथा अंग-संग हों वे सुंदर कहलाती हैं।

—अरिस्टोटल

जब इच्छा कोई रूप धारण कर लेती है तो उसी को सुंदर कहते हैं।

—शोपेनहार

सत्य, शिव और सुन्दर एक ही सर्व की भिन्न-भिन्न शकलें हैं।

—इमर्सन

सम्पूर्ण प्रकृति अनपेक्ष रूप से सुंदर है और अनपेक्ष सौन्दर्य से ही संसार की सभी वस्तुयें सुन्दर हो जाती हैं।

—प्लेटो

वास्तविक सुंदरता रूप में नहीं और न बनावट में हैं, अपितु वह मनुष्य के हृदय की पवित्रता और उत्तमता में है।

—भगवान बुद्ध
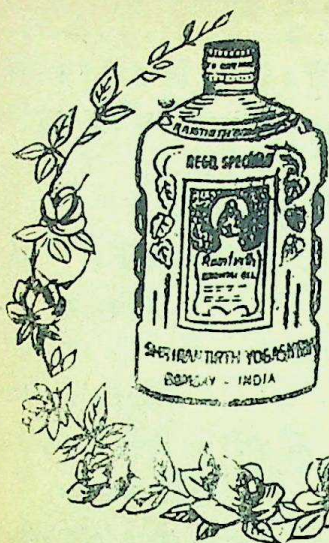
रामतीर्थ ब्राह्मी तेल [स्पेशल नं. १] का महत्व और ला

विगत २० वर्षों से यह तेल अनेक महत्व पूर्ण वनस्पति (जड़ी बूटियों) से निर्मित किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु (ग के दिन) वर्षा ऋतु (बरसात के दिन) हेमन्त ऋतु (ठंडी दिन) में स्वास्थ्य के लिये सर्वथा उपयोगी रहे, ऐसी शास्त्री विधि से तैयार किया जाता है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल वनौषधीय मधुर सुगंध होने से उपयोग करने वाली महिला तथा पुरुष वर्ग हमेशा के लिये इसे अपना लेते हैं, और लोगों को महत्व बताकर व्यवहार में लाने के लिए सल देते हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल युवक तथा वृद्धों के लिए उपयोगी नहीं अपितु छोटे से छोटे बच्चे तक के लिए ला

दायी है ऊपरोक्त रेखाचित्र में माता अपने बच्चो के सिर में रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की मालिश करके सौन्दर्य, स्मरण शक्ति बुद्धि तथा आंखों की दृष्टि अच्छी बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल सिर के बालों के लिये ही नहीं है, किन्तु शरीर मालिश के लिये भी लाभ दायक है। आगे के रेखा चित्र में आप देख सकते हैं कि लोग अपने हाथों से तैल मालिश कर सारे शारीरिक अवयवों को नीरोग एवं सशक्त बना रहे हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के १० मिनट पहले सारे शरीर तथा सिर की तैल मालिश १० से २५ मिनिट तक अवश्य करें। ऊंचाई और आयु के हिसाब

से शरीर का वजन कम होने से वजन बढ़ जायगा। अधि
वजन होने की हालत में आहार परिवर्तन के साथ २ रामतीर्थ
ब्राह्मी तेल का प्रयोग करने से आवश्यक परिमाण में रहेगा।

आप आगे के रेखाचित्र को सूक्ष्म दृष्टि से देखिये। हा
को, पेट को तथा पीठ के ऊपर मालिश करने के सुलभ तरी
बताए गये हैं। अनेक महिलाओं तथा पुरुषों का विच
है कि अपने हाथों से तैल मालिश अच्छी प्रकार से नहीं
सकते हैं। दूसरों से करानी पड़ेगी। यदि दूसरों से मालि
कराने की सुविधा होवे तो अवश्य करा सकते हैं। सुविधा
होने पर आलस्य, शंका, और शर्म को छोड़कर अपने हा
से हर दिन मालिश करने की आदत डालें, किसी कारण

यदि हर रोज मालिश न हो सके तो सप्ताह में १ से ३ बार रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य मालिश करें या करावें।

विशेष सूचना और लाभ

आपने ऊपर छपे सर्व रेखा चित्रों को देखकर यह समझ लिया ही होगा कि रामतीर्थ ब्राह्मी तैल की मालिश से आबाल वृद्ध-बालक, माता, (महिला) तथा पुरुष वर्ग कितने आरोग्य-मय सुडौल शरीर वाले तथा आकर्षक मुख मुद्रा वाले और कितनी सुन्दर केशभूषा वाले हैं। इतना ही नहीं हरेक अवयवों को हृष्ट-पुष्ट बनाने में सामर्थ्यवान बन गये हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के प्रयोग से गहरी नींद, स्मरण शक्ति की वृद्धि, बाल काले, घने तथा लम्बे बनाने में अनुकूल है तथा इससे बालों का झड़ना बन्द कर गंजा पन दूर करने में लाभ

दायी है। कान में डालने से कान के सूक्ष्म अ
निरोग बने रहते हैं। ऐसे अनेकानेक महत्त्वपूर्ण लाभों की
से ही वैद्यराज, डाक्टर, प्रख्यात विद्वान् वर्ग, राजनीतिज्ञ
अन्य प्रतिष्ठित वर्गों से रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के गुणों के
में स्वानुभव पूर्ण अनेक प्रमाण पत्र प्राप्त हो चुके हैं।

छात्र वर्ग के लिये लाभदायक

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, ऋषि-मुनि, साधु-
त्यागी-वैरागी उदासीन वृत्ति के लोगों को रामतीर्थ ब्रा
तैल से अनेक प्रकार के लाभ अवश्य ही प्राप्त होंगे।

महत्वपूर्ण जड़ी बूटियों के कारण से छात्र-छात्रा
(बेसिक स्कूल, मिडिल स्कूल, हायस्कूल तथा कालेज
को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य लाभ प्राप्त होगा।
आंखों की दृष्टि सतेज रहेगी। मस्तिष्क शान्त रहेगा। स
शक्ति बढ़ जायेगी। शरीर मालिश से शरीर में स्फूर्ति ब
स्नायु संस्थान तथा रस ग्रंथियों में शक्ति का संचार हो

वैसे तो त्वचा की कान्ति, रक्त परिभ्रमण के सा
स्वस्थ रहना, चर्मरोग निवारण, शारीरिक जोड़ों में
समस्त शरीर में समशीतोष्णता आदि अनेक लाभ
प्राप्त होता है। यदि आपने अभीतक रामतीर्थ ब्राह्मी तेल
उपयोग कर लाभ नहीं लिया हो तो आज ही अपने
अथवा गांव के दवा बेचने वाले अथवा जनरल मर्चे
खरीद करें दो साइजों में प्राप्त है।

न मिलने पर निम्न पते पर लिखें।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.

जिस
वस्तु
उसके
दूर
वस्तु
लगते
यह
के जी
अनुभ
स्मरण
वस्तु
अमुक
करने
रखते
जब
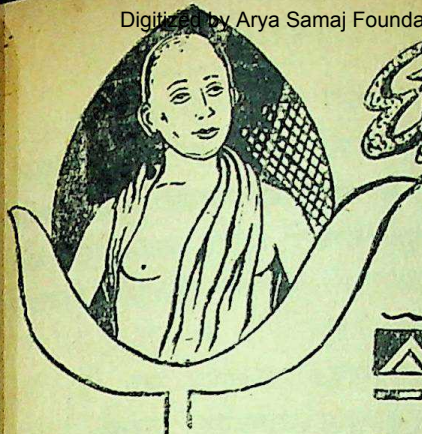
(गताङ्क से आगे)

तुम्हारी इष्ट वस्तु यह अत्यंत महान् और उच्च है, जिससे इन दोनों के बीच में विरोध है। तुम किसी भी वस्तु से मोह करोगे; और उसे प्राप्त करने को रातदिन उसके पीछे फिरा करोगे; तो वह वस्तु उल्टी तुमसे दूर दूर जायेगी हमेशा ऐसा ही होता है। जब तुम इस वस्तु को त्यागकर उसकी तरफ पीठ फिराकर चलने लगते हो, तब इस प्रकार इस वस्तु से परे होते ही यह पदार्थ तुम्हारे पीछे-पीछे चला आता है, क्या आप के जीवन में ऐसा नहीं बनता? हरेक मनुष्य को इसका अनुभव होना चाहिये। तुम अपने अपने स्वानुभव का स्मरण करके देखो, जिससे तुमको मालूम होगा कि हरेक वस्तु की इच्छा और उसकी प्राप्ति में ऐसा ही होता है। अमुक वस्तु पर तुमको ज्यादा भाव है, उसको प्राप्त करने के लिये तुम खूब प्रयत्न करते हो, खूब आशा रखते हो, अहा! वह वस्तु तुमको अवश्य चाहिये; परंतु जब तुम उसकी इच्छा का त्याग करोगे तभी तुमको

यह प्राप्त होगी; जब तुम उसको उच्च भावना में भूले "तेरे-मेरे" की क्षुद्र भावनाओं में से पार होकर त्याग की उच्च भावना में जाओगे तभी तुम अ इच्छित वस्तु को प्राप्त हुई देखोगे। यह सत्य है, केवल सत्य है ऐसा होगा तभी तमाम तुम्हारी इच्छि वस्तुएँ तुमको प्राप्त होंगी।

इसका कारण क्या? इसका कारण यह है, "समान वस्तु-समान वस्तु का आकर्षण करती है। सूर्य और पृथ्वी दोनों पदार्थ हैं; परंतु सूर्य महान है से पृथ्वी और अन्य ग्रहोंका अपनी तरफ आकर्षण करत है। पृथ्वी सूर्य का आकर्षण नहीं कर सकती। इ प्रकार घनात्मक (पोजिटिव) और ऋणात्मक (नेगेटि विद्युत के सम्बन्ध में भी है। उसमें इन दोनों में का भेद है। जाति का भेद नहीं है। पदार्थ विज्ञ शास्त्र उसकी साक्षी देता है। यहां एक लोह चुंबक लोहे का टुकड़ा है; उसमें जो वजन में वजनदार हो वह हल्के वजन वाले को अपनी तरफ खींचेगा। प विज्ञान का यह नियम चालू काल में सर्वत्र प्रसिद्ध है।

जब तुम इच्छित वस्तु का त्याग करते हो, भी इसी प्रकार बनता है। उच्च भावनात्मक भूमि को प्राप्त करो जिससे तुम उच्च और विशाल ग मंडल में जा पहुँचोगे। तुम सूर्य हो; सुख और सुख पदार्थ जो कि पृथ्वी और ग्रहों के रूप में हैं उन तुम अपनी तरफ आकर्षित करते हो; और ये पद अपनी तरफ खींचते हो।

जब हमको हमारी इच्छित वस्तु प्राप्त होती है तब हम हर्ष से प्रफुल्लित होते हैं; परंतु थोड़े समय के बाद जब हम शोक मग्न और अतृप्त दीखते हैं, तब फिर किसी दूसरी वस्तु को प्राप्त करके हर्षित हो जाते हैं और फिर उस स्थिति में भंग पड़ता है। ऐसी इच्छा और वस्तु प्राप्ति की घटमाल चला करती है। तुम राजा होकर राजगद्दी पर बैठो जिससे सब लोग आपकी मुलाकात को आयेंगे। समस्त नगरवासी, आपके राज्य की सब प्रजा और अधिकारी आपके सत्कार के लिये आपकी शरण में आयेंगे। उनको राजा चाहिये। वे सब राजाके आसपास एकत्र होते हैं, उनको आमंत्रण नहीं देना पड़ता। परंतु वे बिना बुलाये ही आते हैं इसी प्रकार तुम जब इच्छा, स्पृहा और अपेक्षा से परे हो जाओगे, तब तुम राजगद्दी पर विराजमान हो ऐसा तुमको लगेगा। सब इच्छायें और सब इच्छित वस्तुयें, अमलदार और अधिकारियों की माफक तुम्हारे शरण में आयेंगे: ये सब तुम्हारे आसपास एकत्र होंगे, ये सब तुमको सविनय बोलेंगे। इसके बाद की अवर्ण्य स्थिति जिसका वर्णन मात्र उस अलौकिक स्थिति में ही हो सकता है, उसके अंदर स्थायी रहने वाले मनुष्य आकर्षक और रमणीय पदार्थों को अपनी तरफ आकर्षित होते हुये देखते हैं; और जब वह वस्तु उनको प्राप्त होती है, तब वे उस राज्यासन का त्याग करके कितनी बार उनका अधःपतन होता है। फिर से वे आशा, तृष्णा और इच्छा की वृत्तियों के आधीन होकर दुःखी होते हैं और उनका

अधःपतन होता है। ऐसा होने पर उनकी इच्छि[त] वस्तुयें उनके पास से चली जाती हैं। स्थूल पदा[र्थ] प्राप्त होने और चले जाने का यह रहस्य है। भौति[क] संपत्ति का घटनाचक्र इस प्रकार चला करता है। इ[स] विषय को दूसरी रीति से भी समझा सकते हैं जैसे कि:—

एक रेल्वे के डिब्बे के दरवाजे में एक आदमी ख[ड़ा] है। वहां से वह "यहां आओ! यहां आओ" ऐसा क[ह] कर अपने मित्रको बुलाता है। वह मित्र अति आतुर[ता] से दौड़ा दौड़ा वहां आता है; परंतु वह दरवाजे में ख[ड़ा] मनुष्य दरवाजे के पास से हटता नहीं। वह उसी स्था[न] पर खड़ा रहता है। अब वह विचारा मित्र कहां हो[कर] अंदर आये? उसको वह नहीं जाने देता। इस प्रका[र] उसका मित्र उस गाड़ी में नहीं जा सकता। गाड़ी व[हां] से चली जाती है और वह बुलाने वाला अपने मि[त्र] के बिना ही अकेला रह जाता है। इसी प्रकार तुम[को] कोई भी पदार्थ प्राप्त करने की तीव्र इच्छा है। उ[स] पदार्थ को प्राप्त करने के लिये तुम रातदिन भटकते हो, इच्छा करके तुम उस इच्छित वस्तु का आवाहन करते हो। इच्छित पदार्थ तुम्हारे पास आता है। परंतु तुम अपनी आतुरता में उस द्वार के निकट से हटते नहीं, और उसको अंदर आने का मार्ग तुम देते नहीं। अपनी इ[च्छित] वस्तु के आगमन की आड़ में आकर तुम दुःखी होते हैं वैसे ही विपरीत फल भुगतते हो। तुम प्रथम मात्र मांग करते हो; परंतु मांगने के बाद तुमको उस द्वार में [से]

हट जाना चाहिये तभी वह वस्तु अंदर आ सकेगी, और उस वस्तु रूपी मित्र को तुम अपने पास बैठा हुआ देखोगे। इस प्रकार हमको हमारा इच्छित पदार्थ प्राप्त हो या न हो उसका आधार हम जगह खाली करें या न करें उसके ऊपर है यह अपनी पृथ्वी के आसपास की हवा सूर्य की गरमी से पतली होकर के ऊपर चढ़ती है, और उसका स्थान दूसरी हवा प्रवाह रूप में आकर भर देती है; परंतु जो प्रथम की हवा अपनी मूल जगह छोड़े नहीं तो बाहर की हवा उस जगह पर नहीं आ सकेगी।

इस प्रकार जब तक तुम अनेक इच्छायें किया करो और क्षुद्र ममत्व और देहाभिमान कायम रक्खो। तब तक तुम्हारी इच्छित वस्तुयें तुम्हारी तरफ आकर्षित नहीं होंगी। इसलिये उन इच्छाओं का त्याग कर दो। प्रथम तुम सकाम बनकर भिक्षार्थी भी बनो परंतु इतना ही पूरा नहीं होता है इच्छा करने के बाद तो तुमको इच्छाएं और कामनाओं से रहित होना है और ऐसा होने के बाद ही तुम्हारी सब इच्छायें पूर्ण होती हैं।

ऐसे कितने ही मनुष्य हैं कि सूर्य, चन्द्र, ग्रह और पंच महाभूत भी जिनकी आज्ञा के वश होकर काम करते हैं। उनकी ऐसी शक्ति का रहस्य मात्र यही है, की उनकी इच्छायें किसी भी प्रकार की आवश्यकताओं से रहित हैं। किसी राजा की प्रजाकल्याण के लिये उपकारक इच्छा के अनुसार ही उनकी यह आज्ञा अथवा इच्छा

हती है। जिस राजा को किसी प्रकार की न्यूनता न
उसको किसी की अपेक्षा नहीं होती, तथापि प्रजा, द
और सेवक किस प्रकार सुखी हों। इसकी वह पूरी ज
रखता है। ऐसा राजा अपने विशुद्ध हेतु से य
मनुष्यों को कुछ भी करने की आज्ञा करे तो वह अ
सुख के लिये नहीं परंतु दूसरों के सुख के लिये
होती है।

जगत में वही मनुष्य सच्चे राजा और महाराजा
समान है जो कि सब कामनाओं से रहित है। जिन
आज्ञा को सूर्य, चन्द्र, विश्व के सर्व तत्व आधी
होकर वर्तते हैं। वे सब कामनाओं से रहित होते हुये
उनकी वे सब कामनायें पूर्ण होती हैं, इसलि
तुमको भी प्रथम सर्व कामनाओं और इच्छाओं
रहित होना है। और ऐसा होकरके तुम्हारी सब इच्छा
पूर्ण होंगी। कामना पूर्ण करने का सच्चा रहस्य यही है।

इस विश्व में हरेक वस्तु पर सूर्य की सत्ता हों
का कारण यही है कि सूर्य केवल साक्षी रूप
तपता है, और कोई महिमावान राजा के अनुसार द
रूप से अपनी महिमा में वह आरूढ़ रहता है। यहां
अभी यदि कोई राजा अथवा राजकुमार आवे तो भ
विना मांगे ही हरेक व्यक्ति बाजू में हटकर उसको रस्ता
देंगे। आसन देंगे और जलपान वगैरह से उनका यथा
योग्य सत्कार करेंगे और आखिर में वे उनको नजराना
द्रव्य की भेंट भी खुशी से करेंगे।

इसी प्रकार जो कुछ तुम देखते हो वह सब सूर्य करता है; जो कुछ तुम देखते हो वह सूर्य के द्वारा ही देखते हो, जो कुछ तुम सुनते हो वह भी सूर्य द्वारा ही सुनते हो, यदि दुनिया में सूर्य का अस्तित्व न होता तो अपना यह सब वातावरण ठंडी से जम जाता और इसमें किसी प्रकार की हलन चलन क्रिया न रहने से हम कुछ भी आवाज नहीं सुन सकते, कारण कि सूर्य की गरमी के कारण ही तुम रसास्वाद ले सकते हो, वनस्पति भी सूर्य की गरमी से ही उगती है, घ्राणेन्द्रिय सुगंध लेती है वह भी सूर्य के ही कारण और पृथ्वी जिस सांप्रत स्थिति में है वह भी सूर्य के कारण है, इस प्रकार हरेक वस्तु सूर्य के कारण ही अपना अस्तित्व रखती है। चोर भी सूर्य के कारण ही चोरी करता है, परंतु किसी भी कचहरी में इस सूर्य के सामने कभी भी फर्याद दर्ज नहीं हुई ।

सूर्य यह तटस्थ साक्षी है। निष्पक्षपात भाव से अपने स्वभाव से ही प्रकाशमान है और इसी कारण पृथ्वी वगैरह सर्व ग्रह अपने सब अंग सूर्य को बताते बताते उसके आसपास फिरा करते हैं। सूर्य किरण गिरते ही झट बरफ के मैदानों में से बरफ पिघल के बहने लगता है; चारों तरफ हवा चलने लगती है, अनेक प्रकार की वनस्पति का विकास होने लगता है और हरेक वस्तु का हलन चलन होता है।

" वेदांत कहता है। कि यदि तुम जगत के पदा[र्थों]
की जरा भी अपेक्षा रखे बिना अपनी महिमा में स्था[पित]
और सूर्य के समान तटस्थ साक्षीपने में रहकर निःस्[पृह]
विचरण कर सको! अपने प्रकाश और जीवन [को]
फैलाते हुये, अथवा जो दिव्य चित्‌शक्ति तुम खुद [हो]
हो उसकी सत्य महिमा में निष्ठा रखकर किसी प्रकार [का]
देहाभिमान न रख कर जीवन व्यतीत कर सको, तो [जि]
परम शक्ति की सत्ता समस्त विश्व को माननी पड़ती है, [वे]
परम शक्ति स्वरूप ही तुम हो जाओगे।

जैसे किसी शिखर पर विहार करते हुये जो रमणी[य]
दृश्य तुमको बोझ के रूप में न होकर आनन्द देता [है]
और इन दृश्यों को यदि निर्लेप भाव से तुम देख स[कते]
हो, इसी रीति से संसार के सभी सुख दुःख, चलन-[चलन]
संपत्ति और दरिद्रता, तुम्हारे पास आवे तो भी [तुम]
निर्लेप और निर्विकार भाव से रहो और तुम्हारे जी[वन]
की अनेक शाखाओं में से आगे बढ़ो तो जिसकी आ[ज्ञा]
नुसार प्रकृति की अनेक शक्तियां प्रवर्तमान होती [हैं]
ऐसे महात्मा रूप में ही तुम भी हो जाओगे। [तुम]
अपनी कामनाओं से रहित हो जाओ, जिससे वे [सब]
कामनायें पूर्ण होंगी।

परंतु लोग प्रश्न करते हैं कि, कर्म के सिद्धांत [के]
अनुसार यह सृष्टि कुदरत की जो शक्तियां क्रिया [कर]
रही है। उसके साथ ऊपर की एक साम्यता होती है[?]
प्रारब्धवाद और पुरुषार्थवाद की किसी रीति से एक साम्[यता]
होती है?

इसके समाधान के लिये एक सादा दृष्टांत पूरा होगा। तुम्हारे अंतःकरण में जो इच्छायें हैं। वे वास्तविक रीति से स्वाभाविक नहीं है। परंतु भविष्य में जो होने वाला है उसकी छाया समान है, भविष्य में बनने वाले बनाव तुम्हारे अंतःकरण में छाया डालते हैं। एक स्त्री के सम्बन्ध में एक बात है, कि वह स्त्री अपना फोटो खिचाने किसी एक अच्छे फोटोग्राफर के यहां गई। फोटो का कैमरा बराबर जमाकर उसमें अच्छी किस्म की प्लेट रखकर: फोटो खिचाने के बाद उस फोटोग्राफर ने यह प्लेट देखा तो उस स्त्री के चेहरे पर चेचक के दाग देखे। फोटोग्राफर को आश्चर्य हुआ: कारण कि फोटो लेते समय उस स्त्री का चेहरा बिलकुल स्वच्छ था - उसने दूसरी बार फोटो लिया परंतु उसमें भी ऐसा ही हुआ; आखिर उसने उस स्त्री को किसी दूसरे दिन आने को कहा। वह स्त्री अपने घर गई, कि उसके सब शरीर में तुरंत ही चेचक निकल आयी। इसका क्या कारण होना चाहिये? इसका समाधान ऐसा है कि इस स्त्री की एक बहन थी उसको चेचक निकलने पर अपनी बहन को उसने समाचार देने हेतु एक पत्र लिखा था; और यह पत्र वाला लिफाफा उसने अपने होंठ और उंगलियों से बंद किया था। यह पत्र जिस स्त्री का फोटो लेना था उसने अपने हाथ से खोला! जिस से उसको चेचक का चेप लगा, और थोड़े दिन के बाद वह उस रोग से बीमार हो गई। इस फोटो लेने वाले के कमरेने भविष्य में बनने वाले बनाव की सूचना दी थी। इस प्रकार इस व्याधि को चर्म-चक्षुओं ने नहीं देखा।

—क्रमशः

भीशण आतप से सन्त्रस्त होनेपर भी गन्तव्य पर्यं
पहुँचने की उत्कट चाहना को चित्त में संजोये दृढ़निश्च
पथिक अमाप और बीहड़ डगर को चीरता हुआ अविश्रा
बढ़ता चला जा रहा था। दिनकर की भयंकर उष्णताने उ
प्रदेश की नीरसता को इतना अधिक तापित कर दिया कि
पथिक की सम्पूर्ण देहयष्टि ही नहीं, अपितु अन्तरात्मा
क्लान्त हो उठी। परन्तु फिर भी वह हतोत्साहित न
हुआ। ऊँचीनीची पगडण्डियों को रौंदते हुये उसके गतिशी
पग विचलित होते २ शान्त समीर के एक तीव्र झोंके
पाकर पुनः सुस्थिर हो उठे। वृक्षों के घने झुरमुटको अवलो
कर पथिकने भी सुदीर्घ सांस ली—'चलो, कुछ तो राह
मिलेगी!' एक मधुर झुरझुरी-सी उसके सारे बदन में दौ
आयी और अगले ही क्षण वह एक सघन व फलदार वृक्ष
नीचे खड़ा था।

रम्य वातावरण ने पथिक के अन्दर आलस्य का भाव जागृत कर दिया। पथीय संक्लेशों की स्मृति उसके थकित मस्तिष्क में उभरी और एकबारगी पथिक जड़ीभूत हो गया।

'कुछ क्षण विश्रान्ति ले ली जाये तो देह का समस्त श्रम-शैथिल्य जाता रहेगा और मंजिल तक पहुँचने के लिये स्फूर्तिदायक नवचेतना का भी संचार हो जायेगा।' सामने खड़ी लम्बी डगर की ओर आशा व उत्साह से दृष्टिपात करता हुआ वह स्वयमेव बुदबुदाया। शीतल वायुके मुग्धकारी व श्रम-निवारक थपेड़ोंने पथी की श्रांति को द्विगुणित कर दिया। वृक्ष के त्राण में निर्मुक्तभाव से तन्द्रा लेने की लालसा को वह अधिक शमित न कर पाया और तत्क्षण ही समग्र चिन्ताओं से विरहित होकर उसकी काया छाया के क्रोड़ में प्रसुप्ति पा गयी।

दिनकर अस्ताद्रि को प्रयाण करने की तत्परता में अपना रथ लौटा चुका था; परन्तु फिर भी आलस्य ने अपने डैनोंकी मदभरी छाया का अवगुण्ठन नहीं उतारा। निद्रालस की जड़ता में आबद्ध हुआ पथिक पांव पसारे पसरा ही रहा। चिर विलम्ब तक वह इसी प्रकार निद्राभिभूत पड़ा रहता, यदि वृक्ष की शाखा से दाड़िमी रंग लिये कुछ पक्व फल उसकी स्थूल देहपर न आ गिरते। पथिक तुरंत हड़बड़ाकर उठ बैठा। फुरती से हाथ बढ़ाकर फलों को उसने उठा लिया। उनकी आकृति और मनभावनी बनावट को निरख रीझ गया पथी। एकाएक उसके नेत्र ऊपर वृक्ष की गझिन शाखाओं में

उलझ गयें, जिनपर असंख्य फल लटके वायु के संग उन्मत्त-क्रीड़ा कर रहें थे। उसके आश्चर्यविस्फारित नेत्र खुले-के-खुले रह गयें।

पथिक का ध्यान भंग हुआ, तो हाथ के फलोंने अन्तर बुभुक्षा को भी जाग्रत कर दिया। उन अपूर्व फलों को खाने की लालसा उसमें बलवती हो उठी।

मुख रसास्वाद को अभी पूर्णतः लील भी न पाया पथिक के वदन पर हर्ष व उत्साह की लालिमा दौड़ आयी। वैसे अप्रतिम फल पहले उसने न कभी देखे थे, न सुने और न ही चखे थे। अलौकिक आस्वाद की अनुभूति प्रतीत हुयी उसे। तृप्ति पर्यन्त वह जुटा रहा। उदर ने और अधिक भार वहन करने की अस्वीकृति इकार अरुण-पताका दिखाकर दे दी, तो एक प्रदीर्घ जम्हाई लेते हुयें वह उठ खड़ा हुआ।

रवि अपने रथ-चक्रों की गति अविरल तीव्र करता रहा था। पथिक को भी जैसे कुछ स्मरण आया। आगे की उत्कण्ठा सजग हुयी। गन्तव्य की भग्नता को जोड़ते पथिक के पांव गतिमय हुयें। सवेग वह मार्ग की ओर उन्मुख हुआ।

'अरे ओ बटोही, तनिक रुको तो!' पीछे से आयी पुकार आयी तो अचकचाकर वह थम गया। 'इस वीरान वन में कौन हो सकता है?'—शंका का प्रश्नचिह्न उसकी संकुचित भौंहों पर उभर आया—'कहां हो भाई? कौन हो? किसलिये पुकार रहे हो?' एकसाथ तीन प्रश्न विस्मयांकित वाणी से प्रस्फुटित हुये।

गम्भीर हास्य की मन्द ध्वनि समीर में विकम्पित हो उठी। वातावरण लहलहा गया। उपालम्भ के स्वर तरंगित हुये—'भूल भी गये ? जिसके आनन्ददायी क्रोड़ में प्रसुप्ति से अपने दीर्घ-पथ के श्रम को निवृत्त किया, जिसके अमृत-फलों को चखकर अपनी चिर-बुभुक्षा को परितृप्त किया और मार्गारूढ़ होने के लिये चेतना प्राप्त की, उसका शाब्दिक उपकार मानना तो दूर, उसे पहचानने में भी मानवीय छद्मता का उपयोग ?......अभी तो दो कदम भी आगे नहीं बढ़े हो !'

हड़बड़ा गया पथिक। उसे अपनी चूक का भान हो आया—'हां भई, वास्तव में मुझ से अनजाने गलती हो गयी। जो उपकार करे, उसका कृतज्ञ तो होना ही चाहियें। मानवीय सभ्यता का विधान भी यही है। और फिर तुमने तो मुझे शारीरिक ही नहीं, अपितु मानसिक सन्ताप से भी निवारित किया है। किस विध तुम्हारे ऋण को शाब्दिक रूप दूं, यही समझ नहीं पा रहा हूं।'

पथिक की परिवर्तित मुद्रा ने वृक्ष को इतना प्रमुदित कर दिया कि, उसकी एकएक शाखा स्पंदित हो उठी। मन्द-मधुर स्वर में वह बोला—'बड़े चंट हो ! बातें भी खूब बनानी आती हैं तुम्हें ! मेरे आश्रय में आयें हो, इसलियें चाहता हूं कि कुछ मांगो। जानते हो, मैं कल्पवृक्ष हूँ। लोगों के मनोरथ पूर्ण करता हूं। जो मांगोगे, तुम्हें भी वह तत्काल दूंगा।'

लौट आया पथी उसी की छाया तले—'तभी तो मैंने
सोचा था, इतने सुस्वादु और मधुर फल, जो अन्यत्र
देखने सुनने में नहीं आये, तुम्हें कैसे फले ? ......कुछ र
होना ही चाहिये।........भई मुझे कुछ नहीं चाहिये, सभी
है मेरे पास!......फिर भी यदि तुम देना ही चाहते हो,
इसी तरह के पके अपने कुछ और फल ही दे डालो। मार्ग
काम आयेंगे।'

कल्पवृक्ष ने विशाल पर्णों को तीव्र झकोरा देकर
बार पुनः अपनी उपहास-ध्वनि वायु में छितरा दी और
कहते हुये पथी के सम्मुख फलों का अम्बार खड़ा कर दिया
'नादान कहीं का! चटोरने मांगे भी तो क्या—अस्था
स्वादवाले अकिंचन फल! कुछ और मांगता, जिसका उप
जीवन में भी किया जा सकता!...... पर, स्वाद-लोलुप
भी कहीं जा सकती है? लालची........'

पथिकने सुना, तो जैसे उसके हाथ-पांव पथरा गये
बोलती बन्द हो गयी। स्वेदबिन्दु उभर आयें उसके स
बदन पर। वह कुछ सुस्थिर होता कि, उससे पूर्व ही कल्प
वृक्ष अन्तर्धान हो गया और सारा प्रदेश पुनः वीरान-सा हो ग
अन्धकार को पांव पसारते देख फलों को बिना बटोरे
पथिक भी लज्जित-सा मार्ग पर उतर आया।

* * * *

कथा-तत्त्व के सन्दर्भ में मेरे धर्मशास्त्र का विवेचन
कि, अकेला वह पथी ही नहीं, अपितु भौतिक जगत
समस्त जिह्वास्वाद के लोलुप प्राणी भी इसी प्रकार

बहुमूल्य अवसरों को लालचवश हाथ से गंवा बैठते हैं। जीवन में अमोलक सुयोग प्राप्त होनेपर उनका समुचित उपयोग करनेवाला ही ध्येय की सार्थकता को लब्ध कर पाता है। शाश्वतिक तत्त्वों का संचय केवल वही प्राणी कर सकता है, जो नित्यानित्य वस्तुओं का सूक्ष्म विवेक रखता हो और अचिरन्तन के प्रति जिसके भाव सर्वथा अनास्थापूर्ण हों। भौतिक पदार्थों के वशीभूत होकर वार्तमानिक वातावरण को आज का प्रगमनशील मानव विषण्णयुक्त बनाता चला जा रहा है और केवल उन्हीं उपकरणों का उपार्जन करने में वह दत्तचित्त है, जिनसे जीवन में स्थायिकत्व के स्थान पर अस्थैर्य की विनाशकारी सर्जना हो सके। यह लक्षण निश्चय ही अशुभ तथा अकल्याणकारी है।

विश्वास

ले. पं. भगवत जी भारद्वाज

चक्की पीस कर गुजर करने वाली गरीब माँ स
अपने नौ वर्षीय बालक कैलास की पुस्तकों और स्कूल
फीस की चिन्ता करती हुई जल्दी-जल्दी गेहूँ पीस रही

आटा लेकर पिसवाने वाले के घर पहुँची। उसे
आशा थी कि—पिसाई के पैसे सदा की भांति उसी स
मिल जायेंगे, परन्तु आज वहां से भी कल शाम तक के
टाल दी गई। बेचारी सरला निराश होकर लौट आई।

आज स्कूल की फीस दाखिल करने की अंतिम ता
थी, वह इसलिये भी चिन्तित थी कि कभी किसी से उ
न लेने की प्रतिज्ञा कर चुकी थी।

कैलास घर ही में दूसरी तरफ बैठा स्कूल के पा
लिख-पढ़ चुका है।

स्कूल जाने का समय हो गया। कैलास ने झटपट पु
आदि समेट कर बैग में रखीं। माँ के पास स्कूल की

लेने आया, परन्तु माँ को चिन्तित देख कर सहम गया। पैसा मांगने की हिम्मत न हुई। आखिर लाचार होकर मांगने ही पड़े। परन्तु यह क्या! सरला माँ की आंखों से आंसू बहने लगे। बालक कैलास समझ गया कि—'मैंने पैसे मांगकर माँ को क्लेश पहुँचाया है। क्यों न समझता आखिर माँ-बेटे का स्नेह। नौ मास जिसने अपने उदरमें रखा। कैलास ने माँ से चिन्ता न करने को कहा, और एक तरफ बैठकर कापी के एक कोरे पेज पर पत्र लिखा। उसे लिफाफे की तरह मोड़कर ऊपर पता लिखकर लैटर-बाक्स में डालने चला। राह के किनारे ऊँचे स्थान पर लेटर-बॉक्स रखा था। उस तक पहुँचने के लिये कमचौड़ी तीन सीढ़ी थीं जब तक लैटर-बॉक्स तक पहुँचा हुआ मनुष्य वहां से उतर नहीं आता, तबतक दूसरा कोई वहां तक नहीं पहुँच सकता था।

एक सज्जन जिनका नाम भी सज्जनसिंह था, अपने कुछ पत्रों के पते पढ़-पढ़ कर लैटर बॉक्स में छोड़ रहे थे। कैलास उनके उतरने का इन्तजार करने लगा। सज्जनसिंह ने कैलास से पत्र लेकर स्वयं लेटर बॉक्स में डालना चाहा पते पर दृष्टि पड़ी। हैरान हो गये। बड़ा ताज्जुब हुआ। लिखा था—

श्री परम पिता परमेश्वर
ठिकाना—वैकुण्ठधाम

उनकी जिज्ञासा बढ़ी, पत्र खोल कर पढ़ डाला लिखा था—

परम पिता परमेश्वरजी,

मुझे स्कूल की फीस के लिये एक रुपया १) चाहिये। आशा है मेरी सच्ची आवश्यकता को पूरी करेंगे।

सज्जनसिंह ने बालक के भोले चेहरे को देखा। दो २) उसको देते हुये कहा—'मैं ईश्वर का भेजा हुआ ही आदमी हूँ, लो यह रुपये।' कैलास ने कहा— 'मुझे ही चाहिये।' सज्जनसिंह ने यह कर समझा दिया कि सच्चे हृदय से जो उनसे याचना करता है, परम पिता उससे अधिक देते हैं।

कैलास ने पूछा—'यह रुपये मुझे कब वापस देने होंगे' उत्तर मिला—उसकी चिन्ता न करो। देना-लेना उसी के अधीन है।

बालक कैलास विस्मित तथा हर्षित होता हुआ, घर आया। माँ को रुपये दिखाये। सरला माँ पहिले खुश हुई, परन्तु तुरन्त ही उसके चेहरे पर दुःख और के चिह्न दिखाई देने लगे। कैलास घबरा गया, फिर सोच कहने लगा—माँ मैंने चोरी नहीं की है।' –'तो यह कहां से लाया?' माँ ने कड़क आवाज में पूछा।'

कैलास ने सारा हाल खुलासा बता दिया। माँ की आंखों में आंसू छलक आये। इस बार के आंसुओं और प्रथम के आंसुओं में अन्तर था। यह थे—भोले बालक सरलता-विश्वास देखकर स्नेह के आंसू। सरला माँ ने कैलास का मुँह चूमकर कण्ठ से लगा लिया।

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा चुने हुये धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह। मानव जन्म सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सुन्दर सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश--विदेशों में पर्यटन करके अपने स्वानुभव को बताया है। हरेक घरमें नित्य पठन पाठनकर सुख--शांति का लाभ लीजिये।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४-०० डाक व्यय अलग।

बहुरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों का संग्रह है। रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए रखने के लिये आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये। आसनों के नाम तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं। डाक व्यय के साथ ३-०० रु.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

बहुत से लोगों का यह ख्याल है कि बर्बरता स्थिति से सभ्यता की स्थिति में पहुँचने के क्रम में विकास हुआ है वह युग चक्र के क्रम में हुआ। सभ्यता मानसिक विकास में निहित है। मनुष्य केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने से ही संतोष अनुभव नहीं करते। सभ्यता विकास का यह अध्याय है जिसमें मनुष्य अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति इतनी आसानी से कर लेते हैं कि उन्हें अपनी मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति को विकसित करने का काफी समय और स्फूर्ति रहती है। सभ्यता सुन्दर चीजों के निर्माण में, उच्च विचारों के चिंतन में और नैतिक विचारों का विकास करने में निहित है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सभ्य लोग भौतिक दृष्टि से अधिक उन्नत होते हैं, किन्तु वे अपनी शक्ति का कम से कम कुछ हिस्सा मानसिक और आध्यात्मिक जीवन बिताने में अवश्य लगाते हैं। सभ्य समाज में मनुष्य जीवन के कतिपय मूल्यों

अनुसरण अवश्य करते हैं।

इस अर्थ में इस पृथ्वी पर बहुत ही कम सभ्यताएं रही हैं। केवल भौतिक विकास को ही सभ्यता की स्थिति नहीं कहते हैं। ५०० ई० पूर्व से लेकर ३०० ई० पूर्व की अवधि में यूरोप के प्राचीन यूनान में, सन्-१३५० से १५५० ई० के बीच पुनर्जागरण कालीन इटली में तथा अठारहवीं शताब्दी के फ्रांस और ब्रिटेन में सभ्यतायें थीं।

सभ्यता के युग-चक्र सिद्धांत के अनुसार सभ्यता युग-चक्र के क्रम से विकसित होती है। कतिपय समुदाय विशेष अन्य की अपेक्षा अधिक विकसित हो जाते हैं। उनकी सभ्यताएँ या तो स्वयं को नष्ट कर देती हैं अथवा बर्बर व्यक्तियों के आक्रमण से नष्ट हो जाती हैं। इस सिद्धांत के अनुसार सभ्यता का उत्थान और पतन विकास के नियम के मुताबिक होता है।

सभ्यता के ऐतिहासिक उत्थान और पतन के प्रसंग में युग-चक्र सिद्धांत का उल्लेख किया गया है। असीरिया, बेबीलोन, प्राचीन मिश्र, यूनान, रोम, पुनर्जागरण कालीन इटली तथा अठारहवीं शताब्दी के फ्रांस में महान सभ्यतायें पुष्पित-पल्लवित हुईं, किन्तु आगे चलकर सब की सब नष्ट हो गयी। सभ्यताओं का जीवन भी व्यक्ति के जीवन के समान होता है। वे कतिपय निश्चित अध्याओं से होकर गुजरती हैं और बाद में नष्ट हो जाती हैं। बर्बरता की स्थिति से निकल कर सभ्यता की स्थिति

में पहुँचता है। इसी प्रक्रिया में सभ्यता का विकास होता है और आगे चलकर सभ्यता की स्थिति समाप्त हो जाती है और बर्बरता की स्थिति पुनः स्थापित हो जाती है।

जोड सभ्यता के युग-चक्रीय सिद्धांत से सहमत नहीं है। उसके अनुसार इतिहास की पुनरावृत्ति अनिश्चित रूप से नहीं होती है। ईसाई धर्म के उदय ने विश्व के इतिहास में एक नया मोड़ उपस्थित किया और महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए। पुनः आधुनिक व्यक्ति ने वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर प्रकृति पर आधिपत्य स्थापित कर लिया है। इसका अर्थ यह है कि यदि वर्त्तमान सभ्यता नष्ट होती है तो यह नाश सर्वांश रूप में होगा और सम्भव है मानव समुदाय जीवित न रह सके।

वैज्ञानिक अनुभव मानव जाति का विनाश तीन प्रकार से कर सकते हैं। आणविक आयुधों का आविष्कार तथा कीटाणु युद्ध की संभावनाओं ने युद्ध की संहार शक्ति को बढ़ा दिया है। बर्ट्रेण्ड रसल ने कहा है कि परमाणु बमों के गिरने से रेडियो प्रभावित बम पैदा होंगे जिसके फल स्वरूप जीवमात्र का ही विनाश हो जायगा। इस प्रकार आणविक युद्ध के कुछ वर्षों के अंत में पृथ्वी पर जानवर या पौधे कुछ भी बचे नहीं रहेंगे। कीटाणु युद्ध आणविक युद्ध से भी अधिक भयंकर साबित हो सकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा स्थापित विश्व-स्वास्थ्य संघटन के निर्देशक डॉ. चिसहोम

ने बतलाया है कि कीटाणु युद्ध दुश्मन के पूरे समुदाय को बारह घंटों में नष्ट कर दे सकता है और दूसरे ही दिन पराजित मुल्क पर आसानी से कब्जा जमाया जा सकता है। युद्ध में कीटाणु का प्रयोग भारी उद्योगों एवं सभी सरंजामों से सुसज्जित विशाल फौजों को व्यर्थ कर देगा। आणविक शक्ति का प्रयोग करने वाले देश भी कीटाणु बमों के आक्रमण के सामने अपने को शक्तिहीन महसूस करेंगे।

मानव जाति के सामने आज विनाश का ऐसा खतरा उपस्थित है जैसा पहले कभी नहीं था। जीवाणु (कीटाणु) युद्ध ने जीवित रहने की दशाओं को ही परिवर्तित कर दिया है।

जब तक नागरिक पृथक-पृथक राष्ट्रीय राज्यों के रूप में संगठित रहेंगे तब तक युद्ध के खतरे भी बने रहेंगे। केवल किसी न किसी ढाँचे की विश्व-सरकार ही विश्व युद्ध को रोक सकती है।

विज्ञान ने दूरी पर विजय प्राप्त कर ली है और इस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से सारे विश्व को एक ईकाई के रूप में परिणत कर दिया है। चूंकि हमारी सभ्यता विश्व व्यापी हो गई है अतः भविष्य में कोई भी स्थानीय युद्ध विश्व युद्ध का रूप ग्रहण कर सकता है और इससे सम्पूर्ण सभ्यता नष्ट हो सकती है। माल्थस नामक सुप्रसिद्ध अर्थ शास्त्री ने आबादी के सम्बन्ध में सिद्धांत प्रतिपादित किया है। उसके अनुसार भोजन

की आपूर्ति जितनी है उससे अधिक आबादी में वृद्धि हो रही है। अतीत काल में युद्ध, महामारी और अकाल आबादी पर नियंत्रण रखते थे, किन्तु चिकित्सा विज्ञान ने मानव जीवन की अवधि को बढ़ा दिया है। चीन और भारत में बच्चों की मृत्यु में भारी कमी हो गयी है। विश्व की आबादी दिन दूनी और रात चौगुनी की गति से बढ़ रही है।

विज्ञान ने मनुष्य को इस योग्य बना दिया है कि वह पृथ्वी के प्राकृतिक साधनों से लाभ उठा सके। कृषि के आधुनिक तरीकों ने मिट्टी की उर्वरता को कम कर दिया है। जंगल काटे जा रहे हैं। खाद्यान्न उत्पादन के लिए जमीन घटती जा रही है।

विज्ञान का एक उज्जवल पहलू भी है। यदि यह आबादी की वृद्धि में सहायक होता है तो उसको नियंत्रित रखने का भी रास्ता बताता है। संतति-निग्रह के प्रयोग के द्वारा विज्ञान यह बतलाता है कि बच्चों की संख्या किस प्रकार सीमित रखकर आबादी की वृद्धि रोकी जा सकती है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक अनुभव का प्रयोग विश्व की खाद्यान्न आपूर्ति को बढ़ाने की दिशा में किया जा सकता है। कृषि वाले क्षेत्र बढ़ाये जा सकते हैं। बंजर भूमि कृषि योग्य बनायी जा सकती है। वैज्ञानिक तरीकों के द्वारा खाद्यान का परिमाण बढ़ाया जा सकता है। भारत और चीन में खाद के प्रयोग के अच्छे परिणाम हो सकते हैं, ब्रिटेन में खाद के प्रयोग

से गेहूं की आपूर्ति में वृद्धि हुई है। इस प्रकार मानव समुदाय के लाभ के लिए वैज्ञानिक अनुभव का उपयोग किया जा सकता है।

यद्यपि आबादी में दिनोदिन वृद्धि हो रही है, किन्तु भोजन की आपूर्ति मांग को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि वर्तमान स्थिति जारी रही तो सौ या दो सौ साल में दुनियां में भूखे देश भोजन के लिए एक दूसरे से प्रतियोगता करते नजर आयेंगे। संतति-निग्रह के विवेक पूर्ण प्रयोग के द्वारा इस प्रकार की स्थिति रोकी जा सकती है। इस प्रकार के नियंत्रण की दिशा में केवल विश्व सरकार ही कदम उठा सकती है।

विश्व सरकार की सम्भावना विशेष उत्साह वर्द्धक नहीं दीखतीं। १९१४-१८ के युद्ध के बाद राष्ट्रसंघ स्थापित किया गया था, किन्तु द्वितीय विश्व-युद्ध को रोकने में यह असहाय सिद्ध हुआ। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना पिछले महायुद्ध के बाद हुई, महान राष्ट्रों पर इसका कोई अधिकार नहीं है क्यों कि अपने निर्णयों को कार्यान्वित कराने के लिए इसके पास सशस्त्र फौज नहीं है। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि यदि किसी एक राष्ट्र का सभी राष्ट्रों पर आधिपत्य हो जाय तो इससे विश्व का उद्देश्य पूरा हो जायगा। उनके विचारानुसार अमरीका से विश्व-सरकार का उद्देश्य पूरा हो सकता है। किन्तु रूस उसका बहुत प्रभावशाली प्रतिद्वन्दी है। यह प्रतिद्वन्दिता एक और विश्वयुद्ध का कारण बन सकती है।

इस प्रकार विज्ञान की प्रगति ने आज विश्व में एक नई परिस्थिति उपस्थित कर दी है। मनुष्य के पास ऐसी शक्ति है कि वह भावी विश्वयुद्ध में अपने आप को नष्ट कर दे सकता है। क्या मनुष्य अपने को नष्ट कर देगा? इसका उत्तर मानव प्रकृति पर निर्भर करता है। कुछ लोगों के अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क और जीवन भौतिक तत्वों की आकस्मिक उत्पादन है। किन्तु इस दृष्टिकोण से भी हम लोगों को मनुष्य के भविष्य के संबन्ध में निराशावादी नहीं होना चाहिए। मानव-प्रकृति से काम लेते समय मनुष्य वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रयोग कर अपने को सुधार सकता है। दूसरे दृष्टिकोण से मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति इस विश्व में अनुपम चीजें हैं। ये किसी ठोस रचनात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति हैं। मनुष्य रचनात्मक परिवर्त्तन का उत्पादन है। इसलिए मनुष्य के विनाश का अर्थ जीवन की सृजनात्मक शक्ति का विनाश नहीं है। यदि मनुष्य विकास के वर्त्तमान चरण में नष्ट भी हो जाय तो भी जीवन की सृजनात्मक शक्ति पुनः मनुष्य जैसे जीव अथवा उससे भी श्रेष्ठ जीव की सृष्टि कर सकेगी। एक दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार ईश्वर ने किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए मनुष्य और विश्व का सृजन किया। इसलिए जबतक उस उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो जाती तब तक मनुष्य इस धरती पर जीवित रहेगा। इस-लिए मनुष्य का भविष्य अंधकार पूर्ण नहीं है। वह अपने भाग्य को नियन्त्रित कर सकता है।

ऐसा कौन भारतीय होगा जिसने योगेश्वर भगवान् कृष्ण का नाम न सुना हो। भगवान् कृष्ण की विविध कथाओं से प्रेरणा लेकर न जाने कितने कवियोंने अपनी कवित्व-शक्ति को सफल बनाकर हिन्दी काव्य क्षेत्र को आलोकित किया है। इसी प्रकार न जाने कितने कलाकारों ने भगवान् कृष्ण की नाना प्रकार की लीलाओं के सुरम्य चित्र निर्मित कर अपनी तूलिका को धन्य किया है।

योगेश्वर कृष्ण असंख्य भारतीयों की श्रद्धा के पात्र हैं। कृष्ण की लीला, दुष्टों का संहार करना और सज्जनों की रक्षा करना, राजनीतिक चातुर्य और गीता द्वारा दिया हुआ कर्मयोग का सन्देश "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन," भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि हैं। संकल्प विकल्प में पड़े मनुष्य के लिये श्रीकृष्ण के ये अमर-शब्द भयंकर अन्धकार में ठोकरें खाते हुये राहगिर को सहारा

बिजली की कौंध से प्राप्त पथ-प्रदर्शन की भांति प्रेरणादायी और प्रोत्साहन प्रदान करनेवाले हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिये योगेश्वर कृष्ण का जीवन-चरित्र एक महान् प्रेरणादायक अध्ययन सिद्ध हो सकता है।

अयोध्या में श्री रामचंद्र के राजत्वकाल में यमुना नदी के दक्षिण तट पर शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध कर मधुवन नामक सुरम्य उपजाऊ प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था। इस प्रदेश का नाम शूरसेन था। प्राचीन काल में यहां एक राक्षस राज्य करता था, जिसका नाम मधु था। इसलिये उस जगह का नाम मधुरा से मथुरा हो गया। शत्रुघ्न का वंश अस्त होने पर इस प्रदेश में यादव, अन्धक, भोज, कुकुर, दाशार्ह और वृष्णि इन चन्द्र-वंशीय क्षत्रियों ने निवास किया। इनमें यदुवंशियों की प्रधानता थी।

यदुवंश में वसुदेव का आविर्भाव हुआ। वे यमुना नदी के पार गोवर्धन पर्वत पर, जो उनकी निजी जागीर थी, वहीं निवास करते थे। वहां रहनेवाले सभी क्षत्रीय गो-समुदाय का पालन करते थे। इसीलिये वे गोप कहलाए। वसुदेव सभी के अग्रणी नेता थे।

उस समय शूरसेन देश के राजा उग्रसेन थे। उनकी राजधानी मथुरा थी। उग्रसेनका एक पुत्र कंस महादुष्ट हुआ। उसने अपने भाइयों की सहायता से पिता को कैद कर लिया और स्वयं राज्य-शासन करने लगा। कंस की बहिन देवकी विवाह वसुदेव के साथ हुआ।

श्री बलराम का आविर्भाव

जब कंस अपनी बहिन की बारात में रथ हांके जा रहा था तो उसे एक आकाशवाणी हुई, कि कंस की मृत्यु देवकी के आठवें गर्भ द्वारा होगी। इससे वह देवकी से दुश्मनी रखने लगा। कंस ने उसके क्रमशः छः पुत्रों को मार डाला। जब सातवें पुत्र बलराम देवकी के गर्भ में आये तो योगमाया ने उसे नन्दजी के यहां रोहिणी के उदर में पहुँचा दिया, जो यथा समय रोहिणी के गर्भ से अवतरित हुये।

श्रीकृष्ण का आविर्भाव

आठवीं बार जब देवकी गर्भवती हुई तो कंस ने देवकी को पति सहित कारागार में कैद कर लिया। उसी कैद में श्रीकृष्ण भगवान् का भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को आविर्भाव हुआ। वसुदेव उन्हें लेकर उसी घोर अंधेरी रात, मूसलाधार पानी की झड़ी में नन्द के यहां पहुँचे। वहां से नन्दजी की कन्या को लेकर पूर्व स्थान में आ पहुँचे। दुष्ट कंस को जब कन्या का पता लगा तो दुष्ट ने उसे पटक कर मार दिया।

इधर कृष्ण का नन्दजी के यहां प्यार से पालन-पोषण होने लगा। दुष्ट कंस ने पूतना राक्षसी को भेजा। वह श्रीकृष्ण को स्तन पिलाते हुए उनकी कृपा से परलोक सिधार गई।

"पूतना तें तारी सो तो पूत-नाते तारी है।"

श्रीकृष्ण की लीला

श्रीकृष्ण स्वभावतः चतुर, चंचल सभी छोटे-बड़ों

प्रिय एवं चित्ताकर्षक थे। श्री बलराम व कृष्ण की जोड़ी थीं। श्रीकृष्ण ने इसी खेल-खेल में अघासुर को मारा था।

ब्रह्माजी का मान-मर्दन

एक दिन ब्रह्माजी ने बछड़े चुरा लिये। पूरे एक वर्ष के लिये बछड़े और गोप नहीं रहे, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी सर्वव्यापकता प्रकट कर सभी कार्य ज्यों का त्यों चलाया। ब्रह्माजी का गर्व चूर्ण हो गया। उन्होंने भगवान् कृष्ण की स्तुति कर उनसे क्षमा-प्रार्थना की।

इन्द्र का मान--मर्दन

शरद ऋतु के आरम्भ में गोप-गण पर्जन्याधिपति इन्द्र की पूजा करते थे। श्रीकृष्ण के कहने पर सभी गोवर्धन पर्वत की पूजा करने लगे। इन्द्र को बड़ा क्रोध आया। उसने सात दिन तक लगातार वर्षा करके व्रजवासियों का सर्वनाश करने का विचार किया। श्रीकृष्ण ने अपनी उंगली के सहारे गोवर्धन पर्वत उठाकर सभी गोप-गोपी व गायों को बचा लिया। इन्द्र का गर्व चूर्ण हो गया और श्रीकृष्ण से क्षमा-प्रार्थना मांगी।

'देख देख मेघन की सेन अकुलानी,
रह्यो सिन्धु में न पानी अस पानी इन्द्र-मुख में।

कंस को मारना

जब कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिये अनेक उपाय किये और श्रीकृष्ण का बाल भी बांका न हुआ तो उसने अपने यहां बलराम तथा श्रीकृष्ण को बहाना करके बुलवाया।

श्रीकृष्ण को मारने के लियें कंस ने वहां कई षडयन्त्र रचे। श्रीकृष्ण ने मौका देखकर कंस को जमीन पर पटक कर उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। कंस के मरने पर चारों ओर शांति का राज्य हो गया। कृष्ण ने वहां का राज्य उग्रसेन को दे दिया।

अर्जुन को उपदेश

महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर थे। भगवान् कृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को कुरुक्षेत्र के मैदान में उपदेश दिया क्योंकि वह अपने सम्बन्धियों से लड़ना नहीं चाहता था। कृष्ण ने जो अर्जुन को उपदेश दिये हैं वे गीता में विद्यमान हैं। गीता हिन्दुओं की एक प्रसिद्ध धार्मिक पुस्तक है। उन के उपदेश समस्त विश्व के लियें कल्याणकारी हैं। गीता में उन सिद्धातों की व्याख्या है, जिनके अनुसार स्वयं उन्होंने अपना लोक-हितकारी जीवन व्यतीत किया। योग और कर्म की जो व्याख्या कृष्ण ने गीता में की है, वह युग युग तक मानव जाति का पथ-प्रदर्शन करेगी। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि यदि मानव अनासक्त होकर, निस्स्वार्थभाव से अपना कर्तव्य करे तो कर्म आत्मा के लियें बन्धन का कारण नहीं होता। अतः मानव को सुख-दुःख, हानि-लाभ की चिन्ता किये बिना निस्स्वार्थ भाव से अपना कर्त्तव्य करना चाहिये। गीता का कर्मयोग श्रीकृष्ण की मानव-जाति को एक महान देन है।

दैत्यों के नाश एवं साधुओं के परित्राणार्थ ही भगवान् का प्रादुर्भाव होता है। श्री भगवान् अपनी माया से विग्रह

धारण करके मानव के रूप में आविर्भाव होते हैं। भगवान् का अध्यवसाय दुर्ज्ञेय है, उनकी माया से जगत् मोहित रहता है।

(१) कृष्ण असुरों को मार कर उन्हें मोक्ष प्रदान करते थे।

(२) उनमें राज्य-तृष्णा नहीं हीं थी। उन्होंने कंस को मारकर वहां का राज्य उग्रसेन को दे दिया था।

(३) वे किसी से द्वेष-भाव नहीं रखते थे। वे सम-दृष्टि थे।

(४) वे युद्ध-विद्या में निपुण थे।

(५) अपने बाल-सखा अर्जुन के रथ का सारथीत्व उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। यह उनकी निरहंकार वृत्ति का सुन्दर उदाहरण है।

(६) उन की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता अनुपम थी।

(७) उन में निःस्वार्थ मैत्री-भाव था।

(८) वे निर्भीक और वीर थे।

इस प्रकार कृष्णने बचपन में बाल्योचित क्रीड़ा, युवावस्था में वीरता व निर्भीकता तथा परिपक्व अवस्था में राजनीति और गहन दार्शनिकता का उज्ज्वल उदाहरण हमारे सामने रखा। भारत के नर-नारियों के हृदय में योगेश्वर कृष्ण के प्रति जो श्रद्धा और भक्ति है वह शाश्वत रहेगी। शम्

विश्वके मानसिक रोगोंसे संघर्ष

बात पुरानी है, लगभग तीस साल पहले की बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश की ग्रामीण तथा शहरी जनता में किंवदन्तियों के रूप में एक स्वयं उत्पन्न होने वाले पौधे को 'पागल-बूटी' के नाम से पुकारते थे। इसकी जड़ को अनेक पागल रोगियों पर घरेलू इलाज की तरह लोग प्रयोग करते थे। पौधे के इतिहास को देखने से पता चला कि भारत के अतिरिक्त मलाया, पेनिनसुला में इस पौधे को मुख्यतः से कीड़े-मकोड़े तथा सर्प विष के लिए प्रतिरोधी औषधि मानकर उपयोग करते रहे।

१९ वीं० शताब्दी के अन्त तक यह स्थिति रही कि जो लोग मानसिक रोगों पागलपनादि से ग्रस्त हो गये, उनको दैवी प्रकोप मानकर झाड़-फूंक के अलावा और कोई विशेष उपचार उपलब्ध नहीं था। ऐसे पागलपन तथा अन्य मस्तिष्क संबंधी रोगों से पीड़ितों को

दुर्भाग्यशाली मान कर जीवन पर्यंत कोठरी में बंद रखा जाता था अथवा सड़कों पर घूम-फिर कर वे अपना जीवन पूरा करते थे। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से मानसिक रोगों के विषय पर देश तथा विदेश के वैज्ञानिकों का ध्यान तेजी से आकर्षित हुआ और कई प्रकार की चिकित्सा विधियों के आविष्कार हुए। परन्तु कोई सन्तोषजनक उपचार मिले, इसकी खोज में वैज्ञानिक निरन्तर चिन्तन कर रहे थे।

इस प्रसंग में भारतीय अनुसन्धानकर्ताओं का ध्यान इस पौधे की ओर आकर्षित हुआ। यह पौधा ४-५ फीट की ऊंचाई का, लगभग ३-७ इंच लम्बी व भालाकार पत्तियों वाला होता है। फूल सफेदी व गुलाबी रंग लिए हुए तथा फल छोटे आकार के पकने पर हल्के चमकीले काले रंग युक्त होते हैं। जड़ मजबूत, गंधहीन, हल्कीपीली व खुदरी रहती है, जो कि स्वाद में कड़वी होती है। इस 'पागल-बूटी' के नाम से प्रचलित पौधे को कई प्रान्तों में घबल बरूआ या छोटा चांद कहते हैं और वनस्पति शास्त्र का नाम 'रावलफिया सर्पेन्टाइना है। भारत में यह पौधा हिमालय के मैदानी भागों में तीन-चार हजार की फीट की ऊंचाई पर तथा आसाम, ट्रावनकोर, पूर्वीभारत में अधिकतर मिलता है और लंका, बर्मा, स्याम व जावा आदि में काफी मिल जाता है।

सर्व प्रथम, जब इस पौधे पर गवेषणा करके वैज्ञानिकों ने मानस रोगों के लिए आश्चर्यजनक गुणों का

पता लगाया तो चिकित्सा जगत में क्रांति की
दौड़ गयी। सन् १९३१ में भारतीय वैज्ञानिकों
ने १ प्रतिशत की मात्रा में दो सक्रिय तत्वों को
निकाला। दूसरे गवेषकों ने पांच नये एल्केलायड्स
पता लगाया, जिनमें से तीन चमकीले उत्तम शक्ति
तत्वों को 'सर्पेन्टाइन' तथा शेष दो सफेद रंग
हीन गुणवान् तत्वों को 'अजमेलोन' नाम के व
रखा गया। तदनन्तर विदेशों के वैज्ञानिकों का
बड़ी उत्सुकता के साथ इस पौधे की ओर आक
हुआ और एक विदेशी गवेषक ने सन् १९३२ में
से तीन तत्व प्राप्त कर लिए। इस तरह से भा
यूरोप, अमेरिका तथा संसार के प्रमुख देशों के वैज्ञानि
ने अपने अध्ययन प्रारम्भ कर दिए।

इस प्रकार सन् १९३१ से लेकर सन् १९५० त
चलने वाले अनुसन्धानों से इसके गुणों का प्रमाणि
रूप प्राप्त हो गया। सन् १९५१ में कुछ वैज्ञानिकों
पौधे की जड़ से 'रावल्फिन' नामक नये तत्व का
लगाया और आगामी वर्ष में ही रेसर्पिन तत्व को
के रूप में खोज निकाला। तब से लेकर अबतक
पर बराबर अनुसन्धान कार्य चल रहा है और
तत्वों के अतिरिक्त राओल्फिन, रसिर्पिन, रापीन, ह
जीन, राहस्निब, आइसो-राहम्बिन, याहिम्बीन जैसे
सक्रिय तत्वों की अब तक उपलब्धि हो चुकी है
वैज्ञानिकों के सतत प्रयत्नों से आज वह पौधा जो
भारत के एक प्रदेश के कोने में यदाकदा प्रयोग कि

जाता था, विश्व के मानस रोगियों के लिए वरदान बन गया। यह भारत में सर्पगंधा के नाम से प्रसिद्ध है। इस भारतीय पौधे को मानसिक रोगियों के अत्यन्त गुणकारी पाये जाने से चिकित्सा जगत में भारत का मस्तक ऊंचा हो गया।

सर्पगंधा की जड़ में पौधे का मुख्य कार्यकारी भाग मिलता है। २-३ वर्ष पुराने पौधे की जड़ में से औषधि प्रयोग के लिए तत्व निष्करित होते हैं। चिकित्सा की दृष्टि से सर्पासिल (रिसर्पिन) नामक तत्व को प्रमुखता दी जाती है। बिहार में पाये जाने वाले पौधों की जड़ में देहरादून के नमूनों की अपेक्षा सक्रिय तत्वों की सकल मात्रा में अन्तर पाया जाता है। सक्रिय तत्वों के अतिरिक्त जड़ में पाया जाने वाला दूसरा घटक 'ओलियो-रेजिन' औषधि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सर्पगन्धा में पाये जाने वाले एल्केलायड्स अपनी पूरी शक्ति से उस स्थिति में प्रभाव करते हैं, जब कि छाल युक्त जड़ को प्रयोग किया जायें।

इन तत्वों को पहले मेढ़कों, चूहों तथा दूसरे जीवों पर प्रयोग करके परीक्षण किये गये और शनैः शनैः सन्तोषजनक प्रभाव सामने आता रहा। तदनन्तर मानव शरीर पर प्रयोग प्रारंभ कर दिया गया तथा निरन्तर उपयोग विधि तथा फल में वैज्ञानिक उन्नति के अनुसार निखरता हुआ रूप उपस्थित होता रहा है। मनुष्य पर प्रयोग करके अध्ययन किया गया कि अजमेलीन वर्ग के तत्व हृदय के सामान्य अवसादक हैं और दूसरे सर्पेंटाइन

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों के समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या का समाधान चाहते हों तो लिख भेजें —सम्पादक]

श्री रामाश्रय यादव, पंडितखेरा (रायबरेली)

पत्र नं. १

प्रश्न नं. १— कभी कभी मेरे हाथ तथा पैरों में एक विशेष प्रकार की जलन होने लगती है। ऐसा मालूम होता है कि अनेक चीटियां काट रही हैं तथा स्थान शून्य हो गया है। कृपया बतावें कि ऐसा क्यों होता है तथा कैसे दूर किया जा सकता है। मेरी उम्र १९ साल है।

प्रश्न नं. २— मेरे बड़े भाई साहब गठिया वात से बहुत परेशान रहते हैं। अधिकतर ठंडी के मौसम में उन्हें बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। जोड़ों में दर्द होता है तथा

सूजन रहती है। वायु अधिक बनती है। उनकी उम्र साल है। कृपया उनके इस रोग निवारण का प्राकृतिक उपचार बतावें।

प्रश्न नं. ३— मेरे मित्र श्री रामेश्वरसिंहजी के सन्तान न होने से अत्यधिक दुःखित रहते हैं। अपनी दूसरी शादी की है, परन्तु दूसरी स्त्री से भी सन्तान की आशा नहीं दीख पड़ती क्योंकि कई साल हो चुके हैं। अब मेरे मित्रजी ही वीर्यदोषी ठहरते हैं दोनों स्त्रियों में दोष होना असम्भव है। कृपया उनके दोष को मिटाने हेतु उपचार बतावें, तथा सन्तान प्राप्ति अन्य अनुभूत बातें लिखकर उत्तर की पुष्टि करें।

उत्तर नं. १— वात पित्त विकारों से ऐसा होता है। पित्त शमन तथा वायु का सुचारू रूपसे हलन चलन रक्त में समशीतोष्णता के आधार से रक्त का परिभ्रमण होना जरूरी है।

प्रथम चिकित्सा:— तैल मर्दन। तिल के तेल प्रात:काल स्नान के ३० मिनिट पहले ३० मिनिट तक शरीर की मालीश करें। जलन तथा विकार के स्थान उष्णता का भास होने तक अधिक ध्यान देते हुये मालीश करें। समशीतोष्ण जल से स्नान करें। ४ मास तक प्रतिदिन मालीश करें।

आसन:— स्नान के पश्चात् विपरीतकरणी १ से मिनिट, सर्वांगासन १ से ४ मिनिट, लोलासन १ मिनिट भुजंगासन २ मिनिट, शलभासन २ मिनिट करें।

आहार:— समशीतोष्ण आहार का सेवन करें। चावल, गेहूँ, सब्जी और फल का सेवन करें। गायका दूध उत्तम है।

उत्तर नं २— गठिया रोग का इलाज:—

मालीश:— सरसों के तेल से प्रातःकाल सारे शरीर विशेषतः जहां गठिया का दर्द है वहां मालीश करें। जहां दर्द है वहां गर्मी का अंश बढ़ा है ऐसा भान होना जरूरी है। सारे शरीर की ३० से ४० मिनिट तक तैल मालीश करें। पश्चात् प्रातःकाल ८ बजे सूर्य भगवान् के सामने बैठ जायें। सिरपर कपड़ा रखें। जहां गठिया का दर्द है वहां पर सूर्य की किरणें पड़नी चाहियें। शरीर के अन्य अवयवों पर सूर्य किरण पड़ सकती हैं, किन्तु विशेष ध्यान गठिया के स्थान में पड़े। जब तक गठिया का स्थान गरम नहीं होवे तब तक बैठ जायें। ७ मिनिट से २० मिनिट तक बैठें। ऋतु, धूप की तेजी और ठंडक के ऊपर आधारित है। इस समय २० मिनिट तक बैठना होगा। सूर्य की किरणें लेने के बाद ३० मिनिट तक छांव में बैठकर शरीर ठंडा करलें। पश्चात् गरम जल से स्नान करें।

आसन:— स्नान के बाद आसन करें। पवनमुक्तासन २ से ३ मिनिट, उत्थानपादासन २ से ३ मिनिट तक। ऊर्ध्वहस्तासन १ से २ मिनिट, मत्स्यासन १ से २ मिनिट, अर्धमत्स्येन्द्रासन २ से ४ मिनिट, पश्चिमोत्तानासन १ मिनिट और नौकासन २ मिनिट।

आहारः— मलावरोध निवारण तथा वायु विकार करने को आहार उत्तम है। प्रकृति के अनुकूल ही ऐसे में तूर की दाल में लहसुन का व्यवहार करें। मेथी भाजी का बारम्बार भोजन के समय व्यवहार करें। पत्ती की भाजी नहीं प्राप्त होने पर १ तोलाभर सूखी धोकर के ३ तोला जल में रात को भिगो रखें। प्रातः बारीक पीस करके १ तोला गुड़ के साथ सेवन ३ मास प्रातःकाल स्नान के बाद करें। अन्य आहार प्रकृति अनुकूल सेवन कर सकते हैं। खट्टे फल का त्याग क चाहिये, मीठे फल का सेवन करें। गेहूँ का सेवन वि करें। भोजन के बाद पपीता का सेवन करें।

उत्तर नं ३:— बिना प्रत्यक्ष इलाज के लाभ होने शंका है। योगाभ्यास तथा आहार परिवर्तन तथा अ इलाजों से लाभ अवश्य होगा। किन्तु प्रत्यक्ष इल आवश्यक है।

श्री बसीयामल नन्दुमल, हैदराबाद (आं. प्र.)

पत्र नं. २

प्रश्न नं. १— हैदराबाद तथा आन्ध्र प्रदेश के अ स्थानों में भूत-पिशाचों को माननेवाले अधिक संख्या हैं। आमिश तथा निरामिश आहार वाले श्रद्धा से मान हैं। उनका कहना यह है कि भूत-पिशाच का अस्तित्व स है नहीं मानने वालों को हर हालत में दुःख का सामना कर पड़ता है, तो सम्पादकजी इस बारे में मुझे सन्देह है

करता है कि अच्छे डिग्रीधारी लोगों का भी यही कहना है कि भूत-पिशाच की बाधा सत्य है। कृपा करके मेरी शंका समाधान करें।

उत्तर नं. १— भूत-पिशाच का अस्तित्व नहीं है। केवल मानसिक कल्पना मात्र है। एकान्तवास, सुनी हुई बातें, सिन्दूर-कुंकुम, नीबू आदि का झूठा प्रयोग करने तथा बुद्धि भ्रष्ट अवस्था का परिणाम केवल काल्पनिक भूत पिशाच हैं। आर्य समाजवाले भूत-पिशाच को नहीं मानते हैं। भूत-पिशाच मनानेवाले लाखों स्त्री-पुरुषों के मानसिक भ्रम को आर्य समाज वाले छुड़वायें और सुखमय जीवन के बारे में मार्ग बतलायें हैं।

श्री वामनराव मूलचन्द भगत, नैरोबी (अफ्रिका)

पत्र नं. ३—

प्रश्न नं. १— आपके मासिक में अधिकांश योग तथा प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में साहित्य प्रकट होता है। अन्य अनेक साधन जैसे रेल्वे में, अखबारों में, कैलेंडरों में, पुस्तकों में, योगासन चार्टों में योगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में प्रचार करते हो। अनेक वर्षों से करते आ रहे हो, किन्तु मुझे इस बारे में शंका यह है कि कितनी अधिक संख्या में आम जनता लाभ उठाती होगी।

उत्तरः— आपको सन्देह होना स्वाभाविक है। गत ४० वर्षों से लगातार श्री रामतीर्थ योगाश्रम की ओर से प्रचार-प्रसार के आधार से प्रत्यक्ष, पत्र द्वारा तथा साहित्य द्वारा अभी तक लाखों स्त्री-पुरुष लाभ (शारीरिक, मानसिक तथा आत्मोन्नति के बारे में) उठाये हैं। एलोपैथिक, आयुर्वेदिक,

होमियोपैथिक, हकीमी अनेक प्रकार के इलाज लेने के पश्चा अच्छे न होने के पश्चात् योगिक तथा प्राकृतिक चिकि का आधार लेने आते हैं। हालत बुरी हो जाती है। हालत में रोग दूर करने के लिये अधिक प्रयत्नशील रह पड़ता है। आम जनता में अधिक श्रद्धा एलोपैथिक में से प्रथम वहां जाने के बाद अन्य उपचार-इलाज करवा हैं। यह तरीका ठीक नहीं है। रोग शारीरिक हो या मानसि सर्व प्रथम योगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा का आधा लेने से अधिक लाभ होगा। किन्तु ऐसे करने में लोगों विश्वास नहीं बैठता है यह उनके मन में रहा हुआ भ्र मूलक अज्ञान है।

प्रत्यक्ष घटना सुनिये। बम्बई के रेल्वे आफि में काम करनेवाले उत्तर प्रदेश के निवासी को गैस (पेट वायु) की बीमारी अधिक परेशान करती थी। एलोपैथी आयुर्वेदीय और अन्य अनेक इलाज करवाने पर भी बीमार बढ़ती रही। जीवन से परेशान हो गये थे। यहां आये, यौगि ट्रीटमेन्ट तथा आहार परिवर्तन से आश्चर्यजनक लाभ केवल आठ दिनों में हुआ। आठ दिनों में ही सोलह आने में आने रोग दूर हो गया। मन बहुत आनन्दित हो गया। एक महिने में गैस की तकलीफ शरीर में नहीं है ऐसा महसूस करने लगे। सुखी जीवन बिताने लगे। उमर केवल २७ वर्ष की है। वे महाशय कहने लगे कि नई जिन्दगी प्राप्त हुई। ऐसी सत्य घटना एक नहीं किन्तु अनेक हैं।

पुरातन जमाने में लोग योगाभ्यासके श्रद्धा भाजन बनकर प्रति नित्य करते थे। हर हालत में सुखमय जीवन बिताते थे। अर्वाचीन जमाने में लोगों के मन मानस को योग तथा प्राकृतिक चिकित्सा की ओर खिचाव करना पड़ता है। इसलिये प्रचार-प्रसार करना अनिवार्य बन जाता है।

वर्तमान काल की परिस्थिति

मद्रास, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, हैदराबाद, बेंगलोर, इंदौर, उज्जैन, नागपुर आदि भारत के विभिन्न शहरों में यौगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा चल रही है तथा प्रचार-प्रसार हो रहा है। इन योगाश्रम तथा चिकित्सालयों में से अल्प संख्यक योगाश्रम तथा चिकित्सालयों की आमदनी अच्छी है। यथा योग्य रूपेण साहित्य तथा अन्य साधनों से प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। वह पर्याप्त नहीं है। इसके लिये स्थानीय म्युनिसिपालिटी प्रांतीय सरकार, केन्द्र सरकार तथा धनवानों का सहयोग आवश्यक है।

卐 卐

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारी आर्थि
प्रगति की रीढ़ गौ माता है। गाय से घी-दूध, मल
मक्खन आदि अमृत के समान पौष्टिक पदार्थ प्राप्त हो
हैं। गाय के दूध में भैंस के दूध से दस गुना विटामि
'ए' तथा शक्ति होती है। भैंस के दूध पीने से मनु
की बुद्धि तमोगुणी व सुस्त रूप से बन जाती है।
मनुष्य को उचित, अनुचित का ध्यान नहीं रहता,
क्रोधी, व्यभिचारी, तथा बेईमान एवं नैतिक रूप
निकृष्ट बन जाता है। गाय के दूध से निर्बल मनु
बलवान और हृष्ट-पुष्ट बनता है। कमजोर और रो
व्यक्ति भी शक्तिवान तथा निरोगी हो जाता है।

व्यास मुनि ने गाय का महत्व बताते हुये कहा था :-

गौ माता की पीठ पर ब्रह्मा, गले में विष्णु, मु
में रुद्र, मध्य भाग में देवतागण, सभी रोम कूपों

महर्षि, पूँछ में नागदेवता, खुरों के आठों भागों में पर्वतों के आठो कुल। मूत्र में गंगा नदी, दोनों नेत्रों में चन्द्रमा एवं सूर्य एवं स्तनों में देवतागण प्रतिष्ठित हैं। ऐसी यह गऊ माता हमें वर प्रदान करें।

वर्तमान समय में भारत में गौ की बहुत बुरी स्थिति है। आज गौवध तथा गौ के मांस को खा-खाकर भारत में गाय की संख्या में बहुत कमी आ गयी है। उनकी नस्ल भी पहले की अपेक्षा बहुत ही गिर गयी है। गाय माता की रक्षा तथा कदर कोई नहीं करता यही कारण है कि भारत आर्थिक, नैतिक तथा स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से पहले की अपेक्षा काफी कमजोर होता जा रहा है। वर्तमान सरकार भी गौ की रक्षा तथा गौवध रोकने में पर्याप्त कदम नहीं उठा रही है।

पुराने ज़माने में हमारे पूर्वज हमेशा गाय का ही दूध पीते थे। यही कारण था कि वे दीर्घ जीवी होते थे। वे स्वावलम्बी, परिश्रमी तथा स्वस्थ होते थे यही कारण था कि प्राचीन काल में फसल अच्छी होतीं थी।

परन्तु आज के समय में गाय के दूध के अभाव के कारण हमारा जीवन पहले की अपेक्षा अल्पायु हो गया है आज सर्वत्र नाना प्रकार की बीमारियों का बोलबाला है। आज हमारी पैदावार भी पहले से अपेक्षा कृत कम हो गई है सर्वत्र पौष्टिक तथा शुद्ध खाद्य पदार्थों की कमी के कारण हमारा स्वास्थ्य तथा नस्ल दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है।

आर्थिक रूप से गाय का महत्व बहुत अधिक
गाय धन है, गाय की उपयोगिता मानव जीवन
इतनी अधिक है कि किसी अन्य जीवों से तुलना
की जा सकती है। यही कारण है कि भगवान
कृष्ण गाय को इतना प्यार करते थे। वे गाय
मक्खन को चुरा चुरा कर खाते थे क्योंकि यह
ही मूल्यवान एवं लाभदायक चीज थी और आ
रूपसे गाय के गोबर से ईंधन, खाद, गाय के
से दवाइयां तथा बैलों का खेत की जुताई आदि
उपयोग होता है।

गायों का आर्थिक महत्व इस बात से अच्छी
समझ में आ जाता है कि ज्यों-ज्यों गायों की सं
नस्ल एवं दूध के अभाव में गिरावट आई त्यों
महंगाई खाद्यपदार्थ तथा अन्य पदार्थों की कीमतें बढ़ती

मुगल काल में गौ हत्या के कारण गौ की सं
में कमी होने से प्रत्येक चीजों के भाव बढ़ गये। ले
अकबर बादशाह के जमाने में गौ हत्या पर प्रति
लगजाने से फिर चीजों के मूल्यों में गिरावट आई

सन् १९४० से १९४४ में हमारे देश में जितनी अ
नस्ल की गाय, बैल थे वह सब अंग्रेजी सेनायें खा
इसका बहुत ही खराब असर हमारी आर्थिक स्थि
पड़ा। परिणाम यह हुआ कि १९४५ के बाद एक
मूल्यों में बहुत काफी तेजी आई सन् १९४० के
में तथा १९४५ के मूल्यों में ८ गुनी तेजी अर्थात्
की वस्तु ८) में बिकने लगी।

उस समय से ही महंगाई ने विकट रूप धारण कर लिया और वह द्रौपदी के चीर के समान बढ़ती चली जा रही है और आज भी हमारी स्थिति दिन प्रतिदिन गिरती जा रही है। क्योंकि अब भारत में गोधन जो कि लक्ष्मी के समान होता है का अभाव हो गया है। क्योंकि अब गायों की पहले जैसी कदर नहीं रही अतः हमारा देश अब सुख, साधन तथा धन से विहीन होता जा रहा है।

संसार में हालैंड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया की गायें नस्ल तथा दूध में सर्वोत्तम हैं। भारत की ७, ८ गायें भी इन देशों की १ गाय के बराबर भी दूध नहीं देतीं।

आध्यात्मिक रूप से भी गायों का महत्व कम नहीं। कहा जाता है कि यह पृथ्वी माता गऊ के सींगों पर टिकी है इससे अधिक महत्व वाली चीज और क्या हो सकती है भगवान् श्री कृष्ण गायों को कितना प्यार करते थे। गऊ माता मानी जाती है। गऊ की पूजा होती है। वेद, पुराण, श्रुति सब गायों के गुणों का वर्णन करते हैं। कामधेनु, नंदिनी आदि गायों को संसार पूजता है।

भगवान् कृष्ण ने कहा है जहां गाय है वहीं मैं हूं। जो मनुष्य गायों को दुख देता है उसके समान पापी इस संसार में कोई नहीं।

गायों के आने का समय सांयकाल गो धूली बेला माना जाता है उनके रहने से आसपास का वातावरण

शुद्ध, सात्विक रहता है। जब देश में काफी गायें थीं हमारे देश को सोने की चिड़िया कहा जाता था। यहां दूध की नदियां बहती थीं। पर आज स्थिति यह है कि शुद्ध जल का भी अभाव है।

इसलिये यदि अब भी हम अपने देश को पुनः सम्पन्न, सुखी और प्रगति करना चाहते हैं तो हमें गायों के पालन तथा उनकी नस्ल में सुधार करना है। उन्हें उचित दाना, पानी खिलाना चाहिये। प्रयत्न करने पर क्या चीज दुर्लभ है और फिर गाय तो माँ है। ऐसी माँ जिसके ऊपर पृथ्वी टिकी है उसकी रक्षा तथा देखभाल करना हम सब का परम कर्तव्य है।

पुराना पेचिश एक साधारण व्याधि है और हमेशा दिखाई देता है इसका प्रधान लक्षण यह है कि इसमें मल के साथ साथ आंव निकल आता है। कभी कभी रोगी के कोष्टबद्धता तथा पतला पतला दस्त एक के बाद दूसरा होता है और पेट में प्रायः ही दर्द जारी रहता है। इस रोग में हमेशा मृत्यु नहीं होती है किन्तु रोगी दीर्घ अवधि तक रोग का शिकार बना रहता है और जिन्दगी बहुत कष्ट दायक हो जाती है।

ऐसा नहीं होता है कि पुराना पेचिश हमेशा जीवाणु से उत्पन्न होता हो बहुत क्षेत्रों में जीवन का उद्वेग तथा चिन्ता ही इसके प्रधान कारण हैं। एवं बहुत अवस्था में स्नायुविक दुर्बलता से पैदा होता है। यह बहुत क्षेत्रों में देखा गया है कि जब मनुष्य की मानसिक अशांति

वृद्धि पाती है तब इस रोग की हालत भी खराब होती है इस कारण से ही यह दवाई के इलाज से मिटता नहीं।

इसलिए रोगी की प्रधान चिकित्सा ऐसी होनी चाहिए जिससे उसके स्नायु स्वस्थ होवें एवं जीवन से सब प्रकार की उत्तेजनाएँ एवं उद्वेग विदा हो जाएँ।

इस फल को पाया जा सकता है अगर रोगी यथेष्ट रूप से विश्राम करें। रोगी का शीतल तथा खुली हवा में भ्रमण करना बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है रोगी के लिए दिन में दो बार स्नान भी अच्छा है बीच बीच में हवा बदलने के लिए बाहर जाना बहुत लाभप्रद है। कर्म क्षेत्र में रहने पर भी कोई तरह की जल्दी बाजी नहीं कर स्थिर रूप से सब काम करना उचित है हमेशा मुंह में हंसी रखने की चेष्टा करनी चाहिए। सदैव आसानी से पचने वाला एवं अनुत्तेजक द्रव्य खाना उचित है।

इससे केवल पुराना पेचिश अच्छा होता है ऐसा नहीं रोगी के दूसरे रोग में भी लाभ देखा जाता है।

यह स्मरण रखना कर्तव्य है कि जबतक शरीर में रोगवृद्धि होने की अनुकूल अवस्था की सृष्टि नहीं होती है तबतक शरीर में कोई रोग नहीं होते। इसलिए विशिष्ट रूप से कोष्ठ सम रखना उचित है। अगर आप से आप रोगी का कोष्ट साफ नहीं होता हो तो बीच बीच में डूस लेना उनका कर्तव्य होता है। इस

का पानी समशीतोष्ण होगा और इसके साथ थोड़ा सा दही का पानी मिला देना चाहिए। दही मिलाने के समय उस में झिल्ली उठती है वह अलग करके फिल्टर पेपर से छान कर दूसरे पात्र में रखने से ही डूस में मिलाने के लिए उपयुक्त होता है। जल थोड़ा नीलरंग का होगा और जल के भीतर दही का कोई सादा अंश नहीं रहेगा! दही के भीतर जो जीवाणु रहते हैं वे पेट के भीतर जाने के बाद पेट में उपस्थित सभी रोग के जीवाणु को मार डालते हैं। इसलिए दही पानी का डूस पुराने पेचिश में एक लाभदायक चिकित्सा है।

पेचिस अच्छा करने के लिए पेट का लपेट भी विशेष रूप से जरूरी है। दिन में एक घंटे के लिए पेट का लपेट लेने से पुराना दर्द गायब हो जाता है और पाखाना साफ होता है। पेट का लपेट हमेशा ही स्तन रेखा से पट्टू की अन्तिम सीमा तक विस्तृत होगा। चमड़े के ऊपर एक पतला मगर निचोड़ा हुआ तौलिया देने से ही काम चल जाता है किन्तु भीगे तौलिये को ऊनी कपड़े से ऐसा ढक देना चाहिए कि भीतर में एक सी गर्मी पैदा हो।

इसके साथ रोगी के पथ्य के ऊपर भी ध्यान देना चाहिए। इस रोग में दवाई की कोई जरूरत हो तो पथ्य का ही नाम लेना चाहिए।

पुराने पेचिश में रोगी का सर्व प्रथम पथ्य होना चाहिए दही! दही के भीतर जो ल्याकेवेसिली रहते हैं

वे सारे आंव को जीवाणु मुक्त कर देते हैं। रोगी दिन में दो तीन बार दही खाना उचित है किन्तु को ज्यादा उबाल कर दही बनाना ठीक नहीं है। दही के साथ मीठा खाने की जरूरत पड़े तो चीनी की शहद का व्यवहार करना उचित है। शहद लीवर हार्ट के लिए प्रधान खाद्य है और बहुत जल्दी की कमजोरी को दूर करता है। पुराने पेचिश में एक अच्छा खाद्य है केला, किन्तु केला जब अच्छा पक जाता है तभी वह खाने लायक है। पक जाने के बाद में जब काला दाग दिखाई हैं और इसका छिलका भी पीला हो जाता है। में तभी वह खाने के लायक होता है।

रोगी को हर रोज थोड़ी इमली की चटनी पुराने चावल या रोटी के साथ खानी उचित है। जरूरी है कि इमली २०-३० वर्ष की पुरानी हो चीनी के बदले बहुत अच्छा ईख का गुड़ मिलाकर चटनी बनाना जरूरी है।

यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि सब खाद्य बहुत चबाकर खाने चाहियें। कभी कभी रोगी के के साथ खून निकलता है इस अवस्था में दौड़ना बहुत कम करना चाहिए एवं रोगी को दिन में दो तोला भर दूब घास का ताजा रस शहद के साथ खाना उचित है।

卐

दीपक सा जलकर जो ज्योतियुक्त पथ कर दे ।
क्षमता से अपनी क्षण क्षण पर क्षमा, धैर्य, संबल दे ॥
अपनी तृषा शृंखला तोड़े भूलों को मंजिल दे ।
बीहड़ में भी बल से बसन्तमय अंचल कर दे ॥

शूलशयन कर स्वयं नियति में कुसुम बिछाये ।
अश्रु जल से जग-सौख्य-तरु को नित नहलाये ॥
गरल पीकर के स्वयं स्नेह सुधा जग को पिलाये ।
स्वयं पलकर विपत्तिमें सम्पत्ति सुख जगको जुटाये ॥

जो कीर्ति छोड़कर अपनी लघुता को गले लगाये ।
चंचलता को त्याग चतुरता, चेतनता लाये ॥
उन्नति मग पर रहे अग्रसर दुर्गम पथ अपनाये ।
शिखर प्राप्त कर जग में यश-केतन लहराये ॥

चट्टानों को तोड़ नया पथ भी जो नित रचे
मुस्काये संकट में भी जो संचित साहस करे
सिसक मिटायें जग की जो क्रन्दन दुःख हरे
जो गिर गिरकर ठोकर खाकर पुनः सम्हले

जग सुखमय करने की हो जिसमें क्षमता।
जिसका अन्तर अकुलायें करने को ध्वंस विषमता॥
अभिभावक वह मानवता का दूर करे नश्वरता।
लालायित हो चरण चूमने उसके स्वयं सफलता॥

सब सीमा की सीमा को भी नाप रखा हो जिस
वह मानव है क्षुब्ध धरा को सुखी बनाई जिस
महा प्रलय को रोक सृष्टि का सृजन किया हो जिस
मानव वह हर हृदय द्वार में पाया अभिवादन जिस

वृहद्वक्र नामक देश का राजा था चिन्धानी। चिन्धानी वहुत ही चालाक और नेक था, वह अपनी प्रजा को पुत्र के समान चाहता था। उसके युवराज बनने के ६ माह पश्चात् ही उसके पिताकी मृत्यु हुयी इसलियें राजपाट का पूर्ण कारोभार उस पर ही आ गया था। परन्तु उसका नियम था कि वह कभी भी कोई भी काम अपने गुरु की आज्ञा बगैर नहीं करता था।

एक दिन चिन्धानी अपने गुरु की पर्णकुटि में गया और गुरु के चरणों पर मस्तिष्क रखते हुयें कहने लगा—"गुरुदेव, मुझे ऐसे आदेश दीजियें कि मैं अपने जीवन में कभी भी हानि को नहीं पा सकूं।" गुरुदेवने अपने पास आयें हुयें शिष्य युवराज को देखा तो उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ और बड़े प्रेम से कहने लगे—"उठो राजन्, मैं तुम्हें केवल तीन आदेश देता हूँ लेकिन उसके सहयोग से ही जीवन में कदम को आगे बढ़ाना, तभी तुम स्वयं के जीवन को हानि से बचाते

हुये जीवनोन्नति कर सकोगे।" गुरुदेव की बात सुन चिन्धानी बहुत आनन्दित हुआ और कहने लगा—"गुरु आप जो भी आदेश मुझे देंगे उसी आदेश पर ही मैं अ जीवन का हल चलाऊँगा।" चिन्धानी की एकाग्रता भक्ति को देखकर गुरुदेव प्रसन्न हुयें और आदेशों बताने की चेष्टा करते हुयें कहने लगे—"राजन्, तुम आदेशों पर चलने का प्रण करते हो तो सुनो—कभी शक्ति से पहिले युक्ति का उपयोग करना चाहिये, दु से भी प्रेम भाव रखना चाहियें तथा स्त्री पर नियन्त्रण रखना चाहियें। इन तीन आदेशों पर चलने से कभी भी जीवन में हानि का संकेत नहीं पा सकोगे गुरु के आदेश प्राप्त कर चिन्धानी वहां से चल पड़ा।

रुद्रोक्त देश की रानी थी कनकदेवी। रुद्रोक्त दे स्त्री राज्य था कनकदेवीने स्वयं के विवाह के लिये शर्त रखी थी। उसकी शर्त यह थी कि जो भी कोई राजकु उससे विवाह करना चाहता है तो प्रथम उसको उ जुआ खेलना अनिवार्य होता था। जुए में राजकुमार हार हो जाने से वह उसे कैद करती थी और स्वयं गुलाम बनाकर उसको कैदमें बन्द करके उसके नाम काला ध्वज उस कैदखाने के ऊपर लगा देती थी राजकुमारी की हार होती तो वह उससे विवाह करके रा का सर्वाधिकारी बना देती थी। परन्तु कभी भी कोयी राजकुमार कनकदेवी को नहीं जीत सका तथा जितने राजकुमार कनकदेवी को जीतने के लिये जाते थे, उसके गुलाम बन गयें थे। इसी भांति यह वार्ता

राज्योंमें जाहिर हो गयी और बहुत से लोभी राजकुमार कनकदेवी के जाल में फँस गये।

इस बात का पता राजकुमार चिन्धानी को लगते ही वह अपने मित्र विश्वेश्वर को साथ लेकर रुद्रोक्त देश की ओर जाने लगे। राजकुमार ने रुद्रोक्त देश में जाने से पहिले वहां की राजकुमारी के विषय में जानकारी करना इष्ट समझा और कनकदेवी के विषय में जानकारी करते २ वह एक वृद्ध स्त्री के पास पहुँच गया और उससे कनकदेवी के विषय में पूछने की चेष्टा करता हुआ कहने लगा--"मां जी, तुम कनकदेवी के विषय में कुछ जानती हो?" वह वृद्ध स्त्री चिन्धानी की ओर आश्चर्य मुद्रा से देखने लगी तथा सहसा बोलने लगी--"बेटा, तुम भी कनकदेवी के पास जाना चाहते हो?" चिन्धानी ने प्रत्युत्तर में कहा--"हां" तत्काल वह वृद्ध स्त्री कहने लगी-- "बेटा, तुम वहां मत जावो। कनकदेवी के पास गये हुये राजकुमार आजतक उसे जुए में नहीं जीत सकें तथा वे सब उसके गुलाम बनकर अभी भी कैद में पड़े हैं।" राजकुमारी जुए में क्यों जीतती है? इसके विषय में पूर्ण जानकारी उस वृद्ध स्त्री को थी। परन्तु वह स्तब्ध रही। उसके मन में विचार आया कि इसी तरह राजकुमारी कनकदेवी सभी को जीतकर अपना गुलाम बनातीं रहेगी तो फिर विवाह किससे करेगी? उसने चाहा की राजकुमारी के जीतने के विषय में सभी भेद इस राजकुमार को बता दिये जायें।" यह विचार उसके मन में आते ही वह चिन्धानी को सब कुछ बतानेका प्रयत्न करते हुये कहने लगी--"सुनो बेटा, यदि तुम कनकदेवी को जीतना चाहते हो तो तुम्हें एक कष्ट करना होगा।"

चिन्धानी बड़ा धैर्यवान् और शूर था, वह कहने ल
"मां जी, तुम जो भी काम राजकुमारी को जीतने के लि
मुझे बताओगी वह मैं बड़े आनन्द से करूँगा।" चिन्धा
के धैर्य और साहस को देखकर उसको विश्वास हुआ
अवश्य ही राजकुमार कार्य को पूर्ण कर सकेगा। उसी
वह वृद्ध स्त्री सब-कुछ बतानेकी आतुरता से कहने ल
—"बेटा, कनकदेवी जुए में क्यों जीतती है इसका का
केवल उसके पास विराजित जादुई-कठपुतली है।
कठपुतली के नेत्र जुए खेलनेवाले राजकुमार पर
के बाद उसको पता ही नहीं चलता कि उसकी हार हो
या जीत। इसलिये जो भी राजकुमार कनकदेवी से जु
खेलता है उसकी हार हो जाती है, तथा उसका गुलाम ह
जाता है।" कुछ क्षण रुकने के बाद वह वृद्ध स्त्री पु
बोल पड़ी— "राजकुमारी को जीतने का एक ही उपाय
और वह यह है कि तुमको ताम्राणी अरण्य में जाकर व
के विराजित वृजोक्त नामक भयंकर वट वृक्ष के नीचे रह
वाले महाविषारी सांप के सिर पर रखी हुयी लाल म
लानी होगी और तभी उस कठपुतली के नेत्र भस्म
सकते हैं और तुम्हारी जीत हो सकती है।" वृद्ध स्त्री
बात को सुनते ही चिन्धानी और विश्वेश्वर दोनों ताम्रा
अरण्य की ओर जाने लगे।

रात्री का समय होने के कारण भयंकर ताम्राणी अर
और भी भयंकर प्रतीत हो रहा था। वट वृक्ष के शोधा
चिन्धानी और विश्वेश्वर दोनों जा रहे थे। भयभीत कर
वाला अरण्य उनको डराने की चेष्टा कर रहा था, ऐसे

अवस्था में वे एक-दूसरे की ओर देखकर घूरने लगे। पक्षियों की डरावनी आवाज तथा हवा से छोटे-छोटे वृक्षों की खर्र.........खर्र करनेवाली आवाज उनके धैर्य के विनाश करने की चेष्टा कर रहा था। ऐसे गद्गद अवस्था में कहीं दूर विश्वेश्वर की नजर में वृक्ष दिखाई दिया, तत्काल वह चिन्धानी से कहने लगा— "युवराज, वह देखो वृक्ष कितना भयंकर दीख रहा है। निश्चित ही वह वट वृक्ष वृजोक्त का ही होना चाहिये।" विश्वेश्वर की बात चिन्धानी को वास्तविक प्रतीत हुई और वे दोनों भी उस वृक्ष की ओर कदमों को बढ़ाने लगे। लेकिन उसी क्षण उसको गुरु के दिये हुये आदेश का भास होने लगा और वह आदेश उसके मस्तिष्क में गूँजने लगा—शक्ति से पहिले युक्ति का उपयोग करना चाहियें—गुरुदेव का आदेश मन में आते ही वह सहसा स्तब्ध हो गया, और सोचने लगा कि किस तरह लाल मणि प्राप्त करनी चाहियें। तत्काल वह मन ही मन सोचने लगा— 'अभी तो रात्रि का समय है, रात्रि के समय में विशेषतः सर्प टहलने को जाते हैं और फिर वह तो मणि वाला सर्प है, मणिवाला सर्प रात्रि के समय मणि को भूमि पर रखकर उसके प्रकाश में अपने खाद्य का शोधन करता है, शायद वह भी इस समय यही कार्य कर रहा होगा। यदि मणि के प्रकाश में खाद्य शोधन कर रहा होगा तो अभी जाकर उस मणि पर गीली मिट्टी फेंक दें, ताकि मणि उस मिट्टी में दब जाय और चारों तरफ का प्रकाश समाप्त हो जाय, तथा मणि अदृश्य होने के कारण वह सर्प पागल बनकर इधर-उधर भागने लगेगा अर्थात् मणि नहीं

मिलने पर उसका अन्त हो जायेगा।' यह विचार चिन्धानी के मन में आते ही वह विश्वेश्वर से कहने लगा—"विश्वेश्वर, चलो गुरुदेवके दिये हुये आदेशका उपयोग करें।"

चिन्धानी और विश्वेश्वर दोनों वृजोक्त वृक्ष के पास पहुंच गये लेकिन वहां पर उनको सर्प नहीं दिखाई दिया। तत्काल उन्होंने दूर दृष्टि फैलाई तो चिन्धानी को कुछ ही दूरी पर मणि का प्रकाश दिखायी दिया। उसने सूक्ष्म दृष्टि से देखा, तो उसको वहां पर दो सर्प साथ में ही जाते दिखाई दिये। वह समझ गया कि ये दोनों पति-पत्नी होने चाहियें। चिन्धानी ने जिस तरह सोचा था उसी तरह गीली मिट्टी लाया और दोस्त विश्वेश्वर से कहने लगा— "विश्वेश्वर, तुम वहां पर खड़े रहो। मैं अभी जाकर उस मणि पर यह मिट्टी फेंक आता हूं।" इतना कहकर चिन्धानी भागते हुये गया और मिट्टी को मणी पर फेंक दिया। एक मील दूर पर खाद्य शोधन करने वाला सर्प अचानक मणि का प्रकाश अदृश्य होने से बहुत क्रोधान्वित हुआ तथा मणि नहीं दीखने के कारण उसके नेत्र भी अन्धे हो गये थे। इसलिये वह भयंकर विषधारी सर्प मुख से विष फेंकने लगा और अपने शरीर को जमीन पर पटकने लगा। इधर-उधर पागल की तरह अपने शरीर को पटकते-पटकते उसका अन्त हुआ। सर्प की मृत्यु होते ही चिन्धानी ने विश्वेश्वर को बुलाया और उन दोनों ने मिट्टी में दबी हुई लाल मणि को निकाला। ला...

मणि अदृश्य होने से सर्प की मृत्यु हुयी देखकर उस मरे हुये सर्प की पत्नी नागिन यह दुष्कृत्य नहीं सह सकी तथा क्रोधान्वित होकर स्त्री रूप में प्रकट हुयी, और लाल मणि लेकर जानेवाले राजकुमार को उग्र स्वर में कहने लगी — "ठहरो, राजकुमार कहां जाते हो।" सुनसान जंगल में स्त्री की आवाज सुनते ही चिन्धानी एकदम पीछे मुड़कर देखने लगा, तो उसको नागिन के रूप में भव्य प्रकाशित देवी दिखाई दी। उस चमत्कार को देखकर वे दोनों भी आश्चर्य से उसकी तरफ देखने लगे। उनको मुड़ते हुये देखकर देवी के रूप में नागिन कहने लगी — सुनो राजन, जिस तरह, तुमने मेरे पति की हत्या की है उसी तरह आज से ७ दिन के बाद ऐसे ही बारह बजे में तुम्हें डसूंगी। देवी के रूप में नागिन के शब्द सुनकर चिन्धानी अत्यंत चिन्तीत हो गया परन्तु नागिन ने दिये हुये श्राप में उसने कुछ भी तथ्य न समझकर वहां से चलने के लिये अपने मित्र विश्वेश्वर को संकेत किया।

लाल मणि को लेकर वे दोनों रुद्रांकत देश में आये और कनकदेवी के पास आकर कहने लगे. "हम जुआं खेलने तुम्हारे यहां आये हैं।" चिन्धानी की बात को सुन कर कनकदेवी को दुःख हुआ और वह मन ही मन विचार करने लगी आज इतना सुन्दर राजकुमार मेरे साथ हारकर मेरा गुलाम बन जायेगा। वैसे की राजकुमार चिन्धानी देखने में सुन्दर और सुदृढ़ था। इसी कारण राजकुमारी कनकदेवी की इच्छा चिन्धानी

पर बैठ गयी और वहीं उसके साथ विवाह करने को आतुर हो गयी। वास्तव में राजकुमारी की इच्छा थी कि राजकुमार जुए में हारना नहीं चाहिये। तब कर्म, धर्म, संयोग से वैसा ही हुआ, क्योंकि लालमणि लाने के कारण जादुयी कठपुतली की आंखें भस्म हो गयीं और जुए में राजकुमार की जीत हुयी।

कनकदेवी और चिन्धानी दोनों का विवाह हो गया और साथ ही साथ राजकुमार चिन्धानी को रत्नद्वीप देश मिल गया। वहां पर कैद किये हुये गुलाम राजकुमारों को भी उसने आजाद कर दिया। सुख और चैन के दिन व्यतीत हो ही रहे थे, सो अचानक नागिन के दिये हुये श्राप की याद चिन्धानी को आ गयी तथा उसको मालूम हो गया कि आज का दिन बीतने के बाद नागिन उसे डसने आयेगी। कल उसकी मृत्यु अवश्य है देखकर चिन्धानी अत्यंत चिन्तित हो गया यह सोच रहा कि किसी न किसी प्रकार मृत्यु टल जानी चाहिये। उसी क्षण उसके मस्तिष्क में गुरु के दिये हुये दूसरे आदेश का इशारा हुआ। गुरु का दूसरा आदेश था — दुश्मन से प्रेमभाव भाव रखना चाहिये।

उस दिन चारों तरफ आनन्द का वातावरण था किन्तु चिन्धानी की मृत्यु का दिन उसे सोचने लगा। तत्काल उसने गुरु के दिये हुये आदेश का उपयोग करने का प्रयत्न किया और राज-दरबार में जाहिर कर दिया कि चारों तरफ सड़कों पर सुगंधित फूल तथा सड़कों पर

दोनों तरफ दूध से भरी हुयी कटोरियां रखें और इसी तरह बीन-बाजे, नाच-गाने और भगवान का भजन-कीर्तन करके पूर्ण रात्रि आनंदमय बनाने की आज्ञा दी।

राजकुमार चिन्धानी की आज्ञानुसार चारों दिशाओं को प्रकाशमय कर दिया गया। रात्रि के ग्यारह बजे अपने शयन घर में चिन्धानी घबड़ाई हुई दशा में चारों तरफ देख रहा था कि कौन से रास्ते से नागिन आने वाली है और कौन से रास्ते से नहीं। क्रमशः समय व्यतीत हो रहा था। उधर क्रोध से ओत-प्रोत नागिन ताम्रग्राणी अरण्य से भयंकर तेजी से निकल पड़ी, चिन्धानी से अपने पति का बदला लेने के लिये।

वृहद्चक्र देश में चारों तरफ भगवान का भजन-कीर्तन, बीन-बाजे बज रहे थे। सुगंधित फूल से रास्ते भी सुगन्ध मय हो गये थे तथा रास्ते के दोनों तरफ दूध से भरी हुयी कटोरियां भी रखी गयी थीं। क्रोधान्वित हुयी नागिन सरपटते हुये एकदम वृहद्चक्र में प्रवेश करते ही उसका मन शांत हो गया। चारों तरफ सुगंधित वातावरण और बीन की मधुर आवाज को सुनकर वह तेजी से आने वाली नागिन यथा स्थान स्तब्ध होकर मधुर गानका स्वाद लेने लगी तथा फन को ऊपर उठाकर वहां के आनंदित वातावरण में घुल गई। विराजित दूध को वह बड़े प्रेम से ग्रहण करने चिन्धानी की मृत्यु का समय रात्रि के बारह बजे था परंतु वह नागिन मस्त वातावरण में घुलने के कारण, चिन्धानी की मृत्यु का समय धीरे-धीरे व्यतीत

हा रहा था, बीन की धुनपर डोलती और दूध पी हुयी चली आ रही थी और अन्त में चिन्धानी के शयन कक्ष में पहुंच गयी। तभी चिन्धानी की मृत्यु का समय समाप्त हो चुका था। चिन्धानी के पास आ वह उसकी तरफ देखने लगी परंतु मृत्यु का समय टल जाने के कारण वह कुछ भी नहीं कर सकी थी लेकिन चिन्धानी के किये हुये स्वागत से वह बहुत प्रसन्न हो गयी और स्त्री रूप में प्रकट हुयी। नागिन को स्त्री रूप में प्रकट हुई देखकर चिन्धानी आश्चर्य चकित हो गया और उसने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। चिन्धानी द्वारा किया हुआ सत्कार और प्रेम-भाव को देखकर शत्रु रूपी नागिन मित्र-भाव से कहने लगी— राजा यहां पर मैं तुम्हें मारने को आयी थी लेकिन प्रेमभाव और आदर के कारण तुम्हारा मृत्युकाल टल गया और तुम्हारे किये हुये स्वागत से मैं बहुत प्रसन्न हुई इसी प्रसन्नता से मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूं कि, तुम जबतक जीवित रहोगे तबतक किसी भी पशु-पक्षी जानवर तथा कीटकी भाषा को जानोगे परन्तु इस के बारे में किसी को भी नहीं बताना, यदि यह किसी को बताया, तो उसी क्षण तुम्हारी मृत्यु होगी। इतना कहकर वह नागि न अदृश्य हो गयी। चिन्धानी को मिले हुये आशीर्वाद का आनन्द हुआ लेकिन साथ मृत्यु का भय भी।

एक दिन चिन्धानी और कनकदेवी दोनों ही रथ में बैठकर वन-विहार करने जा रहे थे। रथ धीरे-धीरे

जा रहा था और वन से आनेवाले मंद वायु से उन दोनों का मन मोहित हो रहा था। चारों तरफ वृक्ष-लताओं पर चुह······चुह करने वाले पशु-पक्षियों की आवाज चिन्धानी सुन रहा था, उनकी भाषा को वह अच्छी तरह समझने के कारण वह मन ही मन हँस रहा था। ऐसी अवस्था में अचानक चिन्धानी के रथ के सामने से चींटियों की लम्बी सी कतार जा रही थी। चींटियों की गुजरती हुयी कतार पर सहसा उसकी नजर पड़ी तो उनमें से उनकी रानी कहने लगी, "अब राजा के रथ से हमारी कतार टूट जायेगी और बहुत सहेलियां मर जायेंगी।" यह चींटियों की रानी के निकाले हुये शब्द चिन्धानी के समझ में आते ही वह हँसने लगा और चलते हुये रथ को रोक लिया। अचानक चिन्धानी का हास्य तथा रथ को रोकने से कनकदेवी को आश्चर्य हुआ और वह पूछने लगी; "महाराज, आप क्यों हँस रहे हैं! अचानक आपने रथ को क्यों रोक लिया। कनकदेवी के प्रश्न को सुनते ही चिन्धानी उत्तर देने वाला था परन्तु उसी क्षण उसको याद हो गया कि यदि इस भेद को कनकदेवी को बतायेंगे तो उसकी मृत्यु होगी, इसलिये वह चुप रहा और रथ को पीछे करते हुये चलने लगा। लेकिन कनकदेवी ने पूछने का निश्चय ही कर लिया था कि चिन्धानी ने हँसकर रथ को क्यों रोक लिया? वह जिद्दी थी, इसीलिये वारंवार उसके हँसने का और रथ को रोकने का कारण पूछने लगी। चिन्धानी को कनकदेवी से बहुत प्रेम था वह

उसकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करता था परंतु उसने
कि पत्नी की इच्छा पूर्ण करने के लिये पहले स्व
बलिदान देना पड़ना पड़ेगा। एक स्त्री के लिये
को बुलावा देना वह उचित नहीं समझा। उसने
ही मन विचार किया यदि भेद को खोल दें तो
होती है और नहीं खोलें तो राजकुमारी नाराज
है। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कि
जाय और क्या नहीं किया जाय? कनकदेवी की
गुरू ही थी वह चिन्धानी से कारण पूछती ही
और चिन्धानी चुपचाप रथ को हांकते हुये जा
था। अन्त में कनकदेवी ने उसका हाथ पकड़ लिया
पूछने लगी— "आप मुझे नहीं बतायेंगे तो मैं आ
साथ नहीं आऊंगी।" पत्नी के यह शब्द उसके
में आ ही रहे थे कि उतने में ही गुरु के तीसरे आ
का बोध उसके मस्तिष्क में हुआ— पत्नी पर नियं
करना चाहिये। बस.. यह गुरु का आदेश मन
गूंजते ही उसने अपने रूप को उग्र बनाया और क्रो
न्वित होकर कहने लगा 'सुनो रानी, यदि तुम
मेरे साथ रहना है तो जैसा मैं कहूंगा वैसा ही तुम
मानना पड़ेगा। यदि नहीं मानना है तो अभी मैं तुम
छोड़कर चला जाता हूं। बोलो तुमको मेरा कहना
पसंद है।" चिन्धानी के क्रोधावेत शब्द सुनकर कन
देवी स्तब्ध हो गयी और फिर कभी भी ऐसी जि
नहीं करने का निश्चय भी किया।

इसी प्रकार गुरु के आदेशों से चिन्धानी के जीव
का उद्धार हुआ तथा जीवन में आनेवाले संकटों
निवारण कर सका। यह है एक गुरु की महानता
साक्षात् दृष्टान्त।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम

१–इस योगाश्रम में प्रविष्ट होनेके बाद साधक को [illegible] सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक [illegible] मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना [illegible] से हटा दिया जायेगा।

२–ली गई फीस किसी भी दशामें वापस न हो[illegible]

३–टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आव[illegible] साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर [illegible] स्थान में रखनी होंगी।

४–सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक [illegible] पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास [illegible] शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण [illegible] होना आवश्यक होगा।

५–योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक [illegible] स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचा[illegible] की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६–कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था [illegible] ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७–आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों [illegible] रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों [illegible] लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के २७रु. [illegible]

८–नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है [illegible] बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ ता[illegible] से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी हो[illegible] समय प्रातःकाल ७॥ से ९॥ और सायंकाल ६ से ७॥ है। [illegible] दो मेंसे किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

(महत्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचार आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

पुरुषों के लिये समय:—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

महिलाओंके लिये समयः—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार सबेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आने-वाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता है।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन, कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

विशेष सूचना:— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबंध नहीं है।

रामती
ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
REGD.
बाल और शरीर मालीश के लिये
श्री रामतीर्थ योगाश्रम
बम्बई १४

तन मन विकासक
सर्वोत्तम मासिक

मार्च १९६६
50 पैसे

तीर्थ योगाश्रम
दादर बम्बई १४

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

रामतीर्थ

संस्थापक सम्पादक–
योगीराज
उमेशचन्द्रजी

वर्ष–६ अंक–१२
मार्च १९६६

एक अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 442899
विज्ञापन
तार–प्राणायाम दादर

अप्रैल १९६५ से बननेवाले ग्राहकों का शुल्क इस अंक के साथ पूरा होता है कृपया आगामी वर्ष का शुल्क यथा शीघ्र भेजने की कृपा करें —व्यवस्थापक

मुख पृष्ठ का परिचय

फेफड़े और उनके कार्य का चित्रण देखिये। विवरण के लिए अंक इसी के पृष्ठ १२ पर देखें।

रामतीर्थ का ७ वें वर्ष का राजनीति विशे[षांक]

पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि रामती[र्थ का] सातवें वर्ष का विशेषांक "राजनीति" अंक के [रूप में] प्रकाशित होगा। उसमें राजनीति के विभिन्न प[हलुओं] पर विचार पूर्ण सामग्री प्रस्तुत की जायेगी।

लेखक महानुभावों से आग्रह है कि वे मार्च [मास] की १२ तारीख तक अपनी राजनीति विषयक र[चनाएं] भेजने की कृपा करें।

विज्ञापन दाताओं से आग्रह है कि वे इस वि[शेषांक] की उपयोगिता से लाभान्वित होने के लिए अपने [विज्ञा]पन देकर अनुगृहीत करें ——व्यवस्थापक

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४०... रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्सेन्ट स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

विशिष्ट सूचनाएं

१- श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक के निर्धारित नियमानुसार अप्रैल १९६६ से यह निश्चय किया गया कि एक सीमित संख्या में सभी प्रकार के गैर सरकारी अथवा सरकारी, पंचायती, नगर पालिका आदि के वांचनालयों से रामतीर्थ मासिक का वार्षिक शुल्क डाक व्यय सहित केवल २ रु. ५० पैसे लिया जायेगा। अतः वाचनालयों के व्यवस्थापकों को अपने वांचनालय का शुल्क यथा शीघ्र भेजने की व्यवस्था करनी चाहिये ताकि संख्या पूरी होने पर निराश न होना पड़े।

२- दिन--बदिन रामतीर्थ के पाठक वृन्द की संख्या बढ़ती रहने से हर मास में हम पाठक वृन्द की मांग पर्याप्त रूप में पूरी नहीं कर पाते। फिर भी यदि मासिक विक्रेता वर्ग (एजेन्ट) अग्रिम सूचना भेज दें तो उनकी मांग यथा समय यथा साध्य हम पूरी करने की व्यवस्था करेंगे। जिससे श्रद्धा सम्पन्न एवं सुख शांति, समृद्धि की तीव्र इच्छा रखने वाले हजारों वाचक बन्धुओं को निराश न होना पड़े।

३- बहुत से भाई श्रद्धा से रामतीर्थ मासिक के चन्दे को अनेक वर्षों के लिये हर मास में भेजा करते हैं उनका हम धन्यवाद करते हैं तथा उनसे आग्रह करते हैं कि अभी एक वर्ष से अधिक का चन्दा न भेजें और न बार-बार पूछ--ताछ करें कि आजीवन सदस्यता का क्या शुल्क है। इस विषय में जब भी नियम परिवर्तन किया जायेगा तो हम उसे मासिक में प्रकाशित करेंगे।

——— व्यवस्थापक

समाचार पंजीयन (केन्द्रीय) कानून १९५६ के नियम अन्तर्गत अपेक्षित 'रामतीर्थ' नामक समाचार पत्र से सम्बन्धित स्वामित्व तथा अन्य बातोंका विवरण।

प्रपत्र : ४

(१) प्रकाशनका स्थान : २७, विन्सेन्ट स्क्वेअर नं. २, बम्बई १४

(२)प्रकाशन की आवर्तिता : मासिक

(३) मुद्रक का नाम : श्री. यू. एम.

राष्ट्रीयता : भारतीय

पता : २७, विन्सेन्ट स्क्वेअर स्ट्रीट नं. २ बम्बई

(४)प्रकाशक का नाम :

राष्ट्रीयता :

पता : मुद्रक के समान

(५) सम्पादक का नाम :

राष्ट्रीयता :

पता : मुद्रक के समान

(६)कुल पूंजीके एक प्रतिशत से अधिक शेयरवाले भागीदारों के नाम और पता : श्रीरामतीर्थ यो बम्बई १४

मैं, यू. एम. जोशी, यह घोषित करता हूं कि मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सही

यू. एम. जोशी
प्रकाशक के हस्ताक्षर

तारीख : १ मार्च, १९६६

श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम

१-इस योगाश्रम में प्रविष्ठ होनेके बाद साधक को बीड़ी-सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२-ली गई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३-टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

४-सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

५-योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६-कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७-आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के२७रु. है

८-नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी होगी समय प्रात:काल ७॥ से ९॥ और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो मेंसे किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

ग्राहकोंसे

१. 'रामतीर्थ' अंग्रेजी मासकी पहली तारीख को प्रकाशित होकर ग्राह
को डाक से भेजा जाता है।

२. वार्षिक शुल्क रु. ५ विदेशों के लिए १५ शिलिंग अथवा रु. ७॥ है

३. रामतीर्थ का नया वर्ष अप्रैल से शुरू होकर मार्च में पूरा होता है
परन्तु ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

४. ग्राहकों को अंक विशेष देखभाल से भेजा जाता है तिस पर
यदि किसी को १५ तारीख तक अंक न मिले तो अपने डाक घ
से पूछिए वहाँ से जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेज दीजिए ता
उस पर गौर किया जावे।

५. पताबदलने के लिए कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचना साफसा
अक्षरों में लिखे पतेके साथ मिलनी चाहिए। वह भी अधिक सम
के लिए पता बदलना हो तभी हमें लिखें।

६. ६५ न० पैं० मिलने पर ही नमूना अंक भेजा जाता है परदेशवा
को एक शिलिंग भेजना चाहिए।
पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपना पता तथा ग्राहक सं
अवश्य लिखें।

८. वार्षिक शुल्क मनीआर्डर से भेजना लाभदायक है क्योंकि वी० पी
से एक तो रजिस्ट्री खर्च लगकर ६ रु० पड़ेगा दूसरे देरी
अंक मिलेगा तथा विदेश में वी० पी० तो होती ही नहीं।

९. रामतीर्थ के साथ पुस्तकें आदि नहीं भेजी जातीं।

१०. व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पतेपर करें।

व्यवस्थापक

रामतीर्थ मासिक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर

आपका टिकट ?
आपका टिकट जाँच करने के लिए आगे बढ़ा
हुआ वह जाना पहचाना हाथ, और टिकट,
टिकट, टिकट की आवाज़े। ये आवाज़े बिना
टिकट चलनेवालों को भली नहीं लगतीं। ये
भले आदमी उस जगह को घेर लेते हैं जो सच
पूछिए तो आपकी है। ये मुफ़्त का मज़ा लेने
वाले लोग रेलों और राष्ट्र की कड़ी मेहनत का
हक मार लेते हैं। इन्हें पकड़ना आसान है
अगर आप सब, जो कानून के पाबन्द हैं,
डिब्बों में और खास कर स्टेशन से बाहर
निकलते समय अपने टिकटों और सीज़न
टिकटों को दिखाने के लिए तैयार रखें।
पश्चिम रेलवे

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

वर्ष ६] मार्च १९[illegible]६ [संख्या [illegible]२

वैदिक-प्रार्थना

भग एव भगवां अस्तु देवास्‌ तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥ –
ऋ. वे. म. सू. ७-४१-५

भावार्थ—दिव्य प्रेरणा को देने वाले हे देवगण ! जो हमारे भाग्य को देनेवाला है; वही हमारा भगवान्‌ है और उस भगवान्‌ की सहायता से हम सब भगवान्‌ भाग्यशील बनते रहें। हे भगवान्‌ ! सचमुच ही सर्व जन आप के प्रसिद्ध भाग्य से युक्त स्वरूप को वारंवार बुलाते रहते हैं। हे भगवान्‌ ! तुम हमारे अग्रेसर हो और यहां पर हमारे पास आकर निवास करो।
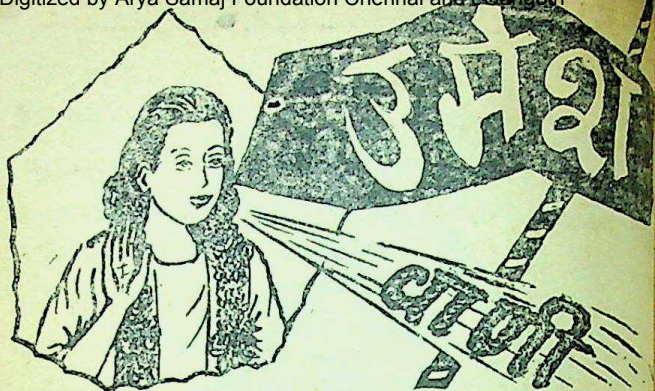
(२६३) अधर्मियों से निधर्मी ऊंचे हैं, निधर्मियों
धार्मिक ऊंचे हैं। धार्मिकों में व्यवहार संभालते
परमार्थ साधन को विशेष महत्व देने वाले ऊंचे
निधर्मी लोग अधिक संख्या में नास्तिक होते हैं। नास्ति
होने के संदर्भ में पापाचार कर बैठते हैं। धार्मि
व्यक्ति पाप से डरता है। कायदे से जिस नियम
पालन नहीं होगा उस नियम का धार्मिक भावना
अवश्य पालन करेंगे। कायदे से जबरदस्ती के
का आधार लेना पड़ता है। अधिक साधन संपत्ति
मानवताकी भूमिका आवश्यक है। धार्मिक भावना
प्रेम का आधार रहता है। प्रेम से जो काम होगा
कायदे से नहीं होगा। वर्तमान काल का यह प्र
अनुभव है।

(२६४) बाल्यावस्था खेल, कूद पढ़ाई में जाती है,
युवा अवस्था विषय भोग, परिवार पालन, देश

समाज सुधार में व्यतीत होती है, वृद्धावस्था भूतकालीन के अनुभव के स्मरण तथा चिंता से व्यतीत होता है फलतः अष्टांग योग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि के अभ्यास से शरीर आरोग्य भाव की शांति तथा आत्मज्ञान प्राप्त करने का समय नहीं मिलता है। इन सर्व अवस्था में योगाभ्यास कर लेना जरूरी है, किन्तु लोग माया जाल के दुर्व्यसनों में फसे हुए हैं। नहीं सुधरेंगे तो रोग, दुर्भिक्ष, अन्दर के संकट तथा महायुद्ध से नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे।

(२६५) शरीर की शोभा तथा आरोग्य के आधार से सर्वांग सुन्दर अवयव, मुखाकृति तथा सप्तधातु की शुद्धता है। परन्तु आधुनिक युग के नर-नारी केवल वेष-भूषा में सौन्दर्य का आधार रखते हैं, और शरीर अशक्त रहता है। त्याग, वैराग्य, क्षमता, परमपुरुषार्थ की वृत्ति यह मन की शोभा है। तन-मन का सुख यह आत्मा का प्रतिबिम्ब है।

(२६६) जैसे वारम्बार साबुन व पानी से वस्त्र का मल दूर किया जाता है वैसे ही बारम्बार योगाभ्यास, सत्संग द्वारा आन्तरिक षड् वैरियों को दूर करना चाहिये।

(२६७) अपने से अधिक ज्ञानी, ध्यानी, योगी, पंडित अफसर, व्यापारी, गुरु के समीप जाते समय नम्रता पूर्वक वंदना-नमस्कार करिए और आप से निम्न कोटि के व्यक्ति के पास जाते समय आशीर्वाद देकर उसकी आत्मा को प्रसन्न करने का प्रयत्न करिए।

फेफड़े की प्रवृत्ति और आरोग्य

जीना सभी चाहते हैं किन्तु सुख से जीने की
विरला ही व्यक्ति जानता है। आप अपने को सर्वोपरि
सागर में डुबाये रखना पसंद करते होंगे। किन्तु अनेक
से आप उससे वंचित रहते हैं। आरोग्य बोल देने से
आता है। उसके लिये उचित ढंग से जीवन जीने के सर्वां
नियमों का पालन करना अनिवार्य है। आपका स्वा
अच्छा रखना अथवा बिगाड़ना यह आपके हाथ में
परवश मत रहियें। आत्मविश्वास रखिये। ध्यान से सोचि
आपका स्वास्थ्य अब उत्तम है तो संभव है कि
जाय। आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो और भी अ
बिगड़ सकता है फेफड़े का काम वायु से आक्सी
(प्राणवायु) सारे शरीर में पहुँचा देना। फेफड़े के संर
के लिये प्रकृति ने आवरण मजबूत बना रखा है। हड्डियाँ

ढांचे से आच्छादित फेफड़े वैसे तो सुरक्षित हैं। पर केवल आवरण के संरक्षण रखने से काम पूरा नहीं होता है।

फेफड़े का संक्षिप्त और महत्वनीय वर्णन

वक्ष (छाती) के दोनों ओर फेफड़े का अस्तित्व है। उसके बाहर फेफड़े का आवरण होता है। यह एक स्नेहिक कला से आच्छादित रहता है। इसके दो स्तर रहते हैं। एक फेफड़े के पृष्ठ भाग में लगा रहता है और दूसरा वक्ष के आभ्यांतर दीवाल पर लगा होता है। पहला स्तर आशयिक तथा दूसरा स्तर परिसरीय कहलाता है। आरोग्यावस्था में ये दोनों स्तर एक दूसरे के संपर्क में रहते हैं और इनके बीच में बहुत थोड़ा अवकाश रहता है। इस अवकाश में थोड़ा श्लेष्म का अंश रहता है। जिससे फेफड़ों के फैलने और सिकुड़ने में सुविधा होती है। स्वासप्रणालिकाओं में स्थित दबाव के कारण यह सिकुड़ने नहीं पाता और पशुकाओं के संपर्क में रहता है। किन्तु जब किसी प्रकार फुफ्फुसावरण के दोनों स्तरों के बीच में वायु या द्रव का प्रवेश हो जाता है तब फेफड़े बहुत सिकुड़ जाते हैं और वक्ष तथा उनके बीचमें बहुत स्थान रिक्त रह जाता है।

फेफड़े में अनेक खंड

दक्षिण फेफड़े में तीन तथा वाम फेफड़े में दो खंड होते हैं। प्रत्येक खंड में छोटे-छोटे खंड होते हैं। छोटे खंड को अणुखंड कहा जाता है। इन अणुखण्डों में स्वासप्रणालिका की छोटी-छोटी शाखायें फैली रहती हैं।

रक्त तथा वायु का संचार

फेफड़ों में रक्त दो भागों से आता है। एक फुफ्फु
धमनी द्वारा और दूसरा श्वासनलिकीय धमनियों द्वा
प्रथम मार्ग से अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिये आता है
दूसरे मार्ग से फेफड़े आदि अंगों के पोषण के लिये
आता है। रक्त शुद्ध होकर फुफ्फुसीय शिराओं द्वारा
के वाम अलिंद में लौट जाता है और द्वितीय मार्ग से
हुआ रक्त मुख्यतः श्वासनलिकीय शिराओं तथा
फुफ्फुसीय शिराओं द्वारा लौटता है।

महत्वपूर्ण क्रिया

आरोग्य संपन्न एवं युवावस्था में श्वास गति प्रति मि.
से होती है। श्वास और नाड़ी का अनुपात १ : ४ होता
अधिक ज्वरके समय जब नाड़ी वेगवती हो जाती है तब श्
की संख्या भी बढ़ जाती है और अनुपात पूर्ववत् सुरक्षित र
है। उष्णता, अधिक ठंडी, भोजन के पहले, भोजन
पश्चात्, प्रातःकाल बिस्तरे से उठते ही, चिन्तातुर अव
में, क्रोधावस्था में स्वाभाविक आनन्द के समय अ
भिन्न-भिन्न अवस्था एवं कारणों से नाड़ी की गति त
श्वसन क्रिया में परिवर्तन होता रहता। फेफड़े के बा
विस्तार रूप से जितना लिखा जाय वह अल्प है।

फेफड़े के अनारोग्य होने के कारण

अनेक कारणों में से कुछ ऐसे हैं कि दूषित वायु
सेवन, तम्बाकू का अनेक प्रकारों से सेवन, शराब
अन्य रोगोत्पादक आहार का सेवन, मन्दाग्नि, अशुद्ध
का संचय, मेद की अभिवृद्धि, शरीर को अधिक आराम दे

फेफड़े में शक्ति का संचार तथा रोगमुक्त होने का उपाय

पथ्य पालन, शुद्ध हवा में आसन तथा प्राणायाम करें. मंदाग्नि दूर करने हेतु कटिस्नान, प्रातःकाल सूर्य की कोमल किरणों में खड़े होकर सूर्य नमस्कार २५ से १०८ तक करें। भस्त्रिका प्राणायाम प्रतिदिन ३ से १२ बार करें। खुली हवा में चलते समय छातीका भाग विकसित करते हुये दीर्घ श्वास लेते रहें। यथा शक्ति और समय के अनुकूल रहकर हरे-भरे वल्लि, पौधे तथा वृक्षों के पहाड़ों में घूमने जाना चाहियें। उष्ट्रासन २ मिनिट, पूर्ण पद्मासन २ मिनिट, भुजंगासन २ मिनिट, अर्ध मत्स्येन्द्रासन ४ मिनिट अवश्य करें।
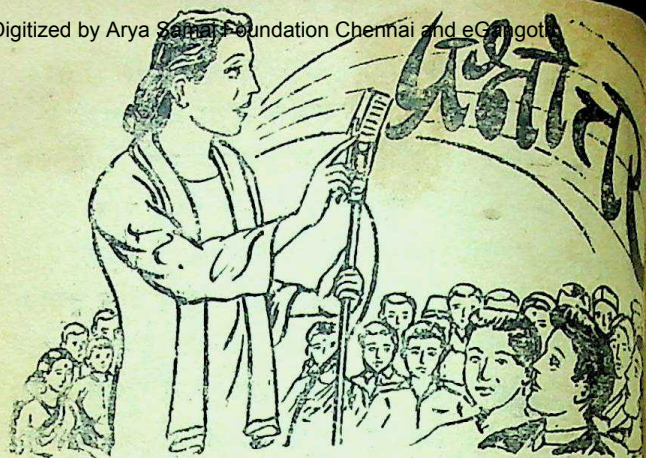
[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या समाधान चाहते हों तो लिख भेजें --सम्पादक]

श्री गणपत भावसार उमाली (मलकापुर)
पत्र नं. १

प्रश्न नं. १ :— मैं जब सुबह नींद में से उठता हूँ तो शाम को ६ बजे तक मेरी दोनों आंखें एकदम लाल दिखाई देतीं हैं तथा रातको अच्छी रहती हैं। लेकिन दिनको आंखें लाल रहने का क्या मतलब है? कोई समझ में नहीं आता। बहुत से डॉक्टरों को तथा हकीमों को दिखाया दवाइयां लीं लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ, मेरी उमर साल की है। आंखें लाल रहने से मुझे कोई तकलीफ तो नहीं होती, लेकिन चेहरे की रौनक खराब दिखाई देती है।

(शेष पृष्ठ १२५ पर)

कब्ज, कारण और निवारण

यौगिक चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा से अधिक लाभ है किन्तु केवल पुस्तकें अथवा मासिकों के लेख पढ़कर अनुभव लेनेवाले महानुभाव इस बात पर अवश्य ध्यान दें। देश, काल, ऋतु, उमर, प्रधान प्रकृति, (वात, पित्त, कफ) पाचन शक्ति आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों में ध्यान रखते हुयें इलाज करें। अन्यथा लाभ प्राप्त होने में सन्देह रहेगा। यौगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार चलने से अधिक लाभ प्राप्त होगा। —सम्पादक

कब्ज सभ्य संसार का प्रचलित रोग है। इसके प्रभाव से बहुत कम लोग बच पायें हैं। हिन्दी में इसे कोष्ठबद्धता, संस्कृत में विबंध एवं अंग्रेजी में कांस्टीपेशन कहते हैं। कब्ज शब्द अरबी के 'कब्जा' शब्द से निकला है जिसका अर्थ है अधिकार होना। बड़ी आंतों पर मल का अधिकार होना ही कब्ज कहलाता है।

कब्ज के सामान्य लक्षण हैं (१) मल का समय निष्कासन न होना। (२) कठिनाई से होना (३) गांठें जाना (४) शौच में अधिक समय लगना।

सामान्यतः दिन में एक बार पेट साफ होने पर लोग अपने को स्वस्थ एवं भाग्यशाली समझते हैं। इसके लिये कहा गया है कि जितनी बार खाना उतनी बार पाखाना। बहुत लोगों से यह भी कहते सुना जाता कि एक बार शौच जाये योगी, दुबारा जाये भोगी एवं तीन बार जाये रोगी। लेकिन वह यह भूल जाते हैं कि एक बार खाये योगी, दो बार खाये भोगी, तीन बार खाये रोगी।

एक बार का किया हुआ भोजन बीस से चौबीस घंटे पश्चात् पचता है और मल का निष्कासन होता है। मल निष्कासन न होने पर कब्ज, संग्रहणी, पेचिश तथा बवासीर की उत्पत्ति होती है। भोजन पचने के बाद शेष व्यर्थ ... आंतों से बाहर निकलनी ही चाहिये, जिसे हम डाक्टर कूने के शब्दों में विजातीय द्रव्य कह सकते हैं।

विजातीय द्रव्य के संचय का परिणाम होता है कि शरीर सुस्त रहता है जीवन में कोई आनन्द नहीं रहता किसी कार्य में मन नहीं लगता। कब्ज को दूर करने के लिये रेचक दवाइयां, चाय, सिगरेट, तम्बाकू आदि का सेवन करते हैं। इसी कब्ज के कारण भविष्य में फोड़ा-फुँसी, ... खांसी, दमा, गठिया, संग्रहणी, अजीर्ण, बवासीर, पेचिश भगंदर, जलोदर, रक्तचाप, धातु दौर्बल्य, स्वप्नदोष, ... मासिकधर्म की खराबी, अपेंडिसाइटिस, मलेरिया, ...

श्वेतकुष्ठ, मोटापा, मन्दाग्नि, मियादी बुखार, पायरिया नासूर आदि अनेक रोगों का शिकार होना पड़ता है।

"कब्ज के कारण"

(१) समय पर शौच न जाना, जिसका परिणाम होता है कि आदत बिगड़ती जाती है और मल आंतों में एकत्रित होता रहता। इसलिये शौच की शंका होते ही फौरन जाना चाहियें। (२) शौच की नियमितता के लियें आवश्यक है नियमित समय पर भोजन करना। अनियमित भोजन करने आंतें ढीली पड़ जाती हैं और अपना धर्म नहीं निभा पातीं। (३) शौच की नियमितता निद्रा से भी संबंध रखती है। यह सिद्ध है कि भोजन करते समय तथा बाद में आंतों में पहुँचा पदार्थ वेग से अग्रसर होता है और इसके विपरीत सोने पर धीमी गति से। इसीलिये यह आवश्यक होता है कि भोजन के तीन घंटे बाद सोया जाय। दिनमें तो कार्य करने के लिये जागना ही पड़ता है। परन्तु यह नियम विशेषकर सन्ध्या समय के लिये है। (४) शौच में जल्दबाजी नहीं करनी चाहियें, लेकिन यह बात अनियमित लोगों के लियें ही लागू होती है। इसलियें ऐसे लोगों को दस से पन्द्रह मिनट तक बैठना आवश्यक हो जाता है। आंतों की स्वच्छता के लियें पेट के बांयें भाग पर मालीश करनी चाहिये एवं विचारों से संकेत करना चाहियें कि 'आंतें खाली हो रही हैं'। बहुत लोग इसके विपरीत कामधन्दे की चिन्ता लेकर बैठे रहते हैं जिससे आंतों को प्रेरणा नहीं मिल पाती। (५) शौच को टालना और मल का बँद होना भी कब्ज का लक्षण है।

असल में मल न अधिक बँधा हो और न पतला ... साधारण हो। भोजन में फुजलेवाले पदार्थों की कमी, जिस... आंतों में पदार्थ अग्रसर नहीं हो पाता। भोजन में चो... समेत रोटी, लौकी, तोरी, नेनुआ, भिंडी, सभी हरे शाक ... गाजर, मूली, टमाटर, पालक, हरे धनिए की पत्ती, विशे... एवं पत्ता गोभी का सलाद लेना चाहिए। (७) भोजन ... अच्छी तरह न चबाना भी कब्ज का कारण बनता है मु... में बत्तीस चौकीदार हैं उनसे बिना टकराये यदि भोज... आगे बढ़ गया तो समझिए पाचन क्रिया में मेहनत लगे... जिससे आंतों को अधिक घिसना होगा, जिससे आंतें शिथि... हो जायेंगी। इतिहास में प्रसिद्ध है कि बादशाह अक... प्रत्येक ग्रास को बत्तीस बार चबाता था। ठीक ही है मुख... बत्तीस दांत होने का भेद भी यही है। भोजन को पीना ... दूध का खाना भी चर्वण-क्रिया की ओर संकेत करता है। भोजन को इतना चबाना चाहिए कि द्रव बनकर गले के नी... सरलता से उतर जाय। (८) पानी कम पीना भी कब्ज ... करना है। संसार की सृष्टि में दो तिहाई भाग जल ... एक तिहाई भाग पृथ्वी है। उसी तरह शरीर में भी पानी ... इतनी ही आवश्यकता है। पानी की कमी से आंतों में खुश्... पैदा हो जाती है जिससे तरल पदार्थ का निकलना बन्द ... जाता है। मनुष्य को प्रतिदिन तीन सेर पानी पीना चाहिए ... भोजन के साथ पानी न पीकर एक घंटा पूर्व या दो घंटे बा... पीना चाहिए इसलिए प्रातःकाल शौच जाने के पूर्व, भोजन के एक घण्टा पूर्व, भोजन के दो घण्टे बाद, तीसरे पहर और रात्रि में सोते समय आधा सेर प्रति बार पानी पि... जा सकता है।

(९) मानसिक चिन्ता से भी रक्त-संचालन में शिथिलता आती है। शरीर के अवयव ढीले पड़ जाते हैं। विचारों का प्रभाव बड़ी तीव्र गति से होता है प्रसिद्ध अमेरिकन लेखक एलिशा ग्रे ने अपनी पुस्तक 'मिरेकल्स ऑफ नेचर' में लिखा है कि विचारधारा एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील के वेग से वहन होती है। इसीलिए मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि कभी भी बुरे विचार नहीं करने चाहियें।

(१०) गलत ढंग से उठना-बैठना। बहुत लोगों की आदत होती है कि वे झुककर बैठते और चलते हैं जिससे स्नायुओं में संकोच पैदा हो जाता है। रक्त-संचार का प्रवाह धीमा पड़ जाता है। प्राण-वायु उचित मात्रा में नहीं मिल पाती। अधिक बैठकर ही काम करना, परिश्रम से जी चुराना आदि भी इसी श्रेणी में आता है।

(११) दुख-दर्द, चिन्ता और आलस्य को दूर करने के लिये लोग उत्तेजक पदार्थों जैसे तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट चाय, काफी, भांग, अफीम, गांजा, चरस, नींद की गोलियां का सेवन करते हैं जिससे शरीर उस घोड़े की तरह जिसे चाबुक मार कर हठात् दौड़ाया जाता है और निष्क्रिय हो जाता है।

(१२) भोजन अधिक खाना और बिना भूख खाना भी आंतों पर व्यर्थ का बोझ लादना है। उन्हें अधिक कार्य करना पड़ता है जिससे वे ढीली पड़ जाती हैं और अपने कार्य में शिथिल पड़ जाती हैं जिसका स्वरूप कब्ज होता है। भोजन में अस्सी प्रतिशत क्षारीय पदार्थ एवं बीस प्रतिशत अम्ल कारक पदार्थ होने चाहियें।

भोजन में मांस, मसाले, खटाई, मिष्ठान, हलवा, चाट, भजिया, तली चीजें सेवन करने से भी कोष्ठ का जन्म होता है।

(१३) व्यायाम का न करना भी शरीर को [illegible] बना देता है शरीर के अवयव ढीले पड़ जाते हैं [illegible] रक्तसंचार धीमा पड़ जाता है। स्वास्थ्य का [illegible] रहना व्यवस्थित रक्तसंचार पर निर्भर करता है। [illegible] के अंग-प्रत्यंग चलते रहने से कार्यशीलता बनी रहती।

कब्ज का निवारण

(१) आहार ही हमारे शरीर का निर्माता है। [illegible] वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ "काश्यपसंहिता" में लिखा है:-

न चाहार समं किंचेद्भैषज्यमुपलभ्यते।
शक्यतेऽप्यन्नमात्रेण नरः कर्तुं निरामयः॥
भैषजेनोपपन्नोऽपि निराहारो न शक्यते।
तस्माद्भिषग्भिराहारो महाभैषज्यमुच्यते॥

अर्थात् आहार से बढ़कर दूसरी दवा नहीं है। [illegible] आहार को सुधार कर सभी रोग दूर किये जा [illegible] हैं। दवा दी जाय और आहार पर ध्यान न [illegible] जाय तो कुछ लाभ नहीं होता। इसलिए चिकि[illegible] आहार को महा भेषज कहते हैं।

(२) जीवनी शक्ति के घटने पर ही रोग [illegible] जमती है। जीवनी शक्ति बढ़ाने के लिये सजीव [illegible] की आवश्यकता पड़ती है। चना, गेहूँ, मूंग आदि [illegible] बारह से अठारह घंटे भीगने के बाद अंकुरित कर [illegible] ही खाना चाहिए।

(३) अमृतान्न के पश्चात् द्वितीय श्रेणी में दूध, फल, मेवे, और तरकारियां हैं। दाल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि दाल में अम्ल होता है। बल्कि चालीस वर्ष के उपरांत दाल का त्याग कर देना ही अच्छा है। क्योंकि इस उम्र में प्रोटीन की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती।

चोकर समेत आटे की रोटी तथा कन सहित चावल का प्रयोग करना चाहिए।

अच्छा हो यदि आटे या भाजी में ढाई तोले चोकर को मिला दिया जाय। भोजन में कम से कम आध-पाव कच्ची एवं आधसेर पकी भाजी का होना आवश्यक है। पकी एवं कच्ची दोनों तरकारियों में पत्तेवाली भाजी का होना नितान्त आवश्यक है। भाजियों में नमक, मसाले का प्रयोग बहुत ही कम होना चाहिए। भाजियों को धीमी आंच पर उबालना चाहिए।

(४) प्रायः सभी फल (केले को छोड़कर) कब्ज दूर करने वाले होते हैं। जिसमें बेल एवं अमरूद पेट साफ करने का अच्छा काम करते हैं। मौसमी फलों का प्रयोग करना चाहिए।

(५) भोजन में चिकनाई के लिये तीन तोला घी या मूंगफली, नारियल की कच्ची गरी खानी चाहिये। गाजर को कच्चा ही खाना बहुत ही अच्छा है।

(६) सप्ताह में एक दिन केवल जल पीकर उपवास करना चाहिए।

(७) भोजन के कुछ चुने नुस्खे कार्य में लाइये लाभ उठाइये।

(अ) प्रातः सेव, अमरूद, पपीता, आम आदि ... यिक फलों का नाश्ता, दोपहर को चोकर समेत ... की रोटी, दो प्रकार की भाजी तथा गाजर, मूली, ... किशमिश, पत्तागोभी का सलाद लेना चाहिए।

(ब) गाय या बकरी का एक उफान उबला ... पांच खजूर, नारियल के आठ दस टुकड़े गिरी ... नाश्ता, दोपहर को चोकर समेत आटे की रोटी ... एवं सलाद, शाम को भी दोपहर का ही भोजन छः ... बजे तक कर लेना चाहिये।

(स) अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक स्वर्गीय डा... उमर के अनुसार प्रातःकाल का नाश्ता, दोपहर ... केवल सलाद और शाम को रोटी और ... लेना चाहिये।

(८) बरनार मैक फेडन के अनुभूत पेय से भी ... लाभ पहुंचा है।

(क) एक सेर गर्म पानी में एक नीबू का रस ... चाय के छोटे चम्मच भर नमक मिलाकर पीना। ... पानी प्रातः सोकर उठने के बाद ही पीना चाहिये।

(ख) रात्रि में सोने के पूर्व एक गिलास ... पानी में एक औंस दुग्ध शर्करा मिला देनी ... और साधारण गर्म रहने पर पी लेना चाहिये। इस ... का अनुभव लखनऊ के प्रसिद्ध चिकित्सक डा. खुर्श... दिलकश ने चालीस वर्ष तक लिया है और लाभ... बताया है।

(ग) आधी छटाँक किशमिश तथा पाँच दाने मुनक्के (बीज निकाल कर) रात्रि में भिगादेना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक अंजीर अलग से भिगादेना चाहिए। प्रातः किशमिश को मलकर पानी छान लेना चाहिए और एक नीबू का रस मिला देना चाहिए। पश्चात् प्रथम अंजीर खाकर ऊपर से नीबू मिला किशमिश का पानी पी लेना चाहिए।

(९) कब्ज को दूर करने के लिए व्यायाम भी आवश्यक है। प्रथम तैयारी की स्थिति में खड़ा हो जाना चाहिए अथ दोनों हाथ बगल में, निगाह सामने, दोनों पैरों में छः इञ्च का फासला रखना। कमर पर दोनों हाथ शीघ्रता से रखना, तैयार स्थिति में होना।

(अ) सिर को धीरे-धीरे पीछे ले जाना एवं पूर्व स्थिति में आना।

(ब) गर्दन को क्रमशः दायें-बायें ले जाना।

(स) कुहनियों को बगल में मोड़कर मुट्ठी बाँधना-एवं नीचे की तरफ गिराना। (क) दोनों हाथों को कंधे की सीध में बगल में फैलाना। (ख) बाहों को ऊपर ले जाना। हथेलियों को आमने सामने रखना। (ग) तैयारी की स्थिति में खड़े होकर पंजों पर ऊपर उठना। (घ) कमर पर हाथ रखकर पंजों पर उत्कटासन की स्थिति में बैठना। (च) कमर पर हाथ रखकर दोनों पैरों में कुछ फासला रखकर एड़ियों को उठाना एवं पूर्व स्थिति में आना। (छ) कमर पर हाथ रखकर

क्रमशः दोनों पैरों को आगे पीछे रखकर (छाती उभरी) आगे झुकना। (ज) कमर पर हाथ रखकर क्रमशः को कमर की सीध में सामने लाना एवं पीछे ले जा (झ) पादहस्तासन की स्थिति में आना।

(ट) दोनों पैरों के मध्य फासला रखकर हाथों ऊपर ले जाकर क्रमशः दायें बायें झुकना।

इसके अतिरिक्त जनवरी ६५ के 'रामतीर्थ' में प्रकाशित 'उदर बल संवर्द्धक व्यायाम' से पूर्ण उठाया जा सकता है।

(१०) हठयोग में वस्ति क्रिया बहुत ही लाभदा है। एक बांस की पोली नली गुदा मार्ग में रख पानी आँतों में चढ़ाया जाता है। पश्चात् नौली क्रि कर निकाल दिया जाता है। इसका विस्तार से 'उमेश योगदर्शन' प्रथम खंड में किया गया है जिज्ञासु गण प्रत्यक्ष रूप में 'श्री रामतीर्थ योगाश्रम' से सीख सकते हैं। आजकल कुछ बिगड़ा रूप यंत्रवस्ती (एनिमा) का है जिससे समय-समय पर लाभ उठाया जा सकता

(११) एक गिलास जल पीकर उड्डियान क्रिया मिनट तक करना बहुत ही लाभदायक है।

(१२) नौली कर्म से भी यह काम आसान हो जाता है

(१३) प्रातः खाली पेट रहने पर दोनों हथेलियों से दश मिनट तक थपकी देना। इसमें आँत की माँस-पेशियों को उत्तेजना मिलती है। रक्त संचार तीव्र होता है

कब्ज दूर होने में पूरी मदद मिलती है। हाथों को पेट पर दायें से बायें गोल घुमाना। यह क्रिया भी दस मिनट पर्याप्त होगी।

(१४) पेट पर बीस मिनट तक बाष्प स्नान लेकर घर्षण कटिस्नान लेना तो बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। इससे विजातीय द्रव्य पिघल कर जल्द दूर हो जाता है और कब्ज जाता रहता है।

(१५) सूर्य किरण चिकित्सा पद्धति से तैयार किया हुआ नारंगी जल तो बहुत ही शीघ्र कब्ज को भगा देता है तथा आँतों को सक्रिय बना देता है। इसी रंग का प्रकाश पेट पर आधे घंटे तक डालकर भी लाभ उठाया जा सकता है।

'मानसिक प्रयोग'

रात्रि में सोते समय शवासन की स्थिति में लेट जाइये। मन को सब तरफ से हटाकर पेट पर एकाग्र कीजिये। सोऽहं का निरन्तर उच्चारण कीजिए एवं आत्म संकेत दीजिये 'मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ' मैं ईश्वर-स्वरूप हूँ। ईश्वर निर्विकार है तो मुझ में विकार कैसे आ सकता है। मेरा शरीर निर्विकार है। बलिष्ठ है, ओम्मय है। मेरे शरीर में शुद्ध रक्त का संचार हो रहा है। मैं वातावरण से प्राणि शक्ति ग्रहण कर रहा हूं। मेरे सभी अवयव व्यवस्थित हैं। मेरा पेट स्वस्थ है। मेरी आंतें सक्रिय हैं। कब्ज दूर हो रहा है! दूर हो रहा है।!! दूर हो रहा है !!! कहते हुये लीन हो जाना।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का दूसरा नाम योगशास्त्र भी है। आज के संसार में जिस योग की सबसे बड़ी आवश्यकता है, सचमुच यही योगशास्त्र गीता में बतलाया गया है। पर वह इतना सूक्ष्म तथा गुह्यतम है जिसके विषय में सहज दृष्टि दौडाकर पढ़ लेने पर समझ में आना कठिन जान पड़ता है। हमें यहां उसी गुह्यतम राजविद्या के विषय में किंचित् प्रकाश डालना है, जिसके अध्ययन से पाठकों का मन उस मर्मस्पर्शी रहस्य को समझने में सक्षम हो सकता है।

प्र. :— गुह्यतम राजविद्या किसे कहते हैं ?

उ. :— जिसके द्वारा कर्म, अकर्म तथा विकर्म के रहस्य समझ में आ सकें। इसी कर्म-अकर्म विषयक निर्णय पद्धति को दूसरी परिभाषा में योगशास्त्र कहा गया है। गीताशास्त्र का अध्ययन सब कोई करते हैं पर उसमें लिखे गये कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखने का रहस्य प्रायः किसी एक आध व्यक्ति के ही समझ में आता है।

इसमें सन्देह नहीं कि कर्म सभी व्यक्तियों के लिये अनिवार्य है और बिना कुछ किये जीवन यात्रा का संचालन भी नहीं हो सकता। अतः हमें सबसे प्रथम इस बात की जानकारी करनी है कि हमें कौनसा कर्म करना चाहिये और कर्म का यथार्थ स्वरूप क्या है।

प्रथम कर्म की परिभाषा का परिचय कराते हुये शास्त्र का कहना है कि:—

कुर्यात् क्रियेत् कर्तव्यं भवेत् स्यादिति पंचमम्।
एतत्स्थात्सर्वं वेदेषु नियतं विधि लक्षणम्॥

ब्र. शं. भा ३-४-२:

संसार में जितने भी कर्म हैं उन सबका मौलिक आधार वेद है। मनुष्य जहांतक देख सुन और समझ सकता है उससे भी परे की बात बतलाता है। अब आप इसी वेद द्वारा वर्णित कर्म के उक्त पांच (कुर्यात्, कियेत्, कर्तव्य, भवेत, स्यात्) अंगों के विषय समझने की चेष्टा करें।

(१) कुर्यात्:— अर्थात् करना चाहियें।

प्र. :- करना क्या ?

उ. :- वेद में बतलायें कर्म

प्र. :-जो वेद को नहीं जानता हो ?

उ. :- उसके लियें लोकाचार।

प्र. :- लोकाचार किसे कहते हैं ?

उ. :- जिसके आचरण से ऐतिहासिक परम्परा सुरक्षा हो।

(२) क्रियेत्:— यह निश्चय कर्त्तव्य करने के उपरान्त मन में उठता है, अर्थात् मनुष्य प्रथम जिस कार्य को करने का संकल्प मन में किया था, उसी संकल्प को कर्तव्य के रूप में उतार लेना यह कर्म का दूसरा अंग है।

(३) कर्तव्यम्:— भविष्य में हमें ऐसा कर्म करना है इस प्रकार का जो मन में संकल्प उठता है उसे तर्क और बुद्धि के द्वारा निश्चय करके, उसके मथितार्थ प्रमेय को करने का निश्चय करना। कर्म का तृतीय अंग है।

(४ भवेत्:— पूर्वोक्त तीनों कर्म, परिणाम को सोचे बिना अर्थात् फलाकांक्षी हुये बिना, भूत, भविष्य तथा वर्तमान में जो भी कुछ करने का निश्चय हो उन सब कर्मों को यथा देश काल में आचरण करना और पूर्व उस मानसिक निश्चय को प्रत्यक्ष आचरण रूप फल के आकार में देखने का नाम भवेत् है। अथवा जैसे भोजन द्वारा तृप्ति और पुष्टि का अनुमान किया जाता है, वैसे हीं कर्म करते हुये उसके स्वरूप को देखना है।

(५) स्यात्:—कर्म की एक ऐसी क्रिया है जिसे कर्म करते हुये प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता अपितु जैसे बीज लगाकर फल का अनुमान किया जाता है अथवा जहर पान करके, मृत्यु को प्रत्यक्ष देखा जाता है वैसे ही प्रत्येक कर्म करने के उपरान्त उसके स्वरूप और परिणाम में होनेवाले प्रत्यक्ष फल को देखा जाता है।

उक्त पांचों अंगों से कर्म और कर्म से देह है। कर्म के विषय में बहुत से विद्वानों का बहुधा प्रचलित हैं यहां तक कि स्वयं गीताकार ने भी की गति को गहन बतलाया है। जो कुछ भी हो कर्म के विषय में सत्य तो यह है कि, जिस कर्म करने पर मनुष्य के धर्म अर्थ तथा काम का हो और अन्त में मोक्ष मिले भगवद्गीता का कर्म भी इसी पुरुषार्थ चतुष्टय को जीवन में संचय करने लिये प्रेरित करता है।

कर्म में अकर्म देखना

यह बात सर्वांश में तथ्य है कि, कर्म के जीवन के प्रत्येक अंग निर्माण होते हैं और पुण्य अनुकूल-प्रतिकूल, सुख-दुःख आदि अनेक प्रकार सांचे में जीवन बदलता है। जिस प्रकार बीज वृक्ष की परम्परा का नैसर्गिक सम्बन्ध है उसी प्र कर्म और देह का भी। अनेक देह के समूह को व्यापक विश्व के नाम से पुकारा जाता है।

प्र. :— कर्म का आखिर भी कभी होता है?

उ. :— हां ......ज्ञान हो जाने पर।

प्र. :— ज्ञान और कर्म के मध्य में भी कोई वस्तु है

उ. :— हां ......भावना।

प्रत्येक मनुष्य का कर्म उसकी भावनानुसार ही है। योगशास्त्र के कथनानुसार कर्म में अकर्म देखने जो भावना है वही मनुष्य मात्र के लिये सबसे सुखदायिनी है।

अकर्म का अभिप्राय है जिसमें किसी भी प्रकार का कोई कर्म न होता हो और जो स्वभाव से निर्विकार होकर विश्व के समूचे प्राणियों को सच्ची प्रेरणा देता हो। वह यथार्थ में अतीन्द्रिय, व्यापक परमात्मा का ही स्वरूप है।

मनुष्य को अपने भीतर इसी परम ज्ञान तत्व को समझते हुये शरीर से जीवन यात्रा के सभी उपकरणों को सम्पादन करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

प्रश्न :— आत्मा एक है और कर्म अनेक, अतः अनेक कर्म में एक आत्मा की भावना किस प्रकार सम्भावित है ?

उत्तर :— जिस प्रकार माटी के अनेक खिलौनों में एक माटी की भावना उत्पन्न हो सकती है। जैसा कि उपनिषद् में कहा है।

यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वमृन्मयं विज्ञातं स्यात् ।
वाचारंभणं विकारो नाम धेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥

मनुष्य शरीर नाम और रूप से ही बना हुआ है यहां तक संपूर्ण विश्व की रूपरेखा भी नाम रूपात्मक है। पर इसकी मौलिक प्रतिष्ठा जहांपर सुरक्षित है वह सत्य और प्रकाश स्वरूप सब के आत्मा हैं।

प्रश्न :— मनुष्य किसलिये कर्म करता है ?
उत्तर :— जीवन की प्रतिष्ठा के लिये।
प्रश्न :— जीवन की प्रतिष्ठा कहां पर है ?
उत्तर :— आत्म स्वरूप में।

भगवद् गीता में जो कर्म करते हुये अकर्म देखने के लिये कहा गया है उसका भी यही ता- है कि जीवन के प्रत्येक आचरण में ज्ञानस्वरूप अ- को समझना।

भावार्थ यह है कि अकर्म का स्वरूप सूक्ष्म भावगम्य है और कर्म स्थूल तथा कर्तव्य तक सी- है। वस्तुतः ये दोनों जीवन के अंग गाड़ी के प- के समान हैं। अतएव कर्म के साथ ज्ञान और के साथ कर्म दोनों की आवश्यकता है।

अकर्म में कर्म देखना

अस्तु :— विचित्र विश्व विश्व की विशाल प्रतिक्षण नित्य नूतन के रूप में बदलती रहती है। इस विलक्षणता को धारण करने वाला एक ऐसा है, जिसका कभी भी नाश अथवा परिवर्तन नहीं हो- उसी तत्व को गीता शास्त्र में नित्य, शाश्वत एवं सना- तन कहा गया।

प्रश्न :— वह सनातन तत्व कहां पर है?

उत्तर :— सभी के अन्तरात्मा में।

जैसा कि वृहदारण्यक उपनिषत् २-५-१ में कहा गया है- यश्चायमस्यां पृथिव्यां तेजोमय ऽमृतमय पुरुषो यश्चायमध्या- शारीर स्तेजोमय ऽमृतमयः पुरुषो ऽयमेव स योऽयमात्मा

भावार्थ यह है कि, हम सब इस विश्व की विवि- को जैसा देख अथवा समझ रहे हैं उसका रूप वै- नहीं है भगवद्गीता के अध्याय १५ के ३ श्लोक उसी रहस्य को बतलाते हुये इस विश्व की आदि, तथा मध्य की रचनाको भी कल्पनासे अतीत बतलाया गया है।

यह बात सर्वांश में सत्य है कि मनुष्य के अन्तर्गत में जो चेतना शक्ति है उसी से समग्र देह का संचालन होता है और इस प्रकार संपूर्ण विश्व की प्रतिष्ठा का मौलिक स्रोत भी वही अन्तः चेतना है। योगशास्त्र के मत में यही तत्व अकर्म है और इसी में विश्व रचना रूप कर्म अथवा देह के समूचे आचरण रूप कर्म को देखना मानों अकर्म में कर्म देखना है।

मनुष्य का मन स्वभाव से चंचल है वह रेलगाड़ी पर सवार होकर भी बाहर की जमीन तथा पेड़ पौधे दौड़ाता हुआ देखता है। इसमें संदेह नहीं की लोकतन्त्र की ही पूर्ण कृतियां हमें उसी तरह दिखलाई पड़ती हैं। स्वरूपत; प्रकृति जड़ है उसमें चेतन का संचार हुये बिना संसार का कोई भी कार्य सक्रिय नहीं हो सकता। मनुष्य मात्र के लिये यही प्रेरणा है कि जो मनुष्य ऐसा कह रहा है कि मैं करता हूं, अमुक मेरा कर्म है, इस प्रकार के मिथ्या नियम का वह परित्यागकर दें और संसार के संपूर्ण कर्म को उस परमेश्वर रूप अकर्म में समझें। आज के जन समाज में इस प्रतिक्रिया की बहुत बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को जीवन के प्रत्येक कर्तव्य में परमात्मा का स्वरूप समझना और राष्ट्र तथा समाज की प्रतिक्रिया का संचालक भी उसी आत्मशक्ति को समझना चाहिये। राजविद्या का यही रहस्य है जिसके समझलेने पर मनुष्य परस्पर के अभिमान रूप भीत्ति का विभेदन कर आपस में आत्मवत् व्यवहार कर सकते हैं।

अमर बलिदानी

लेखकः — एम. आर. गुप्त

जीने के लिये सभी जीते हैं किन्तु जीवन उ
महान् कहा जाता है जो मरने के लिये जिन्दा रहता है
ऐसा अनुभव होता है कि स्वर्गीय गणेश शंकर वि
मरने के लिये ही जिन्दा रहे थे। वह जितनी शान से
४० वर्ष तक जिन्दा रहे उसी शान के साथ वे २५ मार्च
को मरे भी और फिर उसी शान के साथ २९ मार्च १९
उनका अन्तिम संस्कार भी सम्पन्न हुआ।

कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा २४ मार्च १९३१
उस वक्त शुरू हो गया था जब कि सरदार भगतसिं
फांसी की खबर सुनकर एक विशाल मातमी जलूस
रहा था किन्तु विद्यार्थी जी का बलिदान हुआ २५ मा
और दंगे में मारे गये लोगों के अस्पताल में एकत्र
ढेर में से उनका शव मिला तीन दिन के पश्चात्
दिन अर्थात् २९ मार्च को उनका दाह-संस्कार कि
सका। दाह-संस्कार के समय तक दंगा पूरी तरह
नहीं हो पाया था और शहर भर में करफ्यू लगा हु
फिर एक हजार के लगभग लोग अपने प्रिय नेता के
दर्शनों के लिये इकट्ठे हो गये थे। इसी समय कराची में
की वर्किंग कमेटी की बैठक हो रही थी। विद्यार्थी
निधन का तार जब वहां पहुँचा तो पंडित जवा
नेहरू के शब्दों में तार के पढ़ते ही सब का दिल बै
और चारों तरफ उदासी छा गयी। यकीन नहीं होता
विद्यार्थीजी गुजर गये।

वर्किंग कमेटी ने एक मार्मिक शोक प्रस्ताव पास किया तथा अन्तिम संस्कार में भाग लेने के लिये वहां से श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन तथा पंडित बालकृष्णजी शर्मा 'नवीन' को भेजा। विद्यार्थीजी के बलिदान का समाचार पाकर श्री आर. एस. पंडित तथा रमाकान्तजी मालवीय भी आ गये थे। विद्यार्थीजी के दाह-संस्कार ने प्रत्येक हृदय को दग्ध कर दिया। बड़ा ही रोमांचकारी और बड़ा ही मर्मस्पर्शी दृश्य था वह। उस समय श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने विद्यार्थीजी के सम्बन्ध में एक मर्मस्पर्शी भाषण दिया जिसे सुन आंखों में आंसू तो आ ही रहे थे कलेजा भी मुँह को आने लगा।

२४ मार्च को अर्थात् मृत्यु के एक दिन पहले मैंने विद्यार्थी जी को जनरलगंज में देखा था। यहां वे दूकानों की रक्षा में लगे हुये थे क्योंकि दूकानें लूटी और जलाई जा रही थीं। मैंने यह भी देखा—डेढ़ पसली के गणेश शंकर विद्यार्थी ने किस प्रकार एक पहलवान की गरदन दबोच ली जो एक दूकान से जूते लूट कर लिये जा रहा था। उन्होंने उसी से जूते दूकान में वापस रखवाये। विद्यार्थीजी आत्मबल तथा साहस की एक जीती जागती मूर्ति थे। विद्यार्थीजी जब दूसरे स्थानों पर फंसे व्यक्तियों की रक्षा के लिये ले जाये गये तो मैं भी अपने मकान को वापस चला आया।

मेरी २४ मार्च १९३१ की रात "जय बजरंग बली तथा अल्लाह-ओ-अकबर के नारों के बीच कटी। रात्रि में सैकड़ों मकान जलाकर खाक कर डाले गये। ऐसा लगता था कि शहर में सैकड़ों जगह पर होली जल रही हो और

लोग जय बजरंग बली तथा अल्लाह-ओ-अकबर के
से फाग गा रहे तथा खून की होली खेल रहे हों।
वह होली कितनी भयानक था।

२५ मार्च को किसी ने आकर मुझे बताया कि
शंकर विद्यार्थी को एक कौम के गुण्डों ने कत्ल कर
कहनेवाले पर बड़ा गुस्सा आया कि यह क्या बक
रहा है। औरों की तरह यह भी अफवाह उड़ा रहा है
बीच मुझे यह भी खबर मिली कि मेरे दो भाइयों को भी
ने पुलिस के हाथों से छुड़ाकर कुली बाजार में कत्ल
डाला है। यहां पर यह बताना आवश्यक प्रतीत हो
कि मेरे दोनों भाई निर्दोष थे किन्तु पकड़े इसलिये गये
मेरा मकान एक मस्जिद के पास ही सब्जीमण्डी
जिसमें एक मुल्लाजी का कत्ल हो गया था। मैं
घबड़ाहट तथा बेचैनी की हालत में था और ईश्व
प्रार्थना कर रहा था कि दंगे की बे सर-पैर की
अफवाहों के समान ये दोनों बातें झूठ हों,
अफवाह हों।

मेरे भाई दूसरे ही दिन जेल से छूट कर सुरक्षित घ
आ गये किन्तु विद्यार्थीजी की मृत्यु अफवाह शीघ्र
न जा सकी। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि शहर में
बढ़ गया। विद्यार्थीजी के बलिदान ने आग में घी का
किया। २५, २६ तथा २७ मार्च की रातें कानपुर में
कत्ल की रातें थीं। चार दिनों तक कानपुर में गुण्डों
राज्य रहा। लोग कत्ल होते थे, घर तथा दूकानें

और जलाई जातीं थीं और पुलिस खड़ी-खड़ी तमाशा देखती थी।

२५ मार्च को विद्यार्थीजी बिना कुछ खाये-पिये नंगे सर और नंगे पैर ही मकान से प्रातःकाल निकल पड़े और फिर कभी वापस न आये। उस दिन उन्होंने बंगाली मुहाल, पटकापुर, मिश्री बाजार, मछली बाजार और चौबे गोला में फंसे लोगों की गुण्डों से रक्षा की। उन्होंने लगभग ४०० या ५०० व्यक्तियों के प्राणों की रक्षा तो की किन्तु अपने प्राणों की रक्षा न कर सके। चौबे गोला में गुण्डों के एक गिरोह ने विद्यार्थीजी को घेर लिया। एक भले मुसलमान सज्जन ने विद्यार्थीजी को खींचकर एक गली में ले जाना चाहा किन्तु विद्यार्थीजी ने यह कहते हुये जाने से इनकार कर दिया कि "अगर मेरे खून से ही इन लोगों की प्यास बुझती हो तो बेशक उन्हें अपनी प्यास बुझा लेने दीजिये। साथ के मुसलमान वालंटियर ने भी उन गुण्डों से बहुत कुछ कहा कि विद्यार्थीजी ने तो सैकड़ों मुसलमान भाइयों की जानें बचाई हैं इन्हें मत मारो। किन्तु वे न माने। उन पर तो खून सवार था और उनकी खोपड़ियों में भरा हुआ था मजहबी जनून। बस फिर क्या था एक गुण्डे ने इशारा किया तो चारों तरफ से गुण्डे उनपर टूट पड़े विद्यार्थीजी अपनी जगह पर शान्त खड़े रहें और उस समय तक खड़े रहें जबतक कि मारने वालों ने मार मार कर उन्हें धराशायी नहीं कर दिया। साथ के मुसलमान वालंटियर को थोड़ा पीट-पाट कर ही छोड़ दिया गया। साथ के एक दूसरे हिन्दू वालंटियर श्री ज्वालाप्रसाद को जान से मार डाला गया। तीसरे वालंटियर

श्री शंकरराव टाकलीकर को गुण्डे अपनी जान में जा
मार डाल चुके थे, किन्तु एक वृद्ध मुसलमान ने दया क
उसे घसीट कर एक गली में डाल दिया था। जब उसे हो
आया तो उसने अपने को सरदार नारायण सिंह के घर
में पाया।

श्री गणेश शंकरजी विद्यार्थी का जन्म १८९० ई०
इलाहाबाद में एक कायस्थ कुल में हुआ था। विद्यार्थी
का जीवन बड़े अभावों और कष्टों में बीता। इसी कारण
इन्ट्रेंस से आगे न पढ़ सके। शुरू में उन्होंने उर्दू तथा फा
पढ़ी और स्वयं हिन्दी पढ़कर अपनी योग्यता यहां तक ब
ली कि हिन्दी दाँ उनका लोहा मानने लगे और वे अखि
भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति तक चले ग

पत्रकारिता की कला उन्होंने साहित्य-रथी श्री महावी
प्रसाद द्विवेदीजी से सीखी और उन्होंने उसे चरम सीमा
पहुँचा दिया। उनकी मृत्यु पर श्री माखनलालजी चतुर्वेदी
तो यहां तक कह डाला कि "विद्यार्थीजी के निधन से हि
जगत निर्धन तो हो ही गया है पत्रकारिता "विधवा"
गयी है। विद्यार्थीजी ने "साप्ताहिक प्रताप" तथा दैनि
प्रताप का सम्पादन बड़ी कुशलता से किया। इन पत्रों
माध्यम से विद्यार्थीजी ने अनैतिकता तथा अमानुषता
विरुद्ध सदैव आवाज उठाई। इससे वे गरीबों, मजदूरों
किसानों के जितने प्रिय बन गये उतने ही जमींदार
राजा महाराजों तथा अंग्रेजों के वे अप्रिय भी बन गये
इसका परिणाम यह हुआ कि विद्यार्थीजी को १९२१ से लेक
१९३१ तक पांच बार जेल जाना पड़ा, हजारों रुपया जु

का भरना पड़ा। बीसियों बार उनके घर तथा प्रेस की तलाशी ली गयी। परन्तु किसी भी अत्याचारी के सामने झुकना विद्यार्थीजी ने सीखा ही नहीं।

विद्यार्थीजी जनता के कितने प्रिय थे यह बात केवल एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगी। कौंसिल के चुनाव में एक कानपुर के रईस चुन्नीलाल गर्ग थे जो चुनाव में दोनों हाथों से रुपया उलीच रहे थे तथा उनके पूलिंग बूथों में लोग हलवा पूड़ी खा रहे थे और श्री विद्यार्थी के वोटरों को गुड़ तथा चना भी नसीब नहीं हो रहा था। लेकिन वोटर भी कैसे होशियार तर माल उधर उड़ाते थे तो वोट इधर डालते थे। गर्ग साहब लगभग एक लाख रुपया खर्च कर भी चुनाव हार गये। विद्यार्थी प्रचण्ड मतों से विजयी हुये।

कुछ लोग अच्छे लेखक होते हैं पर अच्छे वक्ता नहीं होते और जो अच्छे वक्ता होते हैं वे अच्छे लेखक नहीं होते, किन्तु विद्यार्थीजी को अपनी जबान और लेखनी पर समान रूप से अधिकार था। विद्यार्थीजी की भाषा तथा वाणी दोनों ही ओजपूर्ण थीं। उनके शब्द वाग्बाण तथा बम के गोले होते थे किन्तु फिर भी भाषा मंजी हुई तथा उच्च कोटि की। मैंने जीवन में बहुत से व्याख्यान सुने किन्तु जो ओज और कहने का ढंग विद्यार्थीजी में देखा वह और कहीं देखने को नहीं मिला।

इन शब्दों के साथ श्री विद्यार्थीजी के शव के आज ही की तारीख अर्थात् २९ मार्च १९३१ ई० को हुये दाह-संस्कार के हृदय विदारक तथा मर्मस्पर्शी क्षणों को याद करते हुये मैं उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ— एक हूक, एक टीस और दो आंसुओं की श्रद्धांजलि।

सई नदी के किनारे जलालपुर बाजार की शोभायमान है। बाजार के पूरब तरफ सरपत का वन, पश्चिम की ओर भयंकर नाला, दक्षिण तरफ उच्चतर माध्यमिक विद्यालय और उत्तर की ओर बादशाही पुल सई नदी के छोरों को बांधकर अडिग खड़ा है। बाजार को चीरती हुई सड़क चली गई है। सड़क के किनारे-किनारे कोठियों की शोभा बनाने के लिये गृह हैं। सम्पूर्ण बाजार की जनसंख्या एक सहस्र से अधिक है। जलालपुर में मध्यस्थ आरक्षी कार्यालय प्रधान पत्रालय है, जिससे बाजार की शोभा वर्णन नहीं बनतीं है। यहां के लोग २ प्रतिशत तक शिक्षित हैं। सायंकाल के समय गोपी, किशोरी, निहोर और हीरा चारों बालकों ने आपस में परामर्श किया कि हम लोगों को विद्या अध्ययन करना चाहिये। विद्या वह धन है जिसे कोई चुरा नहीं सकता है। चारों आकर अपने माता-पिता से विद्या अध्ययन करने

लिये आग्रह किया! अपने-अपने पुत्रों की वृहद् इच्छा देखकर माता-पिता ने सहर्ष विद्या अध्ययन करने के लिये आदेश दे दिया।

प्रातःकाल हुआ, चारों बालकों ने उठ, नित्य कर्म से निवृत्त होकर जलपान किया और मार्ग में भोजन करने की व्यवस्था कर घर से विद्या अध्ययन के लिये चल दिये। मार्ग में क्षुधा की वृद्धि होने लगी। क्षुधा से पीड़ित बालकों के पांव जब आगे नहीं बढ़ सके। तब एक वृक्ष के नीचे भोजन तैयार करने के लिये बालकों ने विचार कर आगे बढ़ना बंद कर दिया। वृक्ष से शुष्क लकड़ियां तोड़कर इकट्ठा कर लेने के बाद तालाब से जल लाकर भोजन बनाना सभी ने मिलकर शुरू किया। कुछ देर के बाद भोजन बनकर तैयार हो गया। बालकों ने बड़े चाव से भोजन कर, वृक्ष के नीचे विश्राम करने के बाद मार्ग तय करने का आपस में निश्चय किया। विश्राम समाप्त करके चारों प्रसन्नता के साथ आगे बढ़े। गोपी ने कहा-भाई! मैं न्यायाचार्य बनूंगा। किशोरी ने कहा- "मित्रवर! मैं तो धर्माचार्य बनूंगा। निहोर ने साहित्याचार्य बनने की इच्छा प्रकट की। तीनों मित्रों की बातें सुनकर हीरा ने अपना निर्णय दिया कि मैं आयुर्वेदाचार्य की शिक्षा ग्रहणं करूंगा। विद्या अध्ययन करने का निर्णय चारों ने कर लिया। हीरा ने कहा— "मित्रो! उस स्थान पर चला जाय, जहां पर यह चारों विद्यायें पढ़ाई जाती हों।' हीरा

करने का सारा वृतांत कह सुनाया। महर्षि ने बालकों को आश्वासन दिया कि उन लोगों की इच्छानुसार वे विद्या अवश्य पढ़ायेंगे। इस समय तुम सब भोजन करके विश्राम करो। बालकों को भक्षण करने के लिये महर्षि ने नाना प्रकार के फल मूल दिये। मूल और फलों को भक्षण करने के बाद चारों बालक महर्षि के चरण चापने लगे। महर्षि ने देखा कि रात्रि अधिक बीत चुकी है। बालक गण अभी विश्राम नहीं कर रहे हैं। "मेरे प्यारे शिष्यो ! अब तुम लोग विश्राम करो। यह मेरा आदेश है।' बालक गण ने मुनि के उपदेश का उलंघन करना उचित नहीं समझा और चरण चापना बन्द कर विश्राम करने लगे।

महर्षि १ घंटा रात्रि शेष रह गई थी, तभी उठे। शौचादि से निवृत्त हो पूजा पाठ में रत हो गये। सूर्योदय होने के पूर्व चारों बालकों ने बिस्तर त्यागे। दैनिक क्रिया कर्म से छुट्टी पा महर्षि के पास जाकर चारों मित्र बैठे।

पूजा समाप्त हुई, शिष्यों को प्रसाद मिला। शिष्यों ने गुरु के चरणों में शिर झुकाकर आशीर्वाद लिया। महर्षि ने पूछा ' शिष्य गण ! अपनी-अपनी इच्छा प्रगट करो कि कौन बालक किस विद्या का अध्ययन करना चाहता है" गोपी दोनों कर जोड़े खड़ा हुआ और बोला— "गुरुदेव ! मैं न्यायाचार्य बनूंगा। गुरु ने गोपी का नाम नोट कर लिया। गोपी अपने स्थान पर जा बैठा। किशोरी गुरु के सामने नत मस्तक हो खड़ा हुआ

और बोला "गुरुदेव! मैं धर्माचार्य बनना चाहता
गुरु ने किशोरी का नाम नोट कर लिया। नि
साहित्याचार्य और हीरा ने आयुर्वेदाचार्य बनने
इच्छा व्यक्त की। गोरी को गौमाता की सेवा
किशोरी को पूजन सामग्री एकत्रित करने, नि
वेद मंत्र उच्चारण करने तथा हीरा को वनौषधि
संग्रहित करने के लिये गुरु ने आदेश दिया।
शिष्यो! तुम लोगों को दैनिक कार्यक्रम अलग
बांट दिया गया है तुम लोग ठीक समय पर
अपना कार्य तब तक करते रहना, जब तक
दूसरा आदेश न दूं।" सभी बालक अपने-अपने
लीन हो गये। जब गुरु को अवकाश मिल जाता
वे शिक्षा संबन्धी उपदेश देते हुये अध्यापन
लगते। बालक गण अकथ परिश्रम करके विद्या पढ़ने

कुछ दिनों के बाद गुरु ने शिष्यों के विद्याध्ययन
परीक्षा लेकर उत्तीर्ण किया। हर बालक अपने-
विषय के कुशल और पूर्ण रूप से विद्या में
हो गये। गुरुदेव ने सबको आचार्य की उपाधि
करके अध्यापन करना बन्द कर दिया। गुरु
चरणों को स्पर्श कर आशीर्वाद ले चारों आचार्यों
अपने घर चलने के लिये गुरु से आज्ञा मांगी तो
को अपने-अपने माता-पिता के पास जाने का
आदेश दिया। आचार्यों ने प्रसन्न चित्त होकर
घर की राह पकड़ ली।

मार्ग तय करते-करते एक स्थान पर आचार्यों का दल पहुंचा! यह स्थान बहुत ही रमणिक और शोभायमान था। प्रकृति के नटी रूप का लीला वर्णन योग्य नहीं है। चारों तरफ विशाल वृक्ष, मनोहर तालाब, तालाब के किनारे पुष्पों के उपवन लगे हुए शोभा पा रहे थे। इस स्थान को देखकर यात्रियों का मन मुग्ध होकर विश्राम करने की इच्छा अनायास ही हो जाती थी। प्रकृति के दृश्य को देखकर चारों आचार्यों ने भोजन बना कर विश्राम करके मार्ग तय करने के लिये आपस में विचार विमर्श किया। सबको यथा योग्य कार्य सौंपा गया। आयुर्वेदाचार्य को भाजी लाने, साहित्याचार्य को घृत लाने, न्यायाचार्य को लकड़ी इकट्ठा करने तथा धर्माचार्य को भोजन बनाने का आपस में निर्णय हुआ। भोजन के लिये अन्नादि सब कुछ गुरुदेव के यहां से मार्ग के लिये मिला था। सभी आचार्य सामान एकत्रित करने चले।

धर्माचार्य एक स्थान पर तालाब से जल लाकर पवित्र करने के लिये छिड़कने लगा। पवित्र किये हुये स्थान पर स्वच्छता के साथ भोजन का निर्माण करना चाहिये। न्यायाचार्य लकड़ी ले आये। आयुर्वेदाचार्य नीम्ब (नीम) के पुष्प भाजी के लिये ले आये। मिट्टी के पात्र में घृत लेकर साहित्याचार्य चले। कुछ दूर आने पर साहित्याचार्य ने सोचा कि यह घृत किस आधार पर रुका हुआ हैं। साहित्याचार्य ने कहा — "घृतं

आधारे पात्रं। या पात्रं आधारे घृतम् ॥ कर
पात्रं। या पात्रं आधारे करः ॥

भावार्थ — घृत के आधार पर पात्र रुका हुआ
या पात्र के आधार पर घृत रुका हुआ है।
आधार पर मेरा हाथ है कि मेरे हाथ के आधार
पात्र टिका हुआ है। ऐसा सब विचार करता
साहित्याचार्य मार्ग में रुक कर परीक्षा लेने लगा
से पात्र को छोड़ दिया। पात्र धरती पर गिर
गया। घृत चारों तरफ फैल गया। इस पर
साहित्याचार्य को ज्ञान हुआ कि पात्र के आधार
घृत था और कर के आधार पर पात्र टिका हुआ
साहित्याचार्य के पास पैसा नहीं था कि पुनः
सके। परिणाम यह हुआ कि बिना घृत के ही
साथियों से घृत, पात्र और कर की परीक्षा का
कह सुनाया। साहित्याचार्य की मूर्खता पर सभी
अप्रसन्न हुए। गांव के लोग चारों आचार्यों की
सुन रहे थे। न्यायाचार्य ने शुष्क लकड़ियों को ध
के सन्मुख रख दिया। "जल स्नान समिधा पा
जल में लकड़ी डुबो कर पवित्र करके उपयोग में
चाहियें। इतना कहते हुए धर्माचार्य ने सभी
को ले जाकर तालाब में डुबो कर पवित्र
साहित्याचार्य अनिल लाने चले गये। नीम पुष्प की
ठीक नहीं होती है! न्यायाचार्य ने कहा। आयुर्वे
ने उत्तर दिया -- 'सकल व्याधि शरीरीणां नीम्ब पु
सब प्रकार की व्याधियों का नाश नीम के फूलों से हो

इस लिये मैं इसे अधिक पसन्द करता हूं और आशा करता हूं कि तुम लोग भी स्वास्थ्य की रक्षा के लिये इसका सेवन करोगे। धर्माचार्य को आयुर्वेदाचार्य की बातें पसन्द आ गईं। नीम का फूल जल से पवित्र किया गया। साहित्याचार्य अनिल का अंगारा लेकर आ पहुंचे। धर्माचार्य ने कहा — "अग्नि जल स्पर्श से पवित्रतः॥ अग्नि को जल का स्पर्श करा देने से पवित्र हो जाती है। ज्योंही ही अग्नि के ऊपर जल गिरा की अग्नि बुझ गई। गांव वालों ने सोचा कि इन मूर्खों को ले चलकर भोजन करा दिया जाय, अन्यथा ये सब क्षुधा से पीड़ित होकर प्राण विसर्जन कर देंगे। गांव वालों ने आचार्यों से विनय की कि — "विद्वान गण! हम लोगों की हार्दिक इच्छा यह है कि आप लोग हमारे गृह चल कर भोजन करें और हमारी कुटिया को पवित्र बनाने की कृपा करें। गांव वालों की विनम्र प्रार्थना स्वीकार कर आचार्यों ने चलना स्वीकार कर लिया। एक-एक आदमी के साथ एक--एक आचार्य चल दिये। आयुर्वेदाचार्य वैश्य के घर, न्यायाचार्य ठाकुर के घर, साहित्याचार्य यादव के गृह, धर्माचार्य ब्राह्मण के गृह पहुंचे। आचार्यों की अलग--अलग भोजन व्यवस्था होने लगी।

वैश्य आयुर्वेदाचार्य को भक्षण करने हेतु खीर लाया। आयुर्वेदाचार्य ने कहा — "भाई!" इसमें श्वेत रंग के सब रोगोत्पादक कीटाणु हैं, मैं इसे भक्षण नहीं करूंगा। वैश्य ने समझाया कि कीटाणु नहीं बल्कि चावल हैं। आयुर्वेदाचार्य ने वैश्य की एक भी नहीं सुनी।

बिना भोजन किये ही सो गया। ठाकुर
दाल और रोटी न्यायाचार्य को भक्षण करने के
लाया। न्यायाचार्य ने गौर से भोजन का निरीक्षण
हुये कहा कि— "भाई!' इसमें खटमल दिखा
रहा है? मैं इस हिंसात्मक भोजन को ग्रहण
करूंगा। ठाकुर ने समझाया कि दाल में उर्द का
है। खटमल नहीं हैं? मेरे घर कभी अपवित्रता
रहती है। इस भोजन को प्रेमपूर्वक ग्रहण कीजिये।
की बातों का कोई प्रभाव न्यायाचार्य के ऊपर नहीं
बिना भोजन किये ही न्यायाचार्य सो गये। याद
ने अपने घर पहुंच कर बड़ा (बरा) बनवाया।
के लिये साहित्याचार्य के सामने बरा आया। साहि
चार्य ने कहा कि— "भाई! इस बरे में छिद्र
छिद्र का स्वरूप यदि भोजन में दिखाई देवे तो
भूलकर भी ग्रहण नहीं किया जाता है। यादव
बहुत समझाया कि बरे में छिद्र होने से घृत अन्द
प्रवेश कर पक्व बनाता है, इसीलिये छिद्र कर
विधान है। यदि बरे में छिद्र न किया जाय तो
घृत का प्रवेश न करने के कारण अपरिपक्व हो
लेकिन साहित्याचार्य ने भोजन नहीं किया। ब्राह्म
अपने घर वाली को भोजन बनाने के लिये
दिया। ब्राह्मण प्रेम से भोजन बनाकर धर्माचा
सामने लाई। धर्माचार्य ने कहा— "ब्राह्मण दे
में स्त्रियों के हाथ का भोजन नहीं पसन्द करता
स्त्रियां किसी भी वर्ग की क्यों न हों, वे अपवित्र

हैं।' ब्राह्मण ने बहुत समझाया लेकिन धर्माचार्य ने भोजन नहीं किया। प्रातःकाल होते ही चारों आचार्य तालाब पर पहुंचे। शौचादि से निवृत होकर अपने घर की ओर चलने लगे। न्यायाचार्य ने कहा— भाई! सई नदी के किनारे २ चलने से बहुत ही जल्दी घर पहुंचा जायेगा। सभी ने न्यायाचार्य की बात मानकर सई नदी के किनारे पहुंचें। रात्रि में भोजन न करने का वर्णन चारों आचार्यों आपस में करते हुए तीव्र गति से मार्ग तय करने लगे।

सई नदी की प्रचन्ड धारा आवाज करती हुई प्रवाहित हो रही थी। आसामयिक हो जाने (वर्षात्) के कारण सई नदी में भयंकर बाढ़ आयी हुयी थी। न्यायाचार्य ने देखा कि एक कमल का पत्र बहता जा रहा है। धर्माचार्य ने साहित्याचार्य को आदेश दिया कि इस हरे पत्ते में जीव का समावेश होता है, इसलिये इस पत्ते को जल से बाहर निकालो, हमारा धर्म यही कहता है। न्यायाचार्य ने कहा कि— "भाई! न्याय की दृष्टि से जल में बहने वाली वस्तुओं की रक्षा करनी चाहिये।" दोनों आचार्यों की बात मानकर साहित्याचार्य कमल पत्र पकड़ने नदी में कूद पड़े। नदी की प्रबलधारा साहित्याचार्य को बहाने लगी। धर्माचार्य ने कहा कि साहित्याचार्य को बचाना चाहिये। न्यायाचार्य ने कहा कि भाई जब सब जा रहा हो तो कुछ अंग प्राप्त कर लेना भी न्याय ही है। आयुर्वेदाचार्य ने साहित्याचार्य की चोटी पकड़कर चाकू से गला काट लिया और कहा कि लो एक अंग मैंने

प्राप्त कर लिया। बिना सिर का साहित्याचार्य प्र
हो गया। तीनों आचार्य दुःखित होकर अपने घ
ओर चल पड़े।

कुछ समय के बाद अपने अपने घर आचार्य
पहुंच गये। अपने--अपने पुत्रों को देखकर माता-
बहुत प्रसन्न हुए। निहोर के घर वाले निहोर का
लगाने तीनों आचार्यों के घर पहुंचे। आयुर्वेदाचार्य
साहित्याचार्य का शिर देकर कहा — "लो धर्म
न्याय की दृष्टि से एक अंग में प्राप्त कर लाया
न्याय और धर्म की बात मानकर आयुर्वेद ने अंग
के लिये यह शल्य कर्म किया। इन लोगों की
पर निहोर के माता-पिता को असह्य कष्ट हुआ। घ
वालों ने सोचा कि ये लोग मूर्खाचार्य की परीक्षा
करने गये थे। अपने साथी से विछोह होने का
तीनों आचार्यों को उतना ही था, जितना एक मित्र
मृत्यु पर दूसरे मित्र को कष्ट होता है। तीनों आ
ने अपनी-अपनी विद्याओं का प्रचार-प्र
करने में सलंग्न हो गये। धर्माचार्य के पिता जी
धर्माचार्य को फटकारा करते थे और महा मूर्ख
सम्बोधित करते थे।

धर्माचार्य की शादी हो गई। धर्मपत्नी घर आ
धर्मपत्नी के सामने धर्माचार्य के पिता जी धर्माचार्य
फटकार कर नाना प्रकार की भली--बुरी कह रहे
धर्माचार्य को पिता जी की बातें अच्छी नहीं लग

थी। पत्नी सोचती होगी कि मेरा पति महामूर्ख है। वह बेचारी अपनी किस्मत को कोसती होगी। यदि पिता जी को मुझे डांटना और फटकारना था तो पत्नी के सामने न फटकार एकांत में फटकारते तो कितना अच्छा होता। नाना प्रकार के भाव धर्माचार्य के हृदय में आने लगे। अब पत्नी के सामने मेरी मर्यादा क्या रह गई। मैंने पढ़ लिख कर वृथा किया, जब पिता जी मुझे मूर्ख ही समझते हैं। मैं क्या करूं-कहा जाऊं, मेरी समझ में कुछ आता नहीं है। धर्माचार्य को चिन्तित देखकर पत्नी नम्रभाव से बोली -- "पति देव! माता-पिता और गुरु की अप्रिय वाणी भी आशीर्वाद बन जाती है। पिता जी का एक-एक शब्द तुम्हारे लिये आशीर्वचन होगा। चिन्ता दूर करके लगन से अपना कार्य कीजिये। यदि तुम्हारा कार्य पिता जी को पसन्द होता तो वे क्यों उल्टी-सीधी कहते! मैं यही प्रार्थना करूंगी कि अपनी त्रुटियों की ओर ध्यान दीजिये, जिससे पिता जी को कुछ कहने का मौका न मिले। मनुष्य को अपने धन, विद्या, बल और पौरुष पर कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। अभिमान करने वाला मनुष्य एक न एक दिन अवश्य ही पतन के गर्त में गिरेगा।" पत्नी के उपदेशों को श्रवण कर धर्माचार्य लज्जित हुआ। लेकिन उसे अपनी मर्यादा की चिन्ता थी। वह सोचता था कि मेरी मर्यादा पत्नी के सामने पिता ने भंग कर दी है। मुंह से निकली हुई बात, छूटा हुआ तीर, बीती हुई उम्र और टूटा हुआ दिल पुनः वापस

नहीं आता है। जो कुछ पिता जी ने कहा है वह
बातें हमारी मर्यादा के अनुकूल हैं। माता-पिता
एक मात्र कर्त्तव्य यह होता है कि सन्तान का
देना और कर्म के साथी वे लोग नहीं होते हैं।
सुनो — एक बार धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के साथ
भ्रमण कर रहे थे। अर्जुन से उन्होंने कहा -- "हे
ञ्जय ? वन की रक्षा सिंह करते हैं और वन
को आश्रय देता है। बिना जंगल के सिंहों का
करना सरल है और जिस वन में सिंह नहीं होते
वह जंगल सहज ही काटा जा सकता है। पिता
मर्यादा पुत्रों पर निर्भर होती है और पुत्रों की
पिता पर निर्भर रहती है। लेकिन हमारे पिता
के विपरीत बातें करते हैं जिसका मुझे महान कष्ट
यह तो तुम जानती होगी कि कीर्ति नदी के
होती है। नदी हल्की वस्तुओं को ऊपर उठाये
है और ठोस तथा वजनदार चीजों को डुबा देती

धर्माचार्य की पत्नी के ऊपर धर्माचार्य की बातों
कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पत्नी गम्भीर शब्दों में सम
लगी। 'पति देव ! पिता पुत्र का शत्रु नहीं होता
वह पिता शत्रु होता है जो अपने बच्चों को
अध्ययन नहीं कराता है। "मातु-पिता-गुरु आज्ञा
अपना भला इसी में जानो ॥" पुत्र को माता-पिता
गुरु की आज्ञा बिना विचार किये ही माननी चाहिए
इसी में उसकी भलाई होती है। श्रीराम
माता-पिता की आज्ञा मान कर चौदह वर्षों तक

वासी बने थे। परशुराम ने पिता की आज्ञा मान कर अपनी माता का शिर काट लिया था। मैं यह जानती हूं कि आज का संसार अपने श्रेष्ठ पुरुषों के बारे में कुछ भी नहीं जानता है। युक्ति संगत बात यह है कि जो तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखें, तुम उनसे प्यार करो। यदि तुम्हारा मार्ग अन्धकार मय हो जायेगा तो मार्ग दिखाने के लिये तारा गण प्रकाश फैलायेंगे। यह धृष्टता अपने मन में कभी मत आने दो कि तुम स्वयं अपने स्वामी हो। तुम्हारा स्वामी कोई और होगा, जो तुम्हारे भाग्य का निर्माण करता है। चालाकी द्वारा कोई भी महत्व पूर्ण कार्य कभी सिद्ध नहीं होता है। आप को यह मालूम है कि पाण्डव रूपी वन को न काटो और अर्जुन जैसे सिंह को मत खदेड़ो। "जल काठहिं बोरै नहीं समझ पाछिली प्रीति।" जल वृक्ष को सींच कर बड़ा बनाता है। वृक्ष जल के प्रभाव से विशाल बनता है। जिस वृक्ष में जल का अंश शेष रहता है उसे जल अपना समझ कर जल में डुबा लेता है। जिस वृक्ष में जलांश नहीं रह जाता है उसे जल ऊपर उठाये रहता है। धर्माचार्य विद्वान पत्नी की बातों को सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुआ। मूर्ख को कठोर लात से बढ़कर बात प्रिय लगती है। मूर्ख जब चुप रहता है तो विद्वान समझ जाता है। धर्माचार्य ने कहा।

मूर्ख कठोर लात की अपेक्षा मधुर भाषणों से समझ जाता है। किसी बात का उत्तर सोच कर देने वाला मूर्ख विद्वान होता है। अपने को मूर्ख समझने वाला

मनुष्य ही विद्वान होता है। पत्नी ने धर्माचार्य समझाया। धर्माचार्य गद्-गद् होकर भोजन करने बैठे। पत्नी ने प्रेम पूर्वक धर्माचार्य को भोजन करा रात्रि अधिक जा चुकी थी। धर्माचार्य ने सोचा यदि पत्नी सो जाये तो मैं दुष्ट पिता की हत्या दूं। जिससे प्रतिदिन का झगड़ा दूर हो जाय। इन पा बिचारों को हृदय में आते ही धर्माचार्य का कम्पित हो गया। बुद्धि पर पाप भावनायें छा धर्म कर सब बदल गया। धर्म करने वाला आ आज अधर्म के मार्ग पर चलने में अपना गौरव रहा है। पत्नी सो गई। धर्माचार्य कटार लेकर की हत्या करने के लिये बिस्तर से उठ खड़ा हु पत्नी की निद्रा भंग हो गई। पत्नी ने कहा -- " आप कहां जा रहे हैं!' 'मैं पिता की हत्या करने रहा हूं' धर्माचार्य ने गम्भीरता से कहा। मारने वीरता नहीं पशुता है। जिसमें स्वयं मरने की है वही मनुष्य विद्वान और वीर होता है। पत्नी एक भी बात धर्माचार्य ने नहीं सुनी।

धर्माचार्य के माता-पिता चन्द्रमा की छवि कर आपस में बातें कर रहे थे। माता ने कहा "नाथ! इसी चन्द्रमा के प्रकाश की तरह हमारे धर्माचार्य का प्रकाश सारे संसार में फैल रहा है पिता ने उत्तर दिया — "प्रिये! ऐसा पुत्र है कि तरफ मान सम्मान की ऊपल दृष्टि हो रही है। अपने पुत्र के कार्यों से बहुत ही प्रसन्न रहता

मेरी दोनों आंखों का तारा मेरा धर्माचार्य है।' माता ने पूछा — "नाथ! प्रतिदिन आप धर्माचार्य को भली-बुरी, उल्टी-सीधी बातें कहकर उसके हृदय को दुःख पहुंचाते रहते हैं।' पिता ने कहा — "प्रिये! यदि मैं अपने पुत्र को फटकारता हूं तो इसमें एक राज है, वह यह राज है कि जो पिता अपने पुत्र की प्रशंसा करता है उसका पुत्र अभिमानी हो जाता है। अभिमान उत्पन्न होते ही पुत्र का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। ऊपरी मनसे दिखावटी में धर्माचार्य को फटकारता हूं और हृदय के अन्दर से उसकी प्रशंसा करता हूं। फटकारने से धर्माचार्य अपने में गल्तियों की खोज करेगा और वह मुझे प्रसन्न करने के लिये काफी प्रयत्न करेगा। इस उपाय से कभी अभिमान मेरे पुत्र में नहीं उत्पन्न हो सकता है। धर्माचार्य सोचेगा कि अच्छे मार्ग पर चलने से पिता जी जब अप्रसन्न रहते हैं तो बुरे मार्गों को अपनाने में कितना अधिक अप्रसन्न होंगे। इससे हमारे ओजस्वी पुत्र का भविष्य सदैव उज्ज्वल रहेगा। मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूं कि हमारे पुत्र की तरह संसार भर के पिताओं को पुत्र दें।' रात्रि अधिक बीत जाने के कारण माता--पिता अलग--अलग सम्वाद समाप्त कर निद्रा मा के गोद में दुलकने लगे। धर्माचार्य एक स्थान पर गुप्त रूप से खड़ा होकर शुरू से अन्त तक की बातें माता-पिता की सुनता रहा। कटार को छिपा कर अपनी पत्नी के पास आया और सारी बातें माता-पिता जो कह रहे थे उसे कह सुनाई। पत्नी

अपने पति की मूर्खता पर बहुत ही अप्रसन्न हो... तुम पिता के घाती हो और तुम्हारे ऊपर पाप मा... से पाप लग गया है। इसका प्रायश्चित करना पड़े... धर्माचार्य लज्जित होकर सो गया।

प्रातःकाल होते ही धर्माचार्य उठा। अपने मा... पिता के चरणों पर गिर कर बोला— "पिता जी यदि कोई बालक अपने पिता की हत्या करने के लि... चला हो और पुनः हत्या न कर वापस आ जाय... क्या वह भी पाप कहा जा सकता है। यदि पाप... तो इसका प्रायश्चित कैसे होगा?

पिता ने बताया कि ऐसी कुबुद्धि जिस बालक... हृदय में आ जाये वह बहुत बड़ा पापी है। इस पा... से मुक्त होने का उपाय यह है वह पापी बालक अप... ससुराल में जाकर १२ वर्षों तक गड़रिया बन कर भे... चराये तो इस भयंकर पाप का प्रायश्चित हो जायेगा... इसके अलावा कोई दूसरा उपाय और नहीं है। धर्मा-चार्य शिर झुकाये अपनी पत्नी के पास जाकर बोला— "प्रिये! तुमने ठीक कहा था कि पिता की हत्या कर... का विचार जिस पुत्र के हृदय में उत्पन्न हो जाय, व... बहुत बड़ा पापी होता है। इस पाप के प्रायश्चि... करने के लिये अपनी ससुराल में १२ वर्षों तक गड़रि... बन कर भेड़ चराना पड़ता है। तुम जल्दी तैयार ह... जाओ और मेरे साथ अपने पिता के गृह चलो।" ... के आदेशानुसार पत्नी तैयार हो गई। धर्माचार्य प...

को लिवाकर अपनी ससुराल चल दिये। धर्माचार्य के पिता ने अपनी पत्नी से कहा -- "देखो! आज धर्माचार्य हमारे पैरों को छूकर नई बात किया है। कभी वह हमारे पैरों पर नहीं गिरा था। धीरे-धीरे उसमें बुद्धि का विकास हो रहा है।'

धर्माचार्य अपने माता और पिता के नाम एक पत्र लिखकर द्वार पर रख गया। पत्र में उसने हत्या आदि का सब वर्णन बृहद् रूप से लिखा था और पिता के बताये हुये उपाय से उस महापाप का प्राय--श्चित करने अपनी ससुराल गया। माता जी के सामने वायु के झोंके में उड़ता हुआ पत्र आ गया। माता जी ने पिता जी की ओर पत्र बढ़ा दिया। पिता जी ने पत्र को पढ़ कर माता को सारी बातें धर्माचार्य की कह सुनाई। धर्माचार्य का १२ वर्षों तक ससुराल में रहने का महान दुःख माता और पिता जी को होने लगा। पिता जी ने सोचा कि यदि मैं यह भेद जानता तो धर्माचार्य से कह देता कि बेटा! पिता के प्रति हत्या की भावना करने वाले पुत्र को साधारण पाप लगता है। गंगा स्नान से उस पाप का प्रायश्चित हो जाता है। मैं नहीं जाना कि ऐसा पाप धर्माचार्य ने स्वयं ही किया था। माता जी रोने लगीं। पिता जी ने माता जी को समझाया कि १२ वर्षों में धर्माचार्य आ जायेगा। धैर्य धारण करो।

जब धर्माचार्य की ससुराल बहुत नजदीक आ गई तो धर्माचार्य ने पत्नी को एक कागज लिखकर दिया।

जब कभी आवश्यकता पड़े तो इस कागज को कि... विद्वान आदमी के हाथों में देकर गिरवी रख देना... वह जो रुपया देगा उससे अपनी परिवरिश करना... जब मैं पाप का प्रायश्चित कर लूंगा तो चलकर... कागज का मूल्य दूंगा और कागज को वापस ले लूंगा... कागज को लेकर धर्माचार्य की पत्नी पिता के गृह ... पिता ने अकेली आने का कारण पूछा। पुत्री ने शु... से अन्त तक की सम्पूर्ण गाथा धर्माचार्य जी का ... कह सुनाया। पिता को इस समाचार से दुःख हुआ।

एक गड़रिया के घर पर जाकर धर्माचार्य ५ रुप... माहवार और दोनों समय पेट भर भोजन करने की श... पर भेड़ चराने के लिये तैयार हो गये। कन्धे पर लो... डोरी ले इधर-उधर दौड़ धूप कर भेड़ चराने लगे... कुशाओं, कांटों और कंकड़ों पर धर्माचार्य को भेड़ों ... पीछे-पीछे दौड़ना पड़ रहा था। इसी तरह से भे... चराते-चराते कई वर्ष बीत गये। कभी-कभी माता-पि... और पत्नी के दर्शन की इच्छा धर्माचार्य को हो आ... थी। यदि धर्माचार्य पिता पत्नी और माता का दर्श... कर लेंगे तो २४ वर्षों तक प्रायश्चित पापों का न... हो सकता है। इसी कारण से धर्माचार्य किसी ... दर्शन नहीं कर सकते थे। धर्माचार्य के माता-पिता अपने पुत्र को देखने के लिये लालायित हो जाते ... लेकिन कठिन तप को खण्डित करना उन लोगों ने उचि... नहीं समझा। इधर पत्नी को भी अपने पति का दर्श...

करने की प्रवल इच्छा होती थी। लेकिन वह बेचारी सोचती थी कि १२वर्षों के अलावा २४ वर्षों तक भेड़ चराना होगा। इस लिये वह अपने हृदय को थामकर बैठ गई।

एक दिन धर्माचार्य की पत्नी को पितृगृह से निकल जाने को कहा गया। उसकी भाभी ने शपथ दिलाई कि यदि तुम हम लोगों का एक दाना अन्न मुंह में डालोगी तो वह तुम्हारे पति का रक्त हो जायेगा। भाभी का धराया हुआ शपथ और परिवार वालों का व्यंग उस बेचारी का हृदय विदीर्ण कर रहा था। उसके पास कोई भी वस्तु शेष नहीं रह गई थी, जिससे वह अपनी जीविकोपर्जन कर सकती। अचानक पति द्वारा दिये कागज पर उसका ध्यान गया। कागज को लेकर बाजार गई और एक जगह रखकर बैठ गई। कोई आदमी इसका कागज छूता तक नहीं, खरीदना तो बहुत दूर था। शाम के समय राजा की सवारी निकली। जिन लोगों का सामान नहीं बिकता था उसे राजा स्वयं ही खरीद लेता था। उस दिन बाजार में कोई सामान नहीं बचा था, केवल उस स्त्री का कागज शेष रह गया था। राजा ने कागज खोलकर पढ़ा। कागज में लिखा था—"ऐ बेवकूफ मनुष्य! किसी को मारने का प्रयत्न न कर। मारनेवाले से बड़ा बचानेवाला होता है। यदि तुम किसी को जीवन नहीं दे सकता है तो जीवन ले भी नहीं सकता है। तुम्हें किसी के जीवन को लेने का कोई अधिकार नहीं है। तुम्हारा—धर्माचारी।" इस लेख को पढ़कर राजा साहब बहुत प्रसन्न

हुये। राजाने कागज का मूल्य पूछा। स्त्री ने उत्तर दिया "राजन्! इस कागज को मैं गिरवी रक्खूंगी, हमारे पति आयेंगे तो छुड़ा लेंगे। २ हजार रुपया लेकर स्त्री अपने पिता के गृह आई और आराम से जीविकोपार्जन करने लगी।

राजा साहब के बाल बनाने वाले नाई को कुछ दुश्मनों ने ५ सौ रुपया दिया कि तुम राजा साहब की दाढ़ी बनाते समय छूरे से गला घोंट देना। जब राजा साहब मर जायें तो तुम्हें और पुरस्कार दिया जायेगा। नाई ने दुश्मनों की बात मानकर राजा साहब के पास बाल बनाने पहुँचा। छूरे को भली प्रकार तेज कर दाढ़ी बनाने लगा। छूरा राजा के कण्ठ पर पहुँचा तो नाई की दृष्टि उसी टंगे कागज पर पहुँची, जिसे राजा साहब ने स्त्री से गिरवीं हजार रुपयें पर रक्खा था। उस कागज को राजा साहब ने विश्राम गृह में टंगवा दियें थे। कागज को पढ़ते ही नाई का हाथ कांपने लगा और हाथ से छूरा फिसल कर गिर पड़ा। नाई बिलकुल घबरा गया। राजा साहब ने उससे घबराने का कारण पूछा। नाई ने राजा साहब की हत्या का और राजा के दुश्मनों द्वारा रचे हुये षडयंत्र को स्पष्ट कर दिया। नाई ने कहा—"राजन्! मैं तुम्हारी हत्या कर देता लेकिन इस कागज को पढ़ने से मेरा मस्तिष्क बदल गया। राजा साहब ने नाई को एक हजार रुपया देकर विदा किया।

१२ वर्षों तक भेड़ चरा लेने के बाद धर्माचार्य अपनी ससुराल पहुँचे। अपनी पत्नी से दिया हुआ कागज मांगा। पत्नी ने राजा के पास कागज गिरवी रख देने की बात कही।

पत्नी को साथ में ले धर्माचार्य राजा के पास पहुँचे। राजा के सामने २ हजार रुपया रख दिया और कहा कि मेरा कागज वापस कर दीजिये। राजा ने कहा कि मेरे प्राणों की रक्षा उसी कागज से हुई है। इसलिये तुम जो मांगो सब कुछ दूँगा, लेकिन इस कागज को मत मांगना। राजाने धर्माचार्य को बहुत सा धन देकर विदा किया। धर्माचार्य सहर्ष राजा को कागज देकर अपनी पत्नी के साथ अपने घर की ओर चला। घर पहुँचकर धर्माचार्य ने अपने माता-पिता के चरणों में शिर झुकाकर सारी सम्पत्ति दे दी। धर्माचार्य को पिता और माता ने गले लगाकर उस का चुम्बन किया। पत्नी भी अपने श्वसुर और सास के चरणों में गिर पड़ी। माता-पिता ने आशीर्वाद दिया कि पुत्री! तुम्हारा सुहाग सदा अटल रहे और तुम पुत्रवती हो।

धर्माचार्य से अपने पितृगृह का सारा वर्णन कहकर पत्नी रोने लगी। धर्माचार्य ने समझाते हुये कहा कि पगली! बीतीं बातों को याद नहीं करना चाहिये। दुःख में माता, पिता, भाई, हित, मित्र, सगे-सम्बन्धियों आदि की परीक्षा होती है। इस कठिन परीक्षा में सब उत्तीर्ण नहीं होते हैं। चलो! जो कुछ हुआ, वह अच्छा ही हुआ। दुःख और सुख की परीक्षा हो गई।
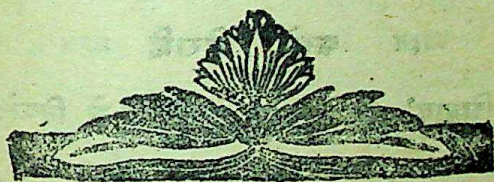
इतना तो करना 'शिवजी', जब प्राण तन से निकले
तेरा हो नाम मुखमें, तब प्राण तन से निकले ॥१
श्री गंगाजी का तट हो, अरु बेल का विटप हो
सोऽहम् की मनमें रट हो, तब प्राण तन से निकले॥२
मस्तकपे चन्द्रमा हो, तन पर भसम रमा हो
अरु साथ में उमा हो, जब प्राण तनसे निकले॥३
भोला स्वरूप तेरा, मन जो लुभाय मेरा
चरणों पे माथा तेरे, तब प्राण तन से निकले॥४
तेरा हि ध्यान करते, तेराहि मन्त्र गाते
'नमः शिवाय' कहते २, यह प्राण तन से निकले॥५
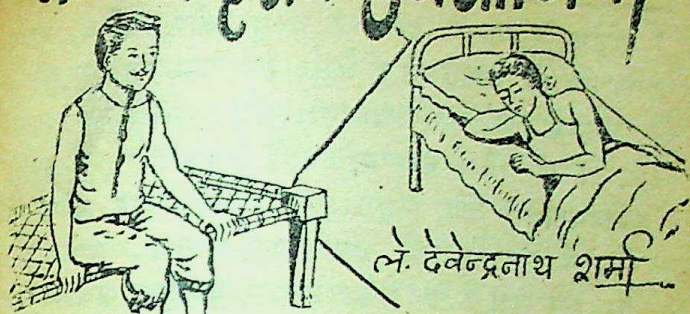
चारपाई पर हम रोज सोते हैं, पर उसके गुणों का हमें बिल्कुल ही पता नहीं चलता । प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के देखने से ज्ञात होता है कि हमारे यहां विद्वानों ने इस चारपाई के सम्बन्ध में कला, लाभ और विज्ञान की दृष्टि से कितना सूक्ष्म तथा कहांतक विवेचन किया है। चारपाई का संस्कृत नाम खट्टा या 'खट्वा' प्रसिद्ध है।। सम्भवतः खटिया शब्द खट्वा का ही अपभ्रंश है। अमरकोष में इसके चार नाम गिनाये गयें हैं:— मंच, पर्यंक, पल्यंक और खट्वया। इस पर रामश्रमी है:— खट्यते निद्रालुभिः।' खट्कांगक्षायाम् (स्वा. प. से.) अश्प्रसि (उ० १। १५१) इति क्वुन। मंच, पर्यंक, पल्यंक की प्रकृति और प्रत्यय के भिन्न होने पर भी निद्रालुओं से जो चाही जाये, यह व्युत्पत्यर्थ तो प्रायः सबमें ही होता है, केवल नाम में भेद है। संस्कृत साहित्य की ही यह विशेषता है कि एक वस्तु के अनेक नाम और अनेक वस्तु के एक नाम प्रतिपादित करता

है। खट्वा साधारण शयनीय वस्तु और पर्यंक असाधारण हो सकते हैं। जैसा कि महाराज भर्तृहरि 'वैराग्यशतक' के एक पद्यभाग:— "क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंक शयनम् " में स्फुट है। यहां 'शाल्योदनरुचिः' और 'दिव्याम्बरधर' की तरह पर्यंक शयनीय में सर्वातिशायी उत्कर्ष का द्योतन अभिप्रेत है वैसे तो इस पद्य में उनके द्वारा वैराग्यसमुत्थ सर्वंकष का तृणवत् सर्वेहेयता का द्योतन हुआ है।

श्रीपुष्पदन्त ने भगवान् शंकर के सात तन्त्रोपकरण बतलाये हैं, जिनसे देवता और दानव भी बड़ी सिद्धियां प्राप्त कर लेते हैं, उनमें 'खट्वांग' भी एक है। भगवती दुर्गा भी दुष्टों के दमनार्थ इसे धारण करती है। "विचित्रखट्वांग धरा" खट्वांगपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा" नागोजी तथा मधुसूदन सरस्वती ने खट्वा के अग (पाया पांव) के जैसा शस्त्र विशेष इसे बतलाया है। आधुनिक चित्रकारों ने भी तत्तत् चित्रों में वैसी रूपरेखा खींची है सभी तो उत्तम शस्त्र से हन्तव्य नहीं होते, कुछ दुष्टों पर खटिया के पाये की मार भी करनी पड़ती है। अतः देवी सभी प्रकार के शस्त्रों को धारण करती है।

बहुत से विनोदी सज्जन गप्प शप्प में इधर उधर की भिड़न्त मिलाकर लोगों को समझाते हैं और प्रमाणस्थान में 'खट्वांग पुराण" का नाम ले देते हैं। यह खट्वांग पुराण बुद्धि पुराण की तरह चाहे खपुष्पायित ही है, परन्तु इधर-उधर की बातों का मूल स्थान बतलाया ही कहां जा सकता है धर्मशास्त्रानुसार खटिया (चारपाई) पर बैठकर भोजन

करना निषेद्ध है:— "खट्वारूढ़ो भुंक्ते जाल्यः।" वैसे तो सदाचारानुसार चारपाये की किसी भी वस्तु पर बैठकर भोजन आदि करना निषिद्ध है, तत्रापि खटिया पर तो विशेष रूप से। अभिप्राय यही कि चारपाई एक साधारण निम्नकोटि का शयनीय है और पर्यंक (पलंग) आदि उच्च कोटि के। राजा भरत कृत 'युक्तिकल्पतरु' के आसनयुक्त प्रकरण में इसे खट्टिका या खट्टा नाम से व्यपदिष्ट किया है और इसकी परिभाषा या अर्थप्रधान व्युत्पत्ति भी बतलायी है— अष्टाभिः काष्ठखण्डैश्च खट्टेति प्रतिचक्षते। अर्थात् जो आठ काठ के खण्डों से निर्मित हो, उसे खट्टा कहते हैं। अर्थ संगति बैठाने की दृष्टि से यह रौढ़िक में यौगिकता की भावना है, नहीं तो 'अष्टाभिः काष्ठखंडैः संस्कृतम् अष्टा काष्ट खण्डम्' ऐसा कुछ होना चाहिये था, अथवा नैरूक्तों के सिद्धान्तानुसार 'अष्टभि संस्कृतः खट्टा' हो जाना कोई बड़ी बात नहीं। "वर्णागमोवर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्ण विकार-नाशौ तदुश्यते पंचविधान्निरूक्तम्" इस प्रकार की निरुक्त प्रक्रिया से कोई भी शब्द प्रायः यौगिक हो सकता है। पाणिनीयादि व्याकरणों में भी प्रायः यह क्रम चलता है। जैसे 'हिंस को सिंहः' आदि कहते हैं। वही इस खट्टा के आलम्बनदण्डो का चरण शिर की तरफ के दण्डों का नाम व्युपधान, पैर की ओर के दण्डे का निरूपक और दोनों तरफ के दण्डों का नाम आलिंगन है। आलिंगन चार हाथ का उसके आधा व्युपधान और निरूपक तथा इसके आधे चरण होने चाहियें। यह साधारण खट्टा कहलाता है। विशेष २ कामनापरत्वेन इसके सामान्यतया आठ भेद माने गये हैं।

लम्बाई-चौड़ाई आदि का भी निर्देश हुआ है:—अर्द्धमतोऽष्टांशोन विष्कम्भो विश्वकर्मणा प्रोक्तः। आयामत्र्यंशसमः पादोच्छ्रायः सकुक्षिशिय:।' अर्थात् पूर्वोक्त अंगुलों का आधा करके उनमें अष्टमांश की कमी करने पर जितने अंगुल बचे, उतना इसका विस्तार होना चाहिये और विस्तार के तृतियांश के समान वह पायों की तरफ सकुक्षिशिय ऊँची होनी चाहिये। यह विश्वकर्मा का मत है।

इसी स्थल पर किन-किन काष्ठों की चारपाई बनानी चाहिये, इसका भी विचार किया गया है:— चन्दन, दारुहल्दी, देवदारु, तेंदू, शाल, सिरीष, शीशम आदि के वृक्षों की खटिया, पलंग पीढा आदि शुभ होते हैं। इसके अतिरिक्त वज्र, जल, हाथी के द्वारा गिरा दिये गये, पक्षियों के घोंसलेवाला, गांव के सुन्दर सघन, स्मशान में के, सड़क के किनारे के खूब ऊँचे सूखे, जिनपर लता लिपटी हुई हो, काँटेवाले, नदी के संगम स्थल में उत्पन्न, देवालय के समीपवर्ती अथवा पश्चिम या दक्षिण दिशा की ओर गिरे हुये वृक्षों की बनी खटिया आदि अशुभ होते हैं। निषिद्ध वृक्षों की बनाई गयी चारपाई के सेवन से कुल विनाश, व्याधि, भय, व्यय, कलह और अनेक अनर्थ होते हैं। इस विषय में काष्ठ परीक्षा का विचार किया गया है। पहले की टूटी हुई लकड़ी पड़ी हो और उसपर यदि सहसा कोई बालक आ बैठे, तो उसका फल शुभ होता है। उस काष्ठ के शयनीय आदि बनाने से पुत्र पशु की वृद्धि होती है। खट्वा (चारपाई) के निर्माणकाल में यदि श्वेत पुष्प, मतवाला हाथी, अक्षत, दधि, पूर्ण कुम्भ, रत्न तथा मांगलिक शब्द सुनायी पड़े,

जैसे शङ्ख का शब्द, वेदध्वनि, गाय, चक्रवाक और
आदि का कूजन तो वह आरम्भ शुभप्रद होता है।
भेद के लिये शय्या के लिये विभिन्न वृक्षों का
जैसे केवल शिशपा (शीशम) के वृक्षों से बना
(पलंग) नानाविध समृद्धि को देता है। चन्दनमयी
दीर्घायु, धर्म और यश देती है, शत्रुओं का नाश होता
यदि केवल, चन्दन का बना पर्यंक हो, वह सुवर्ण से
हो और रत्नों से जटित हो, तो उस पर बैठे नृपति की
भी पूजन करते हैं:— केवल चन्दनरचितांकांचन
विचित्ररत्नयुतं। ऊध्यासनपर्यंक विबुधैरपि पूज्यते नृप
तेंदुआ और श्रीपर्णी के वृक्ष की बनी शय्या बनाने से
की प्राप्ति होती है। पलंगों के पावों तथा चरण त
दण्डों में छिद्रगन्धी अथवा विपर्णता रंगभेद न
चाहिये। नहीं तो शिर, उदर, पाद आदि में नाना व्या
होती हैं, शुभ नहीं होता। इन खट्वाकाष्ठों में सामा
छः छिद्र होते हैं, उनके ये नाम हैं:— निष्कुट,
सूकर, नयन वत्सनाभ और कालक इनके भिन्न-भिन्न
तथा फल हैं, ये सभी छिद्र अशुभ हैं। गन्धि प्रवुर
का पर्यंक शुभफल प्रद नहीं होता।

राजाभोज के दूसरे ग्रंथ "समरांगन सूत्रधार"
शयनासन लक्षण प्रकरण में खट्वा निर्माणार्थ मुहूर्त
बतलाया है। मैत्र मुहुर्त में जब पुष्य नक्षत्र पर च
हो, शुभ दिन हो, तब देवताओं की भलीभांति
करके कार्यारम्भ करे:— मैत्रे मुहूर्ते पुष्यस्थे शीत

शुभेऽहनि सम्पूज्य देवताः सम्यक् कर्मारम्भं समाचरेत ॥" यहां बतलाया गया है कि जो वृक्ष गृह निर्माण कार्य में निषिद्ध हैं, वे शय्या निर्माण में भी :— गृहकर्मणि ये नेष्टा वृक्षस्तेऽत्रापि निन्दिताः। इसके मत में राजाओं की शय्या १०२ अंगुल की होनी चाहिये। ब्राह्मण की ७० अंगुल की तथा शेष अन्य वर्ण के दो-दो अंगुल क्रमशः कम होते जाते हैं :— विप्राणां शस्यते शय्या दैर्घ्यणांगुलसप्ततिः। द्वाभ्यांगुलाभ्यां हीना स्याच्छेष वर्णिनाम।" खट्वा के सब पायों का भाग ऊंचा होना चाहिए, इससे खट्वा स्वामी (चारपाई पर सोने वाले) की अभिवृद्धि होती है :— उर्द्धाग्रा निखिलाः पादाः स्वामिनो वृद्धिहेतवे।" शयनीय निर्दोष ग्रन्थि कोटर से रहित होनी चाहिए, अन्यथा पाप स्वप्न आने की आशंका बनी रहती है, साथ ही अनिद्रा भी बनी रहेगी।

निर्दुष्ट शय्या धर्म अर्थ और कामना को पूरी करने वाली पुत्र वृद्धिकरी होती है :— आसनं शयनीश्च ग्रन्थिकोटर वर्जितम्। बहुपुत्रकरं प्राहुर्धर्म कामार्थसाधनम् ॥" जो चारपाई बैठते ही खिसक जाय और सोने पर हिले वह क्रम से विदेश यात्रा और कलह कराती है :— आरोहणे प्रचलति शयने कम्पते तथा। विदेशयान कलहौ तं क्रमेण प्रयच्छतः। आने के लिये नींद कांटों कंकड़ों पर भी आ जाता है। रेल में बड़े-बड़े लोग सो लेते हैं, पर जब सुन्दर मृदु शय्या मिल जाये, तब उस पर शयन का आनन्द कुछ अद्भुत ही है। वास्तव में

शयन का सुख उत्तम शय्या से ही है, इसमें ति
मात्र भी सन्देह नहीं। हमारे यहां राजाओं के वि
उपभोगों में एक शय्या भोग भी बतलाया गया
शिल्प शास्त्रों के अनुशीलन से पता चलता है कि
पूर्वजों ने आध्यात्मिक उन्नति के साथ ही साथ
सुख सम्पादन की ओर भी कितना गम्भीर ध्यान
था। इन्हीं में शय्या भी अन्यतम है। मञ्च चारपा
ही एक भेद संस्कृत में बताया गया है, उसी मञ्च
दन्ताघ्रि, लोहचरण, अष्टापद, खद, चपल वेत्रिक प
मय और डोल इस तरह आठ प्रकार बताये गये हैं
दन्तांघ्रि लौंहचरणः स्याष्टापद्खदस्तथा। अचलश्चपल
वेत्रिकः पहिकामयः। .... (मानसोल्लास ३,
मञ्च जिसके चार सुन्दर पाये और अन्यान्य सभी अंग
दांत से बनाये गये हों, दन्ताघ्रि कहा जाता है।
वह शुभ है :— द्विपदन्तकृतैः पादैश्चतुर्भिस्पशोभि
दन्तांघ्रिर्नाम मञ्चोऽयं सर्वदन्तमयः शुभः॥' ताम्बे के
वाला सुदृढ़ मञ्च लोहचरण और सुन्दर सुवर्ण से
हुआ, विविध कलाओं से संयुक्त मञ्च 'अष्टापद'
जाता है। यन्त्र विशेष संयुक्त नलिकाओं से नि
विभिन्न सुन्दर नाद करने वाला मञ्च 'खद' कहा
है। यह कामुक पुरुषों को कामक्रीड़ा में विशेष आ
प्रद है :— यन्त्रप्रति कृतैर्नालैरानन्द तनुते नदन। ख
ख्यातो रतिकेलिषु कामिनाम्॥' बैठते ही जो ऊपर
(यन्त्र विशेष स्प्रिंग की सहायता से) जाने लगे
दृढ़ पाये वाला और सुन्दर मञ्च 'चपल'

जाता है :— उपवेशनमात्रेण गच्छन्नूर्ध्वमधश्चयः। दृढांघ्रिश्चारूश्च चपलमञ्च प्रकीर्तितः॥ बेंत की बाहरी छाल से बुना हुआ कुटिल पायोंवाला मञ्च 'वेत्तिक' के नाम से प्रसिद्ध होता है :— (त्वग्भिर्वेत्रस्य बाह्याभिस्तनुभिर्गुम्फितो घनैः कुटिलश्चरणैर्युक्तो वेत्रमञ्च प्रकीर्तितः॥' विभिन्न रंगों की लम्बी सूती पट्टियों (नेवार) से अच्छी तरह बुना हुआ मंच पट्टिकामय कहा जाता है :— कार्पास गुणक्लृप्ताभिः पट्टिकाभिः सुगुम्फितः। दीर्घाभिश्चित्र वर्णाभिर्मंचोऽयं पट्टिकाभिधः॥' चन्दन की लकड़ी से बना हुआ, स्थान-स्थान पर सुवर्ण से मढ़ा हुआ, दिव्य रत्नों से जटिल मंच गजराज सा शोभित, सुवर्ण-शृंखला में लटकाया हुआ, कोमल कुसुमकेशरमयी शय्या से युक्त सुखदायक मंच दोला (डोला) मंच कहा गया है। 'श्रीखण्डदारुघटितो लसत्कांचनभूषितः। खचितो दिव्य रत्नैश्च मत्तवारण शोभितः। सौवर्ण शृंखलाबद्धो लम्बमानः सदोलनः। किंचल्कशय्या युक्तो दोलामंचः सुखप्रदः॥' इसका उपयोग तो किसी सौभाग्यशाली महाराजा के ही भाग्य में बदा होगा, पर साधारण लकड़ी के बने हुये पीतल या लोहे की सांकल से लटकने वाले झूलों का आनन्द तो साधारण गृहस्थों के लिये भी सुलभ है। गांव में हमारे देहाती भाई भी तो पेड़ की डाल पर रस्से में एक लकड़ी का तख्ता डालकर 'हिंडोले' का दिव्य आनन्द अनुभव कर ही लेते हैं। इस तरह आठ प्रकार के मंचों का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। इसी प्रकार शय्या (चारपाई) के भी कई भेद बताये

गये हैं। उन ग्रन्थों को देखने से हमें 'हंसी' शय्या के उदर भाग पर उगने वाले अत्यन्त कोमल परों गुच्छों को कोमल चर्मतन्तुओं के द्वारा ग्रथित की जाती है :— 'मरालजठरीद्भुतैर्मृदुभिः पिच्छगुच्छकैः श्लक्ष्णेन चर्मणा नद्धैः शय्या हंसी महीभुजाम॥' शय्या के बाद छः प्रकार की और शय्याओं के संस्कृतग्रन्थों ने गिनाये हैं :-- 'शाल्मली-तूलिका, कर्पासजा, केशरजा, पल्लवा, कुसुमजा और लोया। इस तरह को लेकर सात प्रकार की शय्याओं का उल्लेख मिलता है। बीज रहित शाल्मली (सेमर) की रूई ठोस बुने हुए वस्त्र में आच्छादित करके बनाई जाने वाली शय्या 'शाल्मलीतूलिका' कही जाती है :— शाल्मलीफलगर्भोत्थैः स्तूलकैः बीजवर्जितैः। घनेनवाससा नद्धैः शाल्मलीतूलिका भवेत्॥' इसी प्रकार कपास की बिनौली से रहित को पतले कोमल वस्त्र से अवेष्टित करके कर्पासजा शय्या बनायी जाती है। निर्बीज तूलमास्तीर्य मृदुनाऽऽवेष्ट्य वाससा। या शय्या क्रियते मृद्वी सा तु कर्पासजामता। कमल नागपुष्प या किसी सुगन्धित पुष्प के मध्यवर्ती कोमल किंचलकों अथवा केशर के रेशों को विविध रंगों से विचित्र रेशमी वस्त्र में भरकर केशरजा शय्या बनायी जाती है :— "केशरैः पद्मसम्पूतैर्नागपुष्पसमुद्भवैः। सुरभीकुसुमोत्थैश्च तथा कुंकुमसम्भवैः। पट्टवस्त्रेण चित्रेण गुम्फितै श्चारुचित्रितैः। शय्या केशरजा ख्याता सुगन्धिः पृथवीभुजाम॥" कोमल उत्पल, कल्हार, कदली

कंकेली आदि वृक्षों के कोमल पत्तों से बनायी गयी शीतल शय्या पल्लवा कही जाती है :— कोमलोत्पल-कल्हार रम्भाकंकेलि पल्लवैः। कोमलैः कल्पिता शय्या शीतला पल्लवमिधाः ॥' मालती, चमेली, गुलाब, चम्पा आदि सुगन्धित पुष्पों से बनाई गई शय्या कुसुमजा कही जाती है :— मल्लिकापाटलीपुष्पैः कुसुमश्चम्पकैस्तथा। अन्यैं सुगन्धिभिः पुष्पैरपवृतैः कृता तु या। शय्या कुसुमजा नाम कामकेलिसुखावहा ॥'' तोया शय्या चमड़े के शय्या कार मढ़े हुये थैले में जल भरकर बनायी जाती थी :— चर्मजा वारिणा पूर्णा तोया शय्या प्रकीर्तिता। आजकल यह काम रबर से बने बैग से लिया जाता है। जिस वस्तु से शय्या (बिस्तर) बनायी जाती है, उसी का शिर रखने के लिये 'उपधान' (तकिया) भी बनाने की विधि बतलायी गयी है। विभिन्न ऋतुओं के अनुसार उक्त शय्या का उपयोग भी बताया गया है। बसन्त ऋतु (चैत्र-वैसाख) में हंसी, बहुत ग्रीष्म (ज्येष्ठ-आषाढ़ में मध्याह्न के बाद अन्य समय में शाल्मलितूलिका, मध्याह्न में 'तोया' वर्षा (श्रावण-भाद्रपद), शरद्काल (आश्विन-कार्तिक) में 'दोल' मञ्च पर केशरजा शय्या का सेवन सुखावहा है। हेमन्त (अगहन-पूष और शिशिर (माघ-फाल्गुन ऋतु कर्पासी का सेवन करने का आदेश है। पल्लवा और कुसुमजा शय्या क्रीड़ा के लिये उपयुक्त बतलायी गयी है :— "वसन्ते हंसजा शय्या क्रीड़ायां पुष्पपत्रजा। निदाघे तूलजा शय्या मध्याह्ने तोयजा शुभा। हेमन्ते शिशिरे

चैव वर्णासु च विचक्षण । भजते शय्यां कर्पासीनृपः सीता- पनुत्तये ॥ शरत्काले तु कौंचलकं डोला मंच मनोहरा अधितिष्ठेन्महीपाला भोगार्थं सुविचक्षण. ॥"

यह तो हुई राजा महाराजाओं रईसों के उपयुक्त शय्या की चर्चा। साधारण जनता तथा गरीबों को यह सब कहां सुलभ ! इनको तो मूंज की रस्सी से बुनी हुई खटिया, चौकी या जमीन पर ही गुदड़ी डालकर रात बितानी पड़ती है। हमारे शास्त्रकारों ने इन शय्याओं की उपयोगिता पर भी ध्यान दिया है। 'भावप्रकाश' ने खटिया को त्रिदोषशामनी, रूई की गुदड़ी को वातकफ नाशक, लकड़ी की चौकी को वातवृद्धिकारक और भू-शय्या को बृंहण तथा वृष्य (वीर्यवर्द्धक) बतलाया :- त्रिदोष शमनी खट्वा तूली वातकफावहा भूशय्यां बृंहणी वृष्या काष्ठपट्टी तु वातुला।' भले ही चौकी क्यों न हो, पर उसमें लगी लकड़ी फटी हुई न होनी चाहिए। छोटी, टूटी ऊंची-नीची, मैली, खटमैली आदि जन्तुओं वाली और बिना आस्तरण की शय्या पर नहीं सोना चाहिये :- "गच्छेद् शय्यामस्फुटितामेव दारुमयीं नृप। नाविशालं न वै भग्नां नासमां मलिनां न च। न च जन्तुमयीं शय्या- मधिगच्छेदनास्तृताम् ॥' (विष्णु पुराण) ।' सुन्दर विहित शय्या पर शयन हृदय को वलदायक पुष्टि निन्द्रा तथा धैर्य देने वाला थकावट और वायुजन्य विकारों को दूर करने एवं धातुवृद्धि करने वाला है। विपरीत शय्या पर शयन का फल भी विपरीत ही होता है : — सुशय्या-

शयने हृद्यं पुष्टि निद्रा धृति प्रदम्। श्रमानिलहरं वृष्यं विपरीतमतोऽन्यथा" (भाव प्रकाश)।' हमारे यहां के आदर्श शास्त्रों के अनुसार शयन स्थान उत्तर या पूर्व में ढलुवा होना चाहिये।' वह्निपुराण के मतानुसार शयन-काल में सदा पूर्व या दक्षिण दिशा की ओर शिराहना होना चाहिये। पश्चिम या उत्तर दिशा की ओर शिर करके कभी नहीं सोना चाहिये। गर्ग के अनुसार प्रवास में पश्चिम दिशा की ओर शिर करके सोया जा सकता है, परन्तु घर में चारपाई का शिराहना पश्चिम दिशा में रखकर नहीं सोना चाहिए। दक्षिण दिशा की ओर शिर करके सोने से आयुवृद्धि होती है। सूने मकान, श्मशान, एक वृक्ष के नीचे, चौराहे पर, शिवमन्दिर, यक्ष के अधिष्ठित सर्पयुक्त गृह, धान रखने के गृह, गुरुजन या ब्राह्मणों के शयन ऊंचे तृण, पत्र आदि से परिपूर्ण स्थान, पर्वत, जिस घर के द्वार पर जल या कीचड़ भरा हो, बिजली या अग्नि से जले स्थान, अपवित्र स्थान एवं जल के ऊपर नहीं सोना चाहिए। स्वयं अपवित्र स्थिति में, नग्न होकर दिन में दोनों संध्या समय, बिना पैर धोये, गीले पैर से पलाश काष्ठ की बनी चारपाई (खटिया) या चौकी पर, अधिक छिद्रयुक्त स्थान में शयन नहीं करना चाहिए। शयन के लिये प्रतिदिन सूर्यास्त के बाद शय्या बिछाना और सूर्योदय के बाद उसे उठा देना चाहिए। 'विष्णुपुराण' में बतलाया गया है कि बीमार व्यक्ति के अतिरिक्त जो भी कोई सूर्योदय के बाद तक या सूर्यास्त के पहले से निद्रा लेते हैं (शयन करते हैं)

से अवश्य ही प्रायश्चित के योग्य हैं। व्यास का कथन है कि सोने से पहले इष्टदेव का स्मरण और गा... आदि मन्त्रों से आत्मरक्षा करके शयन करना चाहिये। सिरहाने की ओर मंगल पदार्थ, जल से भरा कलश रखकर सोना चाहिये :— मांगल्यं पूर्णकुम्भश्च शि... स्थाने निधापयेत्। वैदिकैर्गारुडैर्मन्त्रै रक्षाकृत्वा स्वपेतत। विष्णु के मतानुसार आकाश के नीचे अर्थात् अनावृ... देश में चपल लोगों के बीच और अनुवेश अर्थात् बांस बल्ली या धरण के नीचे नहीं सोना चाहिये।

हारीत के कथनानुसार परायी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उपयोग में लायी गयी शय्या पर नहीं सोना चाहिये। यदि लाचारवश कभी ऐसा मौका पड़ जायें तो उसे जल से पवित्र कर उपयोग में लिया जा सकता है। एक अन्य वचनानुसार पराई शय्या पर मालिक की आज्ञा बिना शयन करना या लेटना, बैठना अनुचित है। 'शंख' और 'लिखित' महर्षि का कहना है कि अन्य वर्ण का व्यक्ति यदि पहले शय्या पर बैठ चुका हो, तो बिना पवित्र किये उस पर शयन नहीं करना चाहिये। पर्व या हर्षोत्पादक पुत्रजन्म आदि शुभ अवसर पर भी सोना उचित नहीं है। सिर में तेल लगाकर नहीं सोना चाहिये। 'गोभिल' तो यहांतक सावधान करते हैं कि सोने के पहले शय्या के पास एक बांस का दण्ड अवश्य रखकर सोना चाहिये। उन्हीं का कहना है कि सोने के पहले अगस्ति, माधव, मुचकुन्द, कपिल आदि मुनियों का जो सुखपूर्वक शयन करने में प्रसिद्ध हैं, स्मरण कर लेना चाहिये।

हमारे धार्मिक शास्त्रों ने शय्यादान का भी बड़ा महत्त्व बतलाया है। भगवान् व्यास का कहना है कि विधिवत् शय्यादान करने से बिना यत्न के सुन्दर, रूपवती भार्या प्राप्त होती है। विष्णु संहिता में बतलाया गया है कि शय्यादाता दिव्य विमान द्वारा स्वर्ग में जाकर १० हजार वर्ष पर्यन्त अप्सराओं के साथ वहां सुख भोगकर इस लोक में ६० योजन विस्तृत भूमि का राजा होता है। 'भविष्योत्तर' के अनुसार विधिपूर्वक शय्यादान करनेवाले को यमदूत नहीं सताते, वह भीषण सर्दी गर्मी से कभी पीड़ित नहीं होता।

卐卐卐

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा सुं धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह । मानव सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश--विदेशों में करके अपने स्वानुभव को बताया है । हरेक घरमें नित्य पाठनकर सुख--शांति का लाभ लीजिये ।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४--०० डाक व्यय अलग।

बहुरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों संग्रह है । रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए के लिये आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये । आसनों के तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं। व्यय के साथ ३··०० रु.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

बापू : एक प्रेरणा-ज्योति

लेखक: — युगेश शर्मा

१९ वीं सदी में नर से नारायण बनने की महानता प्राप्त करने में सफल राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जीवन अपने में एक प्रेरणा की खुली पुस्तक है। इस पुस्तक का एक भी पृष्ठ ऐसा नहीं है जो किसी से छिपाया गया हो। यह बात अवश्य रही है कि इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण पृष्ठों को देखने और पढ़ने की हम योग्यता प्राप्त नहीं कर पाये हैं। इस कारण अनगिनत पृष्ठ हमारी आंखों से ओझल और ज्ञान से अनजान हैं। अब धीरे धीरे ऐसे पृष्ठों पर भी संस्मरण की रोशनी पड़ने लगी है। जिन व्यक्तियों को बापू के सानिध्य में रहने और सेवा करने का सुनहरा अवसर मिला है वे इन पृष्ठों को जग जाहिर कर रहे हैं। ऐसे सौभाग्यशाली व्यक्तियों में बापू की पौत्री मनु बेन गांधी भी है। मैं तो ऐसे मानता हूँ कि मनु बेन को राष्ट्रपिता की सेवा जितने समीप से करने का अवसर मिला है उतना किसी को शायद ही मिल पाया हो उन्होंने अपने प्यारे बापू के जीवन को अपनी आंखों से पढ़ा और हृदय से समझा है। बापू कहा करते थे कि मनु तो मेरे जीवन लकड़ी है! सचमुच, मनु बेन को यह सौभाग्य मिला था। बापू जब भी इधर-उधर जाते थे तो मनु बेन का सहारा उनकी एक अनिवार्य आवश्कता थी। इन्हीं मनु बेन गांधी से ६ वर्ष पूर्व इंदौर भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आप म० प्र० शिक्षा विभाग के आमंत्रण पर बापू की

शिक्षा को छात्र-छात्राओं तक पहुँचाने के उद्देश्य ... भ्रमण पर निकली थीं इस भेंट में बापू के जीवन के अनमोल पृष्ठों का उद्घाटन हुआ है।

बापू महान कैसे बने ?

मैंने पूछा-"मनु बेन, यह बताइये कि बापू महान कैसे बन गये ?"

"आज के जमाने में लंगोटी लगाकर और विभूति रमाकर-महात्मा या यों कहिये महान बनना बहुत आसान है, क्योंकि वह अपनी सारी जिम्मेदारियों से दूर भाग जाता है और सिर्फ अपनी ही चिंता करता है। लेकिन बापू ने महान बनने का यह रास्ता नहीं अपनाया था। वे दुनिया के झंझटों से संघर्ष करते हुए सबको साथ लेकर चले थे। यह रास्ता कठिन था, किन्तु बापू ने उसे पार कर लिया। इस कारण उन्हें किसी पहाड़ पर तपस्या करते नहीं जाना पड़ा -" मनु बेन ने मेरे प्रथम प्रश्न का उत्तर दिया।

प्रेरणा का खजाना

मैंने पूछा- "आपको यह सौभाग्य मिला है कि बापू को बहुत निकट से समझ सकीं। इस सामीप्य में आपने क्या प्राप्त किया है।'

मनु बेन ने कहा-"बापू का जीवन प्रेरणा का खजाना था व मैंने इस खजाने को अपनी आंखों से कई वर्षों तक देखा है मैंने उनके जीवन से बहुत कुछ प्राप्त किया है। मैंने सीखा है कि मनुष्य अपने को विनम्र और छोटा मानकर

ही अपने जीवन में कुछ काम कर सकता है। आपसी सहयोग के बिना जीवन की सफलता संभव नहीं है, क्योंकि यह जीवन कई सहयोग और सद्भावनाओं का फल है। बापू का जीवन इस बात का प्रेरणा स्तम्भ है कि यदि मनुष्य निस्वार्थ भावना से साहस और ईमानदारी के साथ काम करे तो असंभव को भी संभव कर सकता है। श्रेष्ठ बनने के लिये यह जरूरी नहीं है कि व्यक्ति किताबी ज्ञान में तेज हो। इसके लिये तो चरित्र की पवित्रता और दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है।''

बापू की गुण ग्राहक शक्ति

"क्या बात है कि अधिकांश लोग एक से एक बढ़कर प्रेरक नाटक और चलचित्र देखते हैं, किन्तु ऐसी बात सामने नहीं आती है कि उनसे वे कुछ अच्छाई सीखते हैं। जबकि बापू ने सिर्फ 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' नाटक देखकर ही सत्य के आदर्श को अपने जीवन में धारण कर लिया, और उससे संसार को ऐसा चमत्कार बताया कि दांतों तले अंगुली दबानी पड़ रही है। आखिर यह क्यों ?"—मैंने सवाल किया।

मनु बेन बोली— "हम साधारण लोगों और बापू की गुण ग्राहक शक्ति में बुनियादी अन्तर है। आज हम कितना भी प्रेरणादायक नाटक या चलचित्र देखें, किन्तु उससे बुराइयां ही ग्रहण करते हैं और अच्छाइयों को छोड़ देते हैं। लेकिन बापू की गुण ग्राहक शक्ति इसके विपरीत ही काम करती थी। वे अच्छाइयों को लेकर बुराइयों को थोथे चने

की तरह उड़ा देते थे। बापू कहा करते थे कि हमारी मनोवृत्ति हमें नीचे गिरा रही है।"

सच्चा मानव बनना चाहते थे

"मनुबेन यह तो बताइये कि बापू अपने जीवन में क्या बनना चाहते थे ?"

"भाई साहब, बापूने अपने जीवन भर मानव हित के काम किये हैं। वे कहा करते थे कि मैं तो एक सच्चा मानव बनना चाहता हूँ। मुझे किसी सत्ता अथवा महत्त्व की आवश्यकता नहीं है। अफ्रिका में काले गोरे के कलंक को मिटाने के लिये बापू ने जो जोखम भरा साहस दिखाया था—वह इसी भावना का प्रतीक है। वे केवल 'कथनी' से ही सच्चा मानव बनने की अभिलाषा नहीं करते थे बल्कि इस पावन संकल्प की पूर्ति के लिये १८–१८ घण्टे तक काम करते थे। जबकि उन दिनों उनकी उम्र ७८ वर्ष थी। आज हम साफ-सुथरी सड़क होने पर भी बिना जूते, चप्पल और सेन्डल के नहीं चल सकते हैं। लेकिन बापू तो बिना चप्पल के कंटीले रास्तों और खेतों को पार करते हुये गांव-गांव घूमते थे। कई बार मैंने अपनी आंखों से देखा है कि उन के पैरों से खून बहता रहता था फिर भी वे ग्रामीणों तक पहुँचने के अपने संकल्प से पीछे नहीं हटते थे। वे दूसरों से रास्ता साफ करने की बात नहीं कहते थे। कई बार उन्होंने अपने हाथ से बबूल की कांटों भरी शाखाओं को रास्ते से दूर हटाया है। वे कहते थे कि अस्वच्छता की स्वच्छता करना, और कांटों को रास्ते से हटाना मेरा धर्म

कर्त्तव्य है। वे हृदय की स्वच्छता में भी विश्वास करते थे।

जन सेवक बापू

मैंने पूछा— "मनुबेन, बापू के जन सेवक रूप की झांकी के भी तो दर्शन कराइये।"

"एक झांकी तो मुझे अभी तक स्मरण है। नोआखाली यात्रा के दौरान में यह देखने को मिली थी। बापू गरीबों की एक बस्ती से गुजर रहे थे। उन्हें रास्ते में बच्चे के कराहने की आवाज सुनाई दी। वह आवाज एक टूटी-फूटी झोपड़ी में से आ रही थी। वे झोपड़ी के अन्दर पहुँचे। वहां देखते क्या हैं कि एक टूटी सी खटिया पर १० वर्षीय एक बालिका गुदड़ी में लिपटी पड़ी है। खटिया के पास ही बैठे उसके पिता ने बताया कि बच्ची को तेज बुखार है घर में शीत का बोलबाला है। इस कारण खतरा और भी बढ़ गया है। वह मेहनत मजदूरी करता है। ४-५ दिन से बच्ची की देखभाल करने के कारण वह भी नहीं कर पा रहा है। बिना पैसे के कोई डाक्टर उसकी कीचड़ भरी झोपड़ी में आने के लिये तैयार नहीं है। उसने रोते हुये कहा— "बाबा, मेरी यह इकलौती बेटी अब कुछ ही घण्टे की मेहमान है।" बापू ने उस बच्ची को टटोलकर देखा। वह ठंड के मारे बुरी तरह से कांप रही थी। ठंड का मौसम चल रहा था। बापू ने अपनी चद्दर उतार कर बालिका को ओढ़ा दी। १५-२० मिनिट बाद बच्ची को गर्मी पहुँची और उसकी हृदय भेदी कराहट में कमी हुई। पिता की आंखें खुशी एवं कृतज्ञता के भार से चमक उठीं। लेकिन सिर्फ लंगोटी पहने बापू कांपने

लगे थे। करीब आध घण्टे में बच्ची की हालत सुधर गई। बापू ने उसका प्राथमिक उपचार भी किया था। बच्ची के पिता ने पूछा— बाबा, मुझे तो ऐसा लगता है—आप ईश्वर या फिर पैगम्बर हैं। मैंने अपने जीवन में ऐसा चमत्कार कहीं नहीं देखा है। मैं आपसे विनती करता हूँ कि यह बताइये कि आप कौन हैं ?"

बापू ने मुखरित हंसी हंसते हुये जवाब दिया- "भाई मैं न तो पैगम्बर हूँ और न ही ईश्वर। मैं तो जनता का एक छोटा सा सेवक हूँ। तुम शायद मुझे कोई इनाम देना चाहते हो। मेरा इनाम यही है कि मानव मानव में आपस में प्रेम भाव बढ़ाइये और हिन्दू-मुसलमान में एकता पैदा कीजिये।"

" मैं महात्मा नहीं हूँ "

मनुबेन ने कहा-- "आजकल शिष्य अपने गुरु का और बेटे-बेटियां अपने माता-पिता का आदर करने से कतराते हैं। इस पीढ़ी के लिये बापू आदर्श की ज्योति के रूप में प्रकाशित हैं। एक घटना याद आ रही है। एक दिन सेवाश्रम में भावनगर के ३१ वर्षीय महाराजा बापू से मिलने आये। बड़े-बड़े अंग्रेज शासकों की थोथी महानता को भी महत्त्व न देनेवाले ७२ वर्षीय महात्मा गांधी ने ३१ वर्षीय महाराजा का स्वागत किया। इस बारे में उन्होंने कहा था- "अतिथि चाहे साधारण आदमी हो या असाधारण हमें उसे सम्मान देना ही चाहिये।" मैंने बापू की छत्रछाया में रहकर ऐसा आभास पाया है कि बापू में एक दैवी शक्ति

का चमत्कार विद्यमान था। ऐसे ही एक चमत्कार की स्मृति आज तक मैं नहीं भूल सकी हूँ। बापू ने ३० जनवरी १९४८ को सुबह प्रार्थना सभा में कहा था—"मेरे मुँह में राम नाम हो और कोई मुझे गोली मार दे तो मैं महात्मा हो जाऊँगा। लोगों ने मुझे महात्मा बना दिया है। लेकिन मैं महात्मा नहीं हूँ।"

उपचार संबंधी विचार

बापू की पौत्री ने बापू के उपचार संबंधी विचारों की जानकारी भी दी। बोली—"बापू नैसर्गिक उपचार में विश्वास रखते थे। हवा और पानी को ही सबसे उपयोगी दवा मानते थे। वे सुबह टहलने की आदत को हजार दवाओं के बराबर मानते थे। इसके साथ ही यह भी कहते थे कि व्यक्ति को नियम पूर्वक भोजन करना चाहियें और सप्ताह में एक दिन उपवास रखना चाहियें। इससे चिंतन शक्ति में प्रखरता आती है। एक दिन मौन वृत्त रखने से भी शरीर और मस्तिष्क पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है।"

ईश्वर अल्ला तेरा नाम

बापू के धर्म संबंधी विचारों के बारे में मनुबेन ने मेरे द्वारा पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में कहा—"बापू सब धर्मों को समान भाव से देखते थे, क्योंकि सबके सिद्धांत एक सरीखे हैं। सिर्फ भाषा का अन्तर है। वे तो इसीलिए गाते थे—"ईश्वर अल्ला तेरा नाम।"

राष्ट्रपिता की खुराक

"बेनजी, बापू की खुराक के बारे में जानने की सब उत्सुकता है। कृपया वह भी बता दीजिये"--मैंने पू

मनुबेन बोली-- "बापू सुबह गरम पानी के साथ का सेवन करते थे। फल सस्ते होते तो रस लेते थे। में मौसम्बी और संतरा पसंद था। दोपहर के समय औंस दूध, २ तोले की चपाती, हरी भाजी--करेला, व गाजर लेते थे। वे नमक नहीं खाते थे। इस भोजन साथ ही वे केले, पपीते तथा आम भी खाते थे। शाम समय ८ औंस बकरी का दूध पीते थे। कस्तूरबा के से उन्होंने दूध पीना शुरू किया था। गाय का दूध इस नहीं पीते थे कि वे गायों के प्रति होने वाले अत्याचार दुखी थे। लोग दूध देती गाय की तो देखभाल करते और बाद में डंडे खाने के लिये हकाल देते हैं।"

दिनचर्या

बापू की दिनचर्या के बारे में आपने जानकारी दी वे सुबह ३॥ बजे उठकर अपना कार्यारंभ करते थे एक-एक मिनिट का हिसाब रखते थे। अपनी डायरी हर घण्टे की जानकारी लिखते रहते थे। भोजन के स अखबार पढ़ते थे। चिट्ठियां भी इसी समय पढ़ी जाती थीं तत्पश्चात् घूमने एवं भेंट करने का कार्यक्रम रहता था। सब तरह की चर्चा करते थे। जिस किसी को भी देते थे--उसका पूरा-पूरा पालन करते थे।

'कर्तव्य-कर्म की महानता'

लेखक :— संतोष लोहार 'विश्वकर्मा'

'साधन के कारण ही तन की महानता है।' फिजुल साधन के लिये, तन को गँवाना व्यर्थ है। मन के मुताबिक, तन का चलन होता है। मन बड़ा चंचल है। मन का भाव जबान पर आता है, और परिणाम बेचारे तन को भुगतना पड़ता है। यही शिकायत करते हुये रहिमनजी कहते हैं कि—

"रहिमन जिह्वा बावरी, कही गई सरग-पताल।
आपु तों कही भितर रही, जुति खात कपाल।"

भावार्थ है— हमारी जिह्वा (जबान) पागल-सी है। वह बहुत बड़ी-बड़ी बातें कहती है। अगर गल्ती से कुछ बोला गया तो, वह मुंह में ही छिप जाती है। लेकिन सामने वाला एक उठाकर मुंह पर जमा देता है। मन का जबान पर आया, तो तन को परिणाम भुगतना पड़ा। मन की परिभाषा का दूसरा नाम है 'चंचलता'! अगर पृथ्वी से स्वर्ग तक सिढ़ियां होती ना, हमारा चंचल मन, वहां भी तन को लेकर, जाने को कमी न करता!

मन के अनेक रिस्तेदार हैं। षड्रिपु को तो, मन का परिवार ही समझ लीजियें। अगर हम एकाध रिस्तेदार से मिल गयें तो, हमारा सत्यानाश ही समझो। उदाहरण के तौर पर समझ लीजिये कि 'गर्व' यह एक मन का पारिवारिक रिस्तेदार है। अब 'गर्व' से ही मन का रिस्ता-नाता जोड़ा गया।

अतः मन भी 'गर्विष्ठ' हुआ। अगर हमें 'गरूर' हुआ तो, जीना ही मुश्किल हो जाता है। 'गरूर' तो मिट्टी में मिला देता है।

इसी भावार्थ में एक कहानी है। किसी नगर में साहूकार रहता था। देहाती, साहूकार को बहुत थे। गांव वाले प्यार से उसे 'दाऊ' नाम से पुकारते 'दाऊ' बिना गांव की, एक भी न चलती थी। दाऊ पास बहुत जमीन थी। 'दाऊ' खुद को, खुदा-सा मान था। 'मैं करूँ--सो कायदा' इसमें ही उसकी मनो बढ़ गई। धन का घमंड हुआ और यही कहता कि— 'अब मुझे किसी से क्या वास्ता! मुझे जुमला, धन-दौलत, घर--दार, बीबी-बच्चे सब कुछ मुझे किस बात की कमी।'

साहूकार का मन 'गर्विष्ठ' हुआ तथा तन भी हुआ। पूछना ही क्या? साहूकार अब रंग-रंगेली में मस्त रहने लगा। लोक--संग्रह की ओर नाक-भौं सिकोड़ने लगा। लोकमत को ठुकराकर साहूकार 'शराबी' बना मन-तन शराब के आधिन हुआ। 'शराबी' क्या होता है? क्या पाता है?— इसे तो आप भली भांति जानते हो। मैंने आप को शुरू में ही कहा है कि—

* 'साधन' के कारण तन की महानता है। साहूकार शराबी बने। ** 'शराब' यही साहूकार का साधन हुआ। तथा 'शराबी' यही साहूकार की 'महानता' हुयी। मन गर्विष्ठ तथा तन भी, उन्मत्त होकर गिड़गिड़

लगा। साहूकार अब अकेला रहा। समाज ने हुक्का पानी बंद कर दिया। साहूकार की इज्जत असमत मिट्टी में मिल गयी। एक समय था कि, जब साहूकार घी-रोटी खाता था, अब उसे दर-दर घूमकर बासी रोटी खानी पड़ती। इतना ही नहीं तो गर्विष्ठ मन के मुताबिक चलने वाला, उसका तन भी चल बसा।

क्या कमाया साहूकार ने ?.... अपनी जीवनी को दुखभरी बनाकर, इस दुनिया से दूर चला गया। इसी तरह हमें समझना चाहिये कि — 'मन को हमें काबू में रखना चाहिये।' शरीर को नष्ट करना तथा मन को विकारी बनाना, इसमें हमारी महानता नहीं है। बुरे साधनों से हमें दूर रहना चाहिये। बुरे साधनों में मस्त रहकर जीवन गँवाना, इसमें जीवन की 'साधना' नहीं है। मानव जीवन तो पानी का बुदबुदा है, ... क्षणभंगुर ! हमें नेकी से बर्ताव करना चाहिये। मानवता अपनानी चाहिये। फरिस्ते के रूप में दूसरों को सहयोग देना चाहिये 'मानवोपयोगी' कर्तव्य--कर्म करना, इसमें ही हमारी महानता है। दूसरों की सेवा में जुटने के लिये ही, हमारा तन-मन 'साधन' रूप है, तब ही. हम 'साध्य' के रूप में 'महान' कहलायेंगे।

भूल जाते हैं कि-- चौरासी लक्ष योनी जन्म के बाद, मनुज को 'मनुज' जन्म प्राप्त हुआ है। यह हमारा सौभाग्य है कि -- हम मनुज हैं। यदि हम क्षणभंगुर जीवन में, कर्तव्य-कर्म भलाई के लिये करेंगे, तो हम

अवश्य ही मोक्ष को पा सकेंगे। दूसरों को दुख खाई में ढकेल कर मस्त रहने में, अपना कर्तव्य-कर्म न समझो। 'मेंबरशिप' के लिये 'रिश्वतखोरी' तथा झांकना' इसे अपना कर्तव्य-कर्म न समझो। केवल स्वार्थ वश बनकर, चंद चांदी के टुकड़े के लिये दूसरों को कीड़े-मकोड़े की तरह मसलना, किसी को विधुर-विधवा अनाथ-असहाय बनाना, इसमें 'अमानुषता' है, ये कर्तव्य कर्म 'हैवान-शिप' के लिये ही होते हैं।

उजड़े हुये जीवन में, दयाघन के रूप में ममता की बौछार करना, दीनों का जीवनोद्यान विकसित करना, इसमें ही हमारी 'मानवता' है। 'जन सेवा यही ईशसेवा' यह समझ कर, 'जन सेवक' के नाते सहयोग देना, इसमें ही हमारी महानता है। आत्मा यह परमात्मा होती है अतः भगवान्-परमात्मा यही कहते हैं कि— "तुम मोक्ष प्राप्ति के लिये कर्म करते जाओ। धर्म का अनुष्ठान ही मोक्ष को पा सकता है। तुम निष्काम भाव से कर्तव्य कर्म करो। फल की अपेक्षा रखना फिजूल है। कर्मफल त्याग से ही, अनंत शांति प्राप्त होती है।"

अगर हम अच्छे कर्तव्य-कर्म करेंगे तो, शांति अवश्य ही मिलेगी। 'हमें शांति चाहिये।' ... ... इस वाक्य पूर्ति के लिये ही स्वर्गस्थ म. गांधीजी, केनेडी, नेहरूजी आदि ने जीवन गँवाया है। वे हमेशा यही चाहते थे कि— 'हम सब एक हैं। कोई किसी से झगड़े-फिसाद न करे। शांति समता विश्व बंधुत्व इसमें ही हमारी 'मानवता' है।

तो फिर दानवताधारी 'हिटलर' बन के, खून बहाना, दूसरों की कला-संस्कृति मिटाकर, दूसरी संस्कृति बसाना इसमें 'शांति' कहां? शांति तो वह चीज है कि, जहां 'इन्सान से इन्सानियत से बर्ताव करें!' समाज का परिवार देखिये। एक भाई अपने भाई का खून का प्यासा होता हैं। सिर्फ जमीन के लिये! भाई अपने भाई का दुश्मन बन जाता है, तो ऐसे परिवार में 'शांति' कहां?

हम तो यही मानते हैं कि— 'दुनिया यह एक परिवार है। वहां स्नेह-संबंध, भाईचारे के नाते दृढ़ हों! शांति यह अशांति न बने!! सज्जनों का जीवन इसलिये ही होता है। सुरम्य शांति के लिये ही परम-पूज्य विनोबाभावे, अपना 'कर्तव्य-कर्म' कर रहे हैं। ग्राम दान, भूदान, संपत्तिदान, श्रमदान आदि द्वारा, 'जय-जगत' के नारे लगाते हुये, 'शांति' को बुला रहे हैं। वे हमेशा यही चाहते हैं कि— 'यहां सब एक हैं। कोई गरीब तथा अमीर ना रहे। शांति दोनों को चाहिये। अमीर को चिन्ता होती है कि— इस धन को मैं कैसे बढ़ाऊं। लखपति का करोड़पति कब बनूं। (इतना ही नहीं तो इन्कमटॅक्स से छुटकारा कैसे पाऊं)। इसमें मुझे शांति कहां।

दूसरी तरफ देखा जाय तो, दिन के चार टुकड़े चबाने वाले गरीब की चिन्ता यही है कि— "कब घर-दार, इज्जत-अस्मत मिलेगी। कब मेरे भाग जाग उठेंगे।" इसे भी कहां शांति?...... अमीर तथा गरीब

का जीवन देखकर हम यही महसूस करते हैं कि— '...का' मनुज जीवन से घना संबंध है। अटूट संबंध है।

इस तरह समाज में, गरीबी तथा अमीरी के ... में जो अशांति है, उसका 'सर्वोदय' के रूप में परि... करना ही, विनोबाजी अपना कर्तव्य-कर्म समझते हैं। ... तो सिर्फ इतना जानते हैं कि— 'कर्मों से रहित ... से शरीर का निर्वाह भी नहीं होगा। तो हमें मान... पयोगी' कर्तव्य--कर्म करने चाहियें। अथक बढ़ना चाहिये। बूढ़ा तो वही है. जो कर्तव्य-कर्म को नहीं करता।

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है, वैसे ही ... करने चाहियें।

कर्तव्य-कर्म करने से पहले हमें 'अहंकार-गर्व' ... त्यागना चाहिये। हममें किसी चीज की आसक्ति न रहे। 'मैं और मेरा' इससे ही आसक्ति का जन्म होता है। जिस... हमारा मन लगा रहता है, उसके लिये हम 'आस...' कहलायेंगे। जब आसक्तिक वस्तु का नाश होता है, तब हम उसके लिये दुख मनाते हैं। समझ लीजिये कि- मेरे पास एक घड़ी है। घड़ी को मैं जीजान से प्यार करता हूँ। घड़ी के लिये, मेरे मन में 'आसक्ति' है। मन घड़ी के लिये आसक्त है। दुर्भाग्य से एक दिन घड़ी को किसीने तो ... चुराया। मेरा आसक्त मन, अब दुखी हुआ तो हमें समझना चाहिये कि- 'आसक्ति' यही सब दुखों का मूल कारण है। अज्ञ लोग ही कर्म में आसक्त होकर कर्म करते हैं। यह याद रहे कि- इंद्रिय के अनुकूल विषय में अनुराग तथा प्रतिकूल विषय में द्वेष नियमपूर्वक स्थिर है।

मन से इंद्रियों को संयत करके, कर्मेंद्रियों से कर्मयोग का अनुष्ठान करना चाहिये। जो यह करता है, वह श्रेष्ठ है! अतः मन की संशुद्धि लाजिमी है। काम, क्रोध, लोभ को त्यागना चाहिये। अतः कहा ही है कि- इंद्रिय, मन और बुद्धि ये 'काम' का आश्रयस्थान हैं। 'काम' यह इन तीनों द्वारा ही जीवको मोहित करता है। आखिर हमारा जीवन वासनामय हो जाता है। जिस जीव में वासना हो, उसे अधिक क्लेश भुगतने पड़ने हैं। तथा अन्त में बरबादी भी! अपना जीवन वासनामय रखना, यह फिजुल है।

उदाहरण के लिये कविश्रेष्ठ कालिदास का 'रघुवंश' नाटक देखिये। उसके एक पात्र हैं 'अग्निवर्ण राजा'। अग्निवर्ण राजा बहुत वासना-विकारी था। अष्टोप्रहर ही वह वासना से संबंध रखता था। यहांतक की प्रजा को भी भूल जाता। उसे इतनी भी फुर्सत मिलती न थी। आखिर राजमंत्री ही राज-कारोबार देखते थे। अगर राजा के दर्शन लेने होते तो, अग्निवर्ण अपने महल की खिड़की से एक टांग दिखाकर दर्शन कराता था। इतना वह कामुक था। प्रजा को भूलकर स्वैराचारी बना। यहांतक की एक दिन वह घुलघुलकर चल बसा। दूसरी तरफ देखा जाय तो हमारे संतश्रेष्ठ विभूति तुलसीदासजी 'माया' को त्यागकर, 'संत' नाम से भूषित हुए। इन बातों की ओर मुड़कर हमें यह सोचना चाहिये कि— 'मन की संशुद्धि' यह कर्तव्य-कर्म के आवश्यक अंग हैं। क्रोध बड़ा पापी है तथा भक्षक भी है। उसे तो इस संसार का दुश्मन ही मानना चाहिये। जो मनुज

काम, क्रोध तथा लोभ में स्वार्थांध बनकर जीवन व्यतीत करता है, वह कभी भी चैन की सांस नहीं ले सकता। अगर हम षड्रिपु में मस्त होते हैं. तो हम अच्छे कर्तव्य-कर्म करेंगे ऐसा असंभव है। क्योंकि स्वार्थांध बना हुआ, स्वार्थ के लिए क्या करेगा, इसका भरोसा भी नहीं आता। वे हमेशा ही अनैतिक कर्म करते रहेंगे। स्वार्थहीन कर्म, यही नैतिक कर्म होता है। तो हमें ऐसे कल्याणकारक कर्तव्य कर्म करने चाहियें। ऐसे कर्मों से हमें बांध लेना चाहिये। सूर्य नदी आदि ने भी तो खुद को कर्तव्य-कर्म से बांध लिया है। वैसे ही हमें अहंशून्य, आत्मत्याग तथा ईश्वरशरणागति से, खुद को भूलकर कल्याणदायक कर्तव्य कर्म करने चाहियें।

आत्मकल्याण से परमार्थ तक हमें बढ़ना चाहियें। अगर हमें मानव सेवा करनी हो तो, दान-दया, करुणा-उपकार वृत्ति इन प्रवृत्तिओं को सात्विक अधिष्ठान देना चाहिये। सत्त्व, रज, तम ये गुण तथा पंचमहाभूतों का वरदान हमें ही हमारा शरीर है। ईश्वर केंद्रित मन से, योगस्थ वृत्ति से हमें कर्तव्य कर्म करने चाहियें। कर्तव्य-कर्म से ही हृदय की शुद्धि होती है। मानवसेवा, समाजसेवा, देशसेवा के लिये हमें 'कर्मयोगी' बनकर कार्यरत होना चाहिये। लेकिन कर्तव्य--कर्म करते समय, 'मैं कर्ता हूँ' ऐसी शेरदी बताना मूर्खता है। वह मूढ़ात्मा है। भूल जाता है कि— सब कर्म प्रकृति के गुण से, सब प्रकार निर्वाहीत हैं। प्रकृतिजन्य गुणों से वश होकर सब लोग कर्तव्य कर्म करते हैं। सुज्ञ लोग भलाई की ओर तथा लोक संग्रह की ओर देखकर अपना

कर्तव्य-कर्म करते हैं। यही सोचकर हमें 'जन-सेवक' के नाते जुट जाना चाहिये आत्मा यह परमात्मा होता है। अतः 'जनसेवा यही ईशसेवा', यही सोचकर ज्ञानी पुरुष ने जीवन व्यतीत करना चाहिये। निष्काम भाव के साथ, सब कर्म स्वयं करते हुये, तथा अविवेकी पुरुषों को भी कर्म से युक्त होना चाहिये।

द्विविद्या-निष्ठा, नैष्कर्म में ही कर्मयोग' का श्रेष्ठत्व है। इस योग के ज्ञान से ही हम कर्म के बंधन को काट सकेंगे। तब ही हम 'ब्रह्मस्वरूप' को पा सकेंगे, अपितु नहीं। कर्तव्य-कर्म में निश्चयात्मक बुद्धि एक ही रखनी चाहिये। कर्मयोगी का आचरण, बड़े भय से रक्षा कर सकता है। साक्षात् भगवान् भी अपना कर्तव्य-कर्म करते हुये कहते हैं कि—

'यदि मैं कर्म न करूँगा तो, ये सब लोग नष्ट होंगे। प्रकृति के गुणों से मोहित होकर जो लोग गुण कर्मों में लगे होते हैं, उन अधुरे-ज्ञानी तथा मंद बुद्धिवालों को भी न हटाओ। श्रद्धायुक्त और दोष की दृष्टि से रहित, जो लोग मेरे मत के अनुसार चलते हैं, वे ही कर्मों से 'मुक्त' हो सकते हैं।

घर, परिवार, समाज, देश के लिये हमें कर्तव्य-कर्म करने चाहियें। देश हमारी सांस है। देश हमारी जान है। सांस बिना जान नहीं। अनाज बिना जान नहीं। 'जय किसान'! तेरी जयजयकार हो। क्योंकि तू लाखों का अन्नदाता है।

'अधिक धान उगाना, उपज बढ़ाना यही तेरा कर्तव्य-कर्म है। आज तुझे लाखों की जानें बचानी हैं। तुझे भी खेती में युद्ध करना होगा।

'जय जवान!' तेरी भी जयजयकार हो। तुझे भी दे... मातृभूमि की, जीवित-संस्कृति की रक्षा के लिये युद्ध कर... चाहिये। हिंसा को पावन करना यही अपना कर्तव्य-क... समझो। शांति, समता, अहिंसा से युद्ध करना होगा। हमें युद्ध नहीं चाहिये। प्रतिस्पर्धी पर हम आत्मरक्षा के लि... ही धावा बोलेंगे। अन्यथा नहीं। आत्मरक्षा, देश-संस्कृ... के लिये ही हम जान हथेली पर लेकर मुकाबला करते हैं। यह कर्तव्य कर्म करते समय हम यही जानते हैं, कि 'मा... गये तो स्वर्ग मिलेगा। अगर जीवित रहे तो मातृभू... की सेवा मिलेगी।

'जय मजदूर'! तेरी भी जयजयकार हो। तुझे भी अ... कष्ट करने चाहिये। यंत्रों से ही लड़कर पसीना बहाना चाहिये। अधिक उत्पादन! यही तेरा विश्राम है, अन्यत्र नहीं।

इसलिये किसानो, जवानो तथा मजदूरो, तुम 'युद्धा... कृत निश्चयः' याने युद्ध के लिये खड़े हो जावो। अपने कर्त... कर्म से परांगमुख न हो। भलाई के लिये, मृत्यु आना ... अपना कर्तव्य-कर्म समझो। तुम जो श्रेष्ठ आचरण करोगे आम लोग भी वही करेंगे। अगर तुम्हें देखकर कोई न माने तो, हम सिर्फ यही कहेंगे कि—सब प्राणी अपने अपने स्वभाव का अनुसरण करते हैं उसमें हमारी और तुम्हारी निग्रह शक्ति क्या करेगी?

हींग

लेखकः— सूर्य चिकित्सा विशारद नंदकिशोर शर्मा

यह प्रकृति प्रदत्त एक अमूल्य औषधि रत्न है जो प्राणी मात्र के लिये परमोपयोगी है। कोई विरला ही व्यक्ति ऐसा होगा जो इससे भली भांति परिचित न हो। किन्तु फिर भी इसके अनुभूत चमत्कारिक गुणों से अधिकांश मनुष्य अपरिचित ही हैं। अतएव इसके फलप्रद गुणों का दिग्दर्शन होना परम आवश्यक प्रतीत होता है। अस्तु

वर्णन— हींग दो प्रकार की होती है सुगन्धित और दुर्गंधित। सुगंधित हींग सुगन्धयुक्त स्वादु और उत्तम वर्ण वाली होती है तथा दुर्गंधित दुर्गंधवाली और लाल वर्ण की होती है। इसकी उत्पत्ति के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। कुछ का मत तो यह है कि हींग अंजदान वृक्ष का गोंद होता है और कुछ इसे अंजुदान वृक्ष के पत्तों का रस मानते हैं।

किन्तु वास्तव में यह एक प्रकार के कन्द का घन किया हुआ रस है जो काबुल अफगानिस्तान आदि प्रदेशों में उत्पन्न होता है। जिसके कारण अफगानी लोग इसका व्यापार खूब करते हैं और सैकड़ों मन की तादाद में इसे लाकर नगर २ में बेचते फिरते हैं। प्रायः ये लोग गन्दी वस्तुओं को मिलाकर बनावटी हींग को असली हींग के नाम से बेच जाते हैं। इनकी मिलावट इतनी बारीक होती है कि प्रत्येक मनुष्य असली नकली के भेद को नहीं

पहिचान सकता है। अतएव आज कल अधिकांश बना
हींग ही अधिक व्यवहृत हो रही है जो लाभ के स्थान
हानिप्रद होती है।

उत्तम हींग की पहिचान-- प्रारम्भ में जब यह आती
तो मधु के समान मुलायम और दूध के समान श्वे
वर्ण वाली होती है। सूखने के पश्चात् अपनी भूमि
अनुसार वर्ण वाली हो जाती है। इसका वर्ण सुर्खी लि
हुये पीला तथा सफेद होता है। शुद्ध हींग चमक
सुगन्धयुक्त तथा स्वाद में कटु कषाय तिक्त रसवाली हो
है। शुद्ध और उत्तम हींग दियासलाई से जलाने पर
की भांति जलने लगती है। जलाने से पूर्व यह देख
चाहिये कि उसमें किसी चिकने पदार्थ का सम्पर्क
नहीं है -- क्योंकि बेचनेवाले इस परीक्षा को साबित क
के लिये तैल घृत आदि पदार्थों में भिगो लेते हैं अत
अच्छी तरह परीक्षा करने पर ही इसे खरीदना चाहिये।

प्रभावः-- जब उदर में आहार विहार के कारण दू
मल इकट्ठा हो जाता है और सड़ने लगता है तब पेट
कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और यही कृमि कालान्तर में पा
रक्त स्वल्पता आदि भयंकर बीमारियों की सृष्टि करते हैं त
जब भयंकर कोष्ठबद्ध और वायु के रोग उत्पन्न हो जाते
ऐसी हालत में हींग का प्रयोग अत्यंत लाभकारी होता
इसके प्रभाव से कृमि नष्ट हो जाते हैं और दूषित म
पचकर बाहर निकल जाता है, शरीर स्वस्थ होने लगता
अग्नि तेज हो जाती है खाया हुआ आहार भली भांति प

जाता है जिसके कारण रस रक्तादि धातुओं की भी उन्नति होती है।

गुण-- सहस्रवेधि जतुकंवाह्लीकं हिंगुरामटम् ।
हिंगुष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वात बलास हृत ॥
शूल गुल्मो दारा नाह क्रिमिघ्नं पित्त वर्धनम् ।
(भा. वि.)

अर्थात्:-- सहस्रवेधि, जंतुकं, वाह्लीकं, हिंगुरामठ यह हींग के संस्कृत नाम हैं। हींग गरम पाचक तथा रुचिकारक है, तीक्ष्ण है वात बलासक ज्वर को नष्ट करने वाली है और पित्त को बढ़ाने वाली है शूल गुल्म, उदर आनाह और क्रिमियों को नष्ट करने वाली है।

प्रयोग विधि।

कौड़ी प्रदेश के शूल पर :— २ रत्ती उत्तम हींग मुनक्का में रख कर गरम पानी के साथ देने से अवश्य लाभ होता है आवश्यकता प्रतीत होने पर १ घन्टा पश्चात् इतनी सी मात्रा इसी विधि के साथ १ बार फिर दी जा सकती है।

वात शूल पर :— उत्तम हींग १॥ माशा लेकर १ पौंड पानी में डाल कर उबालें जब १॥ औंस शेष रह जावे तो पिलादें यह अत्यन्त लाभ दायक है।

गुल्म तथा प्लीहा पर :— आधी छटांक हींग को एक पाव मधु में खरल कर सुखा लें मात्रा—२ रत्ती मक्खन में रख कर खाना चाहिये। इससे गुल्म तथा प्लीहा और पेट का दर्द नष्ट होता है।

अफीम के विष पर :-- उत्तम हींग और मिर्च … भाग लेकर कूट पीस मधु मिलाकर रख लें इसे … की मात्रा में मधु के साथ खाने से अफीम का … नष्ट हो जाता है।

मूत्रावरोध पर :-- एक रत्ती उत्तम हींग १ … अर्क सौंफ के साथ आधे घन्टे पश्चात् पिलावें … पेड़ू पर कंसू के फूलों की पोटली से सेंक करना चाहि…

कर्ण शूल पर :-- शुद्ध तिल तेल ऽ= लेकर … ३ माशा हींग को उसी में मिलाकर रख लेवें … ६-७ बूंद कान में डालने से कर्ण शूल नष्ट होता …

दन्त शूल पर :-- जब दाढ़ या दांत खोखले … जावें और उनके उस खुक्खल; भाग में जब दर्द … लगे तो शुद्ध हींग को खोखले भाग में रखना चा… इससे शीघ्र ही दर्द बन्द हो जाता है।

इन्द्रिय की शिथिलता पर:-- सोते समय, उ… हींग पीस कर सीवन और सुपारी को छोड़ कर शि… द्रिय पर लेप कर प्रातःकाल गरम पानी से धो … २१ दिन निरन्तर प्रयोग करने से हस्त मैथुन आदि … प्राप्त हुई नपुन्सकता नष्ट होती है। सेवन काल में … ब्रह्मचर्य से रहें और विचार पवित्र रखें। नं. … हींग पानी में घोल कर कमरे में छिड़कने से संक्रा… रोग (प्लेग हैजा आदि) के जर्मस नष्ट हो जाते …

हैजा पर :-- हींग और आक की जड़ के वक्क… को समान भाग लेकर माष प्रमाण की गोली बना…

मात्रा २ से ४ गोली तक इसे पोदीना के स्वरस के साथ देने से हैजा नष्ट होता है।

उदर विकारों पर हिंग्वाष्टक चूर्ण। सोंठ, मिर्च, पीपल काला तथा श्वेत जीरा, अजवायन, अजमोदा, सेंधा नमक इन सबको बराबर लेकर कूट पीस कर कपड़ छन कर लें। इसमें ६ माशा भुनी हुई हीरा हींग मिला देवें यह चूर्ण समस्त उदर विकारों को नष्ट करने में राम बाण है।

मात्रा :-- ३ माशे से ६ माशे तक पानी के साथ इस्तेमाल करना चाहिये।

हिंग्वाष्टक चूर्ण एक प्रभाव शाली चमत्कारिक प्रयोग है एक आटा पीसने वाले व्यापारी प्रायः एक मैदे की सी लकड़ी भी साथ ही मिलाकर पीस डाला करते थे उससे उनको द्रव्य लाभ हो जाया करता था परन्तु उपभोक्ताओं को डिसेन्ट्री या पेचिश हो जाती थी एक रोगी हमारे पास आया जो डाक्टरों से निराश हो चुका था। उसे रक्त मिश्रित लाल सी आंव बूंद-बूंद रक्त, कुंथन कूल्हों में दर्द दिन भर लगा रहता था घड़ी भर चैन नहीं था। मुख का स्वाद अति कटु नमक तक कड़ुआ लगे इस परिस्थिति में वह मृत्यु की चुनौती स्वीकार कर रहा था हमने उसे धीरज बंधाया और कहा कि आयुर्वेद की कृपा से तुम पूर्ण रोग मुक्त होजाओगे।

हमने मूल कारण का निदान करके दिन में ५ बार हिंग्वाष्टक चूर्ण मक्खन मिलाकर चटाया पथ्य में खिचड़ी, दही, व फुलका दिये गये।

८ दिन में रोगी स्वस्थ हो गया।

गायत्री विज्ञान मासिक

[गुजराती भाषा में]

विशेष स्तम्भः- गायत्री मन्त्र का महत्व, लाभ, विधि, समय तथा अधिकारी।

गूढ़ मन्त्र के अनेकानेक महत्वपूर्ण लाभ।

गुरु मन्त्र के अनुष्ठान से प्राप्त ऋद्धि सिद्धियां।

साथ में अनेक विषयों के लेख हर मास में प्रकाशित होते हैं।

एक प्रति ५० पैसे, वार्षिक शुल्क ५)रु.

संपादक, गायत्री विज्ञान कार्यालय,

२०६, जवाहरनगर सोसायटी, गोरेगांव (पश्चिम) बंबई-

सुखमार्ग

मासिक-पत्र

सुख सम्पत्ति पाने के लिये सामाजिक, धार्मिक, वै... एवं स्वास्थ्य आदि सभी सामयिक समस्याओं से ओत-... ५० वर्षों से भारतीयों में जागरण का शंखनाद करने ... सचित्र 'सुखमार्ग' को अवश्य पढ़ें। यह बड़े-बड़े वि... के लेख लेकर हजारों की संख्या में छपता है। विशे... भी निकलते हैं। प्रश्न उत्तर और लेख समाचार ... छापता है।

वार्षिक मूल्य केवल १) नमूना मुफ्त।

पता—सुखमार्ग, केमीकल प्रेस, अ...
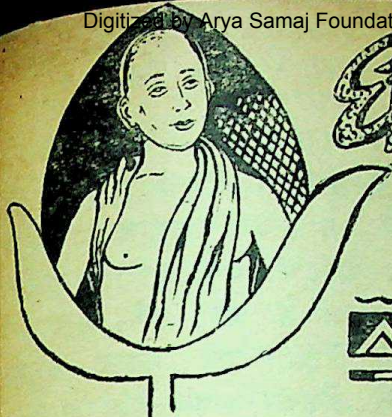
(गतांक से आगे)

इस प्रकार इस व्याधि को चर्म चक्षु नहीं देख सके फिर, भी शरीर में चेचक निकलने की क्रिया कभी से शुरू हो गई थी। हमारी इच्छा भी यह चेचक के दाग जो कि कैमरे के कांच के अन्दर दीखते थे परन्तु मुंह के ऊपर नहीं दीखते थे, उस प्रकार की है। ये इच्छायें एक समय जरूर सफल होनी चहियें। इच्छा और प्रारब्ध इन दोनों का इस प्रकार समाधान करने में आता है। परन्तु जब ऐसा है तो फिर फल प्राप्ति के लियें इतना भारी त्रास और दुःख किस लियें भुगतना पड़ा है? इच्छाओं को सफल करने के लिये जो कीमत देनी पड़ती है वह किस लियें? यह बात भी एक दृष्टांत से ठीक समझ में आयेगी।

एक मनुष्य अपने मित्र को मिलने के लियें बहुत ही आतुर था। वह अपने मित्र से बहुत दीर्घ काल से

विभक्त हो गया था, इस कारण वह एक विस्तीर्ण उसको लिखने लगा। अन्दाजा पौन घन्टे तक वह लिखता रहा। लिखने में वह इतना तल्लीन हो गया उसने ऊपर अथवा आस पास भी देखा नहीं; परन्तु पत्र पूरा करके ऊपर देखा है तो अपने प्रिय को अपने समक्ष खड़ा देखा। उस मनुष्य ने हर्ष आनन्दित होकर एकदम दौड़कर अपने मित्र से मु- कात की और फिर बाद में उसने मित्र से पूछा "तुम यहां कब से खड़े हो ?" उस मित्र ने दिया कि "मुझे यहां आये आधे घन्टे से भी समय हुआ।" बाद में वह मनुष्य बोला। "इतना समय होने पर भी तुमने मुझे क्यों नहीं बुलाया ?" मित्र ने कहा, "भाई तुम लिखने में इतने अधिक तल्लीन थे कि तुमको बुलाना मुझे योग्य नहीं लगा।"

तुम्हारी सब इच्छायें इस पत्र के लेखन जैसी हैं। तुम इच्छा करते हो, प्रयत्न करते हो, रटण हो, वस्तु प्राप्त करने हेतु बहुत दुःखी होते हो, सब उस पत्र लेखन के समान है। जिसको तुम लिखते हो और जो वस्तु प्राप्त करने की तुम कर रहे हो इन दोनों कर्मों के गूढ़ नियमानुसार से ये तुम्हारे पास आये हुये होते हैं। ये तुमको नहीं उसका कारण मात्र इतना ही है कि तुम लिखते रहते हो, इच्छा किया करते हो। जिस तुम इच्छा करते हुये, पत्र लिखते रुकोगे; उसी

तुमको तुम्हारी इच्छित वस्तु प्राप्त हुई दीखेगी। विलम्ब और दुःख रूपी कीमत देने का भी यही कारण है।

इस विषय को स्पष्ट करके समझाने के लिये हिन्दू शास्त्र में ऐसे हजारों दृष्टांत है। किसी एक राजा का मुख्य मंत्री जिसने लक्ष्मी देवी के साक्षात् दर्शन के लिये अनेक प्रकार से उपासना, तपस्या की थी। उसके सम्बन्ध में ऐसी एक कथा है कि उसने लक्ष्मी जी के साक्षात् दर्शन के लिये तपश्चर्या करना शुरू किया। अनेक पवित्र मंत्रों का जाप किया, लाखों जाप किये; परन्तु लक्ष्मीजी के दर्शन नहीं हुये। जिससे उसकी इन बातों पर से श्रद्धा उठ गई और संसार का त्याग करके सन्यास धारण किया। जब वह मंत्री सन्यास धारण करके अपने घरबार का त्याग करके वन में गया कि तुरन्त ही उसने लक्ष्मीजी को अपने सन्मुख उपस्थित देखा।, उसने हाथ जोड़ कर कहा "देवी! अब मुझे तुम्हारा काम नहीं है, तुम यहां से चली जाओ, अब तुम यहां किस कारण आई हो? अब तो मैं सन्यासी हूं। सन्यासी को धन, दौलत, वैभव और संसार विलास की वस्तुयें किस काम की हैं। जब मैं इच्छा करता था तब तुम आई नहीं; और अभी मैंने तुम्हारी इच्छा छोड़ दी तब तुम हमारे सन्मुख आई हो। "लक्ष्मीजी ने उत्तर दिया।" तुमने खुद अपना स्वतः का मार्ग रोक रखा था। जब तक तुमको इच्छा थी। तब तक तुमको द्वैत भाव का अभ्यास था। जब

तक तुमने अपने को दीन भिखारी की स्थिति में रखा छोड़ा था, तब तक तुमको कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ परन्तु जिस क्षण से तुम निस्पृह बनकर इन सबसे लात मारकर खड़े रहे। उसी क्षण तुम देव स्वरूप बनकर अपनी दिव्य महिमा में विराज मान हो गये अपनी सर्व कामनायें पूर्ण करने का यही सत्य रहस्य है

अनन्त जीवन का नियम

राम किसी अमुक मिशन, ईश्वरी पैगाम या संप्रदाय का होने का दावा नहीं करता। सर्व कार्य ईश्वर का ही है। बुद्ध और ऐसे दूसरे आदर्शों के दृष्टान्तों की हमको क्या आवश्यकता? हमारे मन का दैवी नियम के साथ सीधा अनुसन्धान होना चाहिये। बुद्ध और ईसु ख्रिस्त जैसों को भी उनके मित्र और अनुयायियों ने त्याग किया था। वनवास के सात वर्षों में से बुद्ध ने आखिरी दो वर्ष केवल एकांत वास में बिताये थे तब महाज्योति की उनको प्राप्ति हुई थी; और इसके बाद ही शिष्यों के जूथ उनके समीप आने लगे और सत्कार प्राप्त होने लगा। शुभेच्छुक सलाहकारों के अभिप्राय और विचारों में नहीं आना चाहिये। यदि उनके अभिप्राय दैवी नियम के आधीन होते तो आजतक उन्होंने पृथ्वी पर हजारों बुद्ध उत्पन्न किये होते।

मक्षिका जैसे शहद के अन्दर चिपक जाती है और अपने शहद वाले पैर धीरे-धीरे साफ कर डालती है उसी प्रकार हमको यह नाम — रूपात्मक जगत से

व्यक्तिगत आसक्ति का सम्पूर्ण त्याग करना चाहिये। ईश्वर की अन्तिम कृपा रूपी मृत्यु आकर इन सब अनावश्यक त्यागों की पूर्णाहुती नहीं करावें, उसके पहले हरेक प्रकार के सम्बन्ध एक के बाद एक छिन्न भिन्न हो जाने चाहियें और सब बंधन तोड़ देने चाहिये। दैवी नियम का चक्र सदा निर्दय और एक सरीखा फिरा करता है। जो ईश्वरीय नियम के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं, वे ही इस नियम पर आरूढ़ होते हैं। जो ईश्वर की इच्छा (ईश्वरीय नियम) के विरुद्ध अपनी इच्छा करता है। उसे छिन्न भिन्न होना ही पड़ेगा। उसको दारुण दुःख भोगने ही पड़ेंगे।

ईश्वरीय नियम यह त्रिशूल (क्रौस) है। यह क्षुद्र अहंकार (अहंभाव) का छेदन कर देता है। कोई राजी खुशी से इस त्रिशूल रूपी शूली पर चढ़कर अपना ध्वंस करता है, उसके लिये समग्र विश्व नन्दन वन बन जाता है। —क्रमशः
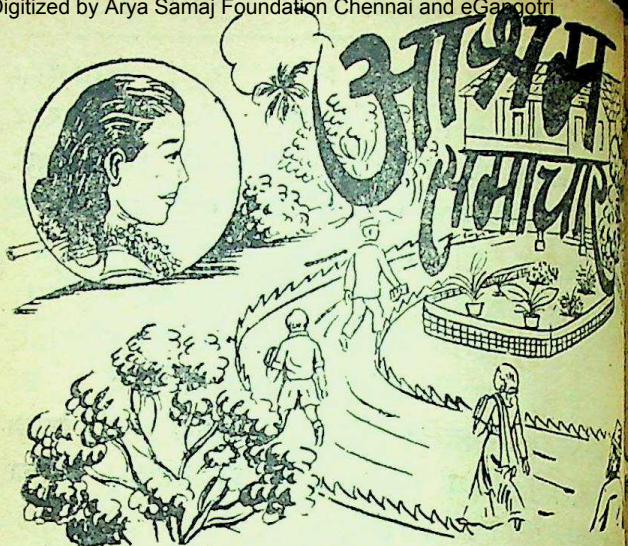
वक्ताः— डॉ. रघुभाई शास्त्रीजी

विषयः— पुराने रोग निवारणार्थ प्राकृतिक चिकि...

प्रिय भाइयो तथा बहनो ! आज का विषय है रोग ... दूर कैसे कर सकेंगे ? आजकल अनेक अस्पतालों में ... हुई पुड़ियां, मिठाइयां तथा अन्य आरोग्य के प्रतिकूल ... दिया जाता है। आहार से सप्त धातु बनती हैं। ... एवं विटामिन्स के अभाव से सप्तधातु शुद्ध कैसी हो स... हैं ? शुद्ध रक्त से आरोग्य बढ़ता है।

उग्ररोग

शरीर के अंतर्गत उदर स्थानमें रोग उत्पन्न करने... विजातीय द्रव्य के बाहर निकालते समय जो कष्ट... होती है, उसका नाम उग्ररोग है। पुराने रोग ही उग्ररो...

स्थिति में प्रवेश करते हैं। जैसे मलेरिया, निमोनिया, टी.बी. (T. B.) केन्सर, दमा आदि। नये रोग उत्पन्न होते हैं तब दवा द्वारा उस रोग को दवा देने से तत्कालिक आराम हो गया है ऐसा भास होता है, सन्तोष होता है किन्तु आन्तरिक रोगोत्पादक विजातीय द्रव्य तथा दवा के आधार से पुराने रोग उग्ररोग का रूप धारण करते हैं।

ब्लड प्रेशर

उच्चताप रक्तचाप और अधोताप रक्तचाप के होने पर मानसिक चिन्ता, मेद बढ़ता है। नमक, मिरच, इमली का अधिक सेवन, चाय, सिगरेट, अल्प विटामिन्स वाले आहारका सेवन, अनिद्रा से, व्यायाम के अभाव से, ऐसे अनेक कारणों से रक्त चाप (ब्लड प्रेशर) की बीमारी होती है। मलावरोध से भी यह रोग हो जाता है।

इलाज

योगके आसन करें, खानेकीदवा नहीं लेनी चाहिये। जुलाब की दवा नहीं लेनी चाहियें। आहार शुद्ध, मानसिक चिन्ता से मुक्त रहना। कटिस्नान, निर्व्यसन, १५ दिनों में एक वार उपवास, मलावरोध दूध, फल पत्ती की भाजी के सेवन से अच्छा होता है।

शारीरिक साधन

डा० गोपाल प्रसाद 'वंशी'

तप का अर्थ है शारीरिक साधना। शरीर ठीक न हो तो कोई भी कार्य नहीं हो सकता। शारीरिक साधना का अर्थ यह है कि शरीर में हर प्रकार की दशा को सहन करने की शक्ति हो और इस शक्ति को उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि शरीर को ठीक रखने की विधि का ज्ञान हो। शरीर को ठीक रखने की विधि क्या है, इसके लिये एक कहानी सुनें। समझाने के लिये शायद यह कहानी बनाई गई है। कहानी यह है:—

महर्षि चरक जब आयुर्वेद के सारे ग्रंथ लिख चुके, सर्व प्रकार की विधियों का, सर्व प्रकार की औषधियों का, चिकित्साओं का वर्णन कर चुके और उनका प्रचार हो चुका तो उनके मन में विचार आया कि चलूं, देखूं, लोग मेरे बताये हुए मार्ग पर चलते भी हैं या नहीं। मेरा परिश्रम सफल हुआ या नहीं। एक पक्षी का रूप धारण करके वे उड़े और वहां गये जहां वैद्यों का बाज़ार था। एक वृक्ष पर बैठकर पक्षी ने ऊंची आवाज में कहा, 'कोऽरुक्' अर्थात् रोगी कौन नहीं? एक वैद्य ने पक्षी को देखा, इसकी बात को समझा, बोला "जो च्यवनप्राश खाता है।" एक और बोला, "नहीं जो चन्द्रप्रभा वटी खाता है।" तीसरा वैद्य बोला, "जो बंग भस्म खाये वही आरोग्य है, वही अधिक स्वस्थ है" चौथे

वैद्य साहब बोले, "ये सब बातें गलत हैं, जब तक लवणभास्कर चूर्ण नहीं खाओगे तब तक पेट ठीक नहीं होगा।" चरक ने यह सब कुछ सुना तो दुःख हुआ उन्हें। आश्चर्य के साथ उन्होंने सोचा, "मैंने इतना बड़ा शास्त्र रचा तो क्या मनुष्य के पेट को दवाइयों का गोदाम बना दिया जाये?" मेरा परिश्रम निष्फल हो गया। कोई भी कुछ भी सीखा नहीं, इससे दुःखी होकर वे उड़े। कई स्थानों पर गए। हर स्थान पर उन्होंने कहा "कोऽरुक्।" कहीं भी ठीक उत्तर न मिला।

अन्त में दुःखी होकर एक उजाड़ सुनसान स्थान पर जा बैठे, एक सूखे वृक्ष की शाखा पर। इसके पास ही एक नदी बहती थी। नदी से नहाकर प्रसिद्ध वैद्य श्री वाग्भट्ट महाराज बाहर आ रहे थे। चरक ने उन्हें पहचाना, पुकार कर कहा, 'कोरुऽक्।' वाग्भट्ट चलते-चलते रुक गये। आंख उठाकर पक्षी की ओर देखा, बोले, "हितभुक मितभुक ऋतभुक।" चरक इन शब्दों को सुनते ही वृक्ष से नीचे आ गये। पक्षी रूप छोड़ कर वाग्भट्ट के समक्ष खड़े हो गये। तुम ठीक समझे हो वैद्यराज।

परन्तु इस हितभुक् मितभुक ऋतभुक का अर्थ क्या है? अर्थ इस प्रकार है और जो व्यक्ति स्वास्थ्य के इच्छुक हैं वे इन शब्दों को अपने घर की दीवारों पर लिखवा लें। हर समय इनका ध्यान रखें, हर समय इन पर विचार करें। हर समय उस उपदेश का पालन करें जो इन शब्दों में दिया गया है, हितभुक मितभुक ऋतभुक।

हितभुक का अर्थ है — ऐसी वस्तुएं खाओ जो आप के शरीर के लिये अच्छी हैं। केवल खाने के लिये मत जियो, जीने के लिये खाओ। जिह्वा के स्वाद में फंस-कर पेट में कूड़ा करकट न भरते जाओ। यह सोचकर खाओ कि जो खाते हो उससे लाभ क्या होगा?

यह जिह्वा बहुत नटखट है। नाना प्रकार के स्वाद ढूंढ़ती है। नाना प्रकार की वस्तुएं मांगती है। कभी कहती है गोल गप्पे खाऊं, कभी कहती है जल जीरा पियूं, कभी कहती है लाल मिर्चों का आचार खाऊं, कभी कहती है इमली की चटनी चाटूं। आप हर प्रकार की स्वाद वाली वस्तुएं खाइये परन्तु यह सोचकर खाइये कि क्या वे आपका हित करेंगी। आपके शरीर के लिये अच्छी होंगी। एक स्थान पर तले हुए बैंगन पड़े हैं, आलू के गर्म गर्म पकोड़े रखे हैं, लाल-लाल चटनी पड़ी है — इमली की चटनी, आम की चटनी, टमाटर की चटनी और पता नहीं कितने प्रकार की चटनी हैं। ये सब वस्तुयें पड़ी हैं, खाइये पर उस समय जब पता हो जाये कि इनके खाने से लाभ होगा। यदि स्वयं पता नहीं तो किसी वैद्य से पूछ लें। केवल स्वाद के लिये खाना आरम्भ न कर दें। ऐसी वस्तुयें खायें जिनसे शरीर को लाभ हो। मलाई, दूध, दही और मक्खन खावें। ये वस्तुयें प्रयोग करें जिनमें केवल जिह्वा को स्वाद न आये शरीर को भी स्वाद आये।

परन्तु मलाई खायँ तो कितनी ? यदि आप दो
मलाई खा जायँ, तीन सेर रबड़ी पेट में डाल लें
डेढ़ सेर मक्खन ही चट कर जायँ तो इससे शरीर
लाभ के स्थान पर हानि होगी। इसी लिये वाग्भट
दूसरी बात कही मितभुक। अच्छी वस्तुयें खायें, पर
थोड़ी खायँ। मर्यादा में रहकर खायें, मर्यादा से अधि
दिया हुआ अमृत भी विष हो जाता है। भगवान कृ
ने भी गीता में कहा :—

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। (गीता ६-१

अच्छी वस्तु खाओ। उचित मात्रा में खाओ,
में चार रोटियोंकी जगह हो, तो दो रोटियां खाओ
दो रोटियों की जगह पानी और हवा के लिये रह
दो। इसको कहते हैं उचित खाना।

लाहौर में था एक दुर्गा मोटा। एक तांगे में अके
बैठता था, आधा आगे आधा पीछे। युद्ध के दिनों
राशन आरम्भ हुआ तो उसने प्रार्थना की कि रा
के आटे से जितनी रोटियां बनती हैं, मेरा निर्वाह नहीं
होता। सर सिकन्दर हयात ने उसे अपने पास बुला
उससे कहा, "आज मैं देखूंगा तू कितना खाता है।
नौकरों को आज्ञा दी कि वे सेर भर आटे की रोटियां
बनाएं। बनी रोटियां दुर्गा सारी खा गया, बोला
'अभी तो आधी दूर तक पहुंचा हूं, इतनी ही रोटियां
और हों तो भूख मिटेगी।"

सो भाई मेरे। इस प्रकार से खाने का लाभ क्या? इतना खाओ जितना पच जाये, इससे अधिक खाओगे तो हानि होगी। काश्मीर में एक बार किंगकांग नाम का पहलवान आया था। लोगों ने बतलाया कि वह प्रातः नाश्ते में तीन दर्जन अण्डे खाता है। दो डबल रोटियां खाता है, एक पाव मक्खन और एक बाल्टी चाय, और फिर इसके बाद दोपहर को भी इसी प्रकार खाता है, शाम को भी रात्रि को भी। पूछा गया, "इतना खा के क्या करता है?" पता चला कि कुश्ती में दूसरों को गिरा देता है। जो इतना खायेगा वह दूसरों को गिरा देगा ही, उन्हें उठाने का कार्य उससे न हो सकेगा।

अन्ततः इस प्रकार खाने का लाभ क्या है? यह हर समय खाओ, खाओ, खाओ। क्या इसीलिए बना है मनुष्य? यह प्रातः को चाय, फिर विस्तरे में चाय, फिर काफी, और फिर चाय, और फिर चाय, और फिर चाय पी, चाय पी। इसके ही लिये क्या मानव दुनिया में आया था। अरे भाई, पेट की यह डेगची है न इसमें एक सीमा से अधिक नहीं आता। किस समय क्या डालना चाहियें यह सोचकर डालो। हर समय डालते न चले जाओ।

एक मां दाल बना रही थी। चूल्हे पर डेगची रख कर दो मुट्ठी दाल डेगची में डाल दी। आग जलने लगी। दाल अभी कुछ ही पकी थी कि दो अतिथि आ

गयें, उसने दो मुट्ठी दाल डेगची में डाल दी। अभी दूसरी दाल अधपकी ही थी कि तीन अतिथि और आ गयें। उसने तीन मुट्ठी दाल और डेगची में डाल दी। अब बताओ इस दाल का क्या बनेगा? क्या यह पकेगी? क्या वह कभी ठीक होगी? कुछ बहुत अधिक पक जायगी, कुछ थोड़ी पकेगी, कुछ कच्ची रह जायगी। यह पेट भी तो डेगची है। हर समय इसमें डालते जाओगे तो हानि होगी। इसलिये वाग्भट्ट ने कहा मितभुक। खाओ अवश्य, थोड़ा खाओ, मर्यादा के अनुसार खाओ।

परन्तु केवल हितभुक और मितभुक से कार्य नहीं बनता। मनुष्य यदि ऊपर उठना चाहता है, इस जीवन को उस लक्ष्य की ओर ले जाना चाहता है जिसके लिये यह मिला है तो आवश्यक है कि वह ऋतभुक भी बने। अच्छी वस्तुयें खायें, थोड़ी खायें, परन्तु वे वस्तुयें खायें जो उत्तम कमाई से पैदा की गई हों। कोई वस्तु ठीक कमाई से मिली या नहीं, इसका बहुत मनुष्यों का पता नहीं लगता। जो लोग सदा पाप का अन्न खाते रहें हों, उन्हें पाप और पुण्य में अन्तर दिखाई नहीं देता। सफेद चादर पर लगा हुआ धब्बा दिखाई देता है। हम कहते हैं धब्बा लग गया है। परन्तु काले कम्बल पर लगा हुआ दाग किसे दिखाई देता है? वह तो साधन से, ज्ञान से, प्रयत्न से ज्ञात होता है।

पूज्य महात्मा हंसराजजी एक बार हरिद्वार के मोहन आश्रम में ठहरे हुए थे। एक वानप्रस्थी उनके पास ही एक कमरे में रहता था। एक दिन यह वानप्रस्थी महात्मा जी के पास आया और जोर-जोर से रोने लगा। महात्माजी ने पूछा, "क्या हुआ आपको?" वह बोला, "मैं लुट गया। महात्माजी! मेरी उम्र भर कमाई नष्ट हो गई।" महात्माजी बहुत घबराये। पूछने पर पता लगा कि वह वानप्रस्थी पिछले कई वर्षों से ईश्वर भक्ति के मार्ग पर चलता हुआ ध्यान और उपासना की सीढ़ी तक पहुंच चुका था। रात्रि के समय अपने कमरे में बैठ जाता वह। भगवान् का ध्यान करता, ईश्वर की शीतल ज्योति उसे दिखाई देती, उसमें आनन्द से मस्त होकर वह घन्टों बैठा रहता। परन्तु कल रात उसके साथ एक अद्भुत घटना घटी, रोते हुए उसने कहा, "मैं ध्यान में बैठा महात्माजी तो ऐसा प्रतीत हुआ कि रोशनी में लाल दुपट्टे वाली एक नौजवान लड़की खड़ी है। मैंने घबरा कर आंखें खोल दीं। समझा कुछ भूल हो गई है। फिर प्राणायाम किया, फिर ध्यान से ज्योति को देखा, परन्तु वह लड़की अब भी वहीं थी। मैं इसे जानता नहीं। परन्तु बार-बार मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। मैंने बार-बार मुंह हाथ धोकर प्राणायाम करने का प्रयत्न किया है, बार-बार उसे हटाने का प्रयत्न किया है, परन्तु रोशनी में इसके अतिरिक्त और कुछ मुझे दिखाई नहीं देता। मेरी तो उम्र भर की कमाई लुट गई, मैं तो कहीं का रहा नहीं, पता नहीं मुझे क्या

हो गया है।" यह कहता जाता था और रोता था। महात्माजी ने पूछा, "किसी बुरे व्यक्ति की संगति में तो नहीं बैठे, कोई बुरी पुस्तक तो नहीं पढ़ी?" कहा, "ऐसा कुछ नहीं किया मैंने।" महात्माजी ने कहा, "कल तुम आश्रम से बाहर तो गये होगे।" वह बोला, "गया था, एक भंडारे में, एक सेठ साहब आये हैं उन्होंने भण्डारा किया था, वहां खाना खाने गया था।" महात्मा जी ने कहा, "जाकर पता लगाओ, वह सेठ कौन है, किसने भण्डारा किया है।" वानप्रस्थी गया। पता लगा। उसने बताया कि सेठ अमुक शहर का रहने वाला है (मैं नाम लेना नहीं चाहता)। वहां उसने अपनी नौजवान बेटी को एक बूढ़े के पास दस हजार रुपये में बेच दिया है। दो हजार रुपया लेकर वह हरिद्वार आया कि पाप का प्रायश्चित करने के लिये कर दे। महात्मा जी ने इस बात को सुनकर कहा, "यही वह नौजवान लड़की है जो तुम्हें दिखाई देती है। तुमने जो अन्न खाया, वह पुण्य भाव से दिया हुआ दान नहीं, पाप की कमाई का एक भाग है। उस हतभाग्य लड़की का मूल्य। जब तक यह अन्न तुम्हारे शरीर से नहीं निकलेगा। तब तक उस दुखी लड़की का दिखाई देना बन्द न होगा।"

यह पाप का अन्न खाने का परिणाम। आत्मा गिरती है। आगे बढ़ता हुआ मनुष्य इससे पीछे हटता है। इसी लिये वाग्भट्ट ने कहा, केवल हितभुक् और मितभुक् होना ही पर्याप्त नहीं मानव यदि हर प्रकार के रोगों से बचना चाहता है तो उसे ऋतभुक् भी होना चाहिये।

होली क्यों मनाई जाती है ?

लेखिका:— कृष्णा प्रधान

हर उत्सव के साथ उसका कुछ विशेष महत्व होता है. तभी उसे हर देश के व्यक्ति बड़े साज-शृंगार के साथ मनाते हैं जैसे दीपावली के सम्बन्ध में किंवदन्तियां हैं वैसे ही होली के सम्बन्ध में भी मानव विचारों का ढेर मौजूद है। शास्त्रों का अध्ययन करने से होली के सम्बन्ध में दो विचारधारायें समक्ष आती हैं।

एक बार राक्षसराज हिरणकश्यपु ने इतना तप किया कि समस्त ब्रह्माण्ड हिल गया, देवताओं के आसन जलने लगे। भगवान् विष्णु को उसे वरदान देने के लिये भेजा गया उधर उसके तप की परीक्षा के लिये भगवान् शिव एक सुन्दर पुरुष का भेष रखकर चले। उनका विचार था ऐसा करने से राक्षसराज की पत्नी को भगाकर हिरणकश्यपु का ध्यान भंग किया जाय। तब उधर आये हुये विष्णु भगवान् बिना वरदान के लौट जायँ, इस तरह राक्षसराज की तपस्या भंग हो जाय। उस समय हिरणकश्यपु की पत्नी गर्भवती थी और यही भगवान् प्रहलाद उसके गर्भ में थे। जब शिवजी उसकी पत्नी को ला रहे थे मार्ग में नारदजी मिले। शत्रु मित्र को जानने वाले नारदजी बोले "हे भगवन् यह आप क्या कर रहे हैं इस स्त्री के गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा वह सब देवताओं का नाश कर देगा" —भय के कारण शिवजी कांपने लगे, तब नारदजी ने अपने आश्रम में राक्षसपत्नी को नौ माह रखा। उस बीच नारदजी ने सारे वेद, शास्त्र, पुराणों

की कथा सुनाकर राक्षसपुत्र को गर्भ में ही राक्षस से भक्त बना लिया। उधर सबकुछ ज्ञात होने पर भी हिरणकश्यपु की तपस्या में बाधा न आने दी। और विष्णु भगवान् से वर लिया कि वह न दिन में मरे न रात में, न मनुष्य से मरे न ईश्वर से। न शस्त्र से मरे न अस्त्र से। भगवान् विष्णु ने तथास्तु कह दिया और अन्तर्धान हो गये।

उधर जब प्रहलाद का जन्म हुआ और वह बड़ा हुआ तो वह बड़ा ईश्वर भक्त था। नारदजी की शिक्षा का प्रभाव था। हिरणकश्यपु चाहता था कि "ईश्वर को कोई न पूजे सब मेरी ही पूजा करें। मैंने इतना तप किया है मेरे तप से समस्त ब्रह्माण्ड हिल गया। मुझसे बड़ा अब दुनिया में कोई नहीं है।" ऐसा सोचकर वह प्रहलाद की बातों का खण्डन करने लगा। जब दण्ड से बालक ने अपना भजन नहीं छोड़ा तो हर उपाय से उसने पुत्र को मरवा डालना चाहा पर ईश्वर की अद्भुत लीला जब हर प्रयत्न से भी प्रहलाद नहीं मरा तो हिरणकश्यपु बहुत निराश हुआ। उन्हीं दिनों उसकी बहिन आयी हुई थी। भाई के दुखी होने का कारण जब उसे ज्ञात हुआ तब वह भाई के पास गई और बोली 'इसमें डरने की क्या बात है न निराश होने की। जल्द से जल्द एक चिता तैयार करवाओ। मैंने सूर्यदेवता की पूजा की थी जिसके वरदान स्वरूप मुझे एक शीतलाम्बर प्राप्त हुआ है जिसको ओढ़कर अग्नि में बैठने पर भी शरीर नहीं जलता है। अतः हे भाई मैं प्रहलाद को अपनी गोद में लेकर बैठ जाऊँगी। मैं तो शीतलाम्बर के कारण वैसी ही निकल

आऊँगी और यह प्रहलाद जल जायेगा।" भाई को यह युक्ति पसन्द आई। जल्दी ही सब तैयारियां हो गयीं। जब जनता को पता लगा तो वह बहुत निराश हुई और प्रेमवश मेवा मिष्टान ले लेकर प्रहलाद की पूजा करने हजारों लोग उमड़ पड़े। जब प्रहलाद की बुआ शीतलाम्बर ओढ़कर अग्नि में बैठ गई तो ईश्वर की कृपा ऐसी हुई कि पवन बड़े वेग से चलने लगा। बहुत जोर से पवन चला तो शीतलाम्बर बुआ (तोम्या) के शरीर से उतर कर प्रहलाद के शरीर पर लिपट गया और इसी कारण प्रहलाद उसमें से वैसेही निकल आये राक्षसी तोम्या का शरीर जल गया। यह थी वह कहानी जिससे प्रतिवर्ष पैदा होनेवाले राक्षसों की स्मृति में होली जलाई जाती है और प्रहलाद की पूजा के लिये मेवा मिष्टान का भोग लगाया जाता है और जब प्रहलाद निकल आये उस खुशी में नर-नारी गले मिलकर खुश होते हैं वही प्रथा आज तक चली आती है।

इसके सम्बन्ध में एक और पौराणिक घटना समक्ष आती है कि—

एक महान् तपस्वी भृगु ऋषि की पत्नी पुलोमा अलौकिक सुन्दरी थी। मानव कल्याण के लिये भृगु ऋषि अग्निदेव की पूजा प्रतिदिन पांच बार विधिपूर्वक करके 'हवन' किया करते थे। प्रातः जब वे नदी पर स्नान करने जाते थे तो अपनी रूपवती पत्नी को अग्निदेव के संरक्षण में छोड़ जाते थे। इसका लाभ उठाकर एक दिन असुरों ने मिष्टानों का हवन चढ़ाकर अग्निदेव को प्रसन्न कर लिया और जब अग्निदेव सो गये तो राक्षस पुलोमा को चुरा ले गये।

जब ऋषि लौटे तो पुलोमा को न पाकर अग्निदेव से उसका पता पूछा किन्तु अग्निदेव मौन रहे। तब ऋषि ने क्रोधित हो शाप दिया— "हे नीच अग्नि आज से तुझे कोई हवन नहीं चढ़ायेगा और सूखकर तुम्हारा अन्त होगा।"

ऋषि के शाप से अग्निदेव सूखने लगे अग्नि के अभाव में चारों ओर हाहाकार मचा। तमाम कार्य रुक गये। देवताओंने ऋषि से अपना शाप वापस लेने की प्रार्थना की। पर ऋषि चुप रहे अन्त में भगवान् विष्णु स्वयं आये तब ऋषि को झुकना पड़ा। उन्होंने कहा ब्राह्मण के मुख से निकला हुआ शाप व्यर्थ नहीं जा सकता। मैं केवल उसमें सुधार कर सकता हूँ कि साल में एक ही दिन अग्नि को हवन चढ़ाया जायेगा और तभी से साल में एक दिन अग्नि की पूजा करके उसे नये अन्न से भोग लगाया गया। वह दिन होली के शुभ दिन के नाम से पुकारा जाता है।

इन्हीं किवदन्तियों के आधार पर ही यह त्यौहार आज भी उतने ही प्रेम से मनाया जाता है। आर्य संस्कृति में होली एक महत्वपूर्ण पर्व है वैर, विरोध, द्वेष, ईर्ष्या आदि कलुषित भावनाओं को अग्नि में भस्म करके स्नेह, प्रेम के आनन्द को प्राप्त करने का यह पवित्र यज्ञ ही तो हमारा होली का त्यौहार है।

इस पवित्र पर्व के दिन सब भाईचारे के नाते एक दूसरे के गले मिलते हैं। अपरिचितों को भी हँस हँस कर गुलाल लगाते हैं चारों ओर रंगविरंगे चेहरे दीखते हैं। बूढ़े, बालक, युवा सभी आनन्दमग्न हो इस त्यौहार का आनन्द भोगते हैं।

होली का यह पर्व प्राचीन काल से मानव मन में आनन्द का संचार करता रहा है और इसी प्रकार सदैव आनन्द प्रदान करता रहेगा।

(पृष्ठ १६ का शेष)

कारण बहुत परेशान हूं। कृपया आंखें लाल रहने का कारण तथा कोई आसनविधि या दवा का इलाज बतायेंगे तो आपका बहुत आभारी रहूँगा।

उत्तर नं १:— पित्त विकार, निद्रा न आने से, रक्त में अधिक उष्णता, मस्तिष्क की ओर रक्त का प्रमाण से अधिक भ्रमण और तमोगुण आहार से (शराब, सिगरेट, अधिक मिर्च, मांस, मच्छी का भक्षण, खाद्य पदार्थों में अधिक तेल का प्रमाण, अधिक तादाद में गरम जल से स्नान, धूप-सूर्य ताप में घूमना, वायुका अधिक तापमान आदि से) आंखें लाल रहती हैं।

उपचारः— उपरोक्त अनेक कारणों से कौनसे कारण तुम्हारे लिये संबंधित हैं उन कारणों से दूर रहना होगा। रात्रि को ८ घंटे स्वप्न रहित गाढ़ी निद्रा लेनी होगी।

उपचारः— ग्रीष्मऋतु में प्रातःकाल स्नान के पहले १० से ३० मिनिट तक ठंडे जल से कटिस्नान, स्नान के पहले रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से सारे शरीर की ३० से ४० मिनिट तक शिखा से पावों के अंगुष्ठ तक मालीश, रात्री को शयन के समय रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का सिरपर ५ मिनिट तक मालीश करें और इसी तेल से दोनों पैरों के तलुओं में ५ ५ मिनिट मालीश करें। चांदी की वाटी में तेल के साथ मालीश करने से अधिक लाभ होगा। हर बुधवार तथा हर रविवार को कान के छिद्रों में यह तेल छोड़ा जाय। हररोज मालीश के समय दोनों आंखों में इसी तेल को आंजा जायें। प्रातःकाल स्नान के पश्चात् इसी तेल से सिर में ५ मिनिट मालीश करें।

आसन प्रयोग

प्रातःकाल स्नान के बाद शलभासन २ मिनिट, शवासन १ मिनिट, पश्चिमोत्तानासन २ मिनिट, भुजंगासन ३ मिनिट, शवासन १ मिनिट, सुप्त धनुरासन २ मिनिट, शवासन मिनिट, पवन मुक्तासन ३ मिनिट, शवासन ४ मिनिट करिये।

प्राणायाम

चन्द्रभेदन प्राणायाम से अधिक लाभ होगा। सुखासन में बैठिए। दाहिनी नाड़ी (सूर्यनाड़ी) बन्द करके बांयी नाड़ी से ४ मात्रातक पूरक करें, १६ मात्रातक कुम्भक तथा ८ मात्रा तक रेचक करियें। यह एक प्राणायाम हुआ। तीन बंधों के साथ प्राणायाम करिये। आसनाभ्यास के पश्चात् ४ से १२ प्राणायाम करिए।

आहारः— प्रातःकाल योगाभ्यास के पश्चात् दूध और ४ अंजीर। मध्याह्न भोजनः- चावल अधिक, गेहूँ की रोटी अल्प तादाद में, साग-सब्जी, मूंग की दाल, हप्ते में २ बार उड़द की दाल, सेंधालूण (नमक,) हींग का उपयोग नहीं करें नमक अल्प तादाद में हों। भोजन के पश्चात् द्राक्ष तथा अमरूद (पेरु) का सेवन करें। स्नान के समय ब्रह्मरंध्र सिर के मध्य भाग में ठंडे जल की धार ७ मिनिट करें। क्रोध तथा चिन्ता से मुक्त रहें। सदा आनन्द के विचार, उच्च साहित्य का पढ़ना, सुनना, माता-पिता, गुरुजनों की सेवा करें। सत्संग तथा योगाभ्यास एवं प्राणायाम सदा करना अत्यन्त जरूरी है। नाड़ी शुद्धि, रक्त में अधिक उष्णता कम करने के लियें तैल मालीश आवश्यक है। शुद्ध सात्विक आहार से सप्तधातु शुद्ध होकर मनमें सात्विक गुण का उद्भव होता है।

श्रीनारायणप्रसाद अग्रवाल (हजारीबाग)

पत्र संख्या २

प्रश्न नं. १ :— मेरी उम्र ८० साल की है। पेट में दर्द होता है मीठा-मीठा लीवर की तरफ ३-४ बजे से और भोजन करने के बाद ८ बजे से रात में कम होकर शांत हो जाता है प्रातःकाल प्रायः नहीं रहता।

यदि उरद् का बड़ा या कोई पदार्थ खा लेता हूं, तो दर्द कम हो जाता और बन्द हो जाता है।

उत्तर नं. १ :— आपने अपने शरीर की प्रधान प्रकृति कौन सी है वह बताई। और कितने समय से चालू है वह नहीं लिखा। आहार की योजना अर्थात् आमिश अथवा निरामिश के बारे में भी नहीं लिखा है। रोगों के बारे में उपचार बताते समय गहरे विचार, परीक्षा, वास्तविक मूल कारण, लक्षण आदि अनेक महत्व पूर्ण विषयों के बारे में विचार विनिमयके पश्चात् हम योग्य यौगिक एवं प्राकृतिक उपचार बता सकते हैं।

अन्दाजा से उदर दर्द का कारण उष्णता का होगा। क्योंकि दिन में है। रात्री को शांत होता है।

उपचार

यौगिक उपचार :-- उड्डीयान २ मिनिट, लोलासन १ मिनिट, मत्स्यासन २ मिनिट, आकर्ण धनुरासन २ मिनिट, सिंहासन १ मिनिट, शवासन ६ मिनिट, चन्द्र भेदन प्राणायाम बांईनाड़ी (चन्द्रनाड़ी) से ४ मात्रा तक पूरक करके १६ मात्रा तक कुंभक करें पश्चात् ८ मात्रा तक सूर्य-

नाड़ी से रेचक करें तब २ प्राणायाम होता है। (जा... मूल तथा उड्डीयान बंध करने में भूलिये नहीं) ३ से ६ ... प्रातःकाल स्नान के पश्चात् करें, पेट के दर्द दूर ... के लिये लाभदायक होगा।

आहार

मनुष्य मात्र का प्राकृतिक एवं वास्तविक ... निरामिश (शाकाहार) हैं। आपकी प्रकृति के अनु... आहार का प्रबंध कर लीजिये। वायु वर्धक आहार व... करें। भोजन में उरद् की दाल, बैंगन, लौकी, ... करेला, मेथी की भाजी, रोटी, हाथों से कूटे हुए चाव... चोकर वाले गेहूँ के आटे की रोटी, सलाद। भो... का समय निर्धारित होना जरूरी है। कुएं का जल से... करें। कफ प्रधान शरीर होने पर प्रातःकाल आसनों ... पहले १० औंस गरम जल में १ चमच शहद के ... सेवन करें। पित्त प्रकृति होवे तो नींबु शरबत से... करें। प्रधान प्रकृति वायु कि होवे तो भोजन के ... छिलके के साथ संतरे और पपीते का सेवन क...

प्राकृतिक उपचार

प्रातःकाल ३० मिनट तक गीली मिट्टी पानी ... भिगोयें। गेहूँ की रोटी के समान बनाकर प्रातःकाल ... से ३० मिनट तक नाभी के नीचे के भाग में र... जाय। पश्चात् स्नान करें। यह उपचार २ महीने त... प्रतिदिन करें।

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

(महत्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचार आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

पुरुषों के लिये समय:—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

महिलाओंके लिये समयः—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सबेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आनेवाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता है।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

विशेष सूचना:— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबंध नहीं है।

ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
हम सबकी पसंद
बाल, मगज और शरीर मालिशके
लिये सर्व ऋतूमें लाभदायक है
सर्वत्र प्राप्य है
रामतीर्थ योगाश्रम,
MARCH 1966

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और
पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

रामतीर्थ

सम्पादक-
योगीराज
रमेशचन्द्रजी

वर्ष-७ अंक-१
अप्रैल १९६६

इस अंक का मूल्य
७५ पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 44289
विज्ञापन
तार-प्राणायाम दादर

मुख पृष्ठ का परिचय

भगवान् रामके दरबार में कुत्ते के न्यायका अवलोकन कीजिये विशेष विवरण हेतु इसी अंक के पृष्ठ ८ पर देखें।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० खेतवाड़ी रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्सेन्ट स्क्वेयर स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ मे प्रकाशित किया।

श्री कुलरंजन मुखर्जी का निधन

४ फरवरी १९६६

श्री कुलरंजन मुखर्जी भारत के इने गिने प्राकृतिक चिकित्सकों में से एक थे। वे प्राकृतिक चिकित्सा का व्यापक व्यवहारिक ज्ञान रखते थे, सिद्धांतरूप में भी वे उसके बड़े प्रतिपादक थे। उन्होंने बंगला और हिन्दी में प्राकृतिक चिकित्सा के संबंध में दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के श्री मुखर्जी एक स्तम्भ थे। भगवान् उनकी दिवंगत आत्माको शांति प्रदान करे -स[illegible]

विशिष्ट सूचनाएं

१- श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक के निर्धारित नियमानुसार अप्रैल १९६६ से यह निश्चय किया गया कि एक सीमित संख्या में सभी प्रकार के गैर सरकारी या सरकारी, पंचायती, नगरपालिका आदि के वांचनालयों व योगाश्रम तथा प्राकृतिक चिकित्सालयों से रामतीर्थ मासिक का वार्षिक शुल्क डाक व्यय सहित केवल २ रु. ५० पैसे लिया जायेगा। अतः वाचनालयों के व्यवस्थापकोंको अपनेवांचनालयका शुल्क यथाशीघ्र भेजने की व्यवस्था करनी चाहियें ताकि संख्या पूरी होने पर निराश न होना पड़े।

२- दिन--बदिन रामतीर्थ के पाठक वृन्द की संख्या बढ़ती रहने से हर मास में हम पाठक वृन्द की मांग पर्याप्त रूप में पूरी नहीं कर पाते। फिर भी यदि मासिक विक्रेता वर्ग (एजेन्ट) अग्रिम सूचना भेज दें तो उनकी मांग यथा समय यथा साध्य हम पूरी करने की व्यवस्था करेंगे। जिससे श्रद्धा सम्पन्न एवं सुख शांति, समृद्धि की तीव्र इच्छा रखने वाले हजारों वाचक बन्धुओं को निराश न होना पड़े।

३- बहुत से भाई श्रद्धा से रामतीर्थ मासिक के चन्दे को अनेक वर्षों के लिये हर मास में भेजा करते हैं उनका हम धन्यवाद करते हैं तथा उनसे आग्रह करते हैं कि अभी एक वर्ष से अधिक का चन्दा न भेजें और न बार-बार पूछ--ताछ करें कि आजीवन सदस्यता का क्या शुल्क है। इस विषय में जब भी नियम परिवर्तन किया जायेगा तो हम उसे मासिक में प्रकाशित करेंगे।

——— व्यवस्थापक

* श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम *

१–इस योगाश्रम में प्रविष्ट होनेके बाद साधक को बीड़ी-सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२–ली गई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३–टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

४–सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

५–योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६–कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७–आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के२७रु. है

८–नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी होगी। समय प्रातःकाल ७॥ से ९॥ और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो मेंसे किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

Sinews of
Self-Reliance
LOCATED centrally in the network of Indian Railways, the Central Railway is the nerve centre of the sinews of transport of essential material throughout the country and is pledged to provide quick and efficient transport of all raw materials and equipment essential for stepping up agricultural produce to ensure the Nation's self-reliance on the food front.
CENTRAL

भद्रं कर्णेभि: श्रणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥
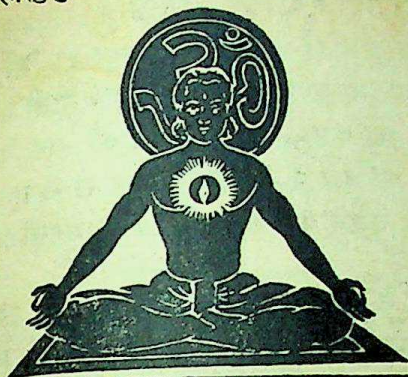
सम्पादक – रामतीर्थ योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ७] अप्रैल १९६६ [संख्या १

वैदिक-प्रार्थना

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावे व शुचये पदाय।
अर्वाचीन वसुविद् भग नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥

ऋ. वे. भ. सू. ७-४१-६

भावार्थ:-हे उषा देवियो! जैसे जातवान घोड़ा शुद्ध गमन [यो]ग्य स्थान को प्राप्त करने के लिये सन्नद्ध हो जाता [है] वैसे ही तुम सब प्रेरणा की देवियां हमारे जीवनयज्ञ [में] आने के लिये संमिलित हो जाओ और जैसे वेग-[वा]न् घोड़े रथ को अपने लक्ष्य स्थान की ओर ले जाते [हैं] वैसे ही हे उषादेवियो! तुम हमारे पास भगवान् को [ले] आओ, जो भगवान् हमारे ओर अभिमुख है और [ध]न ऐश्वर्य आदि का लाभ देता है॥

रामराज्य में कुत्ते को भी न्याय

रामराज्य में किसी को आधि-व्याधि या किसी प्रकार की बाधा थी ही नहीं तथापि एक दिन रामजी ने लक्ष्मण को आज्ञा दी कि देखो बाहर कोई प्रार्थी यदि खड़ा हो तो उसे बुला लाओ। एक बार लक्ष्मण निषेधार्थ लौट गये तो प्रभु ने उन्हें ध्यान से देखने को कहा, तो लक्ष्मण को एक श्वान खड़ा दिखाई दिया, जो बार २ दुखित होकर रो रहा था। लक्ष्मणने उससे भीतर चलने को कहा तो उसने अपनी अधम योनि की बात कही।

अन्त में लक्ष्मणजी ने भगवान् से पुनः आज्ञा लेकर उसकी प्रभु के पास पेशी कराई। भगवान् ने देखा तो उसके माथे पर चोट लगी थी, भगवान् ने उसे अभयदान देकर पूछा—'बतलाओ तुम्हें क्या कष्ट है, निडर होकर बतलाओ, मैं तुम्हारा कार्य तत्काल सम्पन्न कर देता हूँ।

कुत्ता बोला—"नाथ! सर्वार्थ सिद्धि नामक भिक्षु ने अकारण ही मेरे मस्तक पर प्रहार किया है। इसी का न्याय कराने आपके पास आया हूँ।"

भगवान् राम ने उस भिक्षु को बुलाकर पूछा—"तुमने किस हेतु इसके मस्तक पर लाठी का प्रहार किया?"

भिक्षु ने कहा—"प्रभो मैं क्षुधातुर अवस्था में भिक्षा के लिये जा रहा था कि यह श्वान विषमढंग से मार्ग में आ गया। भूख से व्याकुल होने के कारण मुझे क्रोध आया। मैं अपराधी हूँ आप कृपाकर मुझे शासित करें।"

इस पर भगवान् ने अपने सभासदों से न्याय-व्यवस्थानुसार दण्ड बताने को कहा। ब्राह्मण अदण्ड्य होता है अतः सभासदों ने कुत्ते को ही प्रमाण माना। कुत्ते ने भगवान् से कहा "यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरी स्मृति

चाहते हैं तो मेरी प्रार्थना पर इस भिक्षु को कालंजर मठ के कुलपति पद पर अभिषिक्त कर दिया जाय।" कुत्ते की इच्छानुसार भिक्षु को मान-दान पूर्वक हाथी पर चढ़ा कर वहां भेज दिया गया। तदनन्तर सभासदों ने आश्चर्य पूर्वक श्वान से पूछा— "भैया! यह तो तुमने उस भिक्षु को वर ही दे डाला, शाप नहीं।" कुत्ता बोला— आप लोगों को इसका रहस्य मालूम नहीं है। मैं भी पूर्व जन्म में वहीं का कुलपति था। यद्यपि मैं बड़ा सावधान था, और बड़ा विनीत, शील सम्पन्न, देव-द्विज की पूजा करनेवाला, सभी प्राणियों का हित चिन्तक तथा देव द्रव्य का रक्षक था, तथापि कुलपति के दोष से इस बुरी योनि को प्राप्त हुआ हूँ फिर यह भिक्षु तो अति क्रोधी, असंयमी, नृशंस, मूर्ख तथा अधार्मिक है। ऐसी दशा में वहां का कुलपतित्व इसके लिये वरदान नहीं अपितु घोर अभिशाप है। किसी भी कल्याणकारी व्यक्ति को मठाधिपतित्व भूलकर भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। मठाधिपत्य सात पीढ़ियों तक को नरक में डाल देता है, जिसे नरक में गिराना चाहो, उसे देव मंदिरों का आधिपत्य दे देना चाहिये। जो ब्रह्मस्व, देवांश, स्त्रीधन, बालधन अथवा अपने दिये हुये धन का अपहरण करता है वह सभी इष्ट मित्रों के साथ विनाश को प्राप्त होता है। जो मन से भी इन द्रव्यों पर बुरी दृष्टि रखता है वह घोर अवीचिमान नामक नरक में गिरता है और फिर जो सक्रिय इनका अपहरण करता है उसका तो एक से दूसरे नरकों में बराबर पतन ही होता रहता है। अतः भूलकर भी मनुष्य ऐसा आधिपत्य न ले।" वा. रा उ.अ.५९ के बाद प्र.सर्ग अ. १

राजनीति खिलवाड़ बन गई

योजकः—हीरालाल नंदा "प्रभाकर"

आज सभी नकली नेता, बन गये यहां मिनिस्
कृषि ग्राम को छोड़कर, बन गये शहर में वालिस्
टोपी खादी की लगा भाई, केवल छड़ी एक हाथ सु
आडम्बरों की तूती तन गई, राजनीति खिलवाड़ बन ग
बन बैठे जब नेता भाई, मिलने लगा सिमेंट का पर
गालिब हुवा रुवाब जनता में, जैसे मोटे सर का गिरगि
घर में लगने लगा जमाओ, जनता और जनार्दन
कोई तकावी कोई नौकरी, कोई खाली लल्लो चप्पो
कथा सुनो ना, राजनीति की, यह तो उबड़-खाबड़ बन
नेता लोगों की बात न पूछो, राजनीति खिलवाड़ बन ग
नेता लोगों से, मिलने जाते, जब हम गरीब भा
नेता जी का चपरासी कहता, यह समय नहीं मिलनेका भा
ना जाने किस सांचे में- राजनीति की नीति ढल ग
छल छिद्र का रूप नया ले- नेता गीरी नई पनप गई
झूठी चक्की के चक्कें में, राजनीति की प्रीत जम
बात क्या कहें राजनीति की- राजनीति खिलवाड़ बन ग
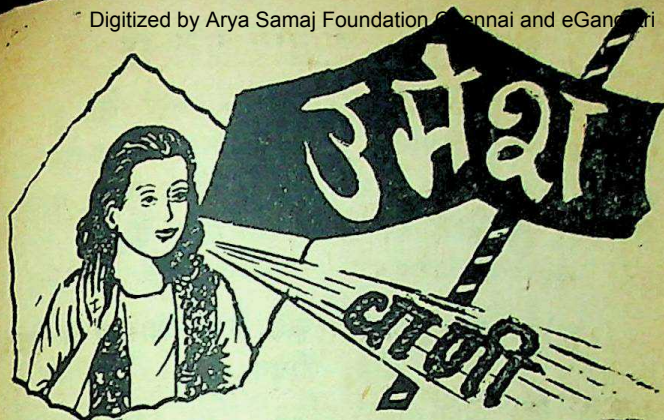
(२७१) वर्तमान काल में १४ वर्ष आयु से ३० बरस आयु तक के अधिकांश युवतियां एवं जवान शारीरिक तथा मानसिक रोगों से परेशान हो रहे हैं। हृदय, फेफड़े, नाड़ी संस्थान में अधिक दुर्बलता आ गई है। इन रोगों के निर्माण होने के अनेक कारणों में ७ कारण मुख्य हैं। (१) पढ़ाई का बोझा मगज में अत्यधिक बढ़ गया है, परीक्षा काल में निद्रा नहीं, समयानुसार भोजन नहीं तथा परीक्षा की सफलता के बारे में अधिक चिंतित रहना, (२) दवाइयां, विटामिन की गोलियां तथा जुलाब की दवाइयों के आधार से, (३) पौष्टिक अन्न के अभाव से, (४) वीर्यदोष, स्वप्नदोष की तथा बुरी आदत से और कुसंग से. (५) व्यायाम के अभाव से। उपरोक्त मुख्य कारणों को समय पर नहीं सुधरेंगे तो भावी समाज, राजद्वारी, आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक, बौद्धिक उन्नति नहीं कर सकेंगे फल स्वरूप संसार में दुःखों का सागर उमड़ जायगा। उपरोक्त ४ कारणों के उपायों के साथ पांचवें

कारण में अन्य व्यायाम का आधार नहीं लेते हुए के मलशोधनकर्म, आसन प्राणायाम का आधार लेना अनिवार्य होगा। योग के आश्रय में शारीरिक तथा मानसिक बीमारियां दूर करने का बल समाहित हैं।

(२७२) हरेक स्कूल, हायस्कूल, तथा कालेज की दीवारों में नैतिक उन्नति के लिये, जीवन सुधार के लिये, रक्षा के लिये छोटी-छोटी पट्टिया टंगी रखनी चाहिये। पट्टियां ४ इंच × २ फुट साइज की हों। उन पट्टियों में 'अहिंसा परमो धर्म' 'माता-पिता की सेवा करें' 'सात्विगुण धारण करें' 'संहति कार्य साधिक:।' 'तुम्हारा भला संग' 'बुरी भावना से मुक्त रहो' 'कुसंग मत रखो' 'सत्संग करो' 'गुरुजी को प्रणाम करो' 'बड़ों की आज्ञा अवश्य पालन करो' 'एकादशी के दिन उपवास करो' 'सत्यं वद् धर्मंचर' 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:' 'जीवन सुधारो' 'सात्विक आहार का सेवन करो' 'निर्व्यसन रहो' 'रोग का कारण तुम ही हो' 'काम, क्रोध, लोभ, मोह मत करो' 'रात को ८ घंटे निद्रा लो' 'नित्य ३० मिनिट आसन करो' 'सदा सद्‌भावना मन में रखो' 'पवित्र स्थान में निवास करो' 'इंद्रियां वश में रखो' 'मनोबल बढ़ाओ' उपरोक्त वचनामृत तथा अन्य महत्वनीय शब्दों को नित्य अवलोकन से छात्रों के पवित्र अन्तःकरण में गहरा असर पड़ेगा फलस्वरूप जीवन सुधार के लिये अत्यन्त सुलभ मार्ग दर्शन होगा।

राजनीति गुरु मनु

ले:—आचार्य पं. देवेश्वर शर्मा

जगद् गुरु भारत ने संसार को क्या कुछ नहीं दिया है ? ऐसा कौनसा क्षेत्र है जिसमें उसकी देन न हो ? परन्तु यह दुर्भाग्य की बात ही समझनी चाहिये कि आज भारतीय प्रजातंत्र का विधान ऐसे लोगों के हाथों निर्मित हुआ है जिन्हें अपने बारे में विशेष जानकारी न थी और न उन्हें इतना समय था कि वे अपने पूर्वजों के सिद्धान्तों का अवलोकनकर उनसे कोई सबक सीखते और तदनुसार भारतीय विधान निर्माणका कार्य करते । आज का भारतीय विधान नाम को ही भारतीय है उसका समग्र शरीर परकीय है और रामराज्य की कल्पना करने वालों के लिये कालिख पोतने वाला है। प्रजा का शासन आज कैसे होता है यह तो हम सबके सामने है परन्तु हमारे पूर्वज कैसे शासन चलाते थे उसकी झांकी मनु महाराज के शब्दों में ही प्रस्तुत है,- उसके अध्ययन के पश्चात् हमें ज्ञात हो जायेगा कि हम आज कहां हैं और किधर जा रहे हैं?

ऋग्वेद मं. ३/सू- ३८/मं. ६में ईश्वर उपदेश करता है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिलकर सुख प्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभा अर्थात् विद्यार्य्य सभा, धर्मार्य सभा, राजार्य सभा नियत करके बहुत प्रकार के समग्र प्रजा संबंधी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या स्वातंत्र्य धर्म सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें ।

उस राजधर्म को तीनों सभा संग्रामादि की व्यवस्था और सेना मिलाकर पालन करें (अथर्व. कां १५/अनु. ९/मं,२) फिर आगे कां· १९/अनु. ७/व. ५७/मं.६ में कहा है कि सभासद और राजा को योग्य है कि राजा सभासदों को आज्ञा देवे कि हे सभाके योग्य सभासद तू मेरी सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था का पालन कर। जो सभाके योग्य सभासद् हैं वे भी सभा की व्यवस्था का पालन करें। इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतंत्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये किन्तु राजा जो सभापति है, उसके आधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन, और प्रजा राजसभा के आधीन रहे यदि ऐसा न करेंगे तो—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्रष्ट्री विशं घातुकः।
विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री
विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति।
शत. कां. १३/प्र.२./ब्रा.३

अर्थात् जो प्रजा से स्वतंत्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो राज्यमें प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें, क्योंकि अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके प्रजा का नाशक होता है, अतः किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये जैसे सिंह व मांसाहारी हृष्टपुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं वैसे ही स्वतंत्र राजा प्रजा का नाश करता है। अतः वेद उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! श्रेष्ठ व्यक्ति को ही सभापति राजा बनाओ, जो मनुष्य ...

(शेष पृष्ठ २५१ पर)

राजनीति के अर्थ में

इस बार प्रिय पाठक महोदयों के समक्ष राजनीतिक अंक प्रेषित किया जा रहा है यह बात विशेष ध्यान रखने योग्य है, कि परिवार के सूत्र-संचालक, घर के यजमान, समाज के मार्गदर्शक और देश के कर्णधारों के आधार पर प्रजा का सम्यक् प्रतिपालन होता है। कुमारावस्था में जब हम विद्यालय में विद्याध्ययनार्थ जाया करते थे, तब देखा करते थे कि विद्या-भवन की दीवार पर छोटी-छोटी पट्टियां टँगी हुई हैं, जिनमें लिखा हुआ है—"राजा प्रत्यक्ष देवता", "सत्यं वद, धर्मंचर", "अहिंसा परमो धर्मः", "यथा राजा, तथा प्रजा", "निर्व्यसनो सुखिनो भवन्तु", पितृदेवो भव", "मातृदेवो भव", "आचार्य देवो भव", "अतिथि देवो भव", "योगः कर्मसु कौशलम्", "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी", "दुर्जन संगम त्याज्य, सज्जन संगम सेव्यः" "श्रेष्ठ दानम् स समादानः," "श्रेष्ठ दानम् स ब्रह्मविद्या दानम्", "सदा योगाभ्यास कुरु", सदा वेदान्त पठनम्"

"लौकिक ज्ञानं सेव्यः"—इस प्रकार विद्या-भवन के वि
खण्डों में रोचक, मनोवेदक, जीवन-सुधारक, दिव्य
प्रकाशक, दिव्य जीवन की ओर प्रवृत्त करनेवाले,
शांति-प्रदायक तथा भौतिक तृप्ति और आध्यात्मिक आ
की अनुभूति में मस्त रखनेवाले श्लोकों और आदर्श वा
की पंक्तियां स्थान-स्थान पर लिखी हुई थी। उस स
सांसारिक जीवन का विशेष अनुभव न होने के कारण
लिये उनका अधिक महत्त्व नहीं था। किन्तु जैसे २ आ
आगे बढ़ती गई और जीवन की संधियों में सुख-दुःख
उत्तार-भाटों का सामना करना पड़ा, वैसे २ उक्त लि
अमूल्य, प्रशंसनीय और जीवन-उद्धारक श्लोकों की सार्थ
प्रतीत हो चली और अर्थ और भाव सहस्रपद्म में मूर्त
धारण कर जगमगाने लगे।

राष्ट्र के प्रमुख सूत्रधार कैसे होने चाहिये

हमारे मतानुसार राष्ट्र-हित की मनोवृत्ति रखते हु
पर-राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध रखना चाहिये। विदेशों
ऋण लेकर राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने का प्रयास वांछनीय है
अत्युत्तम है, परन्तु इस दिशा में अभीष्ट लाभ और अनुकूल
का दृष्टिकोण रखना अनिवार्य कर्तव्य है। ऐसा करने से ही
वैदेशिक सहयोग का सदुपयोग हो सकेगा और राष्ट्र
संपत्ति-संवर्धन के साथ जन-साधारण का भी हित-सा
होगा। परन्तु यदि उस वैदेशिक सहायता का दुरुप
होगा, तो उसके परिणाम भी प्रतिकूल होंगे और देश

(शेष पृष्ठ २०८ पर)

तुलसी की राजनीति

लेखकः— कृष्णकुमार 'सौरभ'

'साहित्य समाज का दर्पण है।' 'साहित्य समाज का गुरु तथा पथप्रदर्शक है।' अतः समाज, साहित्य रूपी दर्पण में, अपना वास्तविक रूप देख कर आवश्यकतानुसार सुधार अथवा विकास करता है और उन्नति करता है। साहित्य के रचयिता साहित्यकार वास्तव में समाज के गुरु तथा पथप्रदर्शक हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी को अमरभक्त कवियों में प्रथम गिना जाता है और उनका महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' तो अमर ही नहीं अपितु हिन्दुओं के जीवन का प्रमुख अंग हो गया है। लोक-कथा को साहित्य के रंगमंच पर सजीव प्रस्तुत करने का श्रेय गोस्वामीजी को मिला है। उन्होंने श्रीराम-चरित को लेकर जीवन का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। व्यक्तिगत जीवन कोई जीवन नहीं है। समाज का अविछिन्न अंग होने के नाते व्यक्ति को समाज के अनुरूप ढलना पड़ता है। समाज की देख रेख की व्यवस्था को यदि शासन-व्यवस्था कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। गोस्वामीजी ने जहां 'मानस' जैसे महाकाव्य में एक व्यक्ति के जीवन-चरित्र का वर्णन किया है वहीं समाज की चर्चा करने का लोभ-संवरण नहीं कर सके हैं। उन्होंने समाज की व्यवस्था का जो उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है। वह भारत ही नहीं विश्व के लिए अनुकरणीय है। इसी आधार पर तुलसीदासजी ने दो परस्पर विरोधी

शासन व्यवस्थाओं को एक दूसरे के सहारे पनपते पल्लवित होते दर्शाया है। एकतंत्रवाद की छाया में तंत्र का विकास गोस्वामीजी की राजनैतिक दृष्टि अभूतपूर्व देन है। ऐसा केवल रामराज्य में संभव सका तथापि वह अविस्मरणीय है। आइए 'मानस' एक छोटा सा प्रसंग देखें और अनुभव करें कि गोस्वामी जी का राजनैतिक आदर्श कितना ऊंचा है।

श्रीरामचरितमानस के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम का विवाह होते ही अवधपुर में सुखों का राज जाता है। राजा दशरथ ने प्रचलित प्रथा के अनु वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करने की बात सोची और इस के पूर्व एक महान कार्य था — रामचन्द्रजी को सौंपना। वे गुरुवशिष्ठ से कहने लगे —

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक।
भए राम सब विधि सब लायक॥

अयोध्या दो.

निःसंदेह राम योग्य थे। उनकी योग्यताएं मानस ने पूर्व प्रसंगों में मारीच-वध से युद्धकला की, पुष्प लीला से शृंगार-ज्ञान की तथा धनुषयज्ञ से वीरता प्रमाणित करते हुए दर्शाया है। उन सब का वि गोस्वामीजी लिखते हैं —

सब विधि सब पुर लोग सुखारी।
रामचन्द मुख चन्द निहारी॥

अयोध्या प्रारम्भ

वशिष्ठजी उन तथ्यों से पूर्णतया अवगत थे पर वे मौन रहे क्योंकि उन्हें स्मरण था कि अवध की व्यवस्था में एकतंत्र और प्रजातंत्र के समन्वित रूप का पालन होता है। एकतंत्र के अनुसार वर्तमान राजा का सबसे बड़ा पुत्र राज्य का अधिकारी होता हैं किन्तु वह योग्य न हों तो छोटे भाई को भी राज्य दिया जा सकता है। इस नियम का स्पष्ट संकेत गोस्वामीजी ने कैकेयी-दशरथ संवाद के समय दिया है। कैकेयी के दोनों वर सुन कर दशरथजी व्याकुल हो गये। उन्हें दुःख भी हुआ आश्चर्य भी। युद्ध के समय देवासुर संग्राम में रथ की धुरी अपना हाथ बनाने वाली कैकेयी राजनीति के सूक्ष्म नियम को कैसे भूल गई ? यही आश्चर्य था दशरथजी को और वे स्मरण करने लगे —

लोभ न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट विचारि जिय करत रहेउं नृप नीति॥
अयोध्या ३१।

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी बड़े तथा योग्य होने के नाते राज्य के उत्तराधिकारी थे। परम चतुर नृप गुरुवशिष्ठ के मौन का कारण भांप गये! उन्होंने अगली पंक्तियों में उन्हें विश्वास दिलाया कि राम प्रजातंत्र के नियमों से भी उत्तराधिकारी हैं। प्रजातंत्र के नियमानुसार राज्य का उत्तराधिकारी वही है जिसे प्रजा सर्व सम्मति या अत्यधिक मतों से चुने। दशरथजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र को सेवक, मंत्री, नगर के लोग यहां तक की बैरी भी चाहते हैं —

सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमारे अरि मित्र उदा
अयोध्या :

पर वशिष्ठजी के मन में यह भी शंका है कि कहीं द
जी पुत्र-प्रेम के कारण कोई दोष गुप्त न रख रहे
क्योंकि वे बहुत पहले ही सुन चुके हैं—

राम रूप गुन सील सुभाउ। प्रमुदित होइ देखि सुनि रा
अयोध्या प्रारम्भ

अतः दशरथजी कहते हैं कि—

सबहिं रामुप्रिय जेहि बिधि मोहीं।
प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
अयोध्या २

अतः श्रीरामचन्द्रजी को सभी प्रकार से योग्य स
कर गुरुवशिष्ठ ने राम के राज्याभिषेक की अनुमति
दी। गुरुवशिष्ठ की आज्ञा पाकर भी राजा दशरथ मंत्रि
से सलाह लेते हैं, ध्यान रहे आज्ञा नहीं देते--
जौं पांचहि मत लागइ नीका। करहु हरषिहिय रामहि टीका
अयोध्या ४

तुलसीदासजी की एक विशेषता यह भी है कि अ
प्रतिपादित विचारों को उन्होंने सप्रमाण तथा चरित्र
प्रस्तुत किया है। अभी तक तो हम ने पढ़ा पर चरित्र
नहीं देखा। श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक का समाचार
सुनकर मंत्रियों का प्रसन्न होना एकतंत्रीय व्यवस्था है
और प्रजा का प्रसन्न होना प्रजातंत्रीय।

विनतीं सचिव करहिं कर जोरी।
जिअहु जगतपति बरिस करोरी॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी।
अभिमत बिरव परेउ जनुपानी॥

अयोध्या ४ / ४, ६

× × × ×

राम राज्य अभिषेक सुनि हिय हरषे नर नारि!
लगे सुमंगल सजन सब विधि अनुकूल विचारि!!

किन्तु दैव वश राम का राज्याभिषेक न हो सका क्योंकि दुष्ट रावण अभी जीवित था। रावण वध भी एकतंत्र तथा प्रजातंत्र का परिचायक है। रावण वध दोनों ही प्रकार से उचित था। एकतंत्र वाद की स्थापना तब तक नहीं हो सकती जब तक कि परम शत्रु का नाश न कर दिया जाय। प्रजातंत्र के लिये आवश्यक था कि प्रजा के दुःखदायी रावण का नाश हो। रावण को मार कर जब भगवान् राम लौटे तो उन्होंने राज-काज संभाला। तुलसीदासजी ने रामराज्य का जो वर्णन किया है वह एकतंत्र तथा प्रजातंत्र का समन्वित रूप है। यदि उसका पूर्ण रूपेण वर्णन किया जाय तो पुस्तक संभव है। पाठक गण यदि ध्यान से देखें तो गोस्वामी जी ने रामराज्य का अपूर्व दर्शन अपनी एक चौपाई में कराया है —

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहुहिं नहिं व्यापा॥

गोस्वामीजी ने राज्य व्यवस्था के विभिन्न अंगों विषय में प्रसंग वश नीति सम्बन्धी बातों की चर्चा की है। राजा या (एकतंत्र के लिए) मुखिया (प्रजातंत्र के लिए) को चाहिए कि मुख की तरह राज्य के सभी अंगों का पालन करे —

मुखिया मुख सों चाहिए खान पान कहुं एक।
पोषइ पालइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक।
अयोध्या ३१

राजा को धर्म का ज्ञान होना चाहिए। धर्मशील व्यक्ति ही राजा बनने का अधिकारी है अन्यथा पृथ्वी रसातल को चली जाती है —

कहहुं सांच सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरम सील नरनाहू।
मोहि राज हठि देइहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं।
अयोध्या १७८

धर्मशील राजा के हृदय में साम, दाम, दंड और भेद ये चारों वेद वास करते हैं। अधर्म के उपजने पर ये धर्मशील राजा के पास से चले जाते हैं—अंगद भी रामचन्द्र से कहते हैं —

सुनु सर्वग्य प्रनत सुखकारी मुकुट न होहिं भूप गुन चारी
सामदाम अरु दंड विभेदा। नृप उर बसहि नाथ कह वेदा
नीति धर्म के चरन सुहाए अस जिय जानि नाथ पहिं आए
अयोध्या ३७ / ८, ९, १

राजा लोग सदैव मीठे वचन बोलते हैं भले ही उनके हृदय में वैरभाव ही क्यों न हो —

तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निजबस जानउ राउ !
मन मलीन मुंह मीठ नृप राउर सरल सुभाउ !
अयोध्या १७।

राजा सब की बात सुनता है और उस के संबंध में प्राप्त सूचनाओं, उस के कार्य कलापों तथा आचरणों के अनुसार उस के साथ व्यवहार करता हैं—

सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी।
भनिति भगति नीति गति पहचानी॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाउ।
जाने सिरोमनि कोसलराउ॥
बालकाण्ड २/९, १०

राजा जहां तहां अपना नाम प्रगट नहीं करते। वे छिपे वेश में रहते हैं—

सुनिअ महीस असि नीति जहं तहं नाम न कहहि नृप!
तो पर मम अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तब!
बाल. का. दोहा १६३।

राजाओं की दिनचर्या रात्रि के पिछले प्रहर से प्रारंभ होती है इसीलिए जब दशरथजी कैकेयी भवन में देर तक सोते रहे तो प्रजा में आश्चर्य फैल गया—

पछिले पहर भूप नित जागा।
आजु हमहि बड़ अचरज लागा।
अयोध्या ३७/१

राजा किसी के वश में नहीं हो सकता भले ही कोई उस की कितनी ही सेवा क्यों न करे अर्थात् राजा को किसी के वश में नहीं होना चाहिए—

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ।
भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥
राखिअ नारि जदपि उर माहीं।
युवती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
अयोध्या. ३६/८

यदि राजा को सचिव अच्छी सलाह नहीं देते राजा नष्ट ही हो जाता है —

संगते यति कुमंत्र ते राजा। मान ते पान ग्यान ते लाज
अरण्य का. २०/६,

यदि राजा को सचिव भय के कारण राजा खुशामद करें तो राज्य का नाश हो जाता है —

सचिव वैद गुर तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तनतीनि कर तोहहि वेगही नास।
सुन्दर ३

राजा को दूत का वध उचित नहीं है सच यह है कि दूत का वध निषिद्ध है— इसीलिए विभीषण रावण को समझा रहा है —

नाइ सीस करि विनय बहूता।
नीति विरोध न मारिअ दूता।
सुन्दर २३

राजा को मंत्रियों पर निर्भर होना उचित नहीं उसे अपनी बुद्धि से भी काम लेना चाहिए क्योंकि मंत्रियों की बुद्धि थोड़ी होती है —

सब के वचन श्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति विरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि।

लंका. ८

राजा को सदैव प्रजा का ध्यान रखना चाहिए। अतः भगवान् राम वशिष्ठ से प्रार्थना करते हैं--

सबकै सार संभार गोसाईं।
करबि जनक जननी की नाईं।

अयोध्या ७९ ६

क्यों कि वे जानते हैं कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी रहती है उसे नर्क प्राप्त होता है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

अयो. ७० ६

अतः राम राज्य पाकर वही कार्य करते हैं जो प्रजा के हित में हो—

जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा।
करहि कृपानिधि सोइ संजोगा।

उत्तर का. २०४ ५

गोस्वामीजी के मतानुसार दूतों को कहीं भी कुछ नहीं लेना चाहिए —

सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावर लागे।
कहि अनीति ते मूंदहि काना।
धरम विचारि सबहिं सुखमाना।

बालका. २९२ ७, ८

गोस्वामीजी के कतिपय युद्ध के नियम इस प्रकार हैं
बूढ़ों तथा स्त्रियों को मारना उचित नहीं समझते थे।

बूढ़ भएसु न त मरतेंउ तोही।
अब जनि नयन देखावसि मोही।
लंका.

बैर या मैत्री अपने समान शक्ति वाले से करनी चाहिए

प्रीति विरोध समान सम करिअ नीति अति आहि।
जो मृगपति वध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि।
लंका. २३

छल कपट तथा माया के बल पर लड़ने वाले शूर नहीं कहे जाते --

जरहि पतंग मोह वस भार वहहि खर वृन्द।
ते नहि सूर कहावहिं समृद्धि देख मतिमंद॥
लंका

सांझ होने पर युद्ध बन्द हो जाता था और रात को लड़ाई नहीं होती थी --

संध्या समय फिरी द्वौ वाहिनी।
लगे संभारन निज निज अनी
लंका ५

शरण में आये हुए वैरी को भी अपने हित के लिए त्याग देना उचित नहीं इसीलिये मर्यादापुरुषोत्तम राम ने कहा --

सरनागत कहुं जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि।

सुन्दर. ४३

इस प्रकार इन अल्प उदाहरणों से निःसंदेह कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी को जीवन के सभी अंगों का पूर्ण ज्ञान था यहां तक कि वे राजनीति की कसौटी पर भी एकतंत्र तथा प्रजातंत्र का समन्वित रूप प्रस्तुत करने में खरे उतरे हैं।

卐

हम कौन थे क्या हो गये, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएं सभी।
—श्री मैथिलीशरण गुप्त

बच्चे देश के निर्माता हैं, वे ही अनागत के नागरिक होंगे। बच्चों का सर्वांगीण विकास समाज (मानव जाति) व राष्ट्र का विकास है। बच्चे देश की अमूल्य सम्पत्ति हैं। किसी भी देश की उन्नति व अवनति में बच्चों का बहुत बड़ा हाथ होता है।

भारतीय जलवायु में पले बच्चे के लिये सुनियंत्रण और आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य व्रत का सहारा अनिवार्य आवश्यक है। चाहे वह कितने ही उत्तम उच्च किसी कुल का हो, लेकिन सुचारित्रिक और नैतिक स्तर ढालनार्थ उचित मार्ग दर्शन, नियंत्रण और कामादि

रहित पौष्टिक भोजन का होना जरूरी है। देश में व्याप्त तात्कालिक भ्रष्टाचार, अन्याय, स्वार्थभावना, आज्ञा का उल्लंघन, निर्बल शरीर, शक्तिहीनता और चरित्र भ्रष्ट बालकों का ही परिणाम है। शक्तिहीन और चरित्रहीन बच्चों के देश में ही स्त्रियों के सतीत्व लूटे जाते हैं, दरिद्रता, कंगाली, बेईमानी अपना कीचड़ उछालने लगती हैं, जो कि गहरा दाग लगाती है।

बालक ही बड़े होकर समाज और देश की उन्नति करते हैं। गांधी, हिटलर, जवाहर, स्टालीन, शंकराचार्य और भीष्म किसी समय बालक ही रहे थे। और आज भी हम आशा व्यक्त करते हैं कि इन बालकों में उन विभूतियों के गुण मौजूद हैं, जो पैतृक देन के रूप में इन्हें प्राप्त हुई है। तिलक, गोखले, मर्यादा पुरुषोत्तम इन बच्चों में हैं, जो अपने व्यक्तित्व को सर्वतोमुखी बना कृतित्व से समाज व राष्ट्र की उन्नति और सभ्यता व संस्कृति को उच्चासन दिलाने या बनाये रखने में मदद-गार होंगे। बाल्यकाल में ही उत्तम संस्कार डाले जा सकते हैं। बच्चे गीली मिट्टी के समान हैं। उनके जीवन को बनाना या बिगाड़ना अथवा जैसा चाहो वैसा मोड़ देना माता-पिता के हाथ की बात है, गैरों की नहीं। क्योंकि बच्चे अपने घर वालों की विशेषतः मां-बाप की क्रियाओं, भावनाओं, दोषों और गुणों को सूक्ष्म रूप में देखते, सुनते या समझते रहते हैं और उन्हीं का अनु-करण कर प्रायः वैसे ही बन जाते हैं। अतः देश की

हमारा प्राचीन भारतीय साहित्य बतलाता है कि काशी के महात्मा तैलंग स्वामी २०० वर्ष की उम्र में मृत्यु को प्राप्त हुए थे। अम्बिका कालना ग्राम के प्रसिद्ध वैष्णव १४० वर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिधारे थे। स्वामी ब्रह्मानन्द १७५ वर्ष की आयु तक लोगों को दर्शन देते रहे थे। किन्तु वर्तमान में लोगों की औसतन आयु २५-३० वर्ष की होती है। पुराने लोग धर्म करने, धन अर्जित करने और मोक्ष प्राप्त करने की चेष्टा से भी पहले, भी तन्दुरुस्ती ठीक रखने की कोशिश करते थे। अपने आचरण और चरित्र की ओर विशेष ध्यान देते थे। इस बात की गवाही इतिहास और काव्य अपने हर एक पन्ने (पृष्ठ) में देते हैं। परन्तु आजकल इस युग को अर्थ युग ही मानकर, स्वास्थ्य का बिना खयाल रखे, मनुष्य अपनी काक वृत्ति को चरितार्थ करते हुए धन अर्जित करने की धुन में शरीर की कुछ परवाह नहीं करते। किशोरों की उम्र घट गई, बल विदा हो गया, बुद्धि का दिवाला निकल गया, हिम्मत पस्त हो गई और कांति को लकवा मार गया। जिस उम्र में सारा जगत रंगीन उल्लासमय नजर आता है, उसी वय में हमारे किशोरों को अंधकार दृष्टिगोचर होता है। उनके सामने सब मौसम दर्दीले बन एक के बाद एक गुजरते रहते हैं आंखों की ज्योति शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ मंदी पड़ जाती है। गालों पर झुर्रियां पड़ जाती हैं, कमर झुक जाती है, मन मर जाता है और साहस

सैकड़ों किलोमीटर दूर भाग जाता है। जीवन भर तड़पना और रंगीले स्वप्न देखते-देखते असन्तुष्ट दायक जीवन व्यतीत करते हैं। हमारे नौनिहाल और दरिद्रता के शिकार होकर अकाल ही मौत जाल में जा रहे हैं। इन सब का कारण चरित्र सदाचार और ब्रह्मचर्याभाव और निर्बलता है।

बच्चों को सच्चरित्रवान और दीर्घजीवी बनाने लिए नियमित रूप से हल्का तथा संतुलित भोजन होगा। उन्हें नियमित व्यायाम या कसरत तथा व मालिश का शिक्षण देना होगा। आचार, तथा व्यवहार का सु या सद् में परिवर्तित करने तथा सन्मार्ग दर्शाने वाले साहित्य का अध्ययन होगा। क्योंकि बालक की असली शिक्षा स्कूल में होती वरन् वह होती है, जो जन्मकाल से ही वर्ष की उम्र तक घर में ही दी जाती है, नहीं जिस प्रकार बन्दर के हाथ में खंजर देने से जो होता है और फल निकलता है, वैसा ही स्कूली के पुस्तकीय ज्ञान से समझना चाहिए। राम की जीवन गाथा, भीष्म पितामह की जीवनी, महाराणा प्रताप की अमर गाथा, महात्मा बुद्ध की शांति, अहिंसा और सत्यभक्त की समभावी और योगी जीवन लीला का दिग्दर्शन करा बच्चों में जीवन सम्बन्धी स्वाभिमानी और कर्म योगी भावना जागृत करानी होंगी। तभी नेहरू जी का प्रजातन्त्र

समाजवाद मूर्तरूप ले सकेगा। योगियों का मुख्य सिद्धांत यह है कि यदि आप परम योगी बनना चाहते हैं तो पहले सभी झगड़ों को परे हटाकर शरीर को तन्दुरुस्त कीजिए। यदि तन्दुरुस्ती है, तो आप जो कुछ चाहेंगे, आसानी से पूरा हो जायेगा, यदि तन्दुरुस्ती नहीं तो मनुष्य के लिए सभी बातें अलीक हैं, निकम्मी हैं। यथा —

'सर्वमन्यत् परित्यज शरीर मनुपालयेत।
तद्भावे हि भावनां सर्वाभावः शरीरिणाम ॥'

अमेरिकन योगी ने भी कहा है लोहे जैसी मांस पेशियां और इस्पात जैसे स्नायुओं से बने शरीर में वज्र जैसी चीजों से बना हुआ आत्मा निर्भय निवास करता है।" लेकिन जिन्होंने शरीर को "क्षण-विध्वंश" मानलिया है, उनके लिए ये शब्द क्या लाभ दायक हो सकते हैं? कदापि नहीं। क्योंकि जीवन ही निराशा के ढांचे में ढला है। माना कि यह जीवन क्षण भंगुर अवश्य है परन्तु जो कुछ करना हो संयम और विवेक के पथ-गामी बनकर प्रत्येक काम को नियमितता और संयमितता से करो, जिससे सफलता अपने आप दौड़ती हुई तुम्हारे चरण छूले। शुभ कर्मों का होना निहायत जरूरी है क्योंकि कर्म यज्ञ ही से हम स्वर्ग को हासिल कर चिर आनन्द के भोगी हो सकते हैं। श्री जयशंकर प्रसाद ने लिखा है —

"कर्म-यज्ञ से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा।
इसी विपिन में मनस की आशा का कुसुम खिलेगा॥"

उत्तम स्वास्थ्य सुखी जीवन की आधार शि... जे. विलट के शब्दों में — "परिवार में थोड़े से ... बच्चों का होना बहुत दुर्बल और रोगी बच्चों के ... से कहीं अधिक अच्छा है।" क्योंकि रोगी बच्चे ... भी रहें तो वे परिवार के लिये सदा भार ही बने रहें। अतः बच्चों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना आ... वश्यक है। अपने बच्चों को शारीरिक, मानसिक ... नैतिक शिक्षा दीक्षा देने के लिये अक्षुण्ण रूप से ... रहना होगा। जिससे भावी पीढ़ी अपने स्वास्थ्य ... बहुमुखी सर्वांगीण विकास योग्य बनाकर समाज ... राष्ट्र की प्रगति में समर्थ हो सके। अतः इस तु... लेखनी द्वारा लिखित इन शब्दों द्वारा देश के मा... पिताओं से यही प्रार्थना है कि वे समाज व राष्ट्र ... उत्कर्षापकर्ष का ख्याल रखते हुए अपने बच्चों ... रहम करें, उन्हें सभ्य और सुसंस्कृत व बलशाली ना... रिक बनाने में अपना कर्तव्य समझें।

आज के संदर्भ में अहिंसा धर्म का पालन

लेखकः— विश्वम्भर दत्त नौटियाल, एम. ए

सम्राट अशोक के पश्चात् राष्ट्रपिता गांधीजी ने अहिंसा का संदेश आणविक युग में प्रसारित किया। उसको असली रूप देने के लिये अथक प्रयास किया। यह भली भांति जान लेने पर भी कि शक्ति--स्पर्धा में विश्व के अनेक राष्ट्र अणुशक्ति अर्जित कर शक्तिशाली राष्ट्रों से अपना आरक्षण कर पायेंगे और आवश्यकता पड़ने पर शक्तिहीन राष्ट्रों को अपनी शक्ति के सामने झुकने को बाध्य करेंगे। वैसे तो प्रथम विश्व-युद्ध के अवशेषों एवं द्वितीय विश्व-युद्ध की विभीषिकाओं ने विश्व के तानाशाहों को सोचने के लिये मजबूर कर ही दिया था कि शक्ति किसी को सुरक्षित नहीं रख सकती। यहांतक कि अपने लिये भी वह विनाश का कारण बन जाती है। नेपोलियन, हिटलर आदि की महत्वाकांक्षाएं और शक्ति इसके प्रमाण हैं। किन्तु विश्व के सामने इसकी साकार कल्पना रखी गांधीजी ने ही। उनकी दृढ़ धारणा थी—जिसे अनेक विदेशी चिन्तक भी महसूस करने लगे हैं—कि अहिंसा के सिद्धान्त के आधार पर ही विश्वबंधुत्व की कल्पना साकार की जा सकती है। लोकतांत्रिक जीवन व्यवस्था विकसित हो सकती है, स्वतन्त्र मानव के स्वतन्त्र एवं पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सकता है।

किन्तु अहिंसा सम्बन्धी गांधीजी की मूल भावना को अथवा उसमें अन्तर्निहित सत्य को समझने में सम्भवतः

कुछ चूक अवश्य हुई है। आत्मा की पकड़ हमारी दृष्टि से छिटक गई और हाथ लगी मात्र स्थूल देह। अशोक के बारे में भी यह भूल हुई थी। बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने एवं काषाय वस्त्र धारण कर लेने के पश्चात् भी अशोक ने सेना में किसी प्रकार की कमी नहीं की। सैनिकों को राज्य-सेवा से पृथक नहीं किया। उनकी शपथ तो इसलिये ही थी कि राज्य-लिप्सा के लिये अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग नहीं करूँगा। राष्ट्र में शांति बनाये रखने के लिये तो इनका प्रयोग अवश्य ही हुआ होगा वरना सारा मौर्य साम्राज्य ही अशोक के समान बौद्ध थोड़े ही हो गया था। शांति और सुरक्षा के लिये शक्ति-सन्तुलन तो बना ही रहा होगा। किन्तु आनेवाली पीढ़ी ने उनकी अहिंसा का गलत अर्थ निकाला। अपनी कापुरुषता के प्रमाण स्वरूप मौर्य शासन की इतिश्री देखी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि शांति, सुख और समृद्धि तभी संभव है जब राष्ट्र में शक्ति का प्राचुर्य हो। गुप्तकालीन सांस्कृतिक पुनरुत्थान का सबसे अधिक श्रेय है गुप्त सम्राटों की शूरता एवं शक्ति उपासना।

गांधीजी ने भी अहिंसा का उपदेश निर्बल व्यक्ति और राष्ट्र के लिये नहीं दिया। शक्तिहीन, पंगु कापुरुष अहिंसा की बात किस बूते पर कर सकते हैं। जंगल का राजा शेर ही अपने अमन में भूत-दया की वकालत कर सकता है, बेचारा खरगोश का बच्चा नहीं। इस तथ्य को उन्होंने एक विद्वता पूर्ण लेख में अच्छी तरह प्रतिपादित किया

उनका कहना है कि यदि बिल्ली चूहे को क्षमा करती है तो उसे हम बिल्ली की क्षमाशीलता और अहिंसा धर्म कह सकते हैं किन्तु चूहे का यह कहना कि मैंने बिल्ली को क्षमा कर लिया है कोई अर्थ नहीं रखता। तात्पर्य यह कि अहिंसा धर्म के पालन एवं निर्वाह के लिये गांधीजी शक्ति सम्पन्नता एक अवश्य और अपरिहार्य शर्त मानते हैं। हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति में भी हमारी शक्ति—चाहे उसमें स्वरूप भेद रहे हों, का बहुत बड़ा हाथ रहा है। सैकड़ों बलिदान, कारागृह की नारकीय यातनाएँ और निरीह जनता का गोली से भूना जाना भी तो इस संदर्भ में अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है।

सन् १९६२ के चीनी आक्रमण ने हमें एक गहरी नींद से जगा दिया। हम सोये हुये थे। पंचशील, सहअस्तित्व और लोकतंत्र में अतिशय विश्वास के कारण हम खूनी भेड़ियों को मेमने समझ बैठे थे। किन्तु यह हमारे लिये वरदान ही सिद्ध हुआ। सारे राष्ट्र की चिन्तन धारा में आमूलचूल परिवर्तन हो गया। राष्ट्र सर्वोपरि है ऐसा स्वर देश के कोने-कोने में सुनाई देने लगा। इस बीच, अक्टूबर १९६२ और अगस्त १९६५-- हमने बहुत कुछ तैयारियां कीं और इसका सबल प्रमाण है पाकिस्तान और उसके मित्रों के मनसूबों को चकनाचूर कर अपनी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को कायम रखना, विश्व के सामने एक नया प्रतिमान खड़ा करना। राजनिति-विशारदों और युद्ध विशेषज्ञों का यह कहना रहा है कि भारतीय जवानों ने जिस अदम्य साहस,

शूरता और प्रत्युत्पन्नमति का परिचय दिया है वह इतिहास में अन्यत्र खोजने पर भी शायद ही मिले। पाकिस्तानी आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्र--पैंटनटैंक, अति... विमान, एक हजार पौण्ड के नापन बम आदि और... बढ़कर उनकी घटिया किस्म की राजनीति प्रचलित युद्ध... की भी दाल हमारे शूरमाओं के सामने न गलने पाई।... इतिहास में एक नया कीर्तिमान् स्थापित किया।

किन्तु इस छोटी विजय से ही हमें सन्तुष्ट नहीं हो... है। युद्ध-विराम के बाद भी पाकिस्तानी इरादे साफ-... नापाक नजर आ रहे हैं। युद्ध विराम की आड़ में वह... केवल उस भूमि को ही वापस लेने की सोच रहा है जो... युद्ध में खोई बल्कि मुजाहिदों और घुसपैठियों द्वारा... कश्मीर में विप्लव कर उसे हड़पने की भी सोच रहा... विभाजन के पश्चात् से लेकर आजतक की पाकिस्तानी... पर यदि एक सरसरी निगाह दौड़ाई जाय तो यह स्पष्ट... कि झगड़ा मात्र कश्मीर का ही नहीं है बल्कि वह... भारत को ही पाकिस्तान बनाने के मनसूबे देखा करता... कम से कम इतना तो निकट भविष्य में वह खुले... कहने लगेगा कि भारत के जिन-जिन हिस्सों में मुसलमा... की अधिक संख्या है वहां उन्हें आत्मनिर्णय का मौका दि... जाना चाहिये कि क्या वे भारत में ही रहना चाहते हैं अथवा पाकिस्तान में मिलना चाहते हैं।

जब युद्ध चल ही रहा था तब चीन जो कि हमारा सबसे महान् शत्रु है—द्वारा तीसरे अणुबम के प्रयोग की घोष...

करना, पाकिस्तान में चीनी विदेश मंत्री का आना और किसी न किसी बहाने की आड़ में चीन द्वारा हमें तीन-तीन अंतिमेथम देना ये सब ऐसे तथ्य हैं जिन्हें भारत नजरअन्दाज नहीं कर सकता है। आज के संदर्भ में यदि हमें सम्मान पूर्वक जीवित रहना है, लोकतांत्रिक सिद्धान्त और जीवन व्यवस्था द्वारा आगे बढ़ना है और अपनी क्षेत्रीय अखंडता और स्वतन्त्रता की रक्षा करना है तो हमें युद्धस्तर पर क्या लड़ाई के मोर्चा और क्या खेतों और कारखानों पर काम करना होगा। हमें उन शहीदों के बलिदानों की शपथ खानी होंगी जिन्होंने आजादी की प्राप्ति के लिये अपनी नवविवाहित प्रेयसियों के मांग की सिन्दूर और हल्दी से सने हुये पीले हाथों को अपनी खून की बूंदों से सदा के लिये रंग दिया। उन वीरों की वीरता का स्मरण करना होगा जिन मुट्ठीभर जवानों ने शत्रु के आग उगलते हुये टिड्डी दल को खून के अंतिम बूंद रहने तक आगे नहीं बढ़ने दिया। उनका बलिदान अपना कुछ अर्थ रखता है। आज हम जीवित हैं। आजादी की सांस ले रहे हैं मात्र इसलिये कि उन वीरों ने अपनी जाने हंसते-हंसते दे दीं, यदि वे अपने प्राणों की आहुतियां न देते तो आजादी ही नष्ट हो जाती और जब आजादी ही नष्ट हो जाती तो जीवित कौन रहता ?

युद्ध की इसी विभीषिका में जबकि हमें एक ओर अणु और भारी जनशक्ति सम्पन्न चीन से भारी भय है तो दूसरी ओर अपने पड़ोसी पाकिस्तान से घड़ी-घड़ी का खतरा है। अपनी मूलभूत नीतियों में कुछ परिवर्तन करने होंगे। यह ठीक है

कि शांति और सहअस्तित्व के सिद्धान्त के विषय में भी हमारी दो राय नहीं हैं किन्तु यह भी उतना ही सही है कि उन महान् सिद्धान्तों की रक्षा एवं उनका पालन मौखिक रूप से ही नहीं हो सकता। उसके लिये हमें शक्ति और वह भी आणविक शक्ति अर्जित करनी होगी क्योंकि दो पहलवानों में से जबतक एक पहलवान दूसरे की अपेक्षा दाव-पेंच में श्रेष्ठ है तबतक दूसरे की पराजय निश्चित है। अमरिका और पश्चिमी राष्ट्रों ने अणुबम और भारतीय जनता के रुख को देखते हुये हमें आगाह करने का दुस्साहस भी किया है कि चीन की देखा-देखी में भारत को अणुबम नहीं बनाना चाहिये अन्यथा आणविक युद्ध में सारा विश्व नेस्तनाबूद हो जायगा। किन्तु क्या उन्हीं राष्ट्रों ने हमारी दिक्कतों को भी जानने की कोशिश की है ? क्या उन्होंने हमारी भावनाओं को समझने का प्रयास भी किया है। हम युद्ध नहीं चाहते हैं। किन्तु जब दुश्मन हमपर जबरन युद्ध थोप रहा है तब हम हाथ पर हाथ धर कर चुप तो नहीं बैठ सकते ! शक्ति का जवाब शक्ति से ही दिया जा सकता है। चीनी अणुबम के प्रयोग के समय ही हमारे वैज्ञानिक एवं विदेशी वैज्ञानिक यह राय जाहिर कर चुके हैं कि भारत यदि चाहे तो जल्दी ही अणुबम बना सकता है। कुछ लोगों का कहना यह है कि विदेशी मुद्रा की तंगी के कारण तथा धनाभाव के कारण हमें अणुबम नहीं बनाना चाहिये अन्यथा राष्ट्र पर भारी दवाब पड़ जायगा। किन्तु उनको यह देख लेना चाहिये कि चीन ने पाकिस्तान को सैद्धान्तिक रूप से भले ही हम अपना दु...

न मानें किन्तु व्यावहारिक रूप मे वे हमारे शाश्वत दुश्मन हैं और रहेंगे। झगड़ा मूलभूत सिद्धान्तों का एवं जीवनादर्शों का जो है। उस हालत में यदि चीन ने फिर से भारी हमला कर दिया तो इसकी क्या गुंजाइस है कि वह अणुबम का प्रयोग हम पर न करेगा और जो लोग यह कहते हैं कि यदि चीन हम पर आक्रमण करेगा तो अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि पश्चिमी राष्ट्र स्वेच्छा से हमारी सहायता के लिये कूद पड़ेंगे। उन्हें अब आंख की पट्टी उतारकर यह देख लेना चाहिये कि पाकिस्तानी हमले के समय हमारे इन दोस्तों ने जहां एक ओर पाकिस्तान को अस्त्र-शस्त्रों की पूरी सहायता दी वही दूसरी ओर पी. एल. ४८० के अन्तर्गत आनेवाली खाद्य-पूर्ति भी उसने भारत को बन्द कर दी। यही नहीं ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री विल्सन पाकिस्तानी घुसपैठियों और सैनिक आक्रमण के समय तो पूर्ण चुप्पी साधे रहे किन्तु आत्मरक्षा के प्रयत्न में जब हमारी सेना ने लाहौर के अंचल में प्रवेश किया तो श्री विल्सन गहरी निद्रा से चौंक पड़े और भारत को आक्रमक घोषित करने में कतई न चूके। भला ऐसे राष्ट्रों के भरोसे अपनी सुरक्षा सौंप देना कहां तक बुद्धिमानी एवं राजनीति का परिचायक होगा कह सकना कठिन है।

संकटकालीन इस परिस्थिति में देश के अन्दर कार्यरत दूसरी रक्षा पंक्ति को गुरुत्तर कार्य करना है। युद्ध क्षेत्र हो अथवा अन्य कोई राष्ट्रीय संकट उसका डटकर और सफलता पूर्वक सामना करने के लिये हर पेशे के लोगों को

कमर कसकर तैयार रहना चाहिये। राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में हम भूतपूर्व प्रधान सेनापति जनरल के करियप्पा के उद्‌गारों को उद्‌घृत करने का लोभ नहीं कर सकते:— "अभिभावकों और गुरुजनों को बच्चों और शिष्यों के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुये अच्छी तरह प्रशिक्षित करना चाहिये। देश की जिम्मेदारी है कि वह हमें नैतिक और शारीरिक दृष्टियों से सुदृढ़ व्यक्ति मुहैया करे ताकि हम एक क्षमतावान शक्तिशाली सेना संगठित कर सकें। आज का बालक कल का नागरिक है और आनेवाले कल के प्रति असावधान नहीं रहा जा सकता।"

समग्रत: आज भी हमें राष्ट्रपिता के निर्देशित मार्ग पर चलना है। अहिंसा धर्म का पालन हमें आज भी करना है किन्तु अपनी आजादी, राष्ट्रीय अखण्डता एवं आर्थिक व राजनैतिक दासता की शर्त पर नहीं। शक्ति अर्जित कर हम अहिंसा का अच्छी तरह पालन कर सकते हैं। निर्बल राष्ट्र की अपेक्षा सबल राष्ट्र इस धर्म का पालन अच्छी तरह कर सकने में समर्थ है। हां शक्तिशाली बनकर हम शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना चाहेंगे यह भी हमारा धर्म है किन्तु आततायियों को नेस्तनाबूद करने में कभी नहीं हिचकें यह भी हमारा राष्ट्रीय धर्म है!

आइये, हम बीमार पड़ जायें

लेखक :— महावीरप्रसाद अग्रवाल

न जाने क्या हो गया मेरे इन कानों को हरदम और हर जगह यह आवाज सुनाई पड़ती है कि आओ, हम बीमार पड़ जायें। क्या आप नहीं सुन रहे।

कौन हैं ऐसा चिल्लाने वाले ? क्या दफ्तरों से झूठे डॉक्टरी सर्टिफिकेट पर बीमार होने वाले या हड़ताल का नया तरीका अपनाने वाले ? नहीं, नहीं ये नहीं बल्कि यह आवाज मुझे अपने, आपके और जहां भी मैं जाता हूं उसी स्थान से आने लगती है। बात तो अजीब है, मुझे भी ऐसा लगता है लेकिन मैं अपने कानों पर अविश्वास करूं भी तो कैसे ?

सुनो, सुनो वह आवाज फिर आई........राष्ट्र प्रगति कर रहा है जहां पहले देश में कुल जितने औषधालय हैं......हमारे गांव में अस्पताल नहीं है, अस्पताल खोलो वरना हम मर जायेंगे.......(घर में) बेटा, देख यह कचौरी कितनी स्वादिष्ट है, खा ले, पेट भर गया तो क्या है ....अरे यह चाट! मैं चट किये बिना कैसे रह सकता हूं, चाहे कुछ भी हो.......लो दोस्त, तुम्हारा कहना कैसे टालूं, वैसे तो अब मेरा यह चौथा वार है खाने का .....वेटर दो प्लेट (....डकारें, चैन ही नहीं लेने देतीं) ! अ अ और लक्कड़ हजम, पत्थर हजम चूरण !.......वैद्यजी ! सबेरे चूरमा जो बढ़िया बना तो ठूंस-ठूंस कर खा गया, बगैर दो टिक्कड़ (मोटी और

रूखी रोटी) खाये मन न माना और बाजार में यार मिल गया तो उसने घी में तर कुछ लड्डू दिये अब....!" अब ऐसा करो कि बाजार से 'प... खरीदो और उसे भी पचाओ.......

—बस, मैं आवाजें न सुन सकूंगा, सुनते-सुनते के पर्दे फटे जा रहे हैं। इधर हम बीमारी खरीद हैं, बुला रहे हैं और उधर हमारे पूर्वज मंगल... कर रहे हैं—

'सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया:'

'होवें सभी नीरोग'। नीरोग यानी स्वस्थ। स्वस्थ शब्दों का समूह— स्व अर्थात् अपना और स्थ ठहरा हुआ कहिये कि स्वस्थ वह है जो अपने रूप में स्थित है, 'अस्वस्थ' उसका असली रूप नहीं आप चाहे तो इसका आशय यह भी निकाल सकते कि बीमार होना मानव के लिए एक अपराध है कहिये प्रकृति द्वारा दिया गया अपने प्रति किये अपराध की सजा है अस्वस्थ होना हमारे लिये ... का विषय होना चाहिए, वैद्यों का बढ़ना अपना ... का चिह्न! लेकिन ऐसा सब कहां है, इसके विपरीत बीमार होना चाहते हैं, अस्पताल में 'बैड' मांगते नर्स के हाथों परिचर्या चाहते हैं और मरना भी ... अस्पताल में ही प्यारा लगता है।

'हम बीमार होना चाहते हैं !'

वर्ना, ईश्वर निर्मित इस मानव-शरीर-यन्त्र को सफाई आदि के लिए कभी तो समय देते। 'अशर्फियां लूटीं और कोयलों पर मोहर' वाली उक्ति हम पर चरितार्थ होती है, कुछ चांदी के टुकड़ों पर प्राप्त मशीनों की जितनी देखभाल की जाती है उसका कुछ हिस्सा भी इस शरीर--यन्त्र पर नहीं किया ाता। ऐंटे हम मग्न बैठे हैं कि जितना ही इससे काम लेंगे उतना ही अधिक हितकर होगा । चौबीस घंटों में केवल ८-१० घंटे काम करके भी हर सप्ताह अवकाश चाहिए हम लोगों को किन्तु प्रायः चौबीस घण्टों व्यस्त शरीर-यन्त्र को कोई अवकाश नहीं। समय कुसमय कुछ न कुछ ठूँसने की धुन, वह भी अव्यवस्थित और अनाप-शनाप। इतना सब कुछ देखते-सुनते हुए भी आप इस आवाज को नहीं सुन पाते, मुझे तो आश्चर्य है।

हटो, हम बीमार होने दो।

'नहीं, साहब, हम ऐसा न होने देंगे'— परन्तु तुम जैसी तूतियों को इस नगारे की घमर-धमर में कौन सुनता है और फिर आप इन्हें रोकने वाले होते कौन हैं? देश युद्ध की लपटों में आया, अनाज की कमी आई और अन्न की कीमत पर स्वाभिमान बिकने को हुआ। अन्न बचाकर राष्ट्र-गर्व को उठाने की बात हुई लेकिन अपने देश पर सर्वस्व निछावर करने वाले हम एक-दो समय का भोजन छोड़ने को तैयार नहीं हुए। कहे कौन? तो तर्क को तैयार — 'भला, क्या होता है

जरा सा अन्न न खाने से और यों कब तक चले। नाच न आवे आंगन टेढ़ा। जरा से अन्न त्याग से अन्न समस्या का एक अंश में हल पाता है। रहा का सो मांगकर खाने में भी तो यही बात उठ है। परन्तु बीमारी का साथ छोड़ना किसी को भावे न! बीमार हों या काल की भेंट अनाचार-भ्रष्टा से आयोजित बड़ी-बड़ी पार्टियों में पार्ट लिये बगैर बगैर प्लेट पर हाथ फेरे चैन नहीं आने का।

बीमारी को आना पड़ेगा।

बीमारी में भी कुछ मजा है। चाहे कजा (कष्ट, प्रलय) ही क्यों न आ जायें पर यह मजा छूटे। और काम चूके परन्तु भोजन का समय......

भोजन का थाल आ गया। थाल क्या है मन खाद्यों का लुभात ढेर है। लो, बेसब्री से थालपर पड़े। जीभ जिन्दा बाद, पेट चाहे कसमसाता रहे, लपाती जीभ का स्वाद न मिटे। खाते-खाते जब तो 'हाजमा' दवाई उठाई और गले के नीचे। समय, सीमा, विवेक सभी डरकर बीमारी के स्वागत लग गए।

इधर शौचालय में, बीमारी आने का अलार्म दे है परन्तु डर क्या आने दो। पाखाने में बैठे हैं ५... १५.......समय की सूइयां मिनटों की निगल रही हैं हमारे अन्दर का मल अन्दर ही अन्दर उछल-कूद आनन्द ले रहा है, बाहर आने का नाम नहीं।

और जोर मारा तो सारा पाखाना थोड़े से मल से दुर्गन्ध से भर गया। विकृत रंग और विकृत ढंग का मल हमारे स्वास्थ्य का अच्छा बैरोमीटर (मापक) है लेकिन कीमती समय वाले हम इतना क्यों और किस लिये सोचें।

हमें, बीमार पड़ने दो न!

हम अगर बीमार न पड़ें तो ये बेचारे वैद्य-डॉक्टर कहां जायेंगे। ये भूखे मरेंगे, इनके बच्चे भूखे मरेंगे। इसलिए हमें बीमार पड़ने दो, रोको मत। अगर हम बीमार न पड़े तो काम से छुट्टी कैसे मिलेगी? अपने इर्द-गिर्द मँडराते लोगों मित्रों-सम्बन्धियों को देखकर क्या सुख होता है? खाने-पीने में तो तब भी क्या कमी आती है।

शोर बढ़ता जा रहा है। वह शोर मुझे भी अपने अन्दर शामिल करने के लिये बेचैन है। जब कभी भूला-भटका मैं हलवाई की दूकान के पास से निकलता हूं तो एक साथ सहस्रों आवाजें कान के पर्दे से आकर टकराती हैं आओ हम बीमार पड़ जायें।' हलवाई की दूध भरी कढ़ाई में बेजान पड़ी मक्खियां, लड्डूओं के बीच चीटों की टांगें या धड़ की इलायची या बर्फी में बन्द, मैदा की मुलायम, खुले थालों की मिठाइयां, रंगीन मिष्टान्न की खुशबू - बहरों के कानों को भी सुनाई देने वाली आवाज सुन-सुन कर मैं घबरा उठता हूं और आश्चर्य करता हूं कि इतनी व्यापक आवाज भी तुम्हें क्यों नहीं सुनपाती।

यह आवाज हंसती भी है।

मुझे इसकी विकृत हंसी सुनकर क्षोभ होता है, मन मसोस कर रह जाता हूं। यह क्यों हंस रही, आप नहीं जानते? यह आवाज उन बहरों पर हंस रही है जो इस आवाज को नहीं सुनते। यह हंसी उन पर भी है जो पेट का ध्यान रखते हैं, खाने का ध्यान, विजातीय द्रव्यांशों को निकालने के लिए उपवास करते हैं, शारीरिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए 'आसनों' का अभ्यास करते हैं और अस्वस्थ होने की अवस्था में डॉक्टरों की शरण जाने के स्थान पर प्रकृति की गोद में जाना चाहते हैं चाहे आप सुनें या नहीं, आवाज अपनी क्रूर हंसी के साथ चीखे जा रही है— 'आओ, हम सब बीमार पड़ जायें।'

इन्दिराजी—हमारी नयी प्रधान मंत्री

लेखकः—हरिश्चन्द्र सिंह एम. ए.

प्रजातंत्र के पिछले साढ़े तीन सौ साल के लम्बे इतिहास में सन् १७५९ में विलियम पिट को इंगलैंड में अपने पिता के प्रधान मंत्री पद छोड़ने पर प्रधान मंत्री बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। और आज श्रीमती इन्दिरा गान्धी को, जो हमारे भूतपूर्व प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की यशस्वी पुत्री हैं, इश्वरेच्छा से प्रधान मंत्री बनने का यश प्राप्त हुआ है। पिता की जगह पुत्र का प्रधान मंत्री होना स्वाभाविक-सा लगता है। पर पिता की जगह पुत्री का प्रधान मंत्री होना निश्चय ही एक बड़ी घटना है। वैसे भी इस घटना का महत्व कम नहीं है। आप हमारे देश की प्रथम और विश्व की द्वितीय महिला प्रधान मंत्री हैं। श्रीलंका की श्रीमती बनडारनायक संसार की पहली महिला प्रधान मंत्री चुनी गई थीं। इन्दिराजी का प्रधान मंत्री होना हमारे लिये ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण एशियावासियों के लिये प्रसन्नता एवं गर्व का विषय है, क्योंकि इस महाद्वीप की महिलाएँ संसार के सुविकसित देशों की महिलाओं से बहुत पिछड़ी हुई मानी जाती हैं।

भारत की नयी आत्मा

इन्दिराजी के जन्म पर पंडित नेहरू को बधाई सन्देश भेजते हुये भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू ने लिखा था "भारत की नव नूतन आत्मा का हार्दिक स्वागत, शत-शत अभिनन्दन।" लगभग पचास वर्षों बाद, १९ जनवरी १९६६ को उनका यह काव्यमय आशीर्वचन एक इतिहास

सम्मत सत्य के रूप में प्रकट हुआ, जब कि आपकी
पार्टी ने भारी बहुमत से अपना नेता चुनकर,
प्रथम महिला प्रधान मंत्री होने का गौरव दिया।

बचपन

आपके जन्म के समय एनीबेसेन्ट के नेतृत्व में
पार्टी ने होमरूल आन्दोलन शुरू किया था। यह आ
जोर पकड़ता गया। ब्रिटिश सरकार ने लाचार होकर दे
सभी बड़े-बड़े नेताओं को पकड़ कर जेल में बन्द कर दि
नेहरू परिवार के अधिकांश सदस्य भी गिरफ्तार कर लि
गये थे। वे जेल से छूटने पर किसी-न-किसी अपरा
बहाने फिर कैद कर लिये जाते थे। घर पर रहने का
उन्हें कम ही मिलता था। इस प्रकार हम देखते हैं
इन्दिराजी का बचपन आन्दोलनों और हलचलों के बी
बीता था। इस बात की पुष्टि आप के इस कथन से भी
साफ हो जाती है :— "मुझे दूसरे बच्चों के साथ खे
या खेल-कूद में भाग लेने की कोई घटना याद नहीं आ
एक नन्हीं-सी बालिका के रूप में भी मेरा एकमात्र मन-प
काम था—एक ऊँचे मेज पर खड़े होकर, घर के नौकरों
सामने भाषण देना।" चार साल की उम्र में ही इस हो
बालिका ने अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन में
दर्शिका के रूप में भाग लिया था। उसके मन पर
प्रभाव पड़ा होगा, इसका सहज अनुमान आप स्वयं
सकते हैं। १२ वर्ष की उम्र में असहयोग आन्दोलन
समय छोटे बच्चों की ६०,००० सेना आपने तैयार की
जिसे बापू ने वानर-सेना का नाम दिया था। इसका

काम या राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के पास सन्देश दे ले आना
सन् १९४२ में आपका विवाह हिन्दू रीति से श्री फिरोज
गांधी से हुआ। विवाह के कुछ ही महीनों बाद "भारत
छोड़ो" आन्दोलन छिड़ा। पति-पत्नी दोनों ने देश के
गणमान्य नेताओं की तरह इसमें भाग लिया। उन्हें
गिरफ्तार कर नैनीजेल में बन्द कर दिया गया।

शिक्षा

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा शान्ति निकेतन में हुई थी।
वहां पर आपने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के सानिध्य में
रहकर विभिन्न विषयों के अतिरिक्त, संगीत, चित्रकला और
नृत्यकला में अधिक जानकारी प्राप्त की थी। आपके
विद्यार्थी-जीवन की प्रशंसा करते हुये गुरुदेव ने पंडित नेहरू
को अपने पत्र में लिखा था, "इंदिराजी विभिन्न अन्य
विषयों के अतिरिक्त कला के प्रति भी बड़ी दिलचस्पी
लेती रही हैं। उसके अन्दर आपकी तरह ही चारित्रिक एवं
वैचारिक शक्ति है। अध्यापक गण एक स्वर से उसकी
प्रशंसा करते हैं। वह विद्यार्थियों के बीच बहुत लोकप्रिय
रही हैं"

शांति निकेतन के बाद आपकी शिक्षा स्विटजरलैंड में
हुई और फिर आक्सफोर्ड विश्व विद्यालय के समरविले
कालेज में। उस समय आप केवल १९ वर्ष की थीं। अंग्रेजी
साहित्य की प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती टालर से आपकी भेंट
वहां हुई थी। उसने नेहरूजी को उनके पुत्री के व्यक्तित्व के
बारे में इस प्रकार लिखा था, "वह न सिर्फ सुन्दर है, वरन्
इतनी पवित्र-शुद्ध है कि उससे मिलकर किसी को भी प्रसन्नता

होगी। मुझे तो वह एक नन्हे-नाजुक फूल की जैसी लगी, फूल! जिसे हवा का कोई भी थपेड़ बिखेर सकता है। लेकिन मैं यह भी समझती हूँ कि वह हवा के थपड़ों से भयभीत नहीं है।"

बाल-कल्याण में विशेष रुचि

आपकी रुचि राजनीति के अतिरिक्त समाज-सेवा की ओर भी कम न थी। आप सन् १९४० से ही विभिन्न संस्थाओं की स्थापना कर दीन-दुखियों, अनाथ बच्चों, अपंगों और गांव की महिलाओं की शिक्षा और उनके आत्म-विकास के लिये जी तोड़ प्रयत्न कर रही हैं। आज से दस साल पहले अधिकारियों और जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुये आपने कहा था, "बच्चों को लोग देश का भावी नागरिक कहकर सम्बोधित तो करते हैं, परन्तु उनके कल्याण के लिये कोई रचनात्मक कदम नहीं उठाते। प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में बालकल्याण और स्त्री शिक्षा के प्रश्न की उपेक्षा की गयी। भविष्य में इस समस्या की उपेक्षा न की जाय और बच्चों के प्रति न्याय हो।"

आप भारतीय बाल-कल्याण परिषद की अध्यक्षा और अन्तरराष्ट्रीय बाल-कल्याण संघ की उपाध्यक्षा हैं। आपका सम्बन्ध केन्द्रिय समाज कल्याण बोर्ड और अखिल भारतीय हस्त-कला बोर्ड से भी है। आप दिल्ली स्थित 'बाल-भवन' और कमला-नेहरू विद्यालय इलाहाबाद की भी अध्यक्षा हैं।

बापू का आशीर्वाद

गांधीजी के निकट सम्पर्क में आप उस समय आयीं, जब

अपनी शिक्षा इंगलैंड से पूरी कर स्वदेश आयीं। उनके व्यक्तित्व से आप बहुत प्रभावित हुईं। बापू का सादा जीवन देखकर वैसा ही सादा जीवन बिताने का आपने संकल्प कर लिया। इसके साथ ही उनके अन्य आदर्शों सत्य और अहिंसा का पालन भी दैनिक जीवन में शुरू कर दीं। और इन सबका कार्यान्वित कर उनके एक महान् आदर्श "अपनी मदद आप करो" का पालन भी सफलता पूर्वक कर डालीं। गांधीजी यह सब देखकर मन-ही-मन बहुत खुश होते। बापू की प्रसन्नता की एक घटना मैं आपको बतला रहा हूँ।

सन् १९४५ में इलाहाबाद में हिन्दू-मुस्लिम दंगा जोरों से शुरू हुआ। गांधीजी को इसकी सूचना मिली। उन्होंने अन्य व्यक्तियों के अलावा इंदिराजी से दंगायी क्षेत्रों में जाकर काम करने का अनुरोध किया। बापू की आज्ञा को शिर-आखों पर रखकर आपने उन क्षेत्रों में जाकर पीड़ितों की देख-भाल और सुरक्षा की व्यवस्था शुरू कर दीं। आपके व्यक्तित्व का प्रभाव लोगों पर जादू का-सा पड़ा। दंगा शांत हो गया। लोग मेल--मिलाप से रहने लगे। गांधीजी इससे बहुत खुश हुये। उन्होंने कहा, "बेटी इंदिरा! तुम्हारी विदेशी शिक्षा आज सफल हो गयी। तुम्हारी कार्यक्षमता में मुझे जरा भी सन्देह नहीं है।"

व्यापक अनुभव

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इन्दिराजी बचपन से ही राजनीति में भाग लेती रही हैं। आपने स्वतंत्रता आन्दोलन के दरम्यान और उसके बाद, देश

के प्रत्येक भाग का तूफानी दौरा कर जनता के दुःख कठिनाई, अभाव और अन्य सभी समस्याओं को आपने आंखों से देखा है। देश की वर्तमान स्थिति की आपको सच्ची जानकारी है।

इसी तरह आपने पिछले सत्रह सालों में अपने पिता पंडित नेहरू के साथ विश्व के सभी देशों की राजधानियों में एक से अधिक बार यात्रा की है। आपने वहां के चोटी के नेताओं से बात-चीत कर, उनकी नीतियों और आदर्शों को जानने का प्रयास किया है। आपने अमेरिका के पिछले चार राष्ट्रपतियों श्री ट्रूमन, श्री आइसनहावर, श्री केनेडी, श्री जानसन, इंगलैंड के ६ प्रधानमंत्रियों श्री चर्चिल, एटली, श्री इडेन, श्री मैकमिलन, श्री डगलस होम, श्री विलसन, रूस के पांच बड़े नेताओं श्री मोलोतोव, श्री स्तालिन, श्री ख्रुश्चेव, श्री बल्गानिन, श्री कोसिजिन, यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टिटो, संयुक्त अरब गण राज्य के राष्ट्रपति श्री नासर, चीन के प्रधान मंत्री श्री चाऊ एन. लाई और इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति श्री सुकर्ण से मिली हैं। अन्य और नेताओं से भी आपकी भेंट हुई है, पर उसका वर्णन करना यहां सम्भव नहीं है। इसमें तो कुछ प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और नेता तो पंडित नेहरू के बड़े ही विश्वसनीय मित्र थे और अब भी हैं। बड़े-बड़े महापुरुषों के साथ रहकर आपने राजनीति के सभी दाव-पेंच और उसके उतार-चढ़ाव सीख लिये हैं।

भाषा

इन्दिराजी स्वयं कई भाषायें जानती हैं, जिनमें कई देशी और विदेशी भाषायें भी हैं। देशी भाषाओं में हिन्दी और उर्दू का अच्छा ज्ञान है। तमिल भी आप थोड़ा जानती हैं। विदेशी भाषाओं में आप अंग्रेजी और फ्रेंच जानती हैं। आपकी यह मान्यता है कि लोगों को अधिक से अधिक भाषाएं सीखनी चाहियें। दूसरे की भाषा हम सीख कर ही उनकी सभ्यता, संस्कृति और कला को अच्छी तरह समझ सकते हैं। हिन्दी को आप राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होते देखना चाहती हैं, लेकिन किसी का अहित और किसी पर लाद कर नहीं। आपने अपने प्रथम प्रेस सम्मेलन में कहा है — "देश को एक सम्पर्क भाषा की जरूरत है और वह भाषा केवल हिन्दी ही हो सकती है। हमें हिन्दी किसी पर थोपनी नहीं है। धीरे-धीरे यह पूरे देश की सम्पर्क भाषा हो जायगी। देश हित में कोशिश यह की जानी चाहिये कि जल्दी से जल्दी ऐसा हो जाय। वैसे अन्तर राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिये हमें अंग्रेजी की जरूरत पड़ेगी। सब लोगों को अपनी भाषा के साथ-साथ हिन्दी पढ़नी चाहिये और एक अन्तरराष्ट्रीय भाषा को भी सीखना चाहिये"

कुशल शासक

सन् १९५९, ६० में कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर काम करके आपने कांग्रेस दल की प्रतिष्ठा में चार-चांद लगा दिये। आपके अनुरोध पर विचार कर केन्द्रीय मंत्रि-मंडल ने केरल में कम्युनिस्ट शासन समाप्त किया था।

आपके ही नेतृत्व में केरल में कांग्रेस, मुस्लिम लीग और प्रजासोशलिस्ट पार्टी का गठ बन्धन हुआ, जिसमें कांग्रेस मध्यकालीन चुनाव में भारी बहुमत से विजयी हुई। आप ने महाराष्ट्र और गुजरात को दो अलग-अलग राज्यों में बांटने के लिये अकथनीय परिश्रम किया। उसका ही यह सुखद परिणाम हुआ कि आज गुजरात और महाराष्ट्र दो अलग राज्य हैं और प्रगति की ओर बढ़ रहे हैं।

सन् १९६४ में आप शास्त्री मंत्रीमंडल में सूचना और प्रसारण मंत्री बनीं। इस अठारह महीने के अल्पकाल में आपने बहुत से सुधार किये, जिससे आज प्रसारण की क्षमता बढ़ गयी है। तीन नयें रेडियो स्टेशन खुलवाये। टेलीविजय योजना को साकार रूप देने के लिये भगीरथ प्रयत्न किया। आशा है, अगले दो साल में हमारे देश में भी टेलीविजन का प्रयोग जनता करने लगेगी। यही नहीं, आपने आकाशवाणी में काम करने वाले कलाकारों की आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयास किया।

राजनैतिक गुरु

इन्दिराजी के राजनैतिक गुरु स्वर्गीय गोविन्दवल्लभ-पन्त और श्री लालबहादुर जी थे। संकट की घड़ी में आप इन दो महापुरुषों से सलाह-मशविरा लेती थीं। उनकी ही आज्ञा को शिरोधार्य कर आपने सन् १९५९ में कांग्रेस अध्यक्ष बनना स्वीकार किया था। अपने प्रथम प्रेस सम्मेलन में एक प्रश्न का उत्तर देते हुये

आपने कहा था, "मैंने जब-जब राजनीति से निकलने का इरादा किया, मुझे इसमें दीक्षित कराने वाले इन दोनों नेताओं ने ऐसा न करने के लिये मना लिया और इस प्रकार मैं राजनीति में बनी रही।"

विदेश नीति

हमारी विदे नीति में कुछ फेर बदल नहीं होगी। आप उन नीतियों का पालन करने के लिये कृत संकल्प हैं, जिनका अनुसरण पंडित नेहरू और शास्त्रीजी करते रहे हैं। इसका आशय यह है कि भारत आपके नेतृत्व में गुटों से अलग रहकर सह अस्तित्व, पंचशील और शांति की नीति पर चलेगा। आपने आकाशवाणी से २६ जनवरी की रात को राष्ट्र के नाम अपना प्रथम संदेश प्रसारित करते हुये कहा कि, "मैं गुटों से अलग रहकर सह अस्तित्व और पंचशील के आधार पर उस नीति का अनुसरण करूंगी, जिसका पालन हमारे पूर्वगामी नेता, मेरे पिता स्व० जवाहरलाल नेहरू एवं श्रीलाल-बहादुर शास्त्री करते रहे हैं। मैं राष्ट्रीय हितों और राष्ट्र के सम्मान को ध्यान में रखते हुये शांति के लिये सचेष्ट रहूंगी। मेरी सरकार देश की स्वतंत्रता और क्षेत्रिय अखण्डता की रक्षा का दायित्व पूरी-पूरी वहन करेंगी" इस सन्दर्भ में आपने सुरक्षा सेनाओं द्वारा प्रदर्शित वीरता एवं साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इंदिराजी एक दृढ़ निश्चयी, दृढ़ संकल्पी एवं साहसी महिला हैं। आपमें कार्य करने की अपूर्व क्षमता और शक्ति

है और इस शक्ति का स्रोत है, जनता का आप के महान नेतृत्व में विश्वास, आस्था, भरोसा और सहयोग करने की भावना। इस बात को स्पष्ट करते हुये आपने पत्रकारों के एक सम्मेलन में कहा कि "भारत इस समय बहुत जटिल दौर में है। आर्थिक और खाद्य मोर्चों पर और सीमा पर हमारे सामने बहुत सी कठिनाइयां हैं। भारतीय जनता ने युगों में अकथनीय कठिनाइयां झेली हैं। हम प्रत्येक संकट में से संगठित, दृढ़ निश्चय और कुछ आंतरिक शक्ति के साथ उभरे हैं, जिससे हमारा अस्तित्व बना हुआ है। मुझे आशा है कि आंतरिक शक्ति और एकता बढ़ेगी। भारतीय जनता की शक्ति का मुझे भरोसा है।"

हम भारतवासी अपने नये प्रधान मंत्री इंदिराजी का एक स्वर से स्वागत करते हैं।

सृष्टिकी तमाम आश्चर्यजनक रचनाओं और छोटी से छोटी बातों में इतनी बड़ी निपुणता व किसी-न-किसी प्रयोजन को देखकर हमें ऐसा मानना पड़ता है कि इसका रचनेवाला कोई न कोई अवश्य है जिसे चाहे हम 'ईश्वर', 'भगवान', 'गॉड' इत्यादि किसी भी नाम से पुकारें। यह सृष्टि की रचनेवाली सत्ता, अवश्य ही ज्ञानवती व सर्वज्ञ होगी अन्यथा इतनी बुद्धिमानी से इस विशाल ब्रह्माण्ड की रचना व नियमबद्ध करना सम्भव नहीं हो सकता। किन्तु कितने ही लोग यह आपत्ति उठाते हैं कि—क्या जरूरत है कि हम किसी ज्ञानवती सत्ता 'ईश्वर' के अस्तित्व को स्वीकार करें ?

इस आपत्ति का सहज उत्तर दिया जा सकता है। यदि हम यह मानते हैं कि सृष्टि नियमों से बंधी है। सृष्टि की प्रत्येक घटना किसी-न-किसी नियम के आधार पर घटित होती है, तो पुनः हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि—नियमों का अस्तित्व किसी-न-किसी प्रयोजन को लेकर ही है। क्योंकि बिना प्रयोजन के तो कोई नियम होता ही नहीं।

जैसा कि हम पीछे विचार कर चुके हैं। जहां प्रयोजन है वहां पूर्व-ज्ञान भी मानना युक्ति संगत है, कारण कि बिना पूर्व ज्ञान के प्रयोजन की कल्पना भी सम्भव नहीं हो सकती। नियम कभी भी ज्ञानरहित नहीं हो सकते। 'नियम' शब्द के साथ ही पूर्व ज्ञान और प्रयोजन दोनों ही अभिप्रेत हैं।

अतः वह नियामक सृष्टि की रचना नियमों द्वारा करता है, उसका पोषण भी नियमों द्वारा करता है। जब सृष्टि के विभिन्न तत्वों का संहार होता है तो वह भी नियमों द्वारा यथा समय एवं यथा क्रम ही होता है। ऐसे उस पूर्व-ज्ञानवान नियामक की सत्ता एक ही हो सकती है अनेक नहीं। वरना परस्पर संघर्ष तथा द्वन्द्व सम्भव हो सकता है। नियम पूर्वक सृजन की सम्भावना तो बिल्कुल नहीं हो सकती।

उस नियामक की महती सत्ता के आधीन अन्य अनेक छोटी-छोटी सत्तायें भी हो सकती हैं। जो कि उस महती सत्ता को त्रिविध नियमों के यथावत् पालन में सहायक होती होती हैं। जिन्हें शास्त्रों में देवता नाम से पुकारा जाता है। शास्त्रों में वर्णित तेतीस करोड़ देवता ये प्रभु की छोटी-छोटी सत्तायें ही हैं। परन्तु इन तमाम सत्ताओं में और उस एक पूर्ण ज्ञानवान नियामक की महती सत्ता में बड़ा भारी भेद है। ये छोटी-छोटी सत्तायें विशेष नियमों के भीतर ही अपना प्रभाव जमा सकती हैं और साथ ही उन्हें स्वयं नियमों का पालन भी करना पड़ता है। क्योंकि—ये उन नियमों की स्वामिनी नहीं है। इस कारण सेवक के समान उन नियमों का पालन करते रहने के लिये उस महती

सत्ता परमात्मा के आधीन हैं। उसके अंग-प्रत्यंग के रूप में विरुक्त में वर्णित हैं। परंतु जो सत्ता इन छोटी-छोटी सत्ताओं को नियम के अंदर बांधे हुये हैं वह एक महती सत्ता है जिसका प्रभाव सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक है। इसलिये ही इस महती सत्ता को परमात्मा तथा सर्वशक्तिमान कहा जाता है। लेकिन एक बात ध्यान रखने जैसी है कि 'सर्वशक्तिमान' शब्द बड़ा भ्रमात्मक है। बहुधा लोग ऐसा समझने लगते हैं कि परमात्मा को 'सर्वशक्तिमान्' कहने से यह अभिप्राय है कि परमात्मा सब कुछ कर सकता है।

अनीश्वरवादी कभी-कभी ऐसी शंका प्रस्तुत कर देते हैं कि—"क्या ईश्वर कोई ऐसी वस्तु बना सकता है जिसका वह स्वयं ही विनाश न कर सके? यदि इस प्रश्न के उत्तर में 'हां' कहा जाये तो ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता में अन्तर पड़ता है क्योंकि जब वह अपनी रची वस्तु का संहार न कर सकेगा तब वह सर्वशक्तिमान् कैसे हो सकेगा, सर्वशक्तिमान के लिये तो सभी कुछ करना सम्भव हो सकेगा। विपरीत यदि उस अनीश्वरवादी के प्रश्न के उत्तर में 'नहीं' कहा जाय तो भी परमात्मा सर्वशक्तिमान नहीं साबित होगा क्योंकि वह उस कार्य को नहीं कर सकता। इस प्रकार दोनों प्रकार से परमात्मा सर्वशक्तिमान सिद्ध नहीं हो सकेगा। और भी अनेकों प्रश्न इसी प्रकार के सोचे जा सकते हैं जिनके हां-न किसी प्रकार उत्तर देने पर परमात्मा सर्वशक्तिमान प्रमाणित नहीं हो सकता जैसे क्या सर्वशक्तिमान परमात्मा अपने को नष्ट कर सकता है?

क्या वह अपने से अधिक महान दूसरा परमात्मा बना सकता है ? इत्यादि।

उक्त प्रश्नों से यह स्पष्टतः विदित हो जाता है कि ऐसा प्रश्न करने वाले लोग 'सर्वशक्तिमान' शब्द का अर्थ गलत समझते हैं। ऐसी धारणा भी निश्चय ही भ्रम मूलक है कारण सर्वशक्तिमान का सीधा सा अर्थ है समस्त शक्तियों का अधिष्ठान। अर्थात् ब्रह्माण्ड में जितनी भी छोटी-बड़ी शक्तियां हैं वे सब उस परमात्मा से ही उद्भूत होती हैं, उसी के आधार पर अवस्थित रहती हैं और अन्ततः उसी में समाविष्ट हो जातीं हैं। परमात्मा को सर्वशक्तिमान कहने का अभिप्राय यह है कि परमात्मा सर्व नियन्ता है, सदैव नियम और प्रयोजन को ध्यान में रखकर ही समस्त शक्तियों को क्रियाशील करता है। किन्तु कुछ लोगों के हृदय में यह धारणा भी घर कर गई है कि जो उच्छृंखला बनकर अनियमित रूप से कार्य करे वही शक्तिमान कहलाने योग्य है।

उदाहरण स्वरूप, कोई दुष्ट शासक हो, लोगों को निरर्थक सताता हो, जब मन चाहे किसी निरापराधी को भी से मरवा दे, जब मन चाहे पड़ोसी देशों पर हमला कर दे। ऐसे शासक को प्रायः लोग शक्तिशाली कह कर पुकारते हैं। शक्तिमान व शक्तिशाली शब्द के विषय में इस प्रकार की गलत धारणा होने के कारण ही सर्वशक्तिमान परमात्मा के सम्बन्ध में भी हम ऐसा वैसा ही सोचने लगते हैं। कह उठते हैं कि — जो व्यक्ति

नियमानुसार व्यवहार करेगा वह नियमों का दास बन जायगा। स्वतंत्र तथा शक्तिशाली नहीं हो सकेगा। लेकिन यथार्थ सत्य तो यह है कि जो नियमों में बंधना नहीं चाहते वे शक्तिशाली नहीं हैं क्योंकि नियमों को यथावत् पालन करने की शक्ति उनमें नहीं है और न ही उन्हें उन नियमों का पूर्ण बोध ही है अन्यथा नियम पालन में उन्हें संकोच नहीं हो सकता। जिसे नियमों का पूर्ण ज्ञान है, जिसे यह भलीभांति विदित है कि किन-किन प्रयोजनों को लक्ष्य कर वे नियम बने हैं।

जिसके पास उन नियमों को पालन करने की शक्ति है वह कभी भी इन नियमों का उल्लघन करना स्वीकार नहीं करेगा। लेकिन परमात्मा तो सर्वज्ञ है, पूर्ण ज्ञानवान है, पूर्ण सामर्थ्यवान है, अतएव उनके विषय में यह प्रश्न ही नहीं उठता कि वे कभी भी किसी नियम का उल्लंघन करेंगे या करते हैं। प्रत्येक नियम सप्रयोजन है अतः परमात्मा नियम विरुद्ध कर कोई निष्प्रयोजन कृत्य को पूरा नहीं कर सकता।

हम लोग अपने राष्ट्र के प्रधानमंत्री को देश की दृष्टि से पूर्ण शक्तिशाली कह सकते हैं लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वह ऐसा क्षुद्र काम करने लगे जो निरर्थक हो और राष्ट्र-नियमों के विरुद्ध हो। वह तभी तक शक्तिशाली है जब तक कि राष्ट्र नियमों का यथावत् पालन करता है, अन्यथा वह उस पदवी या सत्ता का अधिकारी नहीं समझा जायगा। इसी प्रकार परमात्मा

की सर्वशक्तिमतता को समझना चाहिये। प्रधानमंत्री अ
राष्ट्र के नियमों का यथावत् पालन करता है तो व
शक्तिशाली सर्वनियन्ता कहलाता है, देश में उसे पू
सत्ता प्राप्त होती है, पूर्ण स्वतंत्रता मिलती है, पूर्ण सुख
का अधिकारी भी होता है। यही कारण है कि सम्पू
नियमों का ज्ञाता, सृष्टि का नियन्ता परमात्मा सर्वशक्ति
मान है वह पूर्ण स्वतंत्र है, पूर्ण आनन्द स्वरूप है।
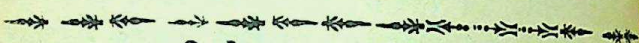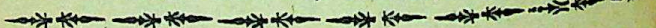
वैतरणी

लेखक :— गोस्वामी बालक (साहित्य रत्न)

मरणासन्न रोगी की अंतिम-श्वास निकल रही थी। बंधुओं ने परलोक में उसकी सद्गति के लिए शीघ्रता से दान-पुण्य की व्यवस्था की। अन्न, धन आदि के अतिरिक्त एक गौ के दान की भी योजना की गई। रोगी के हाथ में गाय की पूंछ रख कर वेदपाठी ब्राह्मण ने गौ-दान का संकल्प कराया, उपस्थित बन्धुओं को धर्म और पुराणों के अनुसार गाय दान का महत्व बतलाया गया। परलोक यात्रा में प्रेतात्मा को वैतरणी पार करनी पड़ती है। सम्भवतः यह नरक के द्वार पर बहती है। वैतरणी लोहू और पीव से भरी हुई नदी है। जो लोग स्वर्ग जाते हैं, उन्हें भी नरक के द्वार से वैतरणी को पार करके जाना पड़ता है। स्वर्ग का शुद्ध मार्ग देहधारियों को दुर्लभ है। वैतरणी के पार करने का एक ही सहज मार्ग है — गाय की पूंछ पकड़ कर उसे सरलता से पार किया जा सकता है।

परलोक की सद्गति का यह पौराणिक प्रतीक जितना ही विचित्र है, लोक में सद्गति की दृष्टि से वह उतना ही मर्मपूर्ण है। इस अद्भुत पौराणिक प्रतीक में स्वस्थ जीवन का एक मौलिक रहस्य निहित है। स्वर्ग और नरक की वास्तविक सत्ता है अथवा नहीं, यह कहना आसान नहीं। साधारणतः जैसा लोग कहते हैं स्वर्ग और नरक तो इसी लोक में है। स्वर्ग और नरक सुखी

और क्लिष्ट जीवन के पौराणिक प्रतीक हैं। स्वर्ग यौवन, सुख, समृद्धि और आनन्द के निर्विकार तथा निर्व्याधि जीवन का ही प्रतीक है।

नरक क्लेश, व्याधि और संताप के दीर्घ और यातना मय जीवन का प्रतीक है। इस नरक के द्वार पर वैतरणी का प्रवाह अत्यंत संगत और अर्थ पूर्ण है। मानसिक संताप भी जीवन में कम नहीं है। किन्तु शारीरिक रोग और व्याधियां भी सामान्यतः दुःख और संताप का प्रत्यक्ष और स्थूल लक्षण मानी जाती हैं। चिकित्सा और सेवा की योजनायें मुख्यतः शारीरिक व्याधियों के निवारणार्थ ही हैं। शरीर मुख्यत: अस्थि, मांस और रक्त का पुंज ही तो है। शारीरिक व्याधियों के भी अंतरंग आन्तरिक और सूक्ष्म रूप हैं। किन्तु क्षत, श्राव आदि शारीरिक व्याधि के सामान्य और स्थूल रूप हैं। इनकी प्रत्यक्ष जुगुप्सा रोगी और दर्शक दोनों को व्यथित करती है। भिखारी प्रायः व्याधि के इसी रूप से जनता की दया और दान प्राप्त करने में सहायता लेते हैं। जनता के जीवन में हम व्याधि के इस रूप को बिखरा हुआ और अस्पतालों में इसका एकत्रित रूप देख सकते हैं। अस्पताल भूलोक का साक्षात नरक ही है। रक्त, पीव आदि के श्रावों से पीड़ित रोगियों के प्रतिदिन प्रवाह में हम वैतरणी की धारा का प्रत्यक्ष रूप देख सकते हैं।

अस्तु, यदि नरक दुःख और यातना का प्रतीक है, तो वैतरणी रक्त, पीव आदि के श्राव के रूप में व्याधि

की स्थूल अभिव्यक्ति का प्रतीक है। व्याधि पूर्ण जीवन वस्तुतः नारकीय है। पौराणिक कल्पना में स्वर्ग जाने के लिये वैतरणी को पार करना क्यों आवश्यक माना जाता है? इसलिए कि शारीरिक व्याधियों को विजीत करके ही स्वर्गीय सुख की प्राप्ति की जा सकती है। गाय की पूंछ पकड़ कर इस वैतरणी को पार करने की कल्पना जितनी सरल और विचित्र है उतनी ही रहस्य पूर्ण भी। गाय की पूंछ पकड़ना व्याधियों की वैतरणी में डूबते हुये की रक्षा का अवलम्ब है। इसका अभि-प्राय यही है कि जीवन में गाय का अवलम्ब व्याधियों से मुक्ति का सर्वोत्तम साधन है। उस अवलम्बन के दो पक्ष हैं। एक गौ-सेवा और दूसरा गाय के दूध का सेवन। वन चारण गौ-सेवा का एक सहज और श्रेष्ठ व्यायाम है। गाय के दूध का सेवन स्वास्थ्य के लिये सर्वोत्तम आहार है। ब्रजमंडल का तो यही धर्म था। समस्त प्राचीन भारत में श्रीकृष्ण की भक्ति के समान ही यह धर्म भी व्याप्त हो गया था ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में घर-घर गायें पाली जाती थीं। ग्रामों के बालक और युवक तो गोचारण भी करते थे। गोचारण नहीं तो गौ-सेवा। तो नगर वासी भी अपना धर्म मानते थे। गौ का स्वास्थ्य-वर्धक दूध इस सेवा का अमृत फल था।

स्वास्थ्य जीवन का एक सहज और पवित्र साधन होने के कारण ही भारतीय संस्कृति में गाय की इतनी महिमा है। आर्थिक दृष्टि से प्राचीन काल में गाय ही

धन मानी जाती थी। यह आर्थिक सत्य ही गो-धन पद में रूढ़ हो गया है। ब्राह्मणों को दान और दक्षिणा में गौएँ ही दी जाती थीं। जनक ने ब्रह्मज्ञानी ऋषि याज्ञवल्क्य को एक हजार गायें भेंट की थीं। राजा जानश्रुति तत्त्वज्ञानी रैक्व को भेंट करने के लिये जो वस्तुयें ले गये थे, उनमें गायों का प्रमुख उल्लेख है। वैभव और स्वास्थ्य दोनों का साधन होने के कारण प्राचीन भारत वासी गाय को एक दिव्य सम्पत्ति मानते थे। स्वास्थ्य और वैभव का साधन होने के कारण भारतीय संस्कृति में गाय, माता के समान पूज्य थी। 'गौमाता' हमारे इस भाव का सूचक एक रूप पद सा है। 'गौ-धूलि' हमारे सांस्कृतिक जीवन की पुण्य-विभूति है। विवाह जैसे स्निग्ध और पवित्र पर्व के लिये गोधूली की बेला का परमपरागत मुहूर्त बन गया है। गो-धन की विभूति और गोचारण के धर्म के कारण ही व्रज की वसुन्धरा भारत का पवित्र तीर्थ बनी। वृन्दावन बिहारी गोपाल भगवान् के पूर्ण अवतार कहलाये। व्रज की गौओं के चारण और वर्धन का सार्थक नाम तीर्थ गोवर्धन गिरि-राज कहलाया तथा हमारी पूजा और परिक्रमा का तीर्थ दीपावली के श्री और आलोक के पर्व के प्रभात में घर-घर में गोवर्धन की पूजा की परम्परा में आज भी उस प्राचीन धर्म के संकेत शेष हैं।

लोकधर्म की परम्परा के अतिरिक्त हमारे शास्त्र और संस्कृति की अन्य अनेक मान्यताओं में गौ-महिमा का वर्णन

उपलब्ध होता है। पृथ्वी की स्थिति के सम्बन्ध में शेषफण की कल्पना के साथ-साथ एक यह भी विकल्प है कि पृथ्वी गाय के सींग पर टिकी हुई है। दोनों ही कल्पनाएँ असम्भव चमत्कार प्रतीत होती हैं। किन्तु दोनों ही सांस्कृतिक अभिप्राय हैं। ज्ञान के साधक सत्त्वगुण का प्रतीक होने के नाते शुभ्रवर्ण शेषनाग, विश्व का उपयुक्त आधार है। शेषनाग की अनन्त संज्ञा है। ज्ञान भी अनन्त ही है। उनके सहस्र फण ज्ञान की अनन्त शाखाओं के प्रतीक हैं। हमारी सांस्कृतिक परम्परा में सरस्वती के साथ शेषनाग को भी विद्या का निधान मानते हैं महाभाष्यकार पतंजली को शेषावतार मानते हैं। गोश्रृंग के विकल्प का तात्पर्य यह है केवल ज्ञान ही नहीं स्वास्थ्य भी सृष्टि और संस्कृति का आधार है। गोदुग्ध के अतिरिक्त जल भी भारतीयों का जीवन है। जलों में गंगाजल सर्वोत्तम है। सुस्वादु होने के साथ-साथ वह अविकारी और सुपाच्य है। गंगा की महानता गंगाजल के उत्तम गुणों के कारण ही है। हिमा-लय में जिस कंदरा से गंगा का उद्गम है वह 'गो-मुख' कहलाती है। आकृति की समानता के साथ-साथ गाय के प्रति हमारी पवित्र भावना में भी इस नाम-करण की प्रेरणा है।

केवल दूध देने कारण ही गाय हमारी माता नहीं बनी वरन् वह माता के समान ही सरलता, स्नेह और करुणा की मूर्ति है। अपने बछड़े के प्रति गाय का वात्सल्य प्रसिद्ध ही है किस व्यग्रता के साथ अपने बछड़े की सुधि में रंभाती

हुई वन से लौटकर आती है। गाय के इसी वात्सल्य के कारण उसके सूत्र का वाचक 'वत्स' पद मानुषी के पुत्र का ममतामय अभिधान बना। गाय की प्राकृतिक सरलता और करुणामय प्रतीक श्रुति के क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित हुआ। भगवान् शंकराचार्य ने अपने उपनिषद् भाष्य में श्रुति को करुणामयी माता का उपनाम माना है। (श्रुतिरेव अनुकम्पयाहमातृवत्) गीता माहात्म्य में समस्त उपनिषदों को गोसमूह के रूप में कल्पना की गई है। उपनिषद शैली की दृष्टि से गौओं के समान सरल और तत्त्व की दृष्टि से गोदुग्ध के समान हमारे आध्यात्मिक स्वास्थ्य की पोषक है। माहात्म्य में गीता को इन गोरूपी उपनिषदों का दुग्धामृत माना है। विश्व की संस्कृति को यह अमृत रस प्रदान कर श्रीकृष्ण ने अपना 'गोपाल' नाम सार्थक किया।

हमारी सांस्कृतिक परम्परा में समुद्र मंथन से जो चौदह रत्न प्राप्त हुये इनमें कामधेनु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कामधेनु समस्त कामनाओं को सफल करनेवाली सजीव चिन्तामणि है। अपनी इस दिव्य शक्ति के कारण ही वह स्वर्ग की विभूति है। कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा करके सूर्यवंशी राजा दिलीप ने स्वास्थ्य के साथ-साथ रघु जैसे वीर तेजस्वी और उदार पुत्र को प्राप्त किया था। महाकवि कालिदासने अपने रघुवंश महाकाव्यमें रानी सुदक्षिणा सहित दिलीप नन्दिनीकी सेवा का सुन्दर वर्णन किया है। गुरु वशिष्ठने पुत्रलाभार्थ राजा दिलीपको वन-चारण पूर्वक नन्दिनी

की सेवा का आदेश दिया था। नंदिनी ने दिलीप को पत्ते में दुहकर अपना दूध पीने का वरदान दिया। नंदिनी के इस वरदान से दिलीप की पुत्रेष्टि कामना पूर्ण हुई। उत्तम स्वास्थ्य और श्रेष्ठ संतति की कामना को पूर्ण करने की दृष्टि से भूतल की प्रत्येक धेनु कामधेनु की पुत्री के समान ही है।

अपनी इसी महिमा के कारण जहां गो माता के समान पूजित हुई वहां गो-रक्षा को एक पवित्र धर्म और गोहत्या को एक जघन्य पाप माना गया। सरलता, स्नेह, वात्सल्य, करुणा और पवित्रता की दृष्टि से गाय हमारी संस्कृति का एक उत्तम प्रतीक है। यदि स्वर्ग को हम एक दिव्य संस्कृति का आदर्श मानें तो स्वास्थ्य, सौन्दर्य और आनन्द को पार कर उस स्वर्ग की प्राप्ति का गौ सर्वोत्तम साधन है। गौ का दुग्ध उत्तम और स्वास्थ्यकर आहार है। वैज्ञानिक दृष्टि से अपेक्षित सभी तत्व गोदुग्ध में वर्त्तमान हैं। अतः गोदुग्ध एक श्रेष्ठ और सम्पूर्ण आहार भी है। समस्त पशुओं के दुग्ध की तुलना में गो-दुग्ध सर्वोत्तम है। निघण्टु की परिभाषा में तथा गीता के प्रवचनों में रस्य, स्निग्ध, स्थिर और हृद्य होने के कारण वह एक सात्त्विक आहार है। अतः वह स्वास्थ्य के साथ-साथ बुद्धिवर्धक भी है। हलका और सुपाच्य होने के कारण वह बालकों और रोगियों के लिये हितकर है। दूध से निर्मित दधि, घृत और तक्र भी स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हितकर है। आयुर्वेद की चिकित्सा में दुग्ध और दधि के कल्प प्रसिद्ध हैं। दिलीप की नंदिनी सेवा वस्तुतः एक कामदुग्ध कल्प ही थी। प्राचीन सौन्दय

प्रसाधनों में भी गो-दुग्ध से स्नान स्त्रियों के लिये यौवन, सौन्दर्य और कांति का वरदान माना जाता था। दूध, दही और घी के अतिरिक्त गाय का गोबर और मूत्र भी कृमिघ्न और पवित्र है। इसलिये घरों को लीपने में गोबर काम में लाया जाता है। तथा आयुर्वेद में गो-मूत्र से औषधियों का शोधन किया जाता है। स्मृतियों के प्रायश्चित प्रकरण में पंचगव्य से आत्मशोधन का विधान है। कृषि के लिये कितना उत्तम खाद्य है, इसका समर्थन विज्ञान तो करता ही है दूध, दधि और घृत के साथ-साथ मधु शर्करा के संयोग से निर्मित पंचामृत सत्यनारायण का प्रसाद प्रसिद्ध है।

इतनी अपार कल्याणकारी विभूतियों के कारण गाय की भारतीय संस्कृति में इतनी महिमा है। वह सृष्टि की धारिणी माता और स्वर्ग के मार्ग की वाधा रूपी व्याधियों की वैतरणी से मनुष्य का तारण करनेवाली है। गो-सेवा और गो-दुग्ध सेवन के द्वारा हम स्वास्थ्य और संस्कृति के स्वर्ग की प्राप्ति कर सकते हैं।
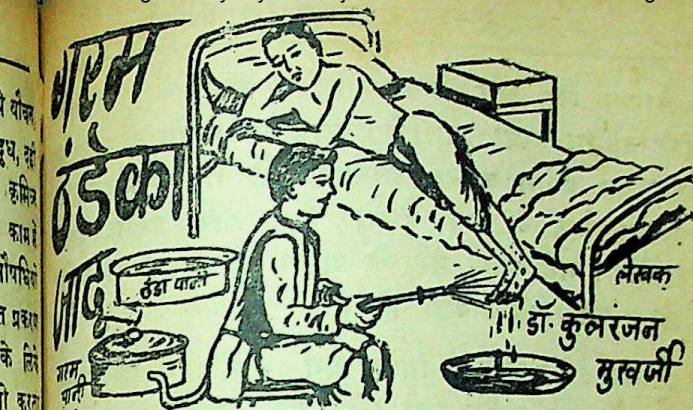
हमारे शरीर के भीतर ही रोग से मुक्ति के लियें बहुत से साधन मौजूद हैं। हमारा खून जहां भी जाता है वहीं शरीर गठन के लियें मसाला और रोग जीवाणुओं के साथ युद्ध करने के लियें रक्त के श्वेत कण साथ लेकर जाता है तब रुग्ण अंगों में जो कूड़ाकरकट या मृत रोग जीवाणु रहते हैं उन्हें साथ लाकर शरीर के विभिन्न रास्तों से बाहर कर देता है।

प्रकृति के इस व्यवसाय में मदद देने के लिये रुग्ण अंगों में गर्म ठंडे के प्रयोग के समान अन्य कुछ भी नहीं है। ठंडे के प्रयोग से रक्तवाहक नलियां संकुचित हो जातीं हैं और रक्त वहां से हट जाता है। पुनः जब उन अंगों पर गरम का प्रयोग किया जाता है तब रक्तवाहक नलियां प्रसारित होतीं हैं और नया रक्त आ जाता है। इस ढंग से किसी भी अंग पर गरम ठंडे के प्रयोग से एक पम्प सा कार्य होता है। इसलियें रुग्ण अंगों पर गरम ठंडे के प्रयोग से जल्दी ही स्वस्थ हो जाते हैं।

गर्म सेक और ठंडे का साधारण तया २ से ५ मिनिट तक प्रयोग किया जाता है। ताप का प्रयोग शेष होते ही ठंडे का प्रयोग करना आवश्यक है। गरम और ठंडे का हमेशा एक के बाद दूसरा ३-४ बार प्रयोग करना चाहियें। गर्म और ठंडे के भीतर जितना ही कम अन्तर होगा उतना ही अच्छा होगा।

यदि शरीर के किसी विशेष अंग पर फोड़ा या फुंसी उत्पन्न होता है और व्यक्ति उसे फोड़ देना नहीं मांगता है तब उसके ऊपर गर्म ठंडे के प्रयोग से वह तत्क्षण ही दब जायेगा और कभी सिर नहीं उठा सकेगा।

कभी-कभी मलेरिया आदि बुखार में लिवर बढ़ जाता है और दीर्घ अवधि तक बढ़ा ही रहता है। ऐसी अवस्था में लिवर के ऊपर गरम ठंडे के प्रयोग से सात दिनों के भीतर ही वह सामान्य हो जाता है।

शय्या पर पड़े रहने के कारण जो घाव हो जाते हैं उनका यह एक उत्कृष्ट इलाज है। घाव के ऊपर गरम ठंडे के प्रयोग से वह आसानी से मिट जाता है। जब इस कारण घाव होने की संभावना प्रतीत होती है तब उस स्थान पर गर्म ठंडे के प्रयोग से घाव कभी भी प्रकाशित नहीं होते।

शरीर के किसी स्थान पर सूजन होने से उस पर गर्म ठंडे का प्रयोग करना उचित है। इससे सूजन जल्द ही मिट जाती है।

पेट के ऊपर बीच-बीच में गर्म ठंडे के प्रयोग करने से मल का वेग वृद्धि पाता है, आंव कम हो जाता है, वायु गायब हो जाता है और यदि पेट का दर्द रहे तो मिट जाता है ।

दमा में छाती और पीठ पर गरम ठंडे के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। किन्तु छाती पर सेक का प्रयोग करते समय हार्ट के ऊपर एक भीगा गमछा रखकर और उसे एक सूखे तौलिये से ढक कर छाती के ऊपर गरम थैली रखना आवश्यक है। पुराना प्लुरिसी में भी गरम ठंडे का प्रयोग बहुत लाभप्रद है किन्तु जब कफ के साथ खून बाहर आता हो तो छाती पर सेक नहीं करना चाहियें।

शरीर के किसी अंग पर गिलटी हो जाने से उसके ऊपर सफलता के साथ गरम ठंडे का प्रयोग किया जा सकता है ।

गरम और ठंडे का प्रयोग किसी भी ढंग से किया जा सकता है । गरम सेक के बाद ठंडे गमछे से घर्षण करने से जो लाभ होता है, गरम और ठंडे पानी में अंग विशेष को डुबाये रखने से या रुग्ण अंगों के ऊपर गर्म और ठंडे पानी की धार देने से भी वही लाभ होता है ।

मुख या जीभ के घाव आदि में गर्म ठंडे पानी की कुल्ली की जा सकती हैं । इससे मुख या जीभ का घाव सूखकर मिट जाता है, दर्द कम होता है, मसूढ़े

का सूजन चला जाता है एवं दाँतों की जड़ मजबूत होतीं हैं। इन सभी रोगों में दो मिनिट के लिये गरम जल से कुल्ली करने के बाद दो मिनिट के लिए ठंडे जल से भी कुल्ली करना उचित है। जरूरत हो तो इसे दिन में दो बार किया जा सकता है।

शरीर के किसी अंग के शून्य हो जाने पर गर्म ठंडे के प्रयोग के द्वारा उसमें सजीवता लायी जा सकती है।

पानी में डूब जाने पर पेट का पानी बाहर कर देने के बाद व्यक्ति के शीर्ष मेरूदंड पर गर्म ठंडे के प्रयोग से उसकी चेतना लौटायी जा सकती है।

एकादशी का चाँद चारों ओर धवलप्रकाश फैला रहा था मानो पृथ्वी पर दूध का सागर उमड़ रहा हो। रात अपने यौवनपर थी तो बात भी! सारागाँव ढोलक की गमक से गूँज रहा था। मंगलगीत गाये जा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो सारी चाँदनी एक सुन्दरी का रूप धरकर प्रीतमसिंह के आंगन में छमा छम नाच रही हो। प्रीतमसिंह के उबटन लगाया जा रहा था। स्त्रियां विवाह की तैयारी में व्यस्त थीं और बाहर चबूतरे पर बैठे ग्रामवासी ढोलक की गमक के साथ गा रहे थे। एक ओर कुछ लोग हलवाई को घेरे उसकी मदद कर रहे थे जो कभी घी कभी बेसन कभी खांड मांग रहा था। प्रीतमसिंह की बारात कल प्रातः जाने वाली है। शादी के बागे से शोभित उज्जवल चांदनी में चमकते मुखड़े को देखकर उसकी बूढ़ी मां फूली नहीं समा रही थी। आज जैसे उसकी जन्म-जन्म

की तपस्या सफल होने जा रही थी कितनी हठ के बाद वह इसके लिये राजी हुआ है इस बात को लेकर बाहर बड़े बूढ़े चर्चा कर रहे थे ।

प्रीतमसिंह भारतीय सेना में हवलदार के पद पर नियुक्त पच्चीस वर्ष का हट्टा कट्टा पूरा फौजी जवान था ! इतनी कम उम्र में उसकी यह प्रगति देखकर बड़े बड़े अपने दाँतों तले अँगुली दबाते थे । इसका कारण था स्वाध्याय, लगन और तपस्या । वह जितनी शीघ्रता से शत्रुओं पर गोलियों की वर्षा कर सकता था उतनी ही शीघ्रता से हल भी हाँक सकता था । यद्यपि उसने कभी लड़ाई नहीं देखी थी पर उसके लिये उसमें प्रबल उत्साह था । इसका कारण उसके पैतृक संस्कार हो सकते हैं क्योंकि उसके पिता भी फौज में नायक के पद पर द्वितीय महायुद्ध देख चुके थे । उसके मन में देश के प्रति अटूट भक्ति थी और हर समय एक ही कामना उसके मस्तिष्क में घूमती थी कि वह देश के काम आये । देश की सीमाओं पर बढ़ते छुट पुट झगड़े, आन्तरिक संकट एवं अव्यवस्था, अनाज की कमी एवं भ्रष्टाचारी चोर बाजारी उसे बिल्कुल भी पसंद न थे । यही कारण था कि वह प्रायः मौन ही रहता था । एक दिन उसकी मां ने उसकी शादी का प्रस्ताव उसके सम्मुख रक्खा तो जैसे वह चौंक उठा । उसने अभी तक इसके लिये सोचा भी न था और न वह शादी को अभी इतना जरूरी ही मानता था । परन्तु मां का

आग्रह उसे मानना पड़ा । वह मां का बहुत आदर करता था उसकी हर उचित अनुचित आज्ञा का पालन करना उसकी आदत थी । शादी की तैयारियां होने लगी ।

'उमा' उसकी भावी पत्नी भी ऐसे ही एक परिवार की इकलौती पुत्री थी । उसके पिता भी भारतीय जल-सेनामें कप्तान रह चुके थे व उसका एक भाई अभी भी वायुसेनामें पायलिट ऑफिसर था । उमा के मनमें भी हमेशा देश के लिये कुछ करने की लालसा जागी रहती थी । उसने मैट्रिक पास किया था और यह उसकी एक मात्र अभिलाषा थी कि वह किसी वीर सैनिक की पत्नी बनकर गर्व से माथा ऊँचा करे । उसके पिताने उसके हृदयमें ऐसे ही भाव भरे थे जो उसे हर समय दसवर्ष पूर्व गुजरी घटनायें सुनाया करते थे । वह सती साध्वी और सादगी की मूर्ति थी । उसने जब सुना कि प्रीतमसिंह से उसकी शादी होने जा रही है तो हर्ष से पुलक उठी ।

पूर्णिमा की शादी होने जा रही थी तभी पाकिस्तानने भारत पर बर्बरता पूर्ण आक्रमण कर दिया । देश का कोनाकोना जाग उठा । जो सैनिक और पदाधिकारी छुट्टियों पर थे वे भी अविलम्ब सीमाओं पर पहुँचने लगे । बाड़मेर, करगिल, हाजीपीर, इच्छोगिल के क्षेत्र भारतीय सेना के पदचापसे गूंजायमान होने लगे । प्रीतमसिंह को भी बारात जाने से पूर्व ही जो तार मिला है उसमें लिखा है जैसे भी और जितनी भी जल्दी हो

अपने स्थानपर आजाओ ! शत्रु हमें निमंत्रण दे रहा है प्रीतमसिंह की देशभक्ति जाग उठी । उसने शादी का मोहर उठाकर रखदिया पर गांव के अन्य प्रतिष्ठित लोगों एवं उसकी मां के आग्रह पर उसे शादी तक रुकना ही पड़ा । उसने हर सम्भव प्रयास किया पर संभव न हुआ ।

आज सुहागरात है पर प्रीतमसिंह का मन फीका फीका है वह यही सोच रहा है कि उसे जबरदस्ती क्यों रोका गया ! क्या उसमें इतना भी साहस नहीं कि इन सबको दो टूक जवाब देकर फौज में जा सके तो फिर वह किस बलपर शत्रुका सामना करेगा उसकी मौन भावनायें तो जैसे तार पाते ही समाप्त हो गई थीं उसे एक ही बात दिखाई दे रही थी कि वह अधिक से अधिक समय यहाँ रहकर देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को भली भांति नहीं निभा रहा है । चारुचन्द्र की चंचल किरणों में उमा का माथा उठाकर उसने इतना ही कहा–"उमा ! तुम्हारे प्रति जो मेरा कर्त्तव्य है उसे मैं इस समय नहीं निभा पाऊँगा । जानता हूँ कि यह सुहाग रात है दो अनजान प्राणियों के मिलन की घड़ी, जीवन की मादक सुन्दरता पर क्या करूँ मैं विवश हूँ । मुझे इससे भी बड़ा कर्त्तव्य निभाना है । देश की स्थिति से तुम भली भाँति परिचित हो । मुझे कल ही अपनी बटालियन में जाना होगा । उमा कुछ न कह सकी बस मौन स्थिर एवं अवाक दृष्टि से उसके चेहरे

को देखती रही । उसने अनायास ही अपना सिर उसके कंधे से टिका दिया । रात्री के दो बज रहे थे । प्रीतमसिंह तीन-चार दिन का व्यथित एवं थका हुआ था अतः ऊँघने लगा और अन्तमें सो गया । उमा उसके पैर दबाती और मुखको निहारती मौन बैठी रही । प्रातः जब वह उठा तो उमा वहाँ न थी वरन् एकपत्र उमा का प्रतिनिधित्व कर रहा था..........

मेरे जीवन सर्वस्व !

चरणस्पर्श ! बहुत दिनों की तपस्या के बाद आज तुम्हें पाया था और सोचा था कि चरणों की सेवा का कुछ तो सौभाग्य मिलेगा ही। परन्तु मेरे ऐसे भाग्य कहां। आप अपनी बटालियन में जा रहे हैं इससे अधिक और मुझे क्या खुशी हो सकती है। आपके मन में मेरे प्रति मोह न रहे और मुझे भी अपने कर्त्तव्य से मुक्ति का अवसर मिले अतः मैं भी घायलों की सेवा हेतु जा रही हूँ। पाक संकट समाप्त होने के बाद हम अवश्य मिलेंगे मुझे भूल न जाना।

आपकी अपनी ही चरण दासी

'उमा'

प्रीतमसिंह के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगी। वास्तव में यह बहुत बड़ा त्याग था। सारे गांव में कोलाहल मच गया। सबने उमा की प्रशंसा की। इसे सुनकर प्रीतमसिंह को हर्ष हुआ और कुछ आत्मग्लानि भी। वह दूसरे दिन ही अपनी बटालियन में जा पहुंचा।

हाजीपीर दर्रे की चौकी का वह नेतृत्व कर रहा था यहां उसे लगभग सात दिन बीत गये परन्तु कोई हमला न हुआ कारण इन दिनों छम्म जोड़ियां का क्षेत्र रण भूमि बना हुआ था। मंगलवार के दिन रात्री के बजे के लगभग चींटियों की तरह रेंगते पाकिस्तानियों ने उस पर आक्रमण किया। वह पुलक उठा। बचपन से जो स्वप्न संजोये थे जिनके कारण वह सुहागरात भी न मना सका था आज पूरे होते दिखा दिये। उसने मशीनगन हाथ में ली और ऐसा उत्साह दिखाया कि दुश्मन पेड़ की पत्तियों की भांति झड़ कर पहाड़ी पर से लुढ़कने लगे। चांदनी रात की निस्तब्धता में गोलियों की सांय-सांय के साथ उमा के अंतिम शब्द उसके हृदय में उथल-पुथल मचा रहे थे महकता सारा वातावरण क्षण भर में विषाक्त हो गया मरे हुयें सैनिकों पर चांद ने अपनी चांदनी का कफ़न डाल दिया। भारतीय सैनिकों में प्रीतमसिंह एवं उसके दो साथी ही शेष रहें बाकी सबका कुछ पता न था। सामने पाकिस्तानियों के लाशों का ढेर लगा था! प्रीतम सिंह को भी ब_त चोट पहुंची थी। अतः कोई दुश्मन दल का कहीं पता न था। उसने संतोष की सांस ली तभी एक गोली सनसनाती हुई उसकी जांघ को पार करके निकल गई। प्रीतमसिंह ने कुशलता से उस गोली चलाने वाले को मौत के पलंग पर सुला दिया और विजय का हर्षनाद किया। पर उसकी पलकें नींद से बोझिल होतीं जा रही थीं। शरीर उसका छलनी हो

चुका था। उसके दोनों साथी निरुपाय थे क्या करें। उन्हें भी काफी चोट आई थी। उन्होंने जैसे तैसे उसे कन्धों पर लिया और झील किनारे तक ले चले घावों की कराहट में प्रीतमसिंह धीरे-धीरे बेहोश सा होता जा रहा था तभी उन्हें एक हैलीकाप्टर दिखाई दिया। उन्होंने संकेत किया और वह सीधा फिल्ड अस्पताल की ओर उड़ चला।

अस्पताल में प्रीतमसिंह के भरती कराते ही नई सरगर्मी पैदा हुई हर कोई उसकी बहादुरी की चर्चा बड़े गर्व कर रहा था। उसने अकेले केवल ग्यारह साथियों को लेकर पाकिस्तानियों के भारी संख्या में किये आक्रमण को असफल बनाया था। अस्पताल का हर छोटा बड़ा उसे देखने आ रहा था इसी कौतूहल में एक नर्स भी आई जो उसे देखते ही चौंक उठी यह उमा थी और दूसरे क्षण उसके सीने से सिसकती जा चिपकी। प्रीतमसिंह अभी भी बेहोश था। कुछ क्षण पश्चात् प्रीतमसिंह ने बड़ी कठिनाई से ओठ खोले और इतना ही कह पाया........

"उमा....... तुम यहां....... ! ओह....... मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है रानी ! अब मुझे गहरी नींद आ रही है जो मानव को केवल एक ही बार आती है। यदि तुम वीर सैनिक की पत्नी कहलाने की अधिकारिणी बनना चाहती हो तो दुःख न करना मैंने केवल

अपना कर्त्तव्य किया है और जब तक शरीर में ... की एक बूंद भी रहे अपने कर्त्तव्य को निभाती रह... यही मेरा आदेश है....... और....... और....... मैं चल... चल........ ।"

उसके शेष शब्द मुंह में खो गये वह एक ... लुढ़क पड़ा, उमा उसकी छाती से चिपकी सिसक ... थी तभी सुनहली संध्या भी सिसक उठी! सारा ... ताल उस वीर सैनिक के अन्तिम दर्शनों को दौड़ पड़... पक्षी जंगल छोड़ भागे, पशु रंभाते दौड़ आये। ... भास्कर भी इस दुःख को न सह सके और आंसु ब... मुँह छिपाने लगे केवल उमा अब भी सिसकती प्रीतम... सिंह के मुखचन्द्र को निहार रही थी।

मेथी एक ऐसा स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्य वर्धक साग और मसाला दोनों है जो प्रायः सभी ऋतुओं में आसानी से प्राप्त हो सकता है । कार्तिक, आश्विन अथवा सितम्बर व अक्टूबर में मेथी की बहार बाजारों में देखते ही बनती है । मेथी का उपयोग अमीर और गरीब सभी लोग कर सकते हैं । मेथी की तरकारी में यदि आलू मिला दिया जाय तो तरकारी स्वादिष्ट बनती है । कुछ लोग मेथी को धूप में सुखाकर रख लेते हैं और आवश्यकता पड़ने पर काम में लाते हैं मेथी की तरकारी में विशेष गुण यह है कि इसकी तरकारी का सेवन करते रहने से शरीर बलकारी होता है, वीर्य की वृद्धि होती है और पेचिस के दस्तों को रोकने में तो इसे रामबाण औषधि ही समझिये । मेथी से लड्डू बनायें जाते हैं । मेथी से बने लड्डू का सेवन करने से कमर में होने वाला दर्द दूर हो जाता है । मेथी का बीज मेथी ही कहा जाता है । बीज का उपयोग

तरकारियों को स्वादिष्ट करने एवं अचार बनाने के काम में होता है। मेथी के बीजों को तेल में पकाकर कान में डाल देने से कान के दर्द में लाभ होता है।

मेथी से अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनाये जाते हैं जो बहुत ही स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। मेथी से इमरतीं, मेथी पाक, मेथी लड्डू तथा अन्य रुचिकर व्यंजन बनते हैं। मेथी के व्यंजन खाने से बढ़ी हुई तिल्ली और खाँसी दूर हो जाती है मेथी की उपयोगिता तथा गुणों को देखते हुये प्रत्येक व्यक्ति को मेथी के मौसम में मेथी का उपयोग किसी न किसी रूप में अवश्य ही करना चाहियें।

आप भी मेथी का उपयोग निम्नलिखित स्वादिष्ट व्यंजन बना कर सकती हैं। मेथी से कुछ व्यंजन इस प्रकार बनाए जाते हैं, आप भी बनाइयें और घर में आए हुए मेहमानों का स्वागत मेथी के ही व्यंजन से जरा कर देखें, आपकी तारीफ और मेथी का गुणगान करते हुयें मेहमान आप से विदा मागेंगे।

मेथी के लड्डू

सामग्री—मेथी आधा सेर, कच्चा दूधडेढ़ पाव, घी एक सेर, सूजी आधा सेर, शक्कर एक सेर, इलायची, बादाम, पिस्ता, और किसमिश अन्दाज से।

विधि—पहिले दूध में मेथी को रात में भिगो दें। प्रातःकाल थोड़ी देर के लिए धूप में फैला दीजिए। फिर कड़ाही में आधा सेर घी डालकर मेथी को लाल

रंग सा धीमी आंच पर भून कर सिल पर महीन पीस लें। पिसी हुई मेथी को फिर भून लें। अब दूसरी कड़ाही में बचा हुआ घी डाल कर सूजी भी गुलाबी रंग सी भून लें। भुन जाने पर इसमें पिसी हुई मेथी और शक्कर डाल कर अच्छी तरह मिला दें। उपरोक्त मेवा कतर कर डाल दें और अपनी इच्छानुसार लड्डू बांध लीजिए। यह लड्डू स्वास्थ्यवर्धक होता है।

आलू मेथी का साग

सामग्री—मेथी की भाजी एक पाव, आलू आधा सेर, घी, हींग, लाल मिर्च, नमक और हल्दी अन्दाज से।

विधि—पहिले मेथी के साग को धोकर महीन २ काट लें। आलू भी छीलकर काट लें। कड़ाही में घी, हींग, जीरा, मिर्ची का बघार देकर दोनों मिश्रण कर छौंक कर ढक दें। फिर अन्दाज से नमक, हल्दी, पानी डाल कर चला दें। जब आलू मेथी अच्छी तरह गल जाय तब गर्म मसाला और अमचुर डाल कर उतार लें।

मेथी की इमरती

सामग्री—मेथी एक सेर, दूध तीन सेर, शक्कर पांच सेर, दही दो छटाँक, केशर आठ माशा, घी और इलायची अन्दाज से।

विधि—पहिले दूध में मेथी को रात में भिगो दें। प्रातःकाल सिल पर महीन पीस कर दही मिला दें। इस घोल को बारह घंटे तक अच्छी तरह ढक कर रख दीजिए। इधर शक्कर की चाशनी तैयार करें। केशर

को दूध में घोट कर चाशनी में डाल दें। चाशनी को गर्म रखने के लिए कड़ाही के नीचे अंगीठी रख दें इसके बाद तवे में घी डाल कर आग चढ़ा दें। एक मज़बूत मोटे रूमाल में बटन का काज जैसा छेद बनालें। इसमें रूमाल के चारों कोने मेथी के घोल को नथने में डालकर पकड़ कर पीठी को इस प्रकार दबायें कि जैसे टूथपेस्ट निकलता है उसी प्रकार पीठी निकलने लगेगी। पहले एक घेरा बना उसमें आस पास छल्ले बनाएं। अब इमरती को तल कर चाशनी में डालती जायं और रस पी लेने पर निकाल लें।

मेथी पाक

सामग्रीः— मेथी एक पाव, गेहूं का आटा दो सेर, शक्कर दो सेर, घी दो सेर, सफेद मिर्च दो तोला, बादाम, पिस्ता, किशमिश, चिरौंजी, मखाना, केशर और इलायची अन्दाज से।

विधिः— पहले मेथी को महीन पीस कर रख लीजिये। फिर कड़ाही में घी और आटा डाल कर आग पर चढ़ा दें। जब गुलाबी रंग सा भुन जाय तब मेथी डालकर थोड़ी देर तक और भूनियें। भुन जाने पर नीचे उतार लें। शक्कर की दो तार की चाशनी बना कर इसमें आटा और उपरोक्त मेवा डालकर नीचे उतार लें और थाली में घी लगाकर फैला दें। ऊपर से चांदी का वर्क चिपका दीजिये। ठंडी हो जाने पर अपनी इच्छानुसार टुकड़े काटकर खाने के काम में लाएं।

मेथी की तरकारी

सामग्रीः— मेथी आधा सेर, घी एक पाव, दही दो पाव, दो तीन लाल मिर्च, नमक अन्दाज से।

विधिः— पहले मेथी को उबाल लीजियें। उबल जाने पर पानी में अच्छी तरह रगड़ धो लीजिए। अब पतीली में घी डालकर धीमी आंच पर मेथी को लाल रंग सा भून लें। भुन जाने पर इसमें दही, लाल मिर्च और अन्दाज से नमक डालकर चला दीजियें। कुछ देर बाद नीचे उतार कर खाने के काम में लाएं।

मेथी के लड्डू

सामग्रीः— मेथी एक पाव, गेहूँ का आटा एक सेर, घी एक सेर, शक्कर दो सेर।

विधिः— पहले मेथी को दस-बारह दिन तक पानी में भिगाए रखें। पानी को प्रतिदिन बदलती जायं। तेरहवें दिन मेथी को खूब रगड़ रगड़ कर अच्छी तरह साफ पानी में धो लें। अब धूप में सुखा कर महीन पीस लें फिर कड़ाही में घी डालकर आग पर रखें। जब घी कुछ गर्म हो जाय तब पिसी हुई मेथी और आटा डालकर धीमी आंच में गुलाबी रंग सा भून लें। भुन जाने पर नीचे उतार कर थाली में फैला दें। शक्कर का बूरा बना लीजिये। जब बूरा और भुना आटा ठंडा हो जाय तब दोनों को अच्छी तरह मिलाकर लड्डू बांध लें।

मेथी के साग की पकौड़ी

सामग्रीः— मेथी का साग एक पाव, बेसन आधा सेर, तेल डेढ़ पाव, एक चम्मच दही, नमक, हरी मिर्च, अदरक, हींग, हल्दी, गर्म मसाला और केला अन्दाज से।

विधिः— पहले भाजी को बीन कर साफ पानी में धो लें। बेसन में तेल का मोमन दीजिए। अब इस में भाजी उपरोक्त मसाला एवं केले को छील तथा मसल कर डाल दें। फिर सभी सामान दही में डाल कर फेंटिए। अब कड़ाही में तेल डाल कर आग पर चढ़ाएं। जब तेल गर्म हो जाय तब बेसन पकौड़ी तोड़ कर लाल रंग सा हो जाने पर निकाल लें। यह पुदीने की चटनी के साथ खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट लगेगी।

मेथी का पराठा

सामग्रीः—मेथी का साग एक पाव, आटा अपनी इच्छानुसार।

विधिः—पहिले मेथी के साग को पानी में धोकर महीन काट लें। कड़ाही में घी, हींग का बघार देकर कटी हुई साग छोंककर ढक दीजिए। जब साग अच्छी तरह गल जाय और पानी सोख जाय तब नीचे उतार लें। अब आटे में थोड़े से घी का मोमन देकर इसमें मेथी का साग मिला कर पानी के सहारे अच्छी तरह गूथ लें। इसके बाद लोइयाँ काट कर बेल लीजिए और इस पर लगाकर आधा मोड़ दें। फिर इसमें घी लगा

कर आधा मोड़ दें और परथन के सहारे बेल लें। तवे को आग पर रखिए। जब तवा गर्म हो जाय तब घी लगा कर पराठा डाल दें। एक तरफ रोटी की तरह सिक जाने के बाद पलट दें और ऊपर की ओर लगा दें। जब नीचे की ओर पराठा सि.क जाय तो उसे पलट दें और चम्मच से चारों ओर घी लगा कर उसे फुला लें। फूलने के बाद फिर पलट कर घी लगा कर सेक कर निकाल लें।

भारतवर्ष शांति-प्रिय राष्ट्र है। वह युग-युगों से केवल अपने देश में ही नहीं विश्व भर में शांति बनाये रखने का इच्छुक रहा है। उसकी संस्कृति के मूल मंत्र रहें हैं :--

१ — सर्वे भवन्तु सुखिनः
२ — मित्रस्य अहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे
३ — अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

अखिल विश्व के मानवों को मित्र-भाव से देखने और उनको अपने विशाल परिवार का ही सदस्य मानने की शिक्षा भारतीय-संस्कृति दिया करती है इससे ही हम सब को सुखी देखने की इच्छुक रहते हैं।

विदेशी-शासन और शिक्षा ने हमारी प्राचीन संस्कृति पर भीषण आघात करके हम सब को केवल पराधीन ही नहीं बनाया वरन् इतना निकम्मा बना दिया कि

हम सब धीरे-धीरे अपनी संस्कृति से ही दूर होते चले गये उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि हम सब दिग्भ्रांत से होकर पथ-भ्रष्ट हो गयें हमारी समस्त शक्तियां अपने उदर पोषण तक ही सीमित रहने लगीं। इससे ही अर्थ को विशेष महत्व मिल गया, आध्यात्मिक ज्ञान गौण हो गया।

आध्यात्मिक-गुरुओं और परम्पराओं की सत्य, धर्म, दान, परोपकार और शुद्धाचरण सम्बन्धी शिक्षायें उपेक्षित होने के फलस्वरूप ही स्थिति गिरते-गिरते यहां तक गिरी कि समाज में अनेक प्रकार से अशांति के बादल मँडराने लगे।

राष्ट्र-पिता बापू का मार्ग-दर्शन

भारतीय-संस्कृति का आश्रय लेकर इस गयें बीते युग में भी राष्ट्र-पिता विश्व-वंद्य बापू ने शक्तिशाली विदेशी सत्ता को केवल पराजित ही नहीं किया वरन् विश्व की पथ-भ्रष्ट बड़ी शक्तियों को नवीन मार्ग-दर्शन दिया जिसका शुभ परिणाम यह हुआ कि वे शक्तियां भी विश्व-शांति के महत्व को अनुभव करने लगीं और उनने भी पारस्परिक मित्रता बढ़ाने के यत्न किये।

बापू ने अपने कार्यों और भाषणों द्वारा विश्व के मानवों पर यह गहरी छाप बैठा दी थी कि विश्व का कल्याण मैत्री-भाव द्वारा ही संभव है। अपनी आत्म-कथा में भी पृष्ठ ९१ पर बापू ने लिखा है :—

"जैसे विन्दु का समुदाय समुद्र है, उस तरह हम मैत्री करके मैत्री का सागर बन सकते हैं, और जगत में सब एक दूसरे से मित्र-भाव से रहें तो जगत का रूप ही बदल जाय'।

बापू का स्पष्ट मत था कि प्रत्येक व्यक्ति को सदाचारी, धर्मपरायण, ईमानदार और कर्मठ बनना चाहिए तब ही समाज उन्नति कर सकता है। उन्होंने अपने रामराज्य की कल्पना उस समाज द्वारा ही की थी जिस में शुद्ध, सत्य आचरण वाले व्यक्ति हों। उन के भाषणों में कितनी ही बार कहा था :—

'जिस रोज प्रत्येक भारतीय अपने उद्धार में लग जायेगा भारतवर्ष के उद्धार का मार्ग अपने आप खुल जायगा'।

युग की यह सबसे अधिक मांग है कि प्रत्येक भारतीय अपने-अपने आचरण पर भली प्रकार दृष्टिपात करे कि कितने अंशों में उस के द्वारा भारतीय-संस्कृति और बापू के आदर्शों की रक्षा हो रही है। आत्म-सुधार कर के ही मानव अपना लोक और परलोक दोनों ही बना सकने में समर्थ हो सकता है। बापू के मार्ग-दर्शन में भारतीय-अध्यात्म-ज्ञान का भरपूर समावेश है।

अध्यात्म-ज्ञान द्वारा मार्ग-दर्शन

विश्व के दार्शनिक, स्पूतनिक और एटमबम के युग में भी यह स्वीकार करते हैं कि अखिल विश्व को अध्यात्म-ज्ञान का मार्ग-दर्शन देने की क्षमता यदि किसी राष्ट्र में विद्यमान है तो वह भारतवर्ष ही है। प्राचीन

काल से लेकर वर्तमान युग तक भारतवर्ष द्वारा ही विश्व के मानवों ने समय-समय पर मार्ग-दर्शन प्राप्त किया है।

स्वभावतः विश्व का प्रत्येक मानव शाश्वत-शांति प्राप्त करने के लिये उत्सुक रहता है। विश्व के भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों ने उस शांति को प्राप्त करने के लिये भिन्न-भिन्न ढंग, नाम और रूप बतलायें हैं। उसको ईसाइयों ने सातवां स्वर्ग, मुसलमानों ने बहिश्त, बौद्धों ने निर्वाण, जैनियों ने कैवल्य-ज्ञान, सगुण-उपासकों ने गोलोक, शिवलोक आदि, दार्शनिकों ने मुक्ति और गीता-कार ने ब्रह्म-निर्वाण माना है। निष्कर्ष उन सब का अंतिम रूप से एक ही है, जीव को शाश्वत-शांति प्राप्त होना।

भारतीय-अध्यात्म-ज्ञान का सार

भारतीय-अध्यात्म-ज्ञान केवल एक देशीय ही नहीं है, वरन् अखिल विश्व के मानव मात्र के लिये एक समान ही उपयोगी है। कोई भी हो, किसी भी देश का निवासी हो, किसी भी अवस्था का हो, कैसी ही अवस्था में हो, इस ज्ञान के द्वारा अपना भरपूर सुधार कर सकता है।

उस ज्ञान में पक्षपात, अंधश्रद्धा सामाजिक-विषमताएँ उत्पन्न करने के भाव नहीं हैं। निष्पक्ष भाव से सत्य की कसौटी पर कसे हुये व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पारस्परिक स्नेह करने के, मानव-मात्र को समान मूल-मंत्र मिलते हैं।

उस ज्ञान का सार ही है कि विषमता, भेद-भाव, छल--कपट और स्वार्थ आदि दुष्कर्मों का त्याग करके मानव को मानव-मात्र से प्रेम--भाव रखना चाहिये। तभी ही विश्व--व्यापी आर्थिक कठिनाइयां दूर हो सकती हैं, घृणा और छूत-छात हट सकती है और हट सकती है समाज में व्याप्त भीषण अशांति, जिसके कारण आये दिन अनेकानेक झगड़े बखेड़े और विश्व--व्यापी संघर्ष तक हो रहे हैं।

भारतीय-अध्यात्म-ज्ञान का सन्देश

भारतीय--अध्यात्म--ज्ञान विश्व के मानव-मात्र को एक समान उच्चतर सन्देश देता है। उसका सन्देश है अपरिग्रही बनो, दानशीलता, उदारता और क्षमा जैसे सद्गुणों को अपनाओ। इच्छाओं को बढ़ाने से ही संग्रह की भावनाओं का उदय होता है, स्वार्थ बढ़ता है और यह अभिलाषा होती है कि दूसरे के मुंह तक का ग्रास छीन लिया जाय। इस दुर्भावना के फल स्वरूप ही सबल, निर्बलों का रक्त चूसते रहते हैं और अपने आप को धनी मानने लगते हैं किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि इसका परिणाम अन्त में अधिक भयंकर और दुःख प्रद होता है। जिससे अशांति उत्पन्न होती है और नारकीय-संज्ञा तक मिलती है।

संसार में मानव को चाहिये कि वह कामनाओं की श्रृंखला, काम-क्रोध, राग-द्वेष आदि विकार और असत् कर्मों का त्याग करके सदाचारी बने, साम्यदर्शी

का व्यवहार रखकर मानव-मात्र को मित्र और अखिल विश्व को अपना विस्तृत परिवार माने। ऐसा व्यवहार करने से उसके हृदय में अपने आप विश्व-प्रेम और विश्व-शांति की सद्भावनायें जागृत हो जायेंगी। जब जन-जन में इस ज्ञान का उदय हो जायगा तब ही बापू की कल्पना का राम-राज्य संभव है। इन दिनों तो विश्व, देश, समाज और जन-जन में आध्यात्मिक-दरिद्रता व्याप्त है फलस्वरूप सर्वत्र हा-हाकार और त्राहि त्राहि की ध्वनि सुनाई पड़ रही है, उसको दूर करने के लिये भारतीय दर्शन का आश्रय लेना होगा तब ही मानव अपना, अपने समाज का, अपने राष्ट्र का और समूचे विश्व का कल्याण कर सकने में अपना योगदान दे सकता है।

विद्यार्थी एवं राजनीति

लेखकः— जयमूर्तिसिंह एम. ए, बी. एड.

आजकल हम लोग आये दिन यह कहते हुये सुनते हैं "विद्यार्थी राजनीति के शिकार होते जा रहे हैं।" "विद्यार्थी गुट परस्त बनते जा रहे हैं और अनुशासन हीन होते जा रहे हैं।" यही नहीं कुछ नेता लोग यहां तक कह बैठते हैं— "विद्यार्थी वर्ग में नेतृत्व की भावना घर कर रही है और वे खुल्लम खुल्ला सरकार के ऊपर छींटाकसी करते हैं।" कुछ लोग कहते हैं—"विद्यार्थियों में दलबन्दी की जड़ें बढ़ती जा रही हैं जिसके फलस्वरूप वे पढ़ाई-लिखाई ताकपर रखकर काफी हाउस में बैठकर, नेताओं की आलोचना करते हैं, सत्ता के विरोध में अनेक प्रकार का प्रदर्शन करते हैं, शैक्षणिक वातावरण को दूषित करते हैं। मर्यादा की सीमा का उल्लंघन करते हैं। माता-पिता के धन का दुरुपयोग करते हैं और अपने अमूल्य समय को खो बैठते हैं।"

यह है आलोचना आज के विद्यार्थी वर्ग की। आलोचना का क्षेत्र आजकल और अधिक बढ़ गया है कारण आजादी के बाद से विद्यार्थियों में काफी राजनीतिक जागरुकता बढ़ी है। अब वे राजनीति से खूब प्रभावित हो गये हैं। पहले हमारे माननीय नेताओं ने ही आजादी के आन्दोलन में उनका सहयोग लेने के लिए राजनीति की ओर खींचा। बड़ी सरगर्मी के साथ मंत्र फूंका। फलस्वरूप छात्रों की टोलियां नेताओं की पिछलग्गू बनी। उनके साथ आजादी की लड़ाई में वे जमकर कूदे,, अंग्रेज सत्ताधारियों के

खिलाफ-इन्कलाब का नारा लगा। कालेज और विश्व-विद्यालय में सरकार विरोधी वातावरण बनाया गया। नेता लोगों के भाषणों ने आग में घी का काम किया और उन्हें राजनीति का पाठ पढ़ाया, कर्त्तव्य एवं अधिकार सम्बन्धी बातों की ओर उनका ध्यान खींचा और उनकी पीठ ठोकी गयी। इसका फल भी अच्छा मिला। आजादी लेने में विद्यार्थियों ने अपना खून पसीना एक किया और बहुत कुछ उनके ही त्याग एवं तपस्या के कारण हमारा देश आजादी की छाया में आया। हम इसे नजर अन्दाज नहीं कर सकते।

अब आजादी के बाद राजनीति का चस्का कैसे छूटे ? छात्रों ने राजनीति के आनन्द को समझ लिया। उसके पहलू से वे पूरे परिचित हो गयें। सरकार-विरोधी नेताओं का सहयोग भी मिला। उनके आन्दोलनों, प्रदर्शनों, एवं मीटिंगों में छात्र कक्षा छोड़कर भाग लेने लगे। दल बन्दी की भावनाएँ बढ़तीं गयीं। अधिकार सम्बन्धी अधिकांश बातें कही जाने लगीं। वे कर्त्तव्य-पथ को भूलने लगे। छात्रों ने कभी कभी विवेक खोकर, कालेज एवं विश्वविद्यालय बन्द करवा दियें, प्रधानाध्यापक, उपकुलपति, शिक्षामंत्री आदि के, विरोध में सभा और जलूस निकाले। नियुक्ति सम्बन्धी बातों में भी अपनी टांग अड़ाने लगे। अधिकारी वर्ग पर धौंस भी जमाने लगे।

विरोधी सदस्यों ने भी उनकी मांगों का समर्थन किया। लोक सदन तक में उनकी आवाज पहुँचाई गयी। पुलिस अधिकारियों की मुठभेड़ों में अनेक विद्यार्थी पीटे गयें। जेल

की कोठरी देखे। उनको भारी दण्ड भी दिया गया। इतनी फटकार, दण्ड एवं सरकार के विशेष प्रयत्न के बावजूद भी छात्रों में उद्दण्डता की कमी नहीं आई। न उनमें अनुशासन प्रियता बढ़ी न उनकी शैक्षणिक योग्यता बढ़ी जो सचमुच उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। फलस्वरूप आज भी विद्यार्थी अपने उद्देश्य से विचलित होते जा रहे हैं और अध्ययन के क्षेत्र में उनकी पैठ दिन पर दिन कम होती जा रही है। माना कि उनकी संख्या बढ़ी है, अधिकांश कालेज और विश्व विद्यालय खुले हैं और खुलते जा रहे हैं सरकार ने भी ध्यान दिया है। परन्तु फिर भी योग्य एवं आदर्श विद्यार्थियों का अभाव है।

अब प्रश्न यह उठता है कि छात्रों में ये सब गड़बड़ियां क्यों होती हैं? इसका क्या निदान है? कैसे इस बीमारी के ऊपर विजय प्राप्त की जाय? आदि। अधिकांश लोग यह कहते हैं कि छात्रों को राजनीति से दूर रखा जाय राजनीतिज्ञ लोग अर्थात् नेता लोग विद्यालयों के दरवाजे तक न फटकें। उनका आना-जाना ही विश्वविद्यालयों के वातावरण को दूषित कर देता है और शैक्षणिक स्थिति में बाधा पहुँचती है और विद्यार्थी अपने मूल उद्देश्य को भूलकर राजनीति के शिकार बन बैठते हैं।

क्या सचमुच राजनीति हमारे देश के विद्यार्थियों के लिये हानिकर है? क्या इसके प्रभाव से छात्र अपने मार्ग से भटक जाते हैं? क्या आज का विद्यार्थी राजनीति से अलग रहकर अपने जीवन को सफल बना सकता है? क्या सचमुच

हमें राजनीति से अलग रहना ही चाहिये ? क्या सभी लोग राजनीति का अर्थ समझते हैं ? इन सभी समस्याओं पर हमें भलिभांति समझना है और तब हम परखेंगे कि राजनीति और विद्यार्थी का क्या सम्बन्ध है ?

यह कहना कि राजनीति की घुसपैठ के कारण विद्यार्थी अनुशासनहीन हो गये हैं, इससे विरोधी तत्वों का समर्थन मिलता है और छात्रों की दशा एक गंभीर रूप धारण करती जा रही है, न्याय संगत नहीं है। राजनीति के ऊपर इसका दोष नहीं मढ़ सकते। सचमुच अगर सही दृष्टि से गौर किया जाय तो हमें राजनीति से बड़ा लाभ हुआ है। विद्यार्थी वर्ग में अपने अधिकार एवं कर्त्तव्य समझने की क्षमता बढ़ी है जिससे वे सदा अपरिचित रखे जाते थे। जीवन के संघर्षों के साथ निडर हो सामना करने का प्रशिक्षण का अवसर राजनीति ने ही दिया है। स्वाधीनता के पहले अधिकांश विद्यार्थी दब्बू एवं संकोची होते थे उनमें गुलामी की भावना अधिक रहतीं थी अपने अधिकारों को वे समझ तक नहीं पाते थे परन्तु स्वाधीनता के बाद राजनीतिज्ञ चेतना बढ़ी और अब हमारे देश के विद्यार्थीने अपनी आजादी की कीमत को पहचान लिया। अत्याचार, जुल्म, शोषण, भ्रष्टाचार के साम्राज्य को वह पनपने नहीं देना चाहता है। वह नहीं चाहता है कि हमारे हित का गला घोंट दिया जाय और चन्द तिकड़मबाज उनके ऊपर शासन करें और गुलछर्रे उड़ावें। विद्यार्थी सदा आदर्शमय त्याग से प्रभावित रहा है और उस मूर्ति की सदा पूजा करता है जिसने तन मन धन

से विद्यार्थी वर्ग के हित को सोचा है। उनके सामने वे सदा नत मस्तक होकर रहे हैं। उदाहरणार्थ स्वर्गीय पं. मदन मोहन मालवीय एवं आचार्य नरेन्द्रदेव के जीवन को ले लीजिये।

इन महान आत्माओं ने विद्यार्थियों की समस्याओं के निवारण हेतु कुछ भी नहीं उठा रखा और उन्हें सदैव आदर्शमय मार्ग की ओर प्रेरित करते रहे। समाज में फैली हुई कुरीतियों से उन्हें अवगत कराते रहे। राष्ट्रीय चेतना भी उनमें खूब जगाई। समाज सुधार की ओर उन्हें खींचा। यह सब राजनीति शास्त्र के अध्ययन की ही देन है। बिना राजनीति के अध्ययन से कोई चाहे कि जन बल का समर्थन प्राप्त कर ले तो यह काम उसके बूते के बाहर होगा। जनता को प्रभावित करने के लिये आप के पास ऐतिहासिक, एवं राजनैतिक तथ्यों का भण्डार होना चाहिये तभी आप उनके विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते हैं। इसलिये आज के विद्यार्थी वर्ग के लिये अच्छी तरह फूलने-फलने के लिये संसार के महान राजनीतिज्ञों के विचारों का मन्थन करना होगा। उनकी कलाओं को समझना चाहिये और उसे समाज को लाभ होवे। अफलातून, अरस्तू, चाणक्य, लास्की, लिंकन, कार्लमार्क्स, गांधी, नेहरू आदि की जीवन धारा से अपने को अवगत करें तभी संसार में जी सकते हैं।

इस संसार में हम कैसे सुखी जीवन बिता सकते हैं, और छलो-कपटी, नीच एवं लम्पट व्यक्तियों से छुटकारा पा सकते हैं इसके लिये हमें कुछ कलाबाजी तो जाननी चाहिये वरना हमें मानसिक सुख नहीं मिल सकता है। इसके लिये हमें विवेक से काम करना पड़ता है। यदि सहज में ही हम किसी के ऊपर विश्वास कर लें और बाद में वह हमें धोखा पट्टी दे दे तो इसमें हमारी मूर्खता ही सिद्ध होगी और हम जीवन भर पछतायेंगे। इसलिये आज के समाज में जीने के लिये हमें राजनीति की सूझ-बूझ से काम लेना होगा और यह तभी संभव होगा जब विद्यार्थी समुदाय राजनीति के ऐतिहासिक तथ्यों पर गौर करे और समाज को युग के अनुसार ढाले। सबसे अपना उचित संबन्ध रखे और जीवन की कठिनाई को समझे। समाज की खाइयों को देख कर पलायन न करे बल्कि कुशल खिलाड़ी की तरह पार करे। यही राजनीति कहती है।

कुछ लोग राजनीति का अर्थ सरकारी दल बन्दी और और गुट बन्दी से लगा लेते हैं और सभी को भड़काते हैं कि राजनीति के छक्के पंजे में मत आओ। सचमुच ऐसे व्यक्ति अपने अल्पज्ञान का परिचय देते हैं। वे स्वयं नहीं समझते कि राजनीति कितनी महत्वपूर्ण विषय है। न वे यही समझते हैं कि इसके अभाव में विद्यार्थी आज की समस्याओं पर विजय नहीं पा सकता और उसमें मानसिक दासता का निवास रहेगा। वह

जीवन के संघर्षों से खेल नहीं सकता। न तो अ
उद्देश्यों की पूर्ति ही कर सकता। अतएव आज के विद्या
वर्ग के लिये राजनीति की ओर झुकना हित कर है
परन्तु उन्हें राजनीति का अर्थ संकुचित रूप में न
लेना चाहिये जैसा कि आजकल कुछ गुट परस्त विद्या
कर बैठते हैं। जैसे हिन्दी के प्रचार के विरोध में आन्दो-
लन, खाद्यनीति पर हड़ताल, प्रधानाध्यापक को पदच्यु
करो, पुलिस के अधिकारियों को हटाओ, ये सब बा
बड़ी तुच्छ हैं, राष्ट्र विरोधी तत्वों को बढ़ावा देती हैं
अतएव इसका सम्बन्ध राजनीति से नहीं है।

यह तो राजनीति के ज्ञान का दुरुपयोग ही कहा
जायगा। ऐसे अवसरों पर विद्यार्थियों को विवेक से का
करना चाहिये और वही कदम उठाना चाहिये जो बहु-
जन सुखाय के सिद्धांतों से मेल खाता हो। उन्हें किसी
के भड़कावे में नहीं आना चाहिये न तो भावावेश में
आकर राष्ट्रीय क्षति ही पहुंचानी चाहिये। राष्ट्र-प्रेम
राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा, के मूल्य को उन्हें स्वयं सम-
झना चाहियें और इसके सम्बन्ध में उन्हे सरकार का
सहयोग करना चाहियें। राष्ट्र के भावी कर्णधार वहीं
हैं उन्हें अभी से इस दायित्व को समझना होगा तभी
राष्ट्र का गौरव बढ़ेगा और उनका जीवन सुखी होगा।
यही राजनीति की सही शिक्षा है।

उज्जयी प्राणायाम करने की विधि

प्रथम पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासनपर बैठ जायें। बायें हाथ को बायें पैर पर रख लें। दाहिने हाथ से दोनों नासापुटों से पूरक करें। आंखें बन्द रखें। कमर, पीठ, मेरुदण्ड (रीढ़) तथा शिरको सम रेखामें रखें। कुम्भक के समय में ठुड्डी को कण्ठकूपमें लगायें। पूरक तथा रेचक के समय में शिर ऊँचा कमर, पीठ की रीढ़ (मेरुदण्ड) को समरेखा में रखें। रेचक, पूरक और कुम्भक के समय में मात्रा गणना के लिये १, २, ३, ४ — इस प्रकार गिनती का सहारा लेना यदि अभीष्ट न हो तो 'ॐ' मंत्र की मानसिक जप गणना का सहारा लेना चाहिये। एक बार 'ॐ' का उच्चारण करने को एक मात्रा माना जाता है। यदि यह भी उचित न जचे तो एक गायत्री-मंत्र के जपने तक पूरक, चार गायत्री-मंत्र का जप करने तक कुंभक और दो गायत्री-मंत्र के जपने तक रेचक किया जा सकता है। मात्राओं

के अनुसार चार मात्रा तक पूरक, १६ मात्रा तक कुम्भक और आठ मात्रा तक रेचक करने का नियम है। ४, १६, ८ मात्रा की गणना प्रत्येक प्राणायाम के समय में लिखने का कारण यह है कि प्राणायाम प्रारम्भ करने वाले स्त्री-पुरुष इस सम्बन्ध में अनुभव शून्य होते हैं और उनके फेफड़ों तथा हृदय का भी यथोचित और सप्रमाण विकास नहीं होता। ऐसे लोग कम से कम उपर्युक्त कालगणना के अनुसार यदि विधिवत् पूरक, कुम्भक और रेचक करेंगे तो उनका रक्त संचालन संस्थान, वायु वाहिनी नाड़ियां विकसित परिपुष्ट शक्तिवान् और कार्यदक्ष बनती हैं। तत्पश्चात् क्रमात् ६:२४:१२, ८:३२:१६, १०:४०:२०, १२:४८:२४—इसी प्रकार १६:६४:३२ मात्रा तक समय का बढ़ा सकते हैं। तदुपरांत केवल कुम्भक का समय बढ़ायें, परन्तु पूरक तथा रेचक का समय १६:३२ मात्रा तक ही रखें। उज्जयी प्राणायाम के समय में रेचक केवल बायें नासापुट से करें। इसके अतिरिक्त रेचक के समय में बायें हाथ के अंगूठे से दाहिने नासापुट को इस तरह दबा कर रखें कि जिससे उसमें अवरुद्ध वायु बाहर निकल न सके, इतने अधिक जोर से दबाना उचित नहीं कि प्राणायाम के समय में नाक टेढ़ी दिखाई दे। उज्जयी प्राणायाम करते समय मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध और उड्डीयानबन्ध उसी तरह लगायें जैसे कि अनुलोम विलोम प्राणायाम के समय में लगाना बताया गया है। दोनों नासा-पुटोंसे पूरक

करके कुम्भक के वाद बायें नासा-पुटसे रेचक करने की क्रिया विधि के सम्पन्न करने पर एक उज्जयी प्राणायाम पूर्ण होता है यदि दूसरी वार फिर उज्जयी प्राणायाम करना हो तो पुनः दोनों नासा-पुट से पूरक करें। कुम्भक के बाद बायें नासा-पुटों से रेचक करें।

उज्जयी प्राणायाम कौन कर सकते हैं ?

८ वर्ष से लेकर १०० वर्ष की आयु तक के स्त्री पुरुष उज्जयी प्राणायाम कर सकते हैं। उज्जयी प्राणायाम से समुचित लाभ उठाने के लिये कम से कम ६ प्राणायाम तथा अधिक से अधिक १२ प्राणायाम करना आवश्यक है। कोई विशेष कारण हो तो अधिक संख्या में भी किया जा सकता है।

उज्जयी प्राणायाम करने का समय

प्रातःकाल स्नान करने के पश्चात् उज्जयी प्राणायाम करना उचित है। यदि प्रातःकाल समय न मिले तो सायंकाल भी कर सकते हैं, परन्तु पेट खाली हो उसी अवस्था में।

उज्जयी प्राणयाम से शारीरिक लाभ

अनेक प्रकार के वायु-रोग—जैसे कि शरीर में वायु का अधिक प्रभाव; पेट में वायु का अधिक प्रभाव, सन्धिवात, कण्ठ (गले) से कर्कश आवाज निकलना, वायु से कमर में पीड़ा होना आदि। वायु-रोग ८१ प्रकार के होते हैं, जिनमें से ऊपर लिखे हुए रोग और अन्य अधिकांश वायुजन्य रोग उज्जयी प्राणायाम के

नित्य अभ्यास से निस्संदेह मिट जाते हैं। साधारणतया देखा जाये तो वात पित्त तथा कफ की अधिकता में अथवा परिमाण में कम होने से शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं। इन रोगों से मुक्त होने का प्रयास इलाजों को आधार लेकर किया जाता है, परन्तु योगाभ्यास के अन्तर्गत प्राणायाम के आधार पर इलाज करने का प्रयास अत्यन्त सरल, सुलभ, निरापद, निर्भय और सबके लिये अनुकूल है। उज्जयी प्राणायाम करने वाले के शरीरगत वायु [प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान] वशवर्ती हो जायेंगे इनके ऊपर विजय प्राप्त होगी। वायु-रोग से छुटकारा पाने का यह अद्भुत प्रयोग है। ८ से १५ दिनों के अन्दर प्राणायाम के लाभ स्पष्ट प्रगट होने लगेंगे और आपको अनुभव होने लगेगा कि आप रोग से क्रमशः निवृत्त होते जा रहे हैं। रोग निवारण में शीघ्रता अथवा विलम्ब रोग की नई-पुरानी स्थिति पर भी अवलंबित है और तदनुसार शीघ्रता या विलंब से लाभ हो सकता है। यदि रोग नया है तो लाभ के लक्षण शीघ्र ही प्रगट होने लगेंगे किन्तु यदि रोग पुराना है तो उसी अनुपात से लाभ में विलम्ब भी हो सकता है; परन्तु लाभ होता है। इसमें सन्देह नहीं। प्राणायाम के अभ्यासी साधक का कर्त्तव्य है कि प्रतिदिन एक ही स्थान, एक ही समय प्राणायाम के अभ्यास के लिये निर्धारित करें। इसके अतिरिक्त साधना के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा, विश्वास, माता-पिता तथा गुरु की आज्ञा का पालन और व्यसन हीन

तथा सदाचारी भी होना अनिवार्य है। मन का स्वभाव अधिकांश में चंचल होता है। उसे एकाग्र तथा स्थित-प्रज्ञ बनाने के लिये विशेष प्रयत्नशील होना पड़ता है, क्योंकि मनको एकाग्र और स्थिर किये विना अभीष्ट लाभ मिलना संभव नहीं। प्राणायाम की शक्तियों से परिचित होने तथा सम्यक् लाभ उठाने के लिये मनको अन्तर्मुख बनाना ही पड़ेगा: अन्यथा वह क्षण-क्षण में बहिर्जगत् में पहुंचकर भटकने लगेगा। बुद्धिमें सन्देह, चित्तमें मलिनता तथा अहंकारमें रजोगुण के प्रविष्ट हो जाने की पूरी पूरी सम्भावना रहती है; ऐसा अवसर मनको कभी न दें।

उज्जयी प्राणायाम के आध्यात्मिक लाभ

सर्वसाधारण रूपसे देखा जाय तो अनेक प्राणायाम केवल सूक्ष्म रूपसे मानव-देहमें रहने वाले रोगों को ही निकाल नहीं फेंकते बल्कि इसके साथ-साथ ज्ञानेन्द्रियों के बहिर्वेग को रोककर अन्तर्मुखी बनाते हैं। 'एक पन्थ, दो काज' की कहावत के अनुसार प्राणायामों से शारीरिक लाभ तो है ही, साथ ही सूक्ष्म कारण तथा महाकारण शरीर तक के शुद्धीकरण का काम प्राणायाम से होता है। प्राणायाम के समय में बाह्य वायुमें रहने वाले सूक्ष्म विटामिन यथोचित परिमाण में शरीर के अन्दर प्रवेश करते हैं। सूक्ष्म अंशमें वायु के साथ रहने वाला जलीय तत्त्व [आर्द्रता] भी प्राणायाम के समय में समग्र शरीर में प्रवेश करता है।

प्राणायाम के साधकों को केवल शारीरिक लाभ प्राप्त नहीं होता, बल्कि मानसिक शान्ति का लाभ अधिक परिमाण में मिलता है। प्राणायाम का नियमित परिमाण में अभ्यास करने से शरीर हलका, स्फूर्ति, शक्तिमत्ता, कर्त्तव्य-परायणता, क्रिया शीलता, शान्त स्वभाव, सहिष्णुता, धैर्य आदि दिव्य दैवी गुणों से विभूषित होता है। परिवार का पालन-पोषण का समग्र भार शिर पर आ पड़ने पर भी प्राणायाम के अभ्यासी घबराते नहीं; बल्कि उत्साह के साथ सांसारिक सुख या दुःखका सामना करते हुये गृहस्थाश्रम की नौका को सुयोग्य रूप में संचालित करते हैं। ऐसे लोग प्रत्येक स्थिति में एकरस रहते हैं। वे न सुख में फूल उठते हैं और दुःखाघात से जर्जरित। प्राणायामों का महत्त्व अनन्त है।

क्षुधा कम होती है या बढ़ती है ?

प्राणायाम के साधक ऊपर के कथनानुसार जलसे, वायुसे क्षुधा निवारक अमृतमय विटामिन उपलब्ध करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि स्थूल रूपसे रोटी, चावल, शाक-सब्जी आदि अधिक परिमाणमें लेने की आवश्यकता नहीं रहती। प्राणायाम के साधकों की आयु भी अधिक होती है। वे दीर्घजीवी होते हैं; क्योंकि साधारण स्त्री पुरुषों को जितने समयमें जितनी संख्यामें श्वासोच्छ्वास लेना चाहिये, उससे कम परिमाणमें प्राणायाम करने-वाले खींचते और छोड़ते हैं। सुख-दुःखको समान मानने से घबराहट नहीं होती, फलतः स्थूल तथा सूक्ष्म अवयवों में घर्षण [छाजन] तथा निर्बलता नहीं आती और साधक सदा कर्तव्य-परायण तथा परमार्थ-पथका पथिक बन जाता है।

महान् राजनीतिज्ञ — भगवान् श्रीकृष्ण

लेखकः— शिवेन्द्रप्रसाद गर्ग 'सुमन' बी. ए. साहित्यरत्न

हिन्दी साहित्य जगत् की श्रेष्ठतम मासिक पत्रिका का "राजनीति विशेषांक" पाठकों के हाथों में है। राजनीति की चर्चा जब भी कभी हुई है या होगी, महान् राजनीतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण को कभी भी नहीं भुलाया गया और न यह कभी सम्भव ही होगा। आज सभी व्यक्ति, हमारे सभी नेता राजनीतिज्ञ बनने का दम्भ रखते हैं, पर वस्तुतः वे 'राजनीति' की 'क-ख-ग' से भी अनभिज्ञ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण को हम विविध रूपों में पहचानते हैं। उनका सर्वाधिक अनुकरणीय एवं सामयिक दृष्टि से प्रेरक रूप एक सफल राजनीतिज्ञ के रूप में है। हमारे 'तथाकथित' नेता काश! इस महान राजनीतिज्ञ के जीवन से तनिक भी प्रेरणा ले पाते। किसी राजनीतिज्ञ का जीवन, आचरण, व्यवहार, क्रिया-कलाप का क्या रूप हो, यह सब एक आदर्श राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण भगवान के जीवन में देखने को मिलता है। आज हमारा देश राजनीति के झंझावात में हिलोरे ले रहा है, वर्तमान अधोगति के ऐसे संकटपूर्ण क्षणों में नीति धुरंधर नेता का चरित्रान्वेषण ही हमारा कल्याण करेगा। इसमें संशय नहीं करना चाहिये।

आइए, हम श्रीकृष्णचन्द्र को राजनीतिज्ञ के रूप में अपना आदर्श बनावें ! यों तो श्रीकृष्ण सभी दृष्टियों से श्रेष्ठतम आदर्श हैं, तथा राजनीति की कसौटी पर भी वे अद्वितीय ही सिद्ध हुये हैं। ......"ऐसा सर्वगुण संपन्न एवं

सर्वगुणसम्पन्न आदर्श चरित्र और कहीं नहीं है—न किसी देश के इतिहास में और न किसी काव्य में। नेता के रूप में हम उन्हें नितान्त निर्भय, परम निष्पक्ष एवं विचारों से शुद्ध पाते हैं, जिन्हें संसार की कोई विपत्ति या प्रलोभन अपने पथ से विचलित नहीं कर सके। जब महाभारत का युद्ध होने जा रहा था, सन्धि के सारे प्रयत्न विफल हो चुके, उस समय भी धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध के अवश्यम्भावी दुष्परिणामों से विचलित हो, चाहते थे कि एक बार पुनः मूर्ख दुर्योधन को राह पर लाने की चेष्टा की जावे। पर सन्धिप्रस्ताव लेकर कौन जावे ? "विनाश काले विपरीत बुद्धि" —दुर्योधन पता नहीं क्या कर गुजरे। अतएव तब श्रीकृष्ण भगवान ही दूतकार्य करने को तत्पर हुये। यह जानते हुये भी कि सन्धिप्रस्ताव असफल होगा, भगवान श्रीकृष्ण आपद्जनक कार्य को अंजाम देने हेतु दुर्योधन के यहां पहुँचे। ......मूर्ख दुर्योधन ने उन्हें बांधने की भी धृष्टता की ....और फिर क्या हुआ—इन सबका चित्रण 'महाभारत' में पढ़िये अथवा राष्ट्रकवि श्री 'दिनकर' की 'रश्मिरथी' से उद्धृत निम्न काव्यांश में।—

"मैत्री की राह बताने को, सबको सुमार्ग पर लाने को।
दुर्योधन को समझाने को, भीषण विध्वंस बचाने को।
भगवान हस्तिनापुर आये, पांडवों का संदेशा लाये।
दो न्याय अगर तो आधी दो, पर इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पांच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे, परिजन पर असि न उठायेंगे।

दुर्योधन वह भी दे न सका, आशिष समाज की ले न सका
उल्टे, हरि को बांधने चला, जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।
हरि ने भीषण हुंकार किया, अपना स्वरूप-विस्तार किया।
डगमग-२ दिग्गज डोले, भगवान कुपित होकर बोले।
"जंजीर बढ़ाकर साध मुझे, हां हां, दुर्योधन! बांध मुझे!
हितवचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना।
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।
याचना नहीं, अब रण होगा, जीवन, जय, या कि मरण होगा।
टकरायेंगे नक्षत्र-निकट, बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर,
फण शेष नाग का डोलेगा, विकराल काल मुँह खोलेगा।
दुर्योधन रण ऐसा होगा, फिर कभी नहीं जैसा होगा।
भाई भाई पर टूटेंगे विषवाण बूँद से घूँटेंगे।
वायस शृंगाल सुख लूटेंगे, सौभाग्य मनुज के फूटेंगे
आखिर तू भू शायी होगा, हिंसा का परदायी होगा॥"...

और इस प्रकार संधि असफल हो गई। श्रीकृष्ण उसे फटकार कर चलने लगे, दुर्योधन ने भोजन के लिये आग्रह किया। इस पर उनका उत्तर था— "....या तो प्रीति के कारण किसी के यहां भोजन किया जाता है, या फिर विपत्ति में। प्रेम तो तुम हमसे करते नहीं, और हम पर कोई विपत्ति आई है नहीं।" अतएव भगवान श्रीकृष्ण ने दुर्योधन का भोजन त्याग कर विदुरजी के यहां भोजन ग्रहण किया। मूल श्लोक इस प्रकार है:— "सम्प्रीति भोज्यान्यन्नानि ह्यापद् भोज्यानिवा पुनः। न च सम्प्रीयसे राजन्, न चैवापद्गता वयम्॥"......

आज के राजनीतिज्ञ की भांति वे 'लोकसंग्रह' अथवा सर्व-प्रियता के मोह में नहीं पड़े। उन्होंने न्याय को अन्याय धर्म को अधर्म नहीं बताया। जो कुछ कहा, सत्य कहा स्पष्ट कहा। निरपराध को उन्होंने अपराधी बताकर अपनी 'समदर्शिता' या उदारता का परिचय नहीं दिया? उनकी राजनीतिज्ञ दक्षता एवं 'गीता' में दिया हुआ कर्मयोग का संदेश भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। राजनीतिज्ञ का जीवन निस्पृह हो श्रीकृष्ण के जीवन की तरह- जिन्होंने कंस को मारकर भी मथुरा नरेश बनना नहीं स्वीकारा और देखते ही देखते ही वहां का राज्य उग्रसेनजी को सौंप दिया। यदि राजनीतिज्ञ दाता या दानी हो, तो वहां भी उसे श्रीकृष्णवत् ही होना चाहिये। सुदामा को उन्होंने क्या नहीं दिया—बहुत कुछ दे दिया। तभी तो श्री नरोत्तमजी कहते हैं—"देनो हुतो सो दे चुके, विप्र न जानी गाथ। चलती बेर गुपालजी कछु न दीनो हाथ।" यह नहीं कि राजनीतिज्ञ सत्ता पाकर अपनों को भूल जावे। आजकी तो आदत ही बदल गई है—'प्रभुता पाय काहि मद नाहीं।' उनकी पारदर्शिनी राजनीतिज्ञ बुद्धि को लक्ष्य में रखकर एक बार धृतराष्ट्र ने कहा था—"जब तक रथ पर कृष्ण, अर्जुन और गांडीव धनुष—ये तीनों तेज एक साथ हैं, तब तक ग्यारह अक्षौहिणी सेना होने पर भी कौरवों की विजय असम्भव है।" दुर्योधन पांच ग्राम तो क्या, सुई की नोक तक के बराबर भूमि बिना युद्ध के देने को तत्पर न था। अतएव संहारकारी महायुद्ध हुआ। उस युद्ध में भगवान श्रीकृष्ण ने निःशस्त्र

रहने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने अर्जुन के रथ का सारथीत्व स्वीकार किया। आज के हमारे राजनीतिज्ञों से ऐसी अपेक्षा नहीं कर सकते। पितामह भीष्म ने कहा था— "यतो धर्म स्ततः कृष्णो यतः कृष्ण स्ततो जयः॥" अर्थात् 'जिधर धर्म होगा, उधर कृष्ण होंगे और जिधर कृष्ण होंगे उधर विजय अवश्य होगी। "अपनों पर उपराग देखकर, वह आगे आता है" ऐसा चरित्र था। लोकनायक श्रीकृष्ण का, जो कि हम राजनीतिज्ञों से चाहते हैं। महान् राजनीतिज्ञ कृष्ण के बारे में श्री गुप्तजी ने 'द्वापर' में ठीक ही लिखा है—

> तनिक छाछ में जिसे गोपियां
> नाच नचाया करतीं।
> राजनीतियां आ उसके घर
> अब हैं पानी भरतीं॥

'प्रियप्रवास' के १६ वें सर्ग में श्री हरिऔध के राजनीतिज्ञ कृष्ण आत्मार्थी के स्थान पर आत्मत्यागी बनने का आह्वान करते हैं। हमारे नेताओं की तरह यह नहीं कि अपने घर को ही भरने में लगे रहें। अनेक प्रकार से उन्होंने राजनीतिज्ञों द्वारा अनुगमन किये जाने हेतु स्पष्ट किया है कि आत्मत्यागी होना ही उनका अभीष्ट हो। और तभी 'राजनीति' को गंदी होने से बचाया जा सकेगा।

"हैं प्यारी औ, मधुर सुख औ, भोग की लालसाएं।
कान्ते, लिप्सा जगत हित की ओर भी है मनोज्ञा।
इच्छा आत्मा परमहित की मुक्ति की उत्तम है।

वांच्छा होतीं विशद उससे आत्म उत्सर्ग की है।
है आत्मा का न सुख किसको विश्व के मध्य प्यारा।
सारे प्राणी स-रुचि इसकी माधुरी में बंधे हैं।
जो होता है न वश इसके आत्म उत्सर्ग द्वारा।
ये पाते हैं सफल अवनी मध्य आना उसी का।"

सफल राजनीतिज्ञ होने के लिये सभी को संतुष्ट करना, धर्म की रक्षा करना भी आवश्यक होता है। भगवान् श्रीकृष्ण के लिये धर्म की रक्षा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जहां-जहां कोई भी गुत्थि या उलझन आ पड़ी, भगवान् श्रीकृष्ण ने नीति पूर्वक उसका समाधान किया। 'महाभारत' के 'सभापर्व' के ३८ वें अध्याय में धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ में प्रश्न उठता है कि कौन बड़ा है? सर्वप्रथम किसकी पूजा की जावे? चेदिराज शिशुपाल को समझाते हुए वे कहते हैं: 'ब्राह्मणों में वह पूज्य है। जो ज्ञान में बड़ा हो, क्षत्रियों में जो बल में बड़ा हो। वैश्यों में धनधान्य में बढ़कर व्यक्ति पूज्य है, हां केवल शूद्रों में आयु के आधार पर व्यक्ति को पूज्य समझा जाता है।' कृष्णवत् एक राजनीतिज्ञ को क्रोध, असत्य, डाह, भय, निर्दयता एवं कठोरता से सर्वथा शून्य होना चाहिये। गीता जो कि विश्व साहित्य की शिरोरत्न है, को सुनकर ही अर्जुन का मोह दूर हुआ। उसका संदेह नष्ट हुआ और उसने अपनी स्मृति प्राप्त कर ली..... एक राजनीतिज्ञ के शब्दों में सचमुच ऐसी ही शक्ति एवं ताकत होनी चाहियें, ताकि मुर्दे में भी रक्त जोश मारने लगे, कायरोंमें भी साहसका संचार हो जावे।

'कर्ण पर्व' में जब युधिष्ठिर कर्ण द्वारा घायल हो शिविर में लौटते हैं एवं अर्जुन को कर्ण के मारने में अभी तक न मिली सफलता को लक्षित कर युधिष्ठिर अर्जुन को फटकारते हुये कहते हैं कि यदि तुम कर्ण को नहीं मार सकते तो यह गांडीव धनुष किसी और को दे दो। अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि जो भी उसे ऐसा कहेगा, वह उसे मार डालेगा। एक तरफ तो शपथ भंग और दूसरी ओर भ्रातृ हत्या-पाप - यहां कुशल राजनीतिज्ञ की भांति भगवान् समस्या को सुलझाते हैं। वे कहते हैं— "बड़ों की हत्या तलवार से नहीं। उनकी निंदा व अपमान से होती है।" श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर अर्जुन ने 'तुम' एवं निंदायुक्त कठोर वाक्यों द्वारा युधिष्ठिर की भर्त्सना कर भ्रातृ वध के महापाप से बच तो गये। तब पुनः श्रीकृष्ण यह कहकर मार्गदर्शन करते हैं कि "अपने मुंह से अपने गुणवर्णन करना ही आत्मघात है। अतएव तुम वैसा ही करो।" कर्ण वध के समय श्रीकृष्ण जी ने "शठं शाठ्यं समाचरेत्" सिद्धांत पर जोर दिया। ..... इसके अलावा कठोर क्षत्रिय धर्म के निर्वाहार्थ उन्होंने युधिष्ठिर को आदेश दिया कि वे शल्य को मार डालें— मामा का लिहाज न करें। इस प्रकार राजनीतिज्ञ कर्त्तव्य-पालन के समय महान कर्त्तव्य को ही सर्वस्व समझता है। कर्त्तव्यपालनार्थ कोई भी बाधा या समस्या उसे पथच्युत नहीं कर सकती। युद्ध में श्रीकृष्ण जी ने कुछ ऐसे कार्य भी करवायें। जिन्हें हम अनुचित

समझते हैं — पर "युद्ध एवं प्रेम में हरेक चीज जायज होती है।" रथ से उतरे हुये एवं उसके पहिये को जमीन में से निकालते हुये कर्ण को मरवाना, "अश्वत्थामा मारा गया" का झूठा उद्घोष करवा कर द्रोणवध का रास्ता साफ करवाना (पुत्र वधके समाचार को सत्यमान द्रोण ने शस्त्रत्याग के पद्मासन लगा लिया। उस समय उनका वध किया गया), भीष्मादि का वध आदि की प्रेरणा उन्हीं ने दी है। वे कहते हैं (बृहस्पति का उदाहरण) "बड़े से बड़ा गुरुजन, वृद्ध, सर्वगुणयुक्त पुरुष भी यदि शस्त्र लेकर मारने के लिये सामने उद्यत हो तो उस आततायी को मार डालना चाहिये।"

उन्होंने अपने विषय में अपना स्वरूप व महिमा बतलाते हुये कहा :—

मानुष्यं भाव मापन्नं ये मां गृह्णन्त्यवज्ञया
संसारांतर्हि ते मूढ़ास्तिर्यग्योनिष्वनेकशः॥

जो लोग मुझे केवल मनुष्य शरीर में ही समझ कर मेरी अवहेलना करते हैं, वे मूर्ख हैं और संसार के भीतर बारम्बार तिर्यग्योनियों में भटकते रहते हैं। सच्चे राजनीतिज्ञ को अहंकार भी नहीं करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण अहंकार को विष बताते हुये कहते हैं — (योगवासिष्ठ — ६/२/५३/१०) जिनका शरीर अहंकार रूपी विष से नष्ट नहीं हुआ, वे सब प्रकार के कार्यों को करते तथा उनका फल भोगते हुये भी सभी राग-रोगादि दोषों से मुक्त तथा स्वस्थ हैं।

एक महान् राजनीतिज्ञ के रूप में श्रीकृष्ण जी के चरित्र से, उनके जीवन से हमें राजनीति विषयक विविध बातों का ज्ञान होता है। यथा सभासद् कैसे नष्ट हो जाते हैं? (अधर्म एवं मिथ्यासे)। प्रबल एवं सुसंगठित शत्रु को कैसे जीता जावे? (नीति द्वारा — अपने छिद्रों को छिपाकर शत्रु के छिद्र देखें एवं अवसर मिलते ही उस पर बलपूर्वक आक्रमण कर दे) - जिस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण सत्यासत्य के वास्तविक तथ्य को ठीक-ठीक समझते थे। उनका मत सर्वथा नित्य, एकरस और अटल होता था, ठीक वैसा ही अभ्यास राजनीतिज्ञ का होना चाहिये। एक राजनीतिज्ञ के रूप में वे आह्वान करते हैं 'कि क्षुद्रं हृदयं दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप' - हृदय की दुर्बलता कर्म क्षेत्र में भी मनुष्य को हतोत्साहित कर देती है। कहना न होगा कि यदि आज की राजनीति को आखाड़ा न बनाकर धर्म क्षेत्र बनना है और यदि सचमुच हमें आदर्श राजनीतिज्ञों का निर्माण करना है, तो इस बात की आवश्यकता है कि हमारे सब "बड़े-बड़े" कहे जाने वाले नेता कुशल राजनीतिज्ञ कृष्ण के दर्शन एवं आदर्शों का पालन करें। उन्हे अपना आदर्श मानकर उन्हीं का अनुगमन करें। अस्तु! "भारताख्यं सरोभाति व्यास वागमृतैर्वृतम्। यत्र क्षत्र कुलाब्जेषु हंसायति हरेर्यशः॥ 'व्यासदेव की वाणी रूपी अमृत से पूर्ण यह 'महाभारत' नामक सरोवर सुशोभित हो रहा है। इसमें क्षत्रिय-कुलरूपी कमल समूहों में श्रीकृष्ण का उज्ज्वल यश हंस के समान क्रीड़ा कर रहा है।" इन्हीं 'शब्द-सुमनों' के साथ लेखक अनुमति चाहता है।

राजनीति और समाज रचना

लेखकः— विष्णुदत्त शर्मा

प्राचीन काल से ही हर समाज की रचना में राजनीति का अपना विशेष महत्व रहा है। राजनीति शब्द का साधारण बोल चाल की भाषा में यही अर्थ होता है कि किसी राज्य के शासन के सिद्धान्तों को उस राज्य की राजनीति कहते हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त भी राजनीति की विशद व्याख्या की जा सकती है, क्योंकि राजनीति का प्रभाव हर नागरिक एवं समाज के प्रत्येक अंग पर पड़ता है। राजनीति स्वयं भी इतना महत्वपूर्ण एवं महान् विषय है कि जिसकी व्याख्या शब्दों तक ही सीमित नहीं रह सकती है इस महान व्यावहारिक एवं आवश्यक विषय का ज्ञान समाज के प्रत्येक नागरिक के लिये वांछनीय है। अतः राजनीति और समाज रचना के विषय में मैं अपने कुछ विचार प्रगट करना चाहता हूँ जो कि जन साधारण के लिये लाभकारी हो सकते हैं।

जब मनुष्य जंगली अवस्था में था तो न उसमें सामाजिक भाव थे न ही राजनैतिक! लेकिन राजनीति के कई महान लेखकों के अनुसार समाज में स्थिरता लानेवाला एक तत्व जो "राजनीति" है वह स्वयं समाज या मनुष्य के समान ही पुरातन है। हान्स, लांक, रुसो आदि राजनीति के विद्वानों ने मनुष्य समाज के त्राण के लिये राजनीति को अमोघ अस्त्र ही बताया था। वास्तव में समाज रचना के नक्शे में राजनीति ही रंग भरती है। इसी तत्व के निरीक्षण के लिये आधुनिक

सुविकसित विश्व के विभिन्न राष्ट्रों की समाज रचना में राजनीति का क्या हाथ रहा है, का कुछ विवेचन किया जाता है।

हम यह देख रहे हैं कि दुनिया के कुछ राष्ट्र अन्य राष्ट्रों की सहायता करते हैं, तो कुछ दूसरों की दया के पात्र बने हुये हैं। यों तो किसी भी राष्ट्र की उन्नति उसके प्राकृतिक साधनों पर निर्भर करती ही है लेकिन बहुत कुछ निर्भर करता है उसकी राजनीति और समाज रचना पर। रूस हमारे सामने एक उदाहरण पेश करता है कि ४० वर्षों के इस थोड़े से समय में वह देश उन्नत देशों में प्रथम गिना जाता है। भाषा की तरक्की; विज्ञान की उन्नति, समाज की समृद्धि का रहस्य है वहां की राजनीति और समाज रचना। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वहां की राजनीति में कोई कमी नहीं है।

जहां जैसी राजनैतिक प्रणाली होगी वहां वैसी ही समाज रचना होगी या यों कहें कि राजनैतिक व्यवस्था के अनुकूल ही समाज व्यवस्था होगी। हमारे देश की शासन प्रणाली प्रजातांत्रिक है, लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था से प्रभावित होने के कारण समाज में वे सभी दोष दर्शन होते हैं जो एक पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत होते हैं। अगर हमारे देश की शासन प्रणाली या राजनीति समाजवादी प्रकार की बनादी जाय, जैसा कि हमारी सरकार प्रयत्न कर रही है, तो हमारे समाज में इसी के अनुकूल परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यों राजनीति समाज व्यवस्था का प्रतिनिधित्व भी करती है और नेतृत्व भी।

लेकिन खासतौर से जो समाज अविकसित या अर्धविकसित है, वहां राजनीति अपने अनुकूल समाज व्यवस्था को ढाल लेती है और पूर्ण विकसित समाज में राजनीति समाज व्यवस्था के अनुकूल ढल जाती है, जैसे इंगलैंड की राजनीति वहां के समाज व्यवस्था के अनुकूल ढल चुकी है। वहां का संविधान ही रीतियों और प्रथाओं से विकसित संविधान कहलाता है, जब कि भारत का संविधान बनाया हुआ है और रीतियों के लिये उसमें बहुत कम स्थान है। एक प्रजातांत्रिक देश के अन्दर राजनीति और दलनीति में बहुत ही कम भेद रहता है। क्योंकि इन राष्ट्रों में बहुमत वाला दल ही शासक होता है और शासक अप्रत्यक्ष रूप में स्वयं के सिद्धान्तों को राष्ट्रीय सिद्धान्तों के रूप में प्रतिपादित करना चाहता है। इसी प्रकार अगर किसी देश का शासन केवल एक व्यक्ति के हाथ में होगा तो उस एक व्यक्ति के सिद्धान्त ही उस राष्ट्र के सिद्धान्त बन जायेंगे, वह तानाशाह इच्छाचारी होगा, और समाज की रचना उसी की इच्छा के अनुकूल होगी। समाज में भय व्याप्त हो जायगा, स्वतंत्रता का अभाव होगा, विचार व्यक्त करने की स्वाधीनता नागरिकों को नहीं होगी। चीन और पाकिस्तान जो हमारे पड़ोसी राष्ट्र हैं उनकी राजनीति बहुत कुछ उपरोक्त व्याख्या से मिलती जुलती है। परिणामतः यह अखबारों में पढ़ने को मिलता है, कि वहां के नागरिकों को न बोलने की स्वतंत्रता है न उद्योग की स्वतंत्रता है। समाज में भय की स्थिति बनी रहती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक की इच्छा करोड़ों

की इच्छा पर थोपी जाती है, जबकि प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली में करोड़ों की इच्छा के अनुसार ही शासन किया जाता है।

अन्त में यह विचार माननीय है, कि समाज रचना में राजनीति या शासन प्रणाली का गहरा असर पड़ता है, कहावत भी है, कि "यथा राजा तथा प्रजा।" एक स्वस्थ समाज रचना में सुन्दर एवं विशुद्ध राजनैतिक व्यवस्था का होना अनिवार्य है इसी से विश्व विनाश तथा संहारिक विश्व युद्धों को रोका जा सकता है। संसार के त्राण के लिये शुद्ध राजनैतिक विचारों का प्रचार अनिवाय है।

हृदय--गति बंद हो जाने का रोग

लेखक— गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर' एन. डी.

सभी रोगों के प्रत्यक्ष लक्षण होते हैं — स्थितियां होती हैं सिम्पटम् होते हैं और हम समय से पूर्व ही रोग विशेष के सिग्नल से सावधान हो जाते हैं पर हृदय-गति बन्द हो जाने के मर्ज का कोई प्रत्यक्ष लक्षण नहीं होता। यह मर्ज एक अदृश्य मौत है जिससे संसार के अनेक व्यक्ति असमय एवं अचानक ही हमें छोड़ कर चले जाते हैं।

वस्तुतः हृदय-गति बन्द हो जाने को रोग कहना गलत है। कारण, हृदय-गति बन्द हो जाने का ही दूसरा नाम मौत है, जो न रोग है और न जिसका कोई इलाज है। हां, हृदय-गति बन्द हो जाने के पहले कुछ लक्षण प्रगट होते हैं, जिसके प्रकट होते ही यदि सतर्कता, तत्परता. एवं शीघ्रता से उचित उपचार किया जाय तो संकट की घड़ी टाली जा सकती है और रोगी को हृदय-गति बन्द हो जाने के फल स्वरूप, मृत्यु के मुख में जाने से रोका जा सकता है।

सैकड़ों अन्य रोगों की भांति हृदय के रोग भी रोज रोज बढ़ते ही जा रहे हैं, परन्तु उन विविध हृदय रोगों से हृदय गति बन्द हो जाने के रोग सर्वाधिक हैं। कोई दिन नागा नहीं जाता जिस दिन अखबारों में यह न पढ़ा जाय कि आज फलां व्यक्ति की मृत्यु हृदय-गति अचानक बन्द हो जाने के कारण हो गई। इसका अर्थ

यह है कि डॉक्टरों तथा अस्पतालों की जोरदार कोशिशों के बावजूद भी यह रोग दिन बदिन बढ़ता ही जा रहा है और काबू में नहीं आ रहा है।

पूर्व लक्षण

हृदय-गति बंद हो जाने की विपत्ति चूंकि अकस्मात् आती है, इसलिये यह जरूरी है कि साधारण और चिकित्सा-शास्त्र की बातों से अनभिज्ञ जनता इस आकस्मिक विपदा के पूर्व लक्षणों को जानकर होशियार हो जाय ताकि खतरे की सूचना मिलते ही वह उसका उचित निराकरण करके संकट को टाल सकें।

हृदय-गति बंद हो जाने के पूर्व लक्षण बहुत ही सीधे सादे होते हैं। उनमें कोई पेचीदगी नहीं होती इसलिये उन पर ध्यान नहीं दिया जाता और उनकी उपेक्षा होती है। फल यह होता है कि समय पर उनकी रोकथाम नहीं हो पाती और इस तरह बिना मौत ही मनुष्य मरने पर बाध्य हो जाता है।

हृदय-गति बंद हो जाने के पूर्व के लक्षण निम्न-लिखित हैं:—

* जब हृदय-गति बंद होने को होती है तो उस समय अत्यधिक और अवर्णनीय प्रकार की बेचैनी महसूस होने लगती है।

* तमाम शरीर में अचानक एक प्रकार की असह्य गर्मी मालूम होने लगती है और उसके बाद शरीर पसीने पसीने हो जाता है।

* छाती के पास जोरों का दर्द होता है जिससे रोगी छटपटाने लगता है।

* पेट में नाभि के ऊपर असह्य पीड़ा होती है जिसे आमतौर पर कलेजे का दर्द कहा जाता है।

ये साधारण लक्षण हैं जो नाजुक हालत वाले रोगियों में पाये जाते हैं। जब ये लक्षण प्रकट हों तो समय न बर्बाद कर तुरन्त उपचार आरम्भ कर देना चाहिये अन्यथा रोगी बच न सकेगा।

साधारणतः लोग समझते हैं कि जब रोगी की सांस फूलने लगे, चेहरे पर भरभराहट उभड़ आवे, तथा पावों में सूजन आ जाय तभी हृदय गति बंद हो जाने की आशंका होती है। परन्तु यह धारणा मिथ्या है। कारण, ये लक्षण साधारण हृदय रोग के भले ही हों पर दिल की हरकत बंद होने की बीमारी में इनका पाया जाना आवश्यक नहीं है।

मैंने कितने ही ऐसे रोगियों को देखा है कि वे सबेरे अपने काम पर गये थे पूरी तन्दुरुस्ती की हालत में मगर जब शाम को घर लौटे तो बिना किसी रोग के ही कुर्सी या चारपाई पर मुर्दा पाये गये। इस सद्यः प्राण-हारी रोग का आक्रमण होने पर ९९ प्रतिशत यही होता है कि इसके पहले की कोई चिकित्सक रोगी तक पहुँचे रोगी रोग का शिकार ही पूरे तौर से नहीं हो चुका रहता, अपितु वह चल भी बसता है, और चिकित्सक को उल्टे पांव लौट जाना पड़ता है।

कारण

जिस प्रकार एक अच्छी-खासी घड़ी के चलते-चलते एकाएक रुक जाने का मात्र कारण उसके लिवर में किसी प्रकार की खराबी या रुकावट का होना होता है, उसी प्रकार मनुष्य की हृदय-गति बंद हो जाने का भी प्रत्यक्ष और संक्षिप्त कारण हृदय के स्वाभाविक कार्य में वाधा उपस्थित होना ही है। अतः हमें देखना यह है कि हृदय के स्वाभाविक कार्य में किन कारणों से वाधा उपस्थित हो जाती है जिसकी वजह से उसकी गति रुक जाती है और हम मर जाते हैं।

हमारा हृदय एक मिनिट में ७२ बार सिकुड़ता और फैलता है। हर सिकुड़न पर हृदय अपने अन्दर से एक छटांक से अधिक रक्त ढकेल कर शरीर के सभी अंगों में पहुंचा देता है। इतना ही नहीं, शरीर के सारे रक्त को लगभग दो मिनिट में ही हृदय को लेना भी पड़ता है। और इसे पुनः पम्प भी कर देना पड़ता है। यह पंपिंग का कार्य जीवन पर्यन्त अनवरत जारी रहता है। हृदय का यह अत्यन्त आवश्यक कार्य सुचारु रूप से और विना किसी रुकावट के रहे। यह भी इस बात पर निर्भर करता है कि प्रथम तो हृदय स्वस्थ रहे और द्वितीय शरीर का वह रक्त, जिसको हृदय एक मिनिट में ७२ बार सिकुड़ और फैल कर अपने अन्दर ग्रहण करता और ढकेलता रहता है, विशुद्ध और हृदय के स्वाभाविक कार्य-प्रणाली के

योग्य हो। जब तक ये दोनों बातें नहीं होतीं हृदय-गति के बन्द हो जाने को कोई टाल नहीं सकता।

हृदय किन कारणों से अस्वस्थ हो जाता है, तथा शरीर का रक्त कैसे दूषित हो जाता है, यदि ये बातें समझ में आ जायें तो हृदय-गति बन्द हो जाने के कारणों का पता हमें आपसे आप चल जाय। अतः दोनों कारण नीचे दिये जाते हैं:--

प्रेसिडेण्ट आइजनहावर के हृदय विशेषज्ञ डा० डडले व्हाइट ने गरिष्ट और अप्राकृतिक भोजन को रक्त अशुद्धि का मूल कारण माना है जो हृदय सम्बन्धी सभी रोगों की जड़ है। यह बात बिलकुल सही है और संसार के लगभग सभी विचारशील चिकित्सक इससे सहमत हैं।

उपर्युक्त डाक्टर ने हृदय के अस्वस्थ होने का दूसरा कारण व्यायाम और परिश्रम के अभाव को बताया है इसके लिये दो रायें नहीं हो सकतीं।

उत्तेजक और विषैली दवाइयों के प्रयोग से रक्त अशुद्ध होता है और हृदय पर भी उनका बुरा प्रभाव पड़ता है। दवाइयाँ हृदय के स्वाभाविक कार्य में केवल बाधक ही नहीं होतीं, अपितु, वे स्वयं हृदय को इतनी हानि पहुंचाती हैं कि फिर उसका सुधारना असम्भव हो जाता है।

आवश्यकता से अधिक भोजन करने या ठूस-ठूस कर भोजन करना भी हानिकारक है। इससे पाचन में गड़बड़ी हो जाने के कारण शुद्ध रक्त बनना बन्द हो जाता है।

अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करना तथा परिश्रम करने के बाद विश्राम न करके पुनः परिश्रम करने लगना दोनों से हृदय दुर्बल होता है।

भोजनोपरांत थोड़ा-सा विश्राम कर लेना स्वास्थ्य के लिये उत्तम है। जो ऐसा नहीं करते उनका हृदय शीघ्र अस्वस्थ हो जाता है।

जो व्यक्ति सदैव थका और तनाव में रहता है उसका हृदय स्वस्थ नहीं रह सकता।

शराबियों और अफीमचियों आदि नशेबाजों का हृदय प्रायः खराब अवस्था में होता है। इनकी मौत भी अक्सर हृदय-रोग के कारण ही हुआ करती है। बहुधा वातज्वर, निमोनिया, मिर्गी, सुजाक, राजयक्ष्मा, गठिया, तथा प्लूरिसी आदि के कारण जब रक्त विषाक्त हो उठता है, तब भी हृदय अस्वस्थ हो जाता है और उसकी गति के बन्द हो जाने की सम्भावना हो जाती है।

शरीर का अत्यधिक मोटा होना हृदय-रोग का एक प्रबल कारण है। ऐसे लोगों के हृदय पर चर्बी छा जाती है और उनकी जीवन-शक्ति बहुत कमजोर पड़ जाती है।

चिकित्सा

ज्यों ही हृदय-गति बन्द हो जाने के पूर्व लक्षण प्रकट हों त्यों ही रोगी को किसी हवादार कमरे में लिटा कर उसे पूर्ण विश्राम करने देना चाहिये। ऐसी अवस्था में रोगी को उपवास भी अवश्य कराना

चाहियें। यदि रोगी बहुत दुर्बल है तो उसे पूर्ण उपवास के बदले, संतरा, अनार, नीबू या अंगूर आदि के रस पर रखा जा सकता है। उपवास के दिनों में रोज गुनगुने पानी का एनिमा देकर पेट को साफ कर देना चाहियें। उपवास की समाप्ति पर रोगी को केवल दूध--फल पर कुछ दिनों रखना चाहिये। हृदय-गति बन्द हो जाने की आशंका में घबरा कर किसी उत्तेजक औषधि का सेवन कर लेना खतरे से खाली नहीं होता। अतः इससे परहेज करना चाहिये।

रोग का आक्रमण होते ही हृदय के ऊपर छाती पर ठंडे पानी से भीगी और निचोड़ी हुई एक मोटी पट्टी एक-एक घंटे के अन्तर से १५-१५ मिनिट तक रखनी चाहियें, ठंडी पट्टी रखने के बाद उसे अच्छी तरह ऊनी कपड़े से ढक देना चाहिये। यदि उस उपचार से सुधरती नजर न आये तो थोड़ी देर छाती पर गरम सेंक देने के बाद केवल ठंडी पट्टी का प्रयोग उस वक्त तक करना चाहियें जब तक कि संकट टल न जाय। रीढ़ पर गरम और ठंडी सेंक करना भी उस रोग में लाभकारी होता है। बीच-बीच में तौलिया स्नान भी कराते रहना चाहियें।

जब उपर्युक्त कतिपय उपचार से रोग की तीव्रता नष्ट हो जाय और संकट टल जाए तो ऐसा उपाय करना चाहिये कि रोग का दौरा फिर कभी न हो। इसके लिये सर्वप्रथम उन कारणों को दूर करना चाहिये जिनसे रोग हुआ था और जो ऊपर बताये जा चुके हैं। उसके बाद संयमी जीवन का अवलम्बन लेकर और प्राकृतिक नियमों पर चलकर रोग की आशंका से सदा के लिये छुटकारा पाया जा सकता है।

अप्रैल ६६

धर्म और राजनीति

ले:—प्रो० श्याम मनोहर व्यास एम० एससी०

राजनीति राज्य की वह नीति है जिसके अनुसार प्रजा का पालन और अन्य राज्यों से व्यवहार होता है। प्रजा को धारण करने वाली नीति ही राजनीति है और राजनीति ही धर्म है। दोनों में पारस्परिक मैत्री है दोनों एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं।

धर्मशून्य राजनीति राष्ट्र के नागरिकों के जीवन का समुचित विकास नहीं कर सकती। धर्म वह एक अमूल्य तत्व है जो भाषा, संस्कृति, सभ्यता एवं जाति को एक सूत्र में बांधता है।

धर्म मिश्रित राजनीति से ही सच्ची राष्ट्रीयता उत्पन्न होती है। भारत का गौरवशाली अतीत का इतिहास उठाकर देखिये। देश के यशस्वी, न्यायप्रिय, प्रजावत्सल, शूरवीर, विद्वान् नरेशों ने धर्म और राजनीति दोनों को ग्रहण किया।

जब राजनीति स्वार्थता की कसौटी पर कसी जाती है तो उसका रूप विकृत हो जाता है और वह एक पागलपन का खेल बन जाता है। न्याय, व्यवस्था और शान्ति के रास्ते में विघ्न बाधायें उत्पन्न करने वालों और उपद्रव मचाने वालों को जीतने के उपाय कौशल और उद्योग को धर्मयुद्ध कहते हैं।

युद्ध भी राजनीति का एक विशिष्ठ अंग है। जीवन में युद्ध के अवसर आते ही रहते हैं।

धर्म की रक्षा के लिये युद्ध आवश्यक है। युद्ध धर्म का ही एक उग्र रूप है, ज्वलन्त रूप में ! युद्ध धर्म की पराकाष्ठा है।

जब युद्ध की घड़ी छाई हुई हो उस समय तो युद्ध ही श्रेष्ठ और चिन्तन गौण है। युद्ध में विजय पाने के लिये राजनीति-चातुर्यता की भी उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी सैन्य शक्ति की। राजनीति में सफलता पाने के लिये साहस, विवेक, धैर्य, तर्क एवं दूरदर्शिता की अति आवश्यकता है।

धर्म-शास्त्रों में कहा गया है कि शत्रुओं पर विजय पाने के लिये चार उपायों को काम में लाना चाहिये [१] साम [२] दाम [३] भेद [४] दण्ड

अंतिम उपाय को तभी उपयोग में लाना चाहिये जब पहले तीनों असफल सिद्ध हों।

यह स्पष्ट है कि पहले तीनों प्रबोध प्रेम अथवा स्नेह प्रधान है और अंतिम उपाय बल प्रधान।

धर्म मर्मज्ञों ने राजनीति में धर्म का समावेश किया था। धर्म के अनुसार ही राजा के कर्त्तव्य बतलाये थे।

आज हम देखते हैं कि राजनीतिज्ञ लोग धर्म का नाम सुनकर चिढ़ते हैं। वे धर्म निरपेक्षिता में ही विश्वास करते हैं। पर उसका परिणाम अच्छा दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

चारों ओर अशांति और अराजकता है। सर्वत्र, वर्गवाद, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, मँहगाई, बेकारी एवं काला बाजार का बोलबाला है। इसका कारण राजनीति के क्षेत्र में धर्म की अवहेलना है।

इस अशान्त और दुखी संसार का उद्धार धर्म ही कर सकता है। धर्म के मूल सिद्धांतों द्वारा ही शांति स्थापित हो सकती है। शस्त्र बल द्वारा स्थायी शांति स्थापित नहीं हो सकती।

शासन में सभी धर्मों का संरक्षण आवश्यक है। धर्म, सत्य, अहिंसा, बन्धुत्व, नैतिकता, मानवता एवं अक्रोध की भावना का प्रसार करता है।

जो राजनीति धर्म को लेकर नहीं चलती वह प्रजा-पालन का भाव धीरे-धीरे खो बैठती है; फलतः राजा रक्षक की जगह प्रजा का भक्षक बन बैठता है।

गीता में श्रीकृष्ण ने राजनीति में धर्म का समावेश स्वीकार किया है। वर्णव्यवस्था के अनुसार ही शासन-प्रणाली चलाने का विधान उसमें बतलाया गया है।

प्राचीन काल में हमारे आदर्श नरेश प्रजा की सुख-शांति का पूरा ध्यान रखते थे।

अशोक महान् क्यों थे ? इसलिये कि उन्होंने प्रजा के सुख दुःख का पूरा ध्यान रखा। शांति व अहिंसा के प्रचार के लिये बौद्ध धर्म को राजधर्म स्वीकार किया। उसके सिद्धान्तों का विश्व में प्रचार किया। इसी प्रकार विक्रमादित्य भोज, शालिवान्, शिवाजी आदि भी आदर्श नरेश थे क्योंकि उन्होंने हिन्दू धर्म को राजनीति का एक विशिष्ट अंग माना।

महात्मा गांधीजी ने भी ईश्वर और धर्म का आश्रय लेकर ही स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये राजनीतिक आन्दोलन चलाया। उनके जितने व्याख्यान राजनैतिक रंग-मंच में होते थे वे धर्माचरण के अनुसार होते थे। उनकी श्रीमद्भगवद्गीता, बाइबिल, और कुरान में पूरी श्रद्धा थी।

गांधीजी स्वराज्य को रामराज्य के रूप में देखना चाहते थे। जब देश स्वतंत्र हुआ और सत्ताधारी लोगों को धर्म विमुख होते देखा तो उन्होंने कहा था:—

"धर्म मुझे प्रिय है और सबसे पहली शिकायत यह है कि भारत धर्म विहीन होता जा रहा है। यहां मैं हिन्दू, मुसलमान या ईसाई धर्म का विचार नहीं कर रहा हूँ बल्कि उस धर्म का विचार कर रहा हूँ जो सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। शोक की बात है कि हम परमात्मा से विमुख होते जा रहे हैं।"

आज शिक्षित वर्ग को धर्म के नाम से इतनी अधिक चिढ़ क्यों है? इसलिये कि वे पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के इतने अधिक उपासक बन गये हैं कि धर्म के मूल तत्वों का उन्हें कुछ ज्ञान ही नहीं है।

धर्म का अर्थ संकुचित नहीं है वरन् व्यापक व विस्तृत है। मनुस्मृति में लिखा है—

यतोऽभ्युदयिभिः श्रेय ससिद्धिः स धर्मः।
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः॥
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।

शासक को धैर्य, क्षमा, सत्य आदि धर्म के महान गुणों को अवश्य अंगीकार करना चाहिये।

धर्म विहीन समाज व जाति में नित्य नये नये कलह उत्पन्न होते रहते हैं। धर्म के अभाव में सर्वत्र विघटनकारी तत्वों का प्रादुर्भाव होता है। वैमनस्य, अनाचार, व्यभिचार, दम्भ, अकर्मण्यता आदि दुर्गुण उत्पन्न होते हैं।

रावण के राज्य में नास्तिकता, अधर्म, भ्रष्टाचार, व्यभिचार का बोलबाला था इसलिये उसके राज्य का अन्त हुआ। राजनीति में यदि धर्म का समावेश हो जाय तो न बेकारी की समस्या बढ़ेगी, न महँगाई बढ़ेगी और न अशांति व अराजकता पनपेगी।

देश में बढ़ रही चरित्र हीनता को राजनीति ही अपने अधिकारों का उपयोग कर नष्ट कर सकती है।

सिनेमा, बाजारू व अश्लील साहित्य का प्रकाशन बन्द करना शासन का ही कार्य है।

यदि हमें हमारे देश के भावी नागरिकों के जीवन का सर्वतोमुखी विकास करना है तो अश्लील चित्रों का निर्माण तत्काल बन्द करना होगा।

जन जन में चरित्र बल बढ़े, राष्ट्रीयता पनपे, सब नागरिक ईमानदारी से अपना अपना काम करें, ये सब तभी हो सकते हैं जब धर्म को राजनीति में स्थान मिले।

हां, एक बात और ध्यान में रखनी होगी वह है धर्मान्धता राजनीति के पास न आनेपाये।

धर्मान्धता के कारण ही मुगल राज्य नष्ट हुआ, यूरोप में अनेक धर्म के नाम पर युद्ध हुये, लाखों निरपराध व्यक्तियों का रक्त बहा, राजनीति में जहां हम सच्चे धर्म के मूल तत्वों का समावेश करने के पक्ष में हैं वहां हम राजनीति को जातिवाद, वर्गवाद और साम्प्रदायिकता से भी बचाना चाहते हैं।

किसी एक धर्म की उन्नति के लिये अन्य धर्मों को हानि पहुँचना राजनीति का उद्देश्य नहीं होना चाहिये।

महाभारत में आदर्श राजा के लक्षण इस प्रकार वर्णित हैं:—

तस्माद् यत्नेन कर्त्तव्यं स्वराष्ट्रपरिपालनम्।
व्यवहारश्च चारश्च सततं सत्य संधता॥
अप्रमादः प्रमोदश्च व्यवसायेऽप्यचण्डता।
भरणं चैव भृत्यानां वाहनानां च पोषणम्॥
योधानां चैव सत्कारः कृते कर्मण्यमोघता।
श्रेय एव नरेन्द्राणामिह चैव परत्र च॥
(अनु. पर्व १४५)

[राजा को यत्न-पूर्वक अपने राष्ट्र की रक्षा करना चाहिये। राजोचित व्यवहारों का पालन, गुप्तचरों की नियुक्ति, सदा सत्य प्रतिज्ञ होना, भृत्य वर्ग का भरण और वाहनों का पोषण करना, योधाओं का सत्कार करना और किये हुए कार्यों में सफलता प्राप्त करना सब राजाओं का कर्त्तव्य है। ऐसा करने से इहलोक और परलोक में श्रेय की प्राप्ति होती है]।

प्राचीन काल में क्षत्रिय ही राजा होते थे। गीता में क्षत्रिय (राजा) के कर्मों का वर्णन प्रकार किया गया है :—

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

(१८-४३)

[शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध में भी न भागने का स्वभाव एवं दान और स्वामी भाव अर्थात् निःस्वार्थ भाव से सबका हित सोचकर शास्त्रानुसार शासन द्वारा प्रेम के सहित पुत्र तुल्य प्रजा को पालन करने का भाव ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।]

धर्म के पालन के बारे में महाभारत में लिखा है :—

धर्ममेवानुवर्तस्व न धर्माद् विद्यते परम् ।
धर्मे स्थिता हि राजानो जयन्ति पृथिवीमिमाम् ॥

म. भा. शां. ९१-

[हे राजन् ! तुम धर्म का पालन करो। धर्म से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं। धर्म में स्थित रहकर तो पूर्ण पृथ्वी जीती जा सकती है।']

राजनीति का अर्थनीति से भी गहरा संबन्ध है। राज्य रक्षा के लिये अर्थ-संग्रह आवश्यक है। कर द्वारा अर्थ-संग्रह किया जाता है।

पर यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्रजा कर भार से पीड़ित न हो। जो भी कर-प्राप्ति से धन मिले वह सब प्रजा के हित में व्यय होना चाहियें।

गरुड़ पुराण में लिखा है :—

"सूर्य जिस प्रकार जल खींचकर प्राणियों के उपकार के लिये उसे पुनः वर्षा के रूप में बरसा देता है उसी प्रकार शासक को चाहिये कि वह भी कर द्वारा प्राप्त राशि को प्रजा के हितार्थ व्यय कर दें।"

महामंत्री चाणक्य भी एक सफल कूटनीतिज्ञ एवं राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने "चाणक्य नीति ग्रंथ में आदर्श राजा के गुण धर्म बतलाये हैं।

राजनीति का धर्म से अटूट सम्बन्ध बतलाते हुए उन्होंने लिखा है :— "सुखस्य मूलं धर्मः।"

जो राजा धर्मनीति को ग्रहण कर शासन चलाता है प्रजा उससे अतीव प्रेम करती है और राज्य में सुख शांति बनी रहती है। यदि राज्य में धर्म की अवहेलना होगी तो दुःख और क्षोभ में अभिवृद्धि होगी। धर्म का साधारण अर्थ कर्त्तव्य है। अतएव कर्त्तव्य-पालन ही राष्ट्र का समुचित विकास करता है।

यदि हम चाहते हैं कि विश्व में शान्ति स्थापित हो, देश के नागरिक सुखी-सम्पन्न हों, उनके जीवन का चँहु मुखी विकास हो, राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार हो, सुरक्षा-संगठन दृढ़ हो तो यह आवश्यक है कि धर्म का उदार हृदय से राजनीति में समावेश हो।

पाश्चात्यों की राजनीति

लेखक:— नामवर

इतिहास की आंखों में :—

हर ज़माने में राजनीति ने जनता पर शासन किया है। जनता ने भी प्रायः राजनीति का कहना मान कर लाचारी से अपने आप पर थोड़े से समर्थ लोगों की सत्ता स्वीकार की है।

थोड़े से इन शासनधारी लोगों से हर ज़माने में जनता की शिकायत रही है और रहेगी। फिर भी राजनीति मानव समाज पर शासन करने के लिये एक आवश्यक तत्व है। किसी भी देश या राष्ट्र के लोगों में अनुशासन पैदा करने के लिये यह ज़रूरी हो जाता है कि उस देश के कुछ सजग, शिक्षित एवं समर्थ लोग आपस में मिलकर एक 'नीति' बनाएँ। वर्ना सम्पूर्ण मानव समाज अव्यवस्थित हो जायगा और फिर मनुष्यों की बस्ती और जंगली जानवरों की दुनियां में कोई फ़र्क ही नहीं पड़ेगा। अतएव इतिहास की आंखों से देखने पर हमें इस फैसले पर पहुंचना ही होगा कि राज-नीति का सामान्य अर्थ शासन करने की विशेष बुद्धि से है। राजनीति में लोक चतुराई के साथ-साथ मनो-विज्ञान का विशेष ज्ञान बड़ा ज़रूरी हो जाता है। संक्षेप में सफल राजनीति सूक्ष्म लोकानुभव पर आश्रित रहती है। इतिहास में हम इसीलिये सामान्य अकबर जैसे इन्सान को सम्राट के रूप में देखते हैं।

अकबर के पास तो एक विशाल सेना थी किन्तु महानतम राजनीतिज्ञ चाणक्य को भारतीय इतिहास द्वारा कैसे भूलाया जा सकता है? चाणक्य तो एक दरिद्र ब्राह्मण मात्र था! किन्तु उसने अपनी प्रखर लोक-व्यवहार की बुद्धि से अकेले ही नंद वंश का नाश कर दिया। राजकीय उत्तराधिकार से च्युत चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठा दिया इस तरह से सम्पूर्ण मानव इतिहास सत्ता का राजनैतिक चमत्कार है।

राजनीति की कुछ चुनी हुई विश्व-विख्यात परि-भाषाएँ :—

राजनीति के विषय पर अरिस्टोटल साहब अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ पोलीटिक्स में लिखते हैं कि:— आदमी एक राजनैतिक प्राणी है।

डॉ. अरबुथःहाट का कहना है कि:-- सभी राज-नीतिक संस्थाएँ अपने झूठों के परिणाम स्वरूप ही अन्त में मिट जाती हैं।

हेनरी जॉर्ज साहब का कहना है कि:— हम राजनीति को रक्षा पूर्वक राजनीतिज्ञों के हाथों में नहीं दे सकते।

राजनीति की कसौटी परिभाषा के रूप में—

रुथरफोर्ड बी. हेयेस के शब्दों में प्रशंसनीय है। उनका कहना है कि:—राजनीति में सत्तारूढ़ वह वर्ग सर्वश्रेष्ठ है जिसने देश की सेवा सर्वोत्तम ढंग से की।

राजनीति के चश्मे से ऐडोल्फ हिटलर साहब के विचार हैं कि—यदि आप आम जनता की सहानुभूति

चाहते हों तो आपको जनता से ज्यादा से ज्यादा अशिष्ट एवं मूर्खतापूर्ण बात कहनी चाहिये।

राजनीति के सम्बन्ध में इसी ढंग का मिलता-जुलता किन्तु स्पष्ट विचार ल्युईस होवे साहब का देखिये:- आप राजनीति को पेशे से अपनाकर कभी ईमानदार नहीं रह सकते।

विल रोजर्स साहब मुस्कुराते हुये राजनीति के बारे में कहते हैं कि:— राजनीति सेब का शोरबा है।

अरटेमस वार्ड का राजनीतिज्ञों के बिषय में बड़ा मनोरंजक विचार है, उनका है कि:— मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूं और मेरी और आदतें ठीक हैं।

वेंडेल फिलिप्स का कहना है:—राजनीति एक साधारण नाड़ी की धड़कन मात्र है और क्रांति ही इसका ज्वर है।

इतना सब होते हुए भी प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ विसमार्क साहब राजनीति को उचित विज्ञान नहीं मानते। उनका कहना है कि:—राजनीति पूर्णतः शुद्ध विज्ञान नहीं है।

अतएव उपरिलिखित राजनीतिज्ञों के अनुसार राजनीति का अर्थ है:—"राजनीति और धर्म वे वस्तुएं हैं जिसमें प्रायः कम ही सामंजस्य होता है।" —वर्क

"सभी राजनीतिक संस्थाएं अपने झूठों के परिणामस्वरूप ही अंत में मिट जाती हैं।" —जान आरबुथनॉट

"राजनीतिज्ञ भावी निर्वाचन के बिषय में सोचता है जब कि राजनीति कुशल भावी पीढ़ी के विषय में चिन्ताग्रस्त रहता है।" —जेम्स क्लार्क

"जो नैतिकता में अनुचित है वह राजनीति में कभी उचित नहीं हो सकता।" — डेनियल अ. ओ'कौनेल

"राजनीति एक साधारण नाड़ी की धड़कन है और क्रांति ही इसका ज्वर है।" —वैन्डेल फिलिप्स

इस तरह से राजनीति बुद्धि को हर समय पूर्ण सावधान होने की शिक्षा देती है।

इसके विपरीत भारतीय मनीषियों का मंतव्य भी दृष्टव्य है—

भारत के प्राचीन विद्वानों में मनु महाराज का कहना है एक आदर्श राजनीतिज्ञ के लिये परम विद्वान व क्षत्रिय होना जरूरी है जो राज्यभर की रक्षा न्याय पूर्वक करे। जैसा कि निम्नलिखित उक्ति से विदित होता है:-

"त्रीणि राजांना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।"

यजुर्वेदका कहना है कि :— "वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम"

अर्थात् परमेश्वर कृपा करके अपनी सृष्टि में हमको राज्याधिकारी बनाए, और हमारे हाथ से अपने न्याय की प्रवृत्ति करावे।

राजनीति के विषय में गांधी जी का यही विचार था। विनोबा जी भी गांधी जी की तरह स्वामी दयानन्द के अनुसार भारतीय संस्कृति को देखते हुए धर्मनीति को ही राजनीति का प्राण मानते हैं। किन्तु धर्म का अर्थ यहां संकुचित रूप से नहीं लेना चाहिये। धर्म-नीति से अर्थ है जो समस्त राष्ट्रीय जीवन को उसके सुनहले भविष्य को ध्यान में रखकर शासन करे।

एक सुनहरा ख्वाब

लेखक :— एम. आर. गुप्त

दूसरे महायुद्ध से पहले का मुझे वह जमाना याद है जब घी रुपये का एक सेर पक्का यानी १६ छटांक मिलता था, गेहूं रुपये के १६ सेर बिकते थे और दूध भी रुपये का १६ सेर तक मिलता था। मेरे परिवार में कुल ५ प्राणी थे अर्थात् मैं, मेरी स्त्री तथा तीन बच्चे। पांचों प्राणियों का एक महीने का खाने-पीने का कुल खर्चा दस रुपया होता था। दो रुपये के ३२ सेर गेहूँ हम पांचों के लिये काफी हो जाते थे। दो रुपये का ३२ छटांक घी भी सब के खाने के लिये काफी होता था। बिना घी पड़ी दाल कोई छूता भी नहीं था। घर में पूरी-पराठे शुद्ध देशी घी के बनते थे और प्राय. नित्य ही बनते थे। दो रुपये की साग-सब्जी एक महीने के लियें पर्याप्त थी। दूध का खर्च महीने में एक रुपया से अधिक न होता था। महीने भर का ईंधन (कोयला-लकड़ी) का खर्च एक रुपया से अधिक न था। शेष दो रुपयें तेल, मिर्च, मसाले के लिये पर्याप्त हो जाते थे। इन दस रुपयों में बड़े आराम से गुजर होती थी। अब महीने में ढाई सौ रुपया खर्च करके भी दाल बिना घी के खानी पड़ती है। बीस साल से कम उम्र के नौ जवान शायद मेरी बात पर विश्वास न लायें और इसे एक सुनहरा ख्वाब बतायें लेकिन यह ख्वाब नहीं एक हकीकत (सच्चाई) थी।

मेरा अकेले यह अनुभव हो ऐसी बात नहीं। यह अनुभव तो प्रत्येक परिवार का है। इस जमाने के नव-युवक इसे ख्वाब न कहें तो उसे क्या कहे। उन विचारों को तो घी-दूध दही के दर्शन ही दुर्लभ हो गये हैं।

आज हर व्यक्ति भी परेशान है। हर परिवार असंतुष्ट है। पहले एक कमाता था तो उसकी कमाई से सब के पेट भरते थे और आजकल अपनी कमाई से अपनी गुजर भी मुश्किल से होती है। सचमुच जमाना कितना बदल गया है। आज कल की बढ़ी हुई कीमतों ने लोगों के होश फना कर दिये हैं। मंहगाई है कि घटने का नाम ही नहीं लेती। सुरसा जैसा इसका आकार बढ़ता ही जाता है। इस मंहगाई में अगर मौत है तो गरीब की और कहीं वह बेकार हुआ तब तो समझिये कि वह नरक ही भुगत रहा है। पहले गरीब आदमी दो पैसे के चने खाकर और पानी पीकर सन्तुष्ट हो जाता था। अब तो दो पैसे के चने कोई बेचता भी नहीं है। एक आने के चने पहले तमाम घर चबाता था और आजकल एक आने के चने इतने मिलते हैं कि एक फंकी में उन्हें मुंह में डाल लीजिये। गुड़ चने और सत्तू गरीबों का भोजन था। अब इन सस्ती चीजों के भी उसे लाले पड़ गये हैं। गरीब बे-मौत मर रहा है।

मंहगाई के साथ अथवा उसी अनुपात में यदि आमदनी भी बढ़ी होती तो मंहगाई का रोना लोग न रोते।

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मंहगाई ने आमदनी का अनुपात तोड़ दिया और उसने अपना सुरसा रूपी मुंह फैला दिया जो सब घर की कमाई निगल जाती है। आदमी का जीना मुश्किल हो गया है क्योंकि वे सारे सामान जिनसे जिन्दगी आराम में कटती है बहुत मंहगे हो गये हैं। मंहगे भी ऐसे कि साधारण आदमी की पहुंच के बाहर हो गये हैं। जीना तो मुश्किल ही हो गया अब तो मरना तक मुश्किल हो गया है। मरणोपरान्त संस्कारों के लिये गरीब के पास पैसा कहां? इलाज के लिये मंहगी दवाइयां और इन्जेक्शन वह कैसे खरीद सकता है। अजब यह जमाने का हो गया है कि जिससे जीना भी मुश्किल है और मरना भी मुश्किल है।

स्वराज्य के पहले स्वराज्य की तस्वीर हमारी आंखों में थी। हर व्यक्ति की तस्वीर अलग-अलग रंगों की थी लेकिन सबकी तस्वीरें थी बहुत खूबसूरत। स्वराज्य के दिन गुजरते गयें और इन तस्वीरों का रंग बजाय निखरने के फीका पड़ता गया, उतरता गया। तस्वीर की वह सुन्दरता कम हो गयी इतनी कम कि अब वह बदरंग और बदसूरत तक दीखने लगी। उस तस्वीर को देखकर रोना आता है और शर्म भी आती है। स्वराज्य की हमारी कल्पना ही गलत निकली। सोचा कुछ था और हुआ कुछ। और यह धोखा एक व्यक्ति को हुआ हो ऐसी बात भी नहीं। हर व्यक्ति को धोखा हुआ है और हर व्यक्ति की तस्वीर का रंग

उतर गया है। हर व्यक्ति की तस्वीर बदरंग हो गई है। इसके लिये सबूत दरकार नहीं क्योंकि पूरा का पूरा सबूत में खड़ा है। हर व्यक्ति खुद एक सबूत है। उसकी रोज की जिन्दगी एक बहुत बड़ी सबूत है। स्वराज्य का हमारा हर अर्थ गलत निकला सिवाय इसके कि स्वराज्य हमें अवश्य मिला किन्तु वह स्वराज्य की विशेषताओं से भूषित न हो सका।

स्वराज्य बुरा नहीं। स्वराज्य तो बहुत बड़ी चीज है। इसके लिये तो बड़ी-बड़ी कुर्बानियां करनी पड़ती हैं। बड़े-बड़े त्याग और बलिदान करने पड़ते हैं। अनेक प्रकार की यातनाएं सहन करनी पड़ती हैं। लाठियां गोलियां खानी पड़ती हैं। फांसी पर भी बहुतों को लटकना पड़ता है। यदि स्वराज्य अच्छी वस्तु न होती तो लोग इतना त्याग क्यों करें? उसके लिये कष्ट क्यों उठायें? सभी परतंत्र देश स्वराज्य के लिये ऐसी ही कुर्बानी करते हैं। स्वराज्य लेने के लिये पहले अंगारों पर चलना होता है। स्वराज्य प्राप्ति के लिये हमारे देश ने भी कोई कम कुर्बानी नहीं की है। स्वराज्य यों ही तो नहीं मिल गया है। स्वराज्य की देवी ने बलिदान लिये हैं। अपना खप्पर खून से भराया है। चरखा चलाने मात्र से स्वराज्य मिलता होता तो लोग गोलियां और लाठियां क्यों खाते अथवा फांसी पर क्यों लटकते? जो ऐसा प्रचार करते हैं कि स्वराज्य बिना खून बहाये या बिना बलिदान किये मिल गया है वे गलत प्रचार करते हैं। वे लोगों को गुमराह करते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि स्वराज्य जब इतनी अच्छी चीज है तो लोग परेशान क्यों ? आज हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि स्वराज्य से लोग संतुष्ट क्यों नहीं हैं ? वे परेशान क्यों हो रहे हैं ? उनका जीवन संकटमय क्यों हो गया है ?

इस परेशानी का उत्तर यह है कि आदमी को निराशा हुई है। आशा के स्थान पर जब निराशा हाथ लगे तब परेशान होना स्वाभाविक ही है। स्वराज्य के पहले लोग सोचते थे कि स्वराज्य मिल जाने पर बड़े आराम से जिन्दगी गुजरेगी। हर व्यक्ति के पास पेट भरने के लिये पर्याप्त भोजन होगा, तन ढकने के लिये पर्याप्त वस्त्र होगा और रहने के लिये आवास होगा। यदि ऐसा किसी ने सोचा था तो उसने अनुचित क्या सोचा था? प्रत्येक व्यक्ति की मूल-भूत आवश्यकतायें भी तो ये ही होती हैं। खाना, कपड़ा और मकान तो सब को ही चाहिये। अगर यह भी न मिला तो फिर स्वराज्य का महत्व ही क्या, उसका आकर्षण ही क्या? भारत के लाखों वे लोग जिन्हें एकजून भर पेट भोजन नहीं मिलता है। जिनके पास तन ढांकने के लिये फटे कपड़े भी काफी नहीं हैं और सर्दी, गर्मी या बरसात में सर छिपाने भर के लिये जिनके पास कोई स्थान नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को जिनका जीवन फुट-पाथ के ऊपर बीत रहा हो, आप उन्हें यह कैसे समझा सकते हैं कि स्वराज्य मिल गया। जो स्वराज्य मनुष्यों की मूल-भूत

आवश्यकताओं की अर्थात् खाना-कपड़ा और मकान की व्यवस्था न कर सके वह अपना सब आकर्षण खो बैठता है। हमारा स्वराज्य आज आकर्षण हीन हो गया है। ऐसा क्यों हुआ? इसके अनेक कारण हैं और स्वराज्य की असफलता पर विचार करने के लिये पहले हमें इन कारणों पर विचार करना पड़ेगा।

समाज का एक बड़ा दल यह समझ बैठा था कि स्वराज्य मिल जाने पर हाथ-पैर हिलाने की आवश्यकता ही न रहेगी। खाना-कपड़ा-मकान सब मुफ्त में मिलेगा और बस यात्रा, रेल यात्रा यहां तक कि हवाई जहाज यात्रा तक मुफ्त में की जा सकेगी क्योंकि बस, रेल और विमान सब के सब अपने होंगे। ऐसे विचार के लोगों को जब ठेस लगी और उनकी इच्छाओं की पूर्ति न हो सकी तो उन्होंने राष्ट्रीय सरकार के सामने अनेक कठिनाइयां तथा समस्यायें खड़ी कर दीं।

दूसरे दल में वे लोग हैं जो काम तो करना चाहते हैं किन्तु उसकी उजरत अधिक चाहते हैं। यानी काम तो बरायें करें लेकिन उसकी उजरत उन्हे भरपूर मिले। काम चाहे एक रुपया का ही सारे दिन में किया हो लेकिन मजदूरी के उन्हें चार रुपये मिलने चाहियें क्योंकि अब स्वराज्य है। ऐसे हरामखोर नौकरों को न सरकार खुश रख सकतीं है और न कोई मिल मालिक ही खुश रख सकता है और न कोई दूसरी संस्था ही खुश रख सकतीं है जहां वे काम करते हों। अत

उनकी इच्छा की पूर्ति न हुई तो उन्होंने संगठित रूप से हड़तालें करना शुरू कर दिया। इस प्रकार उन्होंने देश में अशांति पैदा करदी और साथ ही सरकार के लिये अनेक कठिनाइयाँ भी पैदा कर दीं।

तीसरा दल इसे भी छोटा नहीं कहना चाहिये, ऐसे व्यक्तियों का है जिन्होंने स्वराज्य को आंधी के आम समझा और दोनों हाथों से उन्हें बटोरने में लग गये। इस दल का सिद्धान्त लूटना बटोरना और अपनी जेबें भरना है। इस दल में दूकानदार, मिलके मालिक, सरकारी और गैर सरकारी नौकर, छोटे-बड़े पदाधिकारी सभी शामिल हैं। इन लोगों ने स्वराज्य को जेबें गरम करने का साधन समझा और लगे दोनों हाथों से भरने। अपने हित चिन्तन में वे देश का हित भूल गयें। ऐसे ही लोग जब सरकार में पहुँच गयें तो वह बदनाम होगयी। सरकार को भ्रष्टाचारी सरकार की पदवी मिली। गैर सरकारी या गैर अधिकारी अगर भ्रष्टाचार करता है तो वह इतनी जल्द बदनाम नहीं होता है लेकिन सरकारी नौकर या पदाधिकारी जब भ्रष्टाचार करता है तब वह जल्द बदनाम हो जाता है क्योंकि वह जल्द दूसरे की निगाहों में चढ़ जाता है और नक्कू बन जाता है। इसके अतिरिक्त उससे कुछ विशिष्ट व्यवहार की आशाएं भी रखी जाती हैं। जनता के लिये छूट हो सकती है कि वह चाहे सो करे किन्तु सरकार से ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

एक चौथा भी दल है और इसमें सभी राजनीतिक दल शामिल हैं। ये एक दूसरे पर कीचड़ उछाते रहते हैं और इनका अधिकांश समय यही खुराफात करते व्यतीत होता है। इनसे रचनात्मक कार्य तो कुछ होता नहीं, हाँ विध्वसंक कार्य पूरी शक्ति से कर सकते हैं। इन्होंने राष्ट्रीय सरकार को बहुत अधिक बदनाम किया है। सहयोग देना हो तो दूर की बात सदैव असहयोग करने पर ही कमर कसे बैठे रहते हैं। इनका बस चले तो सरकार को कल ही उखाड़ कर फेंक दें। देश के टुकड़े २ कर डालें और उसे सैकड़ों टुकड़ों में बांट दें। किन्तु देश का यह सौभाग्य है कि ये सब दल आपस में ही लड़ते रहते हैं और कभी संगठित नहीं हो पाते हैं और इनका यह दुर्भाग्य है कि वे निजी स्वार्थों के कारण अभी तक संगठित नहीं हो पाते हैं। लेकिन इन्होंने सरकार को कभी चैन से न बैठने दिया। वे धर्म और मजहब के नाम पर तथा भाषा के नाम पर देश का बटवारा चाहते हैं। आखिर ऐसा क्यों ? इसीलिये न कि उन्हें केवल अपने धर्म-मजहब अथवा भाषा की उन्नति इष्ट है। दूसरे के धर्म, मजहब या भाषा की उन्नति का उन्हें ध्यान ही नहीं आता है। ऐसे लोग वास्तव में बड़े खतरनाक होते हैं। अपने स्वार्थ के लिये वे पूरे देश को कुर्बानी का बकरा बना सकते हैं।

पाँचवा एक दल और भी है और यह दल है पेशेवर नेताओं का। इस दल ने राजनीति को अपना

लिया है। दिन रात यह दल अपने पेशे की तरक्की में ही लगा रहता है। यह दल बड़े २ पद पाने और बड़े २ अधिकार पाने की कोशिश में रहता है। क्या इसलिये कि उसे देश की अधिक चिन्ता है? नहीं। इस दल को देश की कम और अपने पेट की अधिक चिन्ता रहती है। भाई-भतीजा वाद इसी दल की देन है। इस दल ने ही सरकार को अधिक बदनाम किया है। जिनके पास कल तक खाने को नहीं था, जिनके पास कल तक तन पर अच्छे-साबूत कपड़े भी नहीं थे और जो कल तक चप्पलें चटकाते इधर से उधर घूमा करते थे, उन्हें मोटरों में सैर करते देख हलवा-पुड़ी खाते देख, अच्छे कीमती कपड़े पहनते देखकर और बंगलों में रहते देखकर किसका जी नहीं जलेगा। वे दूध-मलाई खायें, लांडरी के धुले रोज साफ कपड़े पहनें, शानदार बंगलों में रहें, मोटरों में घूमें। इसे देश की भूखी-नंगी जनता भला क्योंकर सहन कर सकती है। परिणाम इसका यह हुआ कि देश में असंतोष बढ़ गया। जनता जिसे अपनी सरकार से सहयोग करना चाहिये उसने अपने सहयोग का हाथ खींच लिया। आज जनता की सरकार तो है परन्तु उसे जनता का सहयोग प्राप्त नहीं है। यदि कहीं सरकार को जनता का सहयोग पूरा २ मिला होता तो देश की आज दयनीय अवस्था नहीं होती कि जिसमें आज उसे हम देख रहे हैं। देश में वास्तव में स्वराज्य आ गया होता और यहां राम

राज्य स्थापित हो गया होता । मेरा तो यह विश्वास है कि देश में न अनाज की कमी है, न कपड़े की कमी है, स्थान की कमी तो है ही नहीं, हाँ कमी है तो देश प्रेम की कमी है । राष्ट्रीयता की कमी है । इस कमी के दूर होते ही सारी कमियां अपने आप दूर हो जायेंगी ।

अब प्रश्न उठता है कि सरकार में क्या सभी भ्रष्टाचारी हैं ? नहीं मैं ऐसा नहीं मानता । उसमें एक से एक त्यागी तथा देश-भक्त लोग भी हैं । यह ठीक है कि उनकी संख्या कम है और अधिक संख्या उन लोगों की है जो देश के हित चिन्तन में कम और अपने हित-चिन्तन में ही अधिक लगे रहते हैं । ये लोग स्वराज्य को आंधी के आम समझते हैं और दोनों हाथों से उन्हें बटोरने में लगे हुये हैं उन्हें अपनी जेबें भरने की अधिक चिन्ता रहती है क्योंकि यह सुनहरा अवसर उनके जीवन में बार २ तो आने से रहा ।

एक छटा दल और भी है जो जरूरतन बन गया है । यह दल ऐसे व्यक्तियों का है जो स्वार्थियों तथा अवसर वादियों से छटकर अलग बन गया है परन्तु इस दल की संख्या बहुत थोड़ी है । उनकी आवाज ऐसी है जैसे नक्कार खाने में तूती की आवाज हो । वे लाख सर पीटें इनकी कोई सुनने वाला ही नहीं । उन्हें बहुमत से मजबूर होकर वही करना पड़ता है जो उनसे कराया जाता है । उनसे कहा जाता है कि "मन तुरा हाजी बगोयम, तु मरा हाजी बगो" पानी में तुमको हाजी

हूँ और तुम मुझे हाजी कहो अर्थात तुम मेरी प्रशंसा के गीत गाओ और हम तुम्हारी प्रशंसा के गीत गायें और हम दोनों अपनी अपनी गद्दियों पर जमें रहें ! न खायेंगे और न खाने देंगे, प्रजातंत्र में यह सिद्धान्त चल नहीं सकता । "खुद भी खाओ और दूसरों को भी खाने दो, जो इस सिद्धान्त को मानकर चल रहे हैं वास्तव में सुखी हैं । जिस देश की राजनीति का अवलम्बन स्वार्थ नीति हो उसे जनता का सहयोग नहीं मिल सकता और किसी देश की सरकार को जब तक जनता का सहयोग प्रात न हो वह विशेष उन्ननि नहीं कर सकती।

अब प्रश्न यह उठता है कि देश में सुधार हो तो किस प्रकार हो । रोटी, कपड़ा और मकान की समस्याएं किस प्रकार से दूर की जाएं । स्वराज्य के बाद भी देश की अवस्था जो जर्जर हो गयी है उसे कैसे सुधारा जाय । देश का हर व्यक्ति दुःखी है, उसे असंतोष है और ऐसी अवस्था बड़ी बिस्फोटक सिद्ध होती है । इस अवस्था को कैसे बदला जाय । क्या वर्तमान सरकार के बदल जाने मात्र से यह अवस्था बदल जायेगी ? उत्तर नहीं । सारी समस्याओं का, सारी कठिनाइयों का और सारी मुशीबतों का सिर्फ एक ही हल है और सिर्फ एक हल । और यह हल है प्रत्येक भारतवासी के दृष्टिकोण में परिवर्तन का लाना, ऐसा परिवर्तन कि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ को भूल जाय और वही कार्य करे जिससे सबकी भलाई होती हो और अगर सबकी भलाई न होती हो तो अधिक से

अधिक व्यक्ति की भलाई तो जरूर ही होती है। प्रजातंत्र में हर वर्ग को खुश रखना सम्भव नहीं है। इधर-उधर थोड़ा बहुत असंतोष तो प्रजातंत्र में बना ही रहेगा। कहावत है कि जो सबको खुश रखना चाहता है वह किसी को खुश नहीं रख सकता। मैं यहां पर फिर इस बात को दुहराता हूँ कि देश में अनाज कपड़ा-मकान किसी भी चीज की कमी नहीं है। अगर कमी है तो देश प्रेम की कमी है। राष्ट्रप्रेम की कमी है। यदि राम जैसे राजा की राजनीति हो और राम की प्रजा जैसी लोगों में राज-भक्ति हो तो भारत में पुनः रामराज्य की स्थापना हो सकती है। जनता चाहे तो देश को स्वर्ग बना दे और चाहे तो जख बना दे। क्योंकि देश में अब कोई राजा नहीं है। अतः राजनीति जैसी अब कोई वस्तु भी नहीं है। अब तो प्रजातंत्र है इसलिये राजनीति वेश बदल कर अब हमारे सामने जन-नीति के रूप में उपस्थित हुई है। अतः जन-नीति के कल्याणकारी बनने से ही देश का कल्याण हो सकता है। यदि ऐसा नहीं हो सकता है तो फिर स्वराज्य का जो हमने सुनहरा स्वप्न स्वराज्य से पहले देखा था वह स्वप्न ही बना रहेगा। सुबह का भूला अगर शाम को घर आजाये तो उसे भूला नहीं कहा जाता। बहुत कुछ बिगड़ने के बाद भी अभी सुधार की काफी गुंजाइश है। आवश्यकता है कि राजनीति बदले और बदल कर वह प्रजा-नीति बने, सर्व हितकारी तथा सर्व कल्याणकारी।

नारी और राजनीति

लेखिका:— शोभादेवी कमलापुरकर

यह प्रश्न कि नारी राजनीति में भाग ले अथवा न ले ...ी बार उठाया जा चुका है कि उसने अपना महत्व ही ...दिया है। सच बात तो यह है कि समाज में सदैव से ...विचारों के लोग रहे हैं। एक विचार के वे लोग जो ...ी को राजनीति की हवा तक छू जाने के पक्ष में नहीं थे। वे ही लोग हैं जिन्होंने नारी को घर की चहार दीवार में ...कर दिया। बिना पर्दे के घर से निकलना उसके लिये ...न हो गया। दूसरे पुरुष से बात-चीत करना तो दूर ...बात वे ता इतना भी नहीं बर्दाश्त कर सकते थे कि ...ी पर-पुरुष की छाया तक उनपर पड़ सके। इसका ...णाम यह हुआ कि स्त्री-वर्ग घुट घुट कर अपना जीवन ...ताता रहा। समाज का यह पुरुष वर्ग ऐसे स्वार्थी ...क्तियों का था जो स्त्री को घर की दासी बनाकर रखना ...ता था। स्त्री का जीवन दासता का जीवन था। वह ...न भर घर में बन्द रहती या यों कहिये कि आजन्म कैद ...ती और मर कर ही इस कैद से रिहाई पाती थी। ...ष-वर्ग की इस स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण कि औरत ...ज़गी भर गुलाम बन कर रहे, उसे कभी राजनीति की ...वा न लगने दी। ऐसे लोगोंका वर्ग सदैव बहुमतमें रहा है।

समाज में एक दूसरा वर्ग भी है जो पहले भी था और ...भी है जो इस पक्ष का समर्थन करता है कि नारी और ...का दर्जा बराबर का है। नारी समान अधिकारों की

अधिकारिणी है। इसीलिये तो नारी को अर्धांगिनी कहा गया है। गृहस्थी को एक गाड़ी बताया गया है। नारी और पुरुष को इस गाड़ी के दो पहिये कहा गया है। कोई गाड़ी आज तक एक पहिए से नहीं चल सकी। परन्तु स्वार्थी पुरुष वर्ग इस गाड़ी को एक पहिए से ही खींचने की कोशिश करता रहा और उसमें वह बुरी तरह से असफल रहा क्योंकि उसने प्रकृति के प्रतिकूल आचरण किया। यह दुःख की बात है कि स्त्री-पुरुष के समानाधिकार के समर्थकों का अल्प मत रहा है। परन्तु ठोस अल्प-मत रेत की दीवारों पर खड़े बहुमत से अधिक मूल्य रखता है। अब समय बदल रहा है और समय के बदलने के साथ ही लोगों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ रहा है। यह परिवर्तन शुभ लक्षणों की ओर संकेत कर रहा है। समस्त संसार में ही आरम्भ से ही नारी वर्ग को हेयदृष्टि से देखा गया और उसे बहुत कमजोर समझा गया। सिवाय घर चलाने के काम के और किसी कार्य के लिये उपयुक्त ही न समझा गया। की संसार के अनेक देशों में आज भी यही स्थिति बनी हुई है। कहीं २ तो स्त्रियों को मत (वोट) देने तक का अधिकार नहीं है। और बहुत स्थानों पर यदि उन्हें वोट देने का अधिकार मिल भी गया तो उन्हें राजनीतिक एवं अन्य अधिकारों से वंचित रखा गया। जिन देशों को हम प्रगतिवादी बतलाते हैं जैसे योरूप तथा अमरीका आदि उन देशों में स्त्री वर्ग आज भी पिछड़ा हुआ है। श्री लंका में विश्व के इतिहास में पहली बार एक स्त्री मुख्य मंत्री बनी।

तो संसार चकित रह गया। भारत में जब श्रीमती इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री बनी तब भी संसार को आश्चर्य हुआ। देश के उस वर्ग को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ जो गृहस्थी की गाड़ी को एक पहिए से चलाने का समर्थक है और वह स्त्री वर्ग को कभी समान अधिकार देने का पक्षपाती नहीं है। परन्तु देश की महिलाओं ने राजनीति में भाग लेकर इस वर्ग के पुरुषों को अपने विचार बदलने के लिये मजबूर कर दिया है। मैं पुरुषों को यह बता देना चाहती हूँ कि महिलाओं ने अपने अधिकारों को पहचान लिया है और वे अब और अधिक अंधेरे में नहीं रह सकती हैं। महिलाएँ जागृत हो चुकी हैं वे अपनी पिछड़ी बहिनों को जागृत कर रही हैं और इसी के साथ ही सारे देश में क्या सारे विश्व में जागृति लाकर रहेंगी। अपने देश का ऐसा कौनसा विभाग है जिसमें महिलाएँ नहीं हैं। स्त्रियां घर को ही नहीं देश की भी सँभाल कर सकती हैं और आज तक जिस विभाग में भी उन्हें काम करने का अवसर दिया गया है उन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया है। मैंने तो आजतक यह बात नहीं सुनी कि अमुक विभाग अमुक स्त्री को दिया गया और वह उसे न संभाल सकी। देश की अवस्था में सुधार लाने की दृष्टि से और इसे सुखी, सम्पन्न तथा संतुष्ट बनाने की दृष्टि से पुरुष वर्ग को अपना स्वार्थ छोड़ना ही पड़ेगा और उसे यह विचार अपने दिमाग से दूर कर देना पड़ेगा कि स्त्री उसकी सम्पत्ति है और उसका जन्म बच्चे पैदा करने के लिये तथा पुरुष की सेवा करने के लिये ही हुआ है।

इस लेख के द्वारा मैं स्त्री-वर्ग से भी अनुरोध करती हूँ कि वे भी अब करवट बदलें, आंखें खोलें, अपने अधिकारों को पहचानें और संगठित होकर आगे बढ़ें। परन्तु मेरे कहने का तात्पर्य यह न समझा जाय कि स्त्रियां अपने अधिकार पाने के लिये पुरुष वर्ग से बगावत कर दें। यदि हम अपना पिछड़ा पन छोड़ देंगी और संगठित होकर आगे बढ़ेंगीं तथा साथ ही अपनी योग्यता एवं क्षमता का परिचय भी देंगीं तो हमारी प्रगति को कोई वक्त न रोक सकेगा। हमें हमारे अधिकार मिलकर रहेंगे फिर वे अधिकार चाहे सामाजिक अधिकार हों अथवा राजनीतिक अधिकार। आवश्यकता है संगठन की और आवश्यकता है जागृति लाने की। जो बहिनें सामाजिक अथवा राजनीतिक कार्यों में आगे बढ़ी हुई हैं उनकी यह जिम्मेदारी है कि अपनी पिछड़ी हुई बहिनों को भी आगे लाने का प्रयास करें। पुरुष वर्ग से असहयोग करके नहीं वरन सहयोग करके आगे बढ़ें क्योंकि विना सहयोग के संसार का कोई भी कार्य न आज तक हुआ है और न आगे उसके होने की सम्भावना है।
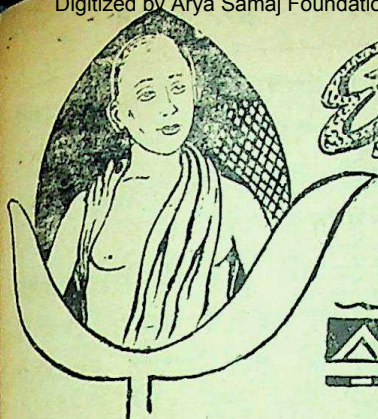
(गतांक से आगे)

दूसरे सभी के लिये तो यह संसार नर्क समान है। ईश्वरीय नियम यह एक ऐसा अग्नि है, कि जो संसार के सब स्नेहों को जलाकर भस्म कर देता है। वह मूर्ख मनको दग्ध कर देता है, परन्तु इतना करके भी वह सर्व प्रकारके आध्यात्मिक रोगोंके विषाक्त जन्तुओं का नाश करके अन्तःकरणको शुद्ध करता है।

"धर्म" यह अपनी आहार की क्रिया के समान हमारे जीवन के साथ विश्वव्यापी और आर्थिक सम्बन्ध रखता है। कोई समर्थ नास्तिक भी खुद के शरीर में पाचन-क्रिया कौनसी मूल सत्तासे चलती है, इसको यथार्थ नहीं समझ सकता। समय आने पर ईश्वरीय नियम ही मनुष्य को बन्दूकके डर के समान सामने आकर धार्मिक बनाते हैं। ईश्वरीय नियम हमको बारंबार प्रहार करके जागृत करता है। यह नियम किसी को छोड़ता नहीं

है । ईश्वरीय नियम ही सत्य है । अन्य सब असत्य है । दैवी नियम रूपी महासागर में नाम, रूप और व्यक्ति मात्र मृग जलके समान हैं । सत्यकी व्याख्या ऐसी है की "निरन्तर एकरस रहें" ।

इस नाम रूपात्मक जगतमें कोई भी सम्बन्ध, शरीर एवम् पदार्थ, संस्थायें एवम् सभायें अथवा दूसरी कोई भी वस्तु ऐसी नहीं कि जो इस त्रिशूल [क्रौस] रूपी नियम के समान अविचल टिक सके ।

तो फिर किसलियें मूढ़ और अल्प दृष्टिजीव इस आदर्श रूप नियम से भी इस बाह्यरूप [व्यक्तियों] को विशेष चाहता है ? अज्ञान से ही यह सर्व मनुष्य और दूसरे दृश्य पदार्थ उनको सत्य भासमान होते हैं। उपरोक्त दैवी नियम उनको धूम्र के समान मिथ्या लगता है । "त्रिशूल" और त्रिशूली यही मात्र सही है और अन्य सर्व पदार्थ और प्रेम के पात्र क्षणके, आभासरूप, छायारूप, कल्पित और मिथ्या हैं । ऐसा जो पाठ लोग सीखें, तो इस दुनिया के सख्त प्रहार और दुःखमय झपटमें से वे अवश्य बचें । यह सर्व दृश्य कटुता और मधुरता, सर्व स्थूल रम्यता और भयंकरता यह सब, रमण करते हुये बिहारीजीने हमको उसकी महिमा समझमें आवे इस कारण धारण किया हुआ नटराज का बह्रालंकार है ।

यदि हम मित्र और शत्रुओं के दृश्य रूपों को सत्य मानें तो आखिर वे हमको ठगने वाले और विश्वासघाती

मानते हैं और जब हम उनमें नीच स्वभाव और क्षुद्र विचारों का दोषारोपण रखकर उनसे वैर लेने को तैयार होते हैं, तब वस्तु स्थिति उससे भी अधिक खराब होती है।

जिस सत्य को मात्र हम ईश्वर को ही लागू कर देते हैं, वह सत्य उनके ऊपर रहा हुआ हमारा स्नेह है, इसी कारण उनमें आरोपण करते हैं। इसी कारण हमको उनमें कृतघ्नता का अनुभव होता है; फिर हम उनपर क्रोध करें तो ऐसा करके उनके असत्य रूपों को सत्य मानने की प्रथम की भूल में वृद्धि करते हैं और इस प्रकार अधिक दुःख भोगते हैं, परन्तु सावधान, यह त्रिशूल ही [पूर्वत्याग स्वरूप, शिव] जीवन का अन्तिम हेतु है। वही परम सत्य है। वह पाषाण से भी कठिन है। शिवलिंग की पाषाण प्रार्थना से इसका प्रतिपादन किया है। यह बिलकुल योग्य है। प्रमादी मन के ऊपर वज्र से भी विशेष सख्त प्रहार करके वह उसका भेदन करना है। इससे उसका निरन्तर स्मरण रखना अति आवश्यक है।

मुसलमान और ईसाई ईश्वरीय नियम को और ईश्वर को ईर्ष्या करने वाला और क्रूर कहते हैं, इसमें असत्य नहीं है। वह किसी भी व्यक्ति का पक्ष करे ऐसा नहीं है। मनुष्य इस जगत की किसी भी वस्तु पर आसक्ति रखेगा तो शीघ्र ही उस पर त्रिशूल रूपी प्रकृति का कोप अवश्य उतर पड़ेगा। यह सत्य मनुष्य को देर से समझमें आता है, इसका कारण मात्र यही है कि मनुष्यों

में बराबर अवलोकन करने की शक्ति होती नहीं है सामान्य रीति से मनुष्य अपने खुदके बारे में स्वयं का दोष देखने को पसन्द नहीं करते और विकार और उनमें से उत्पन्न हुये परिणाम को निष्पक्षभाव द्रष्टा बनकर देखना जानते नहीं। जब भी हम किसी बाह्य पदार्थ पर भरोसा रखते हैं अथवा मिथ्या पदार्थ और व्यक्तियों को एक सत्य वस्तु के समान हमारे अंतःकरण में स्थान देते हैं। जब भी हम हमारे हृदय मन्दिर में ईश्वर के बदले इन असत्य और जड़ मूर्तियों को स्थान देते हैं; तब अवश्य हम उल्टे रास्ते से जा रहे हैं अध्यारोप और अपवाद की न्याय पद्धति तो भौतिक मिथ्यात्व को किसी भी कारण बिना सिद्ध करती है

कितनी बार हम महापुरुषों के वाक्यों में श्रद्धा रखते हैं। और उनके उपदेशों में ईश्वर से भी विशेष विश्वास रखने से इनको उनके उपदेश जितनी भी महत्ता नहीं देते। हमारी संतति के स्थूल शरीर पर "ईश्वरीय नियम को भुला देवें" ऐसा मोह करके हम कितनी बार क्या हमारी संतति का विनाश नहीं करते? अंतःकरण की सत्य श्रद्धा जो की मात्र ईश्वर के लिये ही योग्य हो सके ऐसी श्रद्धा और आधार, अपने मित्रों पर रख कर हम कितनी बार इन मित्रों को बेवफा बना देते हैं। विद्यमान गुरुओं पर श्रद्धा रखवाकर, वैसे ही हमारी श्रद्धा उनमें है, ऐसा बताकर हम अनेक बार उनका आध्यात्मिक उच्चपद में से अधःपतन करते हैं।

कितनी वार मनुष्यों की खुदकी स्त्री के ऊपर की आसक्ति कुटुम्ब क्लेश और इससे भी अधिक खराब प्रसंगों के कारण नहीं बनती ? दुनिया के किसी भी पदार्थ को तुम ईश्वर से अधिक मानो । जिससे यह दैवी प्रेम [ईश्वर-भक्ति] अपने तीक्ष्ण कटाक्ष से तुमको आरपार छेद डालेगा ।

अयोग्य प्रेम की वात को छोड़कर हम गोपियों का ही दृष्टांत लेवें । यह गोपियां जो कि ईश्वर के अवतार रूप श्रीकृष्ण के मोहक स्वरूप में आसक्त हो गई थीं। तथापि उनको भी अपनी भूल के कारण रुधिर के दुःखद आंसू गिराने पड़े थे । पवित्र प्रेमकी मूर्ति स्वरूप सीताजीने ईश्वरीय अवतार रामचन्द्रजी के वाह्य स्वरूप को सत्य माना, इस गलती के कारण इन सीताजी को भी अपने स्वामी [ईर्ष्यालु, अमूर्त भगवान राम अर्थात् सत्यराम, उनके पति, सबके प्रभु] द्वारा कष्ट सहन करके विकट अरण्य में वनवास भोगना पड़ा ।

ब्रह्म तं परदाद्योऽन्यत्रात्मनोब्रह्मवेद ।
क्षत्रं तं परदाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद ।
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद ।
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद ।
भूतानित्वं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानिवेद ।
सर्वं तं परदाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं ।
क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानिदं, सर्वं यदयमात्मा ।

[वृहदारण्यक उपनिषद]

भावार्थ— जो अपने आत्मा के शिवाय अन्यत्र ब्राह्मण है, ऐसा मानता है उसका ब्राह्मणों ने त्याग करना चाहियें है। अपने आत्मा के शिवाय अन्यत्र क्षत्रिय है ऐसा मानने वाले का क्षत्रियों ने त्याग करना चाहिये अपने आत्मा के शिवाय अन्य लोग ऐसा मानते हैं उसका लोगों ने त्याग करना चाहिये।

अपने आत्मा के शिवाय अन्यत्र देव है, ऐसा जो मानते हैं, उनको देवों ने त्याग करना चाहिये। अपने आत्मा के शिवाय अन्यत्र पदार्थ है ऐसा मानते हैं उनका पदार्थों ने त्याग करना चाहिये। अपने आत्मा के शिवाय अन्यत्र सर्व है ऐसा मानते हैं, उनका सर्व ने त्याग करना चाहियें। यह आत्मा ही ब्राह्मण है, यह आत्मा ही क्षत्रिय है, यह आत्मा ही लोग है, यह आत्मा ही यह देव है, यह आत्मा ही यह पदार्थ है, और यह आत्मा ही यह सब है।

यह दृश्य पदार्थ कि जो हमें आकर्षित करते हैं कृष्ण के निर्दोष बाह्य स्वरूप जैसे हैं। मनरूपी कलियुग राक्षस इनके बाह्य पदार्थों को अपने माया रूपी उदर में एकदम निगल जाता है, परंतु वह पदार्थ पेट में जाने के बाद राक्षस के पेट को चीर डालते हैं, तब लोग पुकार करते हैं कि—"अरे! हमारा कलेजा चीरा जाता है हम मरते हैं। हमारा सत्यानाश हुआ।" परंतु तुम स्वतः ही नाम रूप से उस लिये ठगे जाते हो! केवल ईश्वर मात्र सत्य के ऊपर ही प्रीति करो। केवल ईश्वर

ही निष्ठा रक्खो । इसको रोम २ में प्रवेश कराओ, ईश्वर को अपना बनाओ उसके साथ एकता का अनुभव करो, ईश्वर ही बनो और ईश्वर के समान ही आचरण करो । यही सच्चा जीवन है । जब तक तुमने इन दृश्य पदार्थों के ममत्त्व का त्याग नहीं किया, तब तक ही तुमको जगत के इन पदार्थों में परम विश्वास और प्रेम द्रष्टिगोचर होगा । प्रियजनो, ईश्वर एक ही सत्य है, इसके शिवाय सब मिथ्या है ।

"या इल्लाह इल लिल्लाह" हजरत मुहम्मद के इस कथन के भावार्थ का कितनी समय झूठा अर्थ करने में आया है और अनेक बार इसका अनुसरण गलत हुआ है, परंतु इसमें जिनको सत्य दृष्टिगोचर होता है, उन्होंने अवश्य इस सत्य विचार को पूज्यभाव से अपना मस्तक झुकाना चाहियें । वस्तुतः ईशु ईसाई उसी सबका उपदेश करते हैं, भगवान बुद्ध भी उसीका प्रबोधन करते हैं। और वास्तविक रीति से देखें तो अपने सब ऋषि मुनि भी प्रथक प्रथक रीति से इसी सत्य का उपदेश देते हैं परंतु लोगोंने इस उपदेश को अपने अनुभव में लाकर यदि उसका समर्थन नहीं किया होता, और प्रत्येक युग के, ज्ञान के जिज्ञासुओं ने और निष्कपट भक्तों ने इसका अनुभव करके गवाही नहीं दी होती तो इस उपदेश की प्रणालिका उन उपदेशकों के अस्तित्व के पश्चात् अस्तित्व में न होती ।

त्याग का नियम यह सम्पूर्ण सत्य है । यह ... मानसिक कल्पना नहीं है । पैगम्बर, अवतार और आचार्यों की केवल काल्पनिक भ्रमणाओं से इन प्रजाओं की ... मोहित न हो जातीं ? यह सब विचारे पाखंडियों ... कल्पनायें ही होती तो सदियों तक नहीं टिक सकती थीं।

लोग अपने दुःख का सत्य कारण नहीं जानते कि ... दुःख मात्र इस सत्य के नियम का उल्लंघन करने से ही ... गिरते हैं। लोग मात्र बाह्य चिन्ताओं के ऊपर ही हम... करना शुरू करते हैं । जिस प्रकार हम इन्द्रजाल ... स्वप्नों को भुला देते हैं उसी प्रकार हम लोगों ने भला-बुरा आचरण और बातों को भी अपने दिलमें से निकाल... चाहियें । स्वप्न अच्छा या बुरा कैसा भी हो; परन्तु हम ... उसका समाधान करने का अथवा उसके साथ कलह करने का प्रयत्न करते नहीं हैं। इस बाबत हमको कुछ भी करने का हो तो मात्र हमारा जठर ही सुधारना होता है। ... प्रकार भले-बुरे मनुष्यों के संसर्ग में हम आते हैं, उनके सम्बन्ध के विचार हमें अपने दिलमें से बिल्कुल निकाल देने चाहियें और हमारी आध्यात्मिक स्थिति सुधारने की तरफ पूरा लक्ष देना चाहिये । ये भासमान होते दुःख और प्रारब्ध को तुम्हारे और ईश्वर के बीच में मत आने दो। इतने दोष और अपमान हैं ही नहीं कि जिसके लिये तुमको क्षमा करने की मुझे जरूरत पड़े।

ईश्वर से अधिक किसी भी वस्तु को नहीं गिनना चाहिये, कारण की किसी भी वस्तु की तुलना ईश्वर के

बराबर नहीं की जा सकती। यदि हम स्वतः की स्तुति, निन्दा और व्याधि के अधिन मानते हैं, तो यह तीनों बराबर की रीति से हमको विनाश करनेवाले हैं। तुम ईश्वर का साक्षात्कार करो और ईश्वर में आनन्द के गीत गाओ। जिस प्रकार राम शारीरिक दुःखों को ईश्वर के दरबार की ओर से उत्पन्न हुये द्वारपाल मानते हैं, उसी प्रकार स्तुति और निन्दा को तुम मानो।

यह द्वारपाल ईश्वर के परम राज्य की ओर से दी हुई सर्व सता को कहते हैं, कि "ममत्व रूपी इस घर में से एकदम तुम बाहर चले जाओ।" जब मैं इस राजसिंहासन पर बैठता हूँ, तब वे मेरी आज्ञा के अधीन होते हैं और जब मैं देहाध्यास में प्रवेश करता हूँ, तब वे मेरे आधीन न होके मुझे हैरान करते हैं। जिन राज्यों के विधान इस त्रिशूल के ईश्वर नियमानुसार बनाने में नहीं आये, उनका ही विनाश होता है। जो मनुष्य बाह्य पदार्थों पर अपना हक्क प्रमाणित करने में ही और उन सबका स्वत: को मालिक मानते हैं और उसी में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं और ऐसा मानते हैं कि यह सब ईश्वर के अनुग्रह से ही होता है वे ईश्वर के सत्य नियम के विरोधी हैं। इस सत्य नियम के आधार पर हमको मात्र जो हक्क है, वह ईश्वर सत्य है और उसके सिवाय सब मिथ्या है, यही है। दूसरे इस सिद्धान्त को मान्य न करे तो भी सन्यासीने तो किसी भी प्रकार उस नियम को अपने जीवन में उतारना चाहिये।

ईश्वरीय नियम यह सर्वव्यापी है, यह सबका अंतर्यामी है और इसी अर्थ में रामको समझना है; तो भी उसने अपने

स्वार्थी भाव का तो नाश कर देना चाहिये। वह क्रूर है, परन्तु उसकी क्रूरता यह प्रेमका सत्य है, कारण कि बाह्य स्वरूप के नाश के अन्दर ही सत्य स्वरूप और अनन्त जीवन का पुनर्जीवन रहा हुआ है। मिथ्या अहंभाव का सेवन करता है और सबका अधिराज होना चाहता है, उसको जैसे गीदड़ जानवर को फाड़ खाते हैं, वैसेही ग्रंथ के शिखर पर उसका नाश होता है। परिच्छिन्न जीवात्मा के लिये वेदान्त की स्वतन्त्रता (मुक्ति) यह कुछ ईश्वरीय नियम में से छूटने जैसा नहीं है। यह तो ईश्वर को उसके उल्टे स्वरूप में याने (गॉड के बदले डॉग) श्वान में परिवर्तन करने जैसा है। ऐसी गलतियों से हरेक समय लाखों जीवों का नाश होता है। हजारों लोग 'यह दुनिया दुःखरूप है।' ऐसे विचारों में दृढ़ होते जा रहे हैं, और ईश्वरीय नियम के मूर्खतापूर्ण विपरीतपन को सेवन करके लाखों मनुष्य हर घड़ी में नाश होते हैं। स्वतः ईश्वरीय नियमरूप बनने से ईश्वरीय नियम से मुक्त हो सकते हैं और ईश्वरीय नियमरूप बनना यह शिवोऽहम् का साक्षात्कार करना यही है। जो लोग भ्रांति से इन्द्रियों के सुख को सत्य मानते हैं वे धरातल के ऊपर इमारत बांधकर डूब मरते हैं। ऐसे लोग शब्दार्थ में ही खेलनेवाले और राम के नाम रूपात्मक वस्तु में ही सुख बुद्धि करनेवाले होते हैं। ईश्वर (ब्रह्म) यह सत्य है, सर्व जगत मिथ्या है और ईश्वरीय नियम यह विद्यमान हजूर है, ऐसी जिनके हृदय में वाच्यार्थ की प्रतीति है उनकी इमारत मजबूत पहाड़ी पर है।

इस शरीर को भले ही युक्तिबाज, स्वार्थी, दंभी, अहंकारी वगैरे कहते हैं, और फिर लोग जिसका अपमान करना, लातें मारना और मार डालना कहते हैं, ऐसा भले ही करने में आवे परन्तु (सचे के आत्मारूप) मुझे क्या है ?

यह कुछ केवल धमकी नहीं है, परन्तु यह भयंकर सत्य है। जितना हमको मनुष्य की इच्छा के लिये मान होता है निदान उतना तो हमको सत्य (ईश्वर और ईश्वरीय नियम) के लिये मान होना चाहिये। ईश्वरीय नियम की निष्कपट भक्ति और श्रद्धाशील उपासना करते शायद अन्य मनुष्यों के हृदय शायद भग्न हो जायं तो उसकी जिम्मेदारी हमपर नहीं है। हमारी जिम्मेदारी तो मात्र ईश्वरीय नियम का भंग न हो उसके लिये है। यही हमारी सबसे विशेष और गंभीर जिम्मेदारी है। जिसको हम हमारे प्रिय और निकट के सम्बन्धी कहते हैं। उनके ईश्वरीय नियम विरुद्ध तरंगों के आधीन होकर हम उनके लिये और अपने लिये आफतको आमंत्रण देने के समान है। ईश्वरके शिवाय इस विश्वमें कोई भी हमारे निकट नहीं है। ईश्वर (सत्य और ईश्वरीय नियम) के सिवाय कोई भी हमको प्रिय न होना चाहिये।

वय ँ सोमव्रते तवमनस्तनूषु बिभ्रतः (यजुर्वेद)

भावार्थः— हे सोम ! (हे ईश्वर ! हे नियम) केवल तेरे लिये ही हम इस शरीर में मनको धारण किये हुए हैं।

वेद काल में अमुक प्रसंगों में कुमारिकायें अग्नि के आसपास इकट्ठी होती थीं और नीचे का मंत्र गाती हुई उस प्रज्वलित अग्नि के आसपास प्रदक्षिणा करती थीं।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मा मुतः॥

भावार्थः— सुगन्धमय और पति को जाननेवाले त्र्यम्बक (सर्वद्रष्टा) का हम यजन करती हैं, छिलकों में से जैसे खरबूजा पृथक होता है इसी प्रकार हम बंधन (पितृगृह) से मुक्त होवें, परतु पति के गृह से कभी भी नहीं। प्राचीनकाल के आर्य कुमारिकाओं की यह प्रार्थना राम के हृदय की गहराई में से स्फुरण हो रही है और उसके साथ अश्रुओं की धारा बह रही है।

हे ईश्वर! हे नियम! हे सत्य! इस हृदय और मस्तक में आपके शिवाय दूसरा किसी का सम्बन्ध हो जावे तो वह यथाशीघ्र चूर्ण हो जायें। आपके शिवाय यह रक्त वाहनियों और नसों में दूसरा कोई विचार वहन हो तो यह रुधिर यथा शीघ्र जम जावे।

आहम जानिगर्भधमा त्वमजासिगर्भधम।

भावार्थः—जिस प्रकार स्त्री पति के सम्बन्ध में आकर प्राप्त करती है, उसी प्रकार मैं आपके सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करता हूं। मैं आपके अति समीप आऊँगा, हे आपके शरीर के पवित्र रस का पान करूँगा, हे नियम हे स्वतंत्रता! मैं आपको ही गर्भ में धारण करूँगा।

रामने क्या त्रिशूल के साथ विवाह नहीं किया! सत्य के साथ और नियम के साथ क्या उन्होंने विवाह नहीं किया? वैश्या के समान दूसरों में आसक्ति और दूसरों के साथ सम्बन्ध उसका होगा ऐसा क्या तुम

मानते हो ? 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' जो कुछ तुम दोगे, तो हे गोपाल मुझे दो, उसके शिवाय दूसरा कुछ भी नहीं ।

यह कुछ अंध विश्वास नहीं है । वैसे ही यह कुछ किसीको हानि पहुंचाने के लिये बिछाया हुआ स्वार्थी जाल नहीं है । रामने क्या अपराध किया है कि आप उसे संसारिक सम्बन्धों की संकुचित गोलाई में घसीट जाओगे ? मेहरबानी करके उसको जाने दो । आपके हितके खातिर उसे जाने दो । उसे अकेला ही रहने दो । उसी में ही आपके देश का और मनुष्य जाति का कल्याण छिपा हुआ है । आप ऐसा विचारते हो कि आप उसके शरीर की बराबर देखरेख नहीं रक्खो तो वह अकेला ही मर जायेगा ? नहीं, ऐसा नहीं होगा । ईश्वर [ब्रह्म] सत्य है और ईश्वर में ही जीवन व्यतीत करने वाले को आफत नहीं दीखती, ईश्वरने निश्चित किये हुये कार्य पूर्ण होने के पहले यह शरीर कभी भी गिरने का नहीं है ।

किसी भी मनुष्य की पवित्र प्रतिज्ञामें बीचमें सिर मारना यह अच्छा नहीं कहलाता । वह मनुष्य अपनी और अपने विचार के बीचमें किसी को नहीं आने देगा । मृत्यु को भी नहीं । ईश्वर के अस्तित्व बिना के इतिहास के पठन में से प्राप्त किये हुयें विचार अनुसार किसीने अपना जीवन बांधने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये । इस मूर्तिमान राम के प्रति यदि तुम्हें भक्ति और प्रेम है. तो उसे दूर रक्खो, कारण की सत्य स्वरूप राम कि जो सबका आत्मा है उसके लिये यह अपमान कारक है । नाम रूपात्मक स्वप्न में से तुम जाग्रत हो जाओ । जिस प्रकार रामने ईश्वरीय नियम के जीवनमे अपने अजीर्ण रोग का जड़ मूल से नाश कर दिया है, इसी प्रकार तुम अपने जीवन की भ्रांति और देहाध्यास को जड़ मूल से नाश कर डालो ।

—क्रमशः

महर्षि दयानन्द की राजनीति

लेखक— विद्यावारिधि ऋषिमित्र शास्त्री, एम. ए.

वर्त्तमान स्वतंत्र भारत का राज्य-तंत्र सर्वथा अभारतीय है। उसमें न्यायपालिका तथा कुछ शासन के पदाधिकारियों के क्षेत्रों को छोड़कर यदि देखा जाय तो कुछ भी भारतीय नहीं है। भारतीय साहित्य में प्रजातंत्र का जितने विस्तार से वर्णन है; उतनी मात्रा में अन्य विदेशी सहित्यों में किसी में भी न मिलेगा। मनु आदि के धर्मसूत्र एवं स्मृति ग्रंथ, जिनकी संख्या १०० से कम नहीं है; कम से कम १४ स्मृतियों में विस्तार से राजधर्म वर्णित है। इसके अतिरिक्त श्रौत सुत्रों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी राजधर्म का यथास्थान पर्याप्त उल्लेख है। इसका कारण यह हैं कि भारतीय संस्कृति के मूल ज्ञान ग्रंथ वेद हैं; उनमें भी भरपूर परिमाण में राजतंत्र एवं राजनीति का वर्णन किया गया है। यह दुःख की बात है कि हमारे स्वतंत्र भारत के विधान निर्माताओं में से पूर्णतया इस साहित्य-समूह का एक भी जानकार नहीं था। जो कुछ जानते थे; उन्होंने इंग्लिस आदि में उस साहित्य का अविवेक पूर्ण अनुवाद पढ़ा था। इसलिये भारतीय शासन तन्त्र को यदि कोई विदेशी सांस्कृतिक दृष्टि से देखे तो वह कह सकता है कि शासन तंत्र की दृष्टि से प्राचीन आर्य असभ्य थे।

महर्षि दयानन्द की भारतीय दृष्टि।

किन्तु इस युग के भारतीय ज्ञान प्रकाश के स्रोत महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रायः सभी ग्रन्थों में

भारतीय राजनीति एवं राजनीतिक दृष्टि कोण तथा शासन-तंत्र का उल्लेख किया है। विशेषतया उनके वेद भाष्य, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा उनके प्रशस्त ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में तो विस्तार के साथ इस विषय का वर्णन एवं उल्लेख मिलता है। उनके इन दो ग्रंथों में तो 'राजधर्म' प्रकरण ही हैं। यहाँ संक्षेप से महर्षि की इस विचार धारा के सार का उल्लेख किया जायगा। जिसमें महर्षि ने प्रथम वेदों के आधार पर आदर्श भारतीय शासन तंत्र का उल्लेख किया है; कि उसकी न्याय पालिका व कार्य पालिका एवं विधान सभा का निर्माण कैसे किया जाय ! उनके अधिकारी व सदस्य कैन योग्यताओं व गुणों वाले होने चाहियें, और उनकी कितनी संख्या होनी चाहिये, आदि का स्पष्ट उल्लेख है।

लोकतंत्रात्मक राजतंत्र

यद्यपि भारतीय साहित्य एवं इतिहास में राजतंत्र निरंकुशतंत्र, गणतन्त्र आदि के विवरण मिलते हैं; किन्तु ऊपर जिस भारतीय साहित्य का उल्लेख किया गया है, उसमें तो राजतंत्र का ही स्वीकार स्पष्ट रूप से किया गया है, किन्तु वह राजतंत्र लोकतंत्र से निगडित ही रहता था। ऋग्वेद ३-३८-६ के अनुसार विद्यार्यसभा, राजार्य सभा, धर्मार्य सभा नामक तीन समितियां होनी चाहियें, वर्त्तमान कार्य पालिका, न्याय पालिका एवं व्यवस्थापिका नामक उक्त तीनों से मिलते-जुलते हैं, किन्तु इनके दृष्टि कोणों एवं कार्यों में बहुत अन्तर है।

प्राचीन उक्त तीनों सभाओं के अधिकारियों में नाना
केस की तरह अपने-अपने पद की प्रतिष्ठा के लि
आपाधापी नहीं होती थी ।

प्राचीन भारतीय शासन तंत्र में राजनीतिक दलों का
कोई महत्व नहीं था । क्यों कि जब सब दलों का
उद्देश्य प्रजा को सुखी रखना ही है तो उसमें मतभे
किस बात का हो सकता है ? दलबन्दी के कारण
शासन एवं व्यवस्था के कार्य के लिये योग्य व्यक्तियों की
कमी हमेशा बनी रहती है, क्योंकि प्रत्येक दल में भारत
जैसे विस्तीर्ण देश के व्यवस्थार्थ उतने व्यक्ति हो
नहीं सकते हैं । फलतः अपने दल का होने के कारण
अयोग्य व्यक्तियों को भी सभ्य तथा अधिकारी बना
जाता है । महर्षि मनु के अनुसार ये अयोग्य व्यक्ति
देश तथा संस्कृति एवं जनता के लिये बड़े घातक सिद्ध
होते हैं । सच पूछिये तो हमारी वर्त्तमान अनेक कठि-
नाइयों के लिये ऐसे व्यक्ति विशेष रूप से जिम्मेदार हैं ।
प्रान्त-प्रान्त में आन्तरिक कलह के कारण भी ये ही लो
हैं । यदि दलीय सरकार का रूप न होता तो इ
अयोग्यों का कुकुर भौं-भौं खड़ा ही न होता ।

सीमाओं की रक्षा ।

कौटिल्य ने प्रशस्त अर्थशास्त्र में सीमा पर वन होने
चाहियें, और उनमें यातायात की स्थिति के अनुसार
या शक्यता के अनुसार सेना व सेना की चौकी रखनी
चाहिये-लिखा है । पूर्व-सूचना विना किसी भी विदेशी

का प्रवेश अक्षम्य माना जाना चाहिये। राजा स्वयं इन सीमाओं पर स्थित सैनिकों व उनके कार्यों का निरीक्षण करे। इस सीमा की रक्षा के लिये जो दल नियुक्त किया जाय उसकी भी देख भाल की जानी चाहिये कि कहीं वह किसी विदेशी राजा से कोई सांठगांठ तो नहीं कर रहा है? एतदर्थ सीमारिक्त वनों के बाद [अपने प्रदेश में] दूसरी चौकियां रखने का उल्लेख मिलता है। उसके लिये बड़ी शस्त्र-सज्ज सेना रखने का विधान मनु आदि ने किया है। क्योंकि विदेशी राजा आकर राजा ही नहीं प्रजा का भी नाश कर देगा।

तीन शक्तियाँ

राज्य शासन के लिये कुशल सलाहकार [मंत्री] और संकट या अकाल पड़ने पर भी न समाप्त होने वाला कोठा तथा ईमानदार एवं सभी प्रकार के शस्त्रों से सज्ज सेना ही राज्य या राजा के रक्षक एवं किसी राज्य के सुख के आधार होते हैं। इन मंत्रियों का महत्व राजा की इच्छा या मर्जी के आधीन नहीं होता था। राजा दशरथ को महर्षि बशिष्ठ के कहने पर, पहले इन्कार कर देने पर भी अपने पुत्रों को महर्षि विश्वामित्र को देना पड़ा। राजा के लिये आवश्यक था-इन तीनों शक्तियों से अपने राष्ट्र व शासन की सुचारुता के लिये सदा प्रबन्ध करे। वह किसी बात के लिये 'अपनी इच्छा' जैसी चीज का व्यवहार नहीं कर सकता।

कर

पुग ने मनु आदि स्मृतिकारों के अनुसार, गाय का बछड़ा, भौंरा व जोंक जिस प्रकार अपने इष्ट स्थानों से क्रमशः दूध, मधु व खाद्य को ग्रहण करते हैं, किन्तु इनमें से किसी को न तो दुःखी करते हैं, न कष्ट देते हैं। राजा के कर लेने का प्रकार भी ऐसा ही होना चाहियें। राजा करके स्वरूप को धन में न लेकर प्राप्त वस्तु के रूप में ही लिया करे। ऐसा स्पष्ट निर्देश स्मृतिकारों का है। उसका अभिप्राय कर दाताओं को हैरानी से बचाने का होता था। प्राचीन भारतीय शासन विदेश के साथ भी व्यापार करता हो, ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता। देश के भीतर भी वह व्यापार नहीं करता था। किन्तु सभी पण्य [सौदा] वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण राजा की इच्छा के अनुसार होता था। किसी वस्तु का मूल्य बढ़ाने के लियें व्यापारी की इच्छा कारण नहीं हो सकती थी। कृषि का कर अन्न के रूप में ही लियें जाने का उल्लेख है। शासन अपने अधिकारियों के वेतन का एक सीमित अंश वस्तुओं में -देता था। साथ ही किसी वस्तु का-जैसे अन्नादि का अभाव अधिक हुआ तो राजा की तरफ से प्रजा को एवं व्यापारियों को भी क्रमशः विना मूल्य और सस्ते मूल्य में देने का उल्लेख पुराणों व संस्कृत साहित्य में मिलता है।

विदेशियों से सम्बन्ध

महर्षि ने अनेक स्थानों पर 'चक्रवर्ती राज्य' का उल्लेख किया है, उसका अर्थ सम्पूर्ण भूमण्डल पर राज्य करना होता है। यह चक्रवर्ती राज्य केवल कर की दृष्टि से तथा व्यापारिक एवं दौत्य संबंध की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते थे। चक्रवर्ती राजा किसी राजा या शासक के कार्य में तबतक कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करता था, जबतक उसके अधिकारियों व नागरिकों या व्यापारियों आदि को दुख नहीं दिया जाता था। उदाहरण के रूप में रावण का वध करके उसके भाई विभीषण को तथा महाभारत में जरासंध का वध करके उसके पुत्र सहदेव को राजा बनाने का हमें उल्लेख मिलता है। हां, कभी २ चक्रवर्ती राजा इन अधीराज्य राजाओं को कभी कार्यवश बुलाता था तो उन्हें आना पड़ता था, और चक्रवर्ती राजा के इष्टकार्यों में सहयोग देना पड़ता था। संस्कृत साहित्य में इन राजाओं के परिवार के व्यक्तियों का चक्रवर्तियों के दरबारमें उपस्थित रहने का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है। अर्थात् समय २ पर बहुतसी बातोंमें उनकी बहुमूल्य सलाह लेने का प्राचीन शास्त्रकारों ने उल्लेख किया है। यहीं यह भी समझ लेना चाहिये कि चक्रवर्ती या बड़े बड़े राजाओं के पारिवारिकों की शिक्षा के साथ इन अनेक राजाओं के पारिवारिक भी आकर शिक्षण लेते थे। इस प्रकार वर्त्तमान विदेशी-सम्बन्धों से अनेक रूप में सर्वथा भिन्न प्राचीन भारत का विदेशों से संबंध रहने का उल्लेख महर्षियों ने किया है।

न्यायपालिका

वर्तमान भारतीय विधान में यदि कुछ थोड़ा भा भारतीय कहा जा सकता है, तो वह दण्डविधान एवं व्यव (झगड़ों का) विभाग ही है, किन्तु आज के न्यायाधि इस भारतीय साहित्य एवं भाषा तथा रूढ़ि से प्रायः अपरि रहते हैं, साथ ही वकालत में धूर्त्तता-पूर्ण पक्ष-पोषण के में ही निर्णय भी जाता है। फलतः परिणाम में यह अभारतीय ही हो जाता है। हां, हमारी संस्कृतिसे सम्बद्ध कु रूढ़ियां हैं, इनके कारण कभी २ भारतीयता का विचार भी कि जाता है, ऐसा प्रायः ऊपर की अदालतों में होता है। इ अतिरिक्त कुछ न्यायाधिकारी कभी २ इमानदारी पर नि रहकर सरकार के भी विरुद्ध निर्णय दे देते हैं, यही थो भारतीय परम्परा से इस क्षेत्र का मिलता हुआ रूप कहा सकता है। भारतीय शासन में न्यायालय का एक निर्णय होने पर वादियों को ऊपर जाने की नौबत ही प्रा नहीं आती थी। रिश्वत लेकर किसी पक्ष में फैसला देने तो भारतीय इतिहास में कहीं भी एक भी घटना न मिलेगी। पहले के न्याय में अधिकारी वादी से जितना अ होता था, व्यवहार के स्वरूप एवं कारण को समझने प्रयत्न करता था। अच्छे वकील के अभाव में सत्यता क छिपी नहीं रह सकती थी। इसीलिये न्यायाधिकरण बड़ा आदर था। यहां के इस न्याय की प्रशंसा सभी विदे यात्रियों एवं राजदूतों ने की थी।

अन्य विभाग एवं सैन्य

शासक अपना आस्थान (दरबार) उसमें बैठने का क्रम, उसके नियम, उसमें राजपरिवार की सीमा, मन्त्रियों के अधिकार व कर्त्तव्य तथा सैन्याधिकारियों का उपयोग किस प्रकार करे, ये विषय बहुत विस्तृत हैं। धर्मशास्त्रों में इनका स्पष्ट वर्णन है इसी प्रकार सेना की व्यवस्था, परेड, युद्ध के समय व्यूहन, एवं युद्ध की यात्रा में किस २ व्यक्ति को कहां रखा जाय ? एवं युद्ध के प्रकार व परिस्थितियों में व्यूहन में एकाएक परिवर्तन, संधि, संश्रय, दूसरे देशों व राजाओं से कूट व्यवहार करके उनका नाश आदि बहुत विस्तृत विवरण है। विशेष रूप से सेना की व्यवस्था व उसके प्रकार, शांति के समय रिजर्व सैन्य व उसके अधिकारी, निशाने की सिद्धि व यथा समय उसका परीक्षण (टेस्ट) के विषय में ही नहीं, नगर निर्माण, उसमें नागरिकों का वर्गीकरण, व्यापार-प्रतिष्ठान, आजीविका के साधन व उत्तराधिकार के विवाद आदि विषय जानने व समझने योग्य हैं। मनु आदि स्मृतिकारों ने इन पर विस्तार से लिखा है। महर्षि दयानंदजी ने अपने ग्रन्थों में इन सबका स्पर्श किया है। इस लेख में केवल इनका उल्लेख मात्र करके इस विषय की जिज्ञासा रखनेवालों को उक्त स्थलों से ज्ञान प्राप्त कर लेने की प्रेरणा मिले, इसके लिये इतना पर्याप्त है। साथ ही भारतीय सभ्यता में राजनीति का क्या स्वरूप है ? उसकी अन्य देशों से क्या विशेषता है ? इनकी जानकारी हमें मिले। आज इसकी भी आवश्यकता है।

शासन का महत्वपूर्ण अंग-राजनीति

लेखक :— देवेन्द्र नाथ शर्मा

हमारे यहां शास्त्रों में महार्षियों ने आदर्शत्तम ग्र में राजनीति को महत्त्वपूर्ण स्थान दे रखा है। स्मृति-कारों ने भारतीय शासक को उचित तरीके स राज्य व्यवस्था करने का आदेश दिया है। मनु कहते हैं :-

वकवच्चिन्तयेदर्थान सिंहवच्च पराक्रमेत।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पेतत्॥
एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।
तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः॥
यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः।
दण्डेनैव प्रसह्यैताञ्छनकैर्वशमानयेत्॥

अर्थात् बगुले के समान एकाग्रचित्त होकर राज्य बातों का विचार करें, सिंह के समान शत्रु के स पराक्रम दिखावे, भेड़िये के समान अवसर पाकर श का नाश करें और अपने से शक्तिशाली राजाओं के हाथ में पड़ जायें तो खरगोश के समान धोखा दे उसके हाथ में से निकलो। इस प्रकार वि करने वाले राजा के जो शत्रु हों उन सबको राजा स दाम, भेद आदि उपायों से वश में करें। यदि इतने भी शत्रु वश में न होय तो फिर राजा उनको ब त्कार से दण्ड द्वारा धीरे-धीरे वश में कर लें।

(मनुस्मृति अ० ७/१०६-१०८)

राजा को साम, दाम, भेद, दण्ड और उपेक्षा — इन पांच साधनों के एक साथ या अलग-अलग प्रयोग द्वारा अपने काम बना लेने चाहियें। सारी नीतियों और दूतों का मूल गुप्त विचार है, इसलिये जिस शुभ विचार से कार्य की सिद्धि हो उसी की ब्राह्मणों के साथ मन्त्रणा करे। स्त्री, मूर्ख, बालक, लोभी और नीच पुरुषों के साथ तथा जिनमें उन्माद के लक्षण पाय जायें उनके साथ गुप्त परामर्श न करे। परामर्श विद्वानों के साथ करना चाहिये। जो सामर्थ्यवान हों उनसे कार्य कराना चाहिये एव जो हितैषी हों, उनसे न्याय कराना चाहियें। मूर्खों को तो सभी कामों से अलग रखना चाहिये। राजा धर्म-कार्यों में धार्मिकों को, अर्थ कार्यों में विद्वानों को और स्त्रियों में कार्य करने के लिये नपुन्सकों को नियुक्त करे तथा कठोर कामों में क्रूर प्रकृति के लोगों को नियुक्त करे। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के विषय में अपने तथा शत्रुपक्ष के लोगों की सम्मति जाने एवं शत्रु के बलाबल का भी ज्ञान रखे। बुद्धि से जिनकी अच्छी तरह परीक्षा कर ली हो, उन साधु पुरुषों पर अनुग्रह करे तथा मर्यादाहीन अशिष्ट पुरुषों का दमन करे। जब राजा प्रजा के निग्रह और अनुग्रह में उचित रीति से प्रवृत्त होता है, तभी लोक की मर्यादा सुव्यवस्थित होती है। अतः राजा को देश और दुर्ग में अपने शत्रु और मित्रों की सेनाओं की स्थिति, वृद्धि और क्षय का दूतों द्वारा सदा पता लगाते रहना चाहिये। साम, दाम,

दण्ड और भेद— ये चार उपाय, दूत, बुद्धि, गुप्तचार, पराक्रम, निग्रह, अनुग्रह और दक्षता ये गुण राजाओं के कार्य को सिद्ध करने वाले हैं।

उपरोक्त राजनीतियां, भीमसेन के पूछने पर वायु पुत्र हनुमान ने उनसे विस्तार पूर्वक कही हैं। जो महाभारत के वनपर्व में देखने को मिलती हैं।

महर्षि शुक्राचार्य की गणना महान् राजनीतिज्ञों में की जाती है। उनकी लिखी शुक्रनीति नीति शास्त्र का श्रेष्ठ ग्रंथ हैं। ये शुक्राचार्य दानवराज बलि के राजपुरोहित थे। जब इन्द्र और भगवान् वामन दानव राज से तीन-पग भूमि की याचना के लिये पधारे, उसी समय भगवान् शुक्राचार्य ने बलि को सतर्क करते हुए समझाया था। उन्होंने बलि से कहा था :— राजन्! तुम्हें उचित अनुचित का जरा भी ज्ञान नहीं है। किसको कब क्या दान देना चाहिये— इस बात से तुम अनभिज्ञ हो। अतः मंत्रियों के साथ भलीभांति विचार करके युक्तायुक्त का निर्णय करने के पश्चात् तुम्हें कोई कार्य करना चाहिए। तुमने इन्द्रसहित देवताओं को जीत कर त्रिलोकी का राज्य प्राप्त किया है। अपने वचन को पूरा करते ही तुम बन्धन में पड़ जाओगे।

एक समय भगवान् राम ने अपने भ्राताओं और पुत्रों को राजनीति का उपदेश देते हुए कहा :— जिस राजा को चिरकाल तक राज्य करना हो और जीवित रहना हो उसे चाहिए कि सत्य, शौच, दया क्षमा,

कोमलता, मीठी बातें, ब्राह्मण, गौ, सन्त और सुसज्जनों पर श्रद्धा ये सात गुण अपनावे और इसी प्रकार निद्रा, आलस्य, मद्यपान. जुआ, वेश्याओं से प्रेम, अधिक खेल-कूद, अधिक शिकार खेलना, झूठ बोलना, क्रोध करना, सम्भोग करना त्यागे। प्रजा को पुत्र के समान पालन करे। गुप्तचरों द्वारा राज्यभर की खबरों की जानकारी करता रहे। सीमा पर नियुक्त कर्मचारियों पर निगरानी रखे। खान के नजदीक रहने वाले, राजधानी से दूर नगर में रहने वाले, पर्वत निवासी, जंगल में रहने वाले, समुद्र तट पर टापुओं पर रहने वाले, द्वीपांतर और विदेश में रहने वाले तथा अन्य देश के रहने वाले अधिकारियों पर राजा सर्वदा ध्यान रखे। गुप्तचरों द्वारा अन्य राष्ट्रों की खबर सर्वदा ज्ञात करता रहे। किसी देश का अधिकारी बनाकर अपने किसी भी नौकर को ज्यादा दिन तक उस देश में शासन न करने दे। दूसरे राजाओं का सैन्य-बल देखता तथा तौलता रहे। दूसरे राष्ट्र का गुप्तचर अपने राष्ट्र में दिखाई पड़ जाये तो उसे दण्ड न दे बल्कि सम्मान पूर्वक उसके देश भेज दे। राजा अपने नगर के बाहर कभी भी बिना सेना के न जाये। कहीं भी अकेला न घूमे। द्वारपाल, धोबी, पान देने वाले, सेविका, स्त्री इन पर राजा कभी विश्वास न करे। पानी, पान और भोजन की परीक्षा कर लेने पर उसे खाये। यज्ञ, जप, कथा, सन्ध्या, शिवार्चन, दान, पुराण श्रवण आदि कर्म नित्य करे। इस प्रकार कार्य करने पर राजा दीर्घ काल तक राज्य का संचालन

करने में समर्थ होता है। उसके राज्य-कालमें कभी कोई विपत्ति नहीं आती। वह राजा सदा प्रसन्न रहा करता था।

[आनन्द रामायण, रा० का० चतुर्थ सर्ग]

चाणक्य का कहना है कि राजा के गुण और अवगुणों की नकल प्रजा भी धीरे-धीरे करने लगती है। यदि धर्मात्मा राजा हो तो प्रजा भी धार्मिष्ठ होती है, यदि पापी हो तो पापी, समानता हो तो समान प्रजा राजा के अनुसार चलती है। जैसा राजा हो वैसी प्रजा भी हो जाती है।

यथा :— राज्ञिधर्मिणि धार्मिष्ठाः पापे पापाः समेसमाः।
राजानमुनुवर्त्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः॥
(चाणक्य नी. द. अ. १३/८)

पितामह भीष्म का मत है कि राजा को सर्व प्रथम अपने मन को जीतना चाहिए, उसके बाद शत्रुओं को परास्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। पांचों इन्द्रियों को काबू में रखना यही मन की विजय है। जो राजा जितेन्द्रिय है वही शत्रुओं का भी दमन कर सकता है। उसे चाहिये कि किलों में, राज्य की सीमा पर तथा नगर और गांव के बगीचों में सेना नियुक्त करे। इसी प्रकार सभी पर्वतों पर, गांव और नगरों के भीतर तथा महल के आसपास भी थोड़ा बहुत फौज रखना अनिवार्य है। गुप्तचरों की नियुक्ति जिनकी अच्छी तरह परीक्षा कर ली हो, जो देखने में मूर्ख, अंधे और बहरे से जान

पड़ते हों तथा भूख-प्यास और परिश्रम सहने की सामर्थ्य रखते हों, उन्हें गुप्तचर बनाना चाहिये। इन गुप्तचरों की मंत्री, मित्र और पुत्रों के ऊपर भी नियुक्ति करना चाहिए। इसी प्रकार नगर, देश और सामन्तों के राज्य के राज्य में भी इन्हें ऐसी युक्ति से नियुक्त करे, जिससे वे आपस में भी एक दूसरे को न पहचान सकें। अपने गुप्तचरों के द्वारा राजा को बाजारों, विहारों, समाजों, सन्यासियों, बगीचों, प्रांतों, चौराहों, सभास्थानों और धर्मशालाओं में रहने वाले शत्रु के गुप्तचरों का पता लगाते रहना चाहिए। यदि राजा शत्रु के दूतों का पहले ही पता लगा लेता है तो इससे उसका बड़ा हित होता है।

यदि राजा को अपना पक्ष निर्बल जान पड़े तो अपनी कमजोरी का पता लगने से पूर्व ही शत्रु के साथ संधि कर ले। यदि इसमें कुछ भी लाभ दिखाई दे तो संधि करने में देर न करे। जो राजा गुणवान्, उत्साही, धर्मज्ञ और सदाचारी हो उसके साथ प्रजा का धर्मानुसार पालन करने वाले नृपति को अवश्य ही मेल कर लेना चाहिए। यदि राजा को अपनी स्थिति संकटपूर्ण दिखायी दे तो जिन अपराधियों को पहले छोड़ दिया हो और जिनसे जनता द्वेष मानती हो, उन लोगों को सर्वथा नष्ट कर दे। जिस राजा में दुश्मन को दबाने की सामर्थ्य हो और जिसकी सेना मजबूती से वह अपनी राजधानी के प्रबन्ध की व्यवस्था करके जिस समय

दुश्मन दूसरे के साथ युद्ध में संलग्न, असावधान अथवा दुर्बल हो अपनी सेना को उस पर आक्रमण करने की आज्ञा दे। यदि दुश्मन अपने से बलवान हो तो उसके सर्वदा उसके अधीन न रहे। दुर्बल होने पर भी गुप्त रूप से उसकी शक्ति को नष्ट करने का प्रयत्न करता रहे तथा उसके मंत्री और प्रीतिपात्र पुरुषों में भेद डलवा दे। जो राजा राष्ट्र का हित चाहे उसे सदा युद्ध में नहीं लगा रहना चाहिये। बृहस्पति ने साम, दाम और भेद इन तीन उपायों से ही अर्थ की प्राप्ति बतलायी है। राजा को प्रजा की आय का छठा हिस्सा उसकी रक्षा के लिए ही कर रूप से लेना चाहिए। राजा को अपनी प्रजा पर पुत्र पौत्रों के समान स्नेह रखना चाहिए। किन्तु न्याय के समय प्रेमवश पक्षपात नहीं करना चाहिये। न्याय के समय वादी और प्रतिवादी की बातें सुनने के लिये सब विषयों को समझाने वाले विद्वानों को नियुक्त करना चाहिये। क्योंकि न्याय की शुद्धि ही राज्य का आधार है। खान, चुंगीघर, नाव के घाट और हस्तिसेना पर टैक्स लेने के लिये अपने विश्वास-पात्र और हितचिन्तक पुरुषों को मंत्री बनाकर नियुक्त करना चाहिये। जो राजा उचित ढंग से न्याय करता है, उसे ही धर्म की प्राप्ति होती है। राजा का न्यायनिष्ठ होना ही प्रधान धर्म है। यदि किसी दुर्बल राजा को कोई शक्तिशाली दुश्मन दबाने लगे तो उसे चाहिये कि वह किले के भीतर चला जाय और अपने मित्रों के साथ साम, भेद या युद्ध के विषय में परामर्श

करे। यदि युद्ध करने का ही निश्चय हो तो पशु शालाओं को वन से उठाकर मार्गों पर लावे और गांवों को उठाकर कस्बों में मिला दे। धनी और सेना के प्रधान-प्रधान अधिकारियों को बार-बार धीरज देकर ऐसे स्थानों पर पहुंचा दे जो बहुत गुप्त और दुर्गम हों तथा राज्य का सारा अन्न अपने काबू में कर ले। नदी के पुलों को तुड़वा दे, जिन किलों में दुश्मनों के छिपने की सम्भावना हो उन्हें सब ओर से तुड़वा डाले। देवालयों के वृक्षों को छोड़कर और सब छोटे-मोटे पेड़ों को उखड़वा दे जो वृक्ष बहुत फैले हों उनकी डालियां कटवा दे। नगर के चारों ओर परकोटा बनवावे, उस पर दुर्गरक्षकों को नियुक्त करे तथा उसके चारों ओर की खाई को जल से भरवा दे साथ ही उसमें पानी के जानवरों को छुड़ा दे। नगर में हवा आने के लिये और आपत्ति समय भागने के लिये परकोटे में झरोखे खुदवाये तथा उनकी चौकसी का पूरा-पूरा प्रबन्ध करावे। इन झरोखों पर भारी-भारी युद्धतन्त्र और तोपें लगवा दे और उन पर अपना अधिकार रखे। किले के भीतर बहुत सा ईंधन इकट्ठा कर ले तथा नये कुएँ खुदवायें और जो कुएँ पहले से बने हुए हों उनकी सफाई करा दे। जिन घरों के ऊपर छप्पर हों उन्हें मिट्टी से लिपवा दे। नगर की रक्षा के लिये ढिंढ़ोरा पिटवा दे कि जो पुरुष दिन में आग जलावेगा उसे भारी दण्ड दिया जायगा। ऐसे समय भिखारियों को, हिजड़ों को

पागलों को और नटों को नगर से बाहर निकलवा दे, राजमार्गों को चौड़ा करा दे तथा यथोचित रीति से पौंसाले और बाजारों की व्यवस्था कराये। अन्न के भण्डार, शस्त्रागार, योद्धाओं की बारकें, अश्वशालाएं, गजशालाएं, सेना की छावनियां, खाइयां और राजमहल, बगीचे ऐसी युक्ति से तैयार करावे जिससे कोई दूसरा इन्हें देख न सके। ऐसी स्थिति में राजा को घायलों की सेवा के लिये औषधियों का संग्रह करना चाहिए तथा सब प्रकार के शक्ति, शस्त्र ऋष्टि, प्रास और कवच फल मूल और चिकित्सकों का प्रबन्ध करे। ऐसे अवसर पर राजा को जिन सेवक, मंत्री, पुरवासी और सामन्तों की ओर से संदेह हो, उन्हें अपने काबू में कर ले। जब किसी कार्य में सफलता मिले तो उसमें सहायता देने वालों को बहुतसा धन दे यथोचित पुरुस्कार और मीठे वचनों से सत्कार करे। अपना शरीर, मंत्री, कोष, सेना, मित्र राष्ट्र और नगर इन सात को राज्य कहते हैं। राजा को चाहिये कि वह युक्ति पूर्वक इनकी रक्षा करे। जो राजा छः गुण, तीन वर्ग और तीन परमवर्ग इन्हें जानता है, वह इस पृथ्वी को भोग सकता है। इनमें जिसे छः गुण कहा जाता है वह यह है— संधि करके शांति से बैठ जाना, चढ़ाई करना, दुश्मन से युद्ध ठानना, आक्रमण के द्वारा दुश्मन को भगाकर बैठ जाना, दुश्मनों में भेद डलवा देना तथा किले या किसी दूसरे राजा का आश्रय लेना। तीन वर्ग ये हैं :— क्षय, स्थिति और

वृद्धि तथा अर्थ, धर्म और काम — ये तीन परमवर्ग हैं। शासक का कर्त्तव्य है कि वह इन सबका सेवन करे।

आदर्श शासक के गुण

(१) धर्म का आचरण करना (२) बलात्कार पूर्वक धन का संग्रह न करना (३) दुष्टों के साथ मेल न करना (४) दीनता न लाते हुए प्रिय भाषण (५) राज्य में आन्तरिक कलह न उठने देना (६) अविश्वासी राजदूत से काम न लेना (७) मूर्खों से गुप्त परामर्श न करना (८) अपने गुणों का आप वर्णन न करना (९) नीचों का आश्रय न लेना (१०) अच्छी प्रकार जांच कर दण्ड देना (११) गुप्त मंत्रणा को प्रकट न करना (१२) मदिरा का सर्वथा त्याग (१३) जिससे कभी दुश्मनी रही हो उस पर विश्वास न करना (१४) स्त्रियों का बहुत अधिक सेवन न करना (१५) कार्य कुशलता पूर्वक अवसर का विचार रखना (१६) बिना ठीक से जाने किसी पर प्रहार न करना (१७) दुश्मनों को मारकर पश्चाताप न करना (१८) शुद्ध रहकर किसी से घृणा न करना (१९) अभिमान त्याग कर माननीयों का आदर करना और (२०) स्वादिष्ट होने पर भी जो अहितकर हो उसे न खाये।

सतत ३६५ दिन
होर्डींग
गर्मी
वर्षा
ठंडी
की परवाह न करते हुए
विज्ञापन करने वाले
एकमेव साधन
फोनः ३३४३
एस. करी ॲण्ड कं.
महाराष्ट्र, आंध्र, कर्नाटक
में हमारे होर्डिन्ग हैं।
होर्डीन्ग अडव्हरटायझ
पो. बॉ.

भारतीय राजनीति

लेखक :— श्री राजमोहन मिश्रा

आदिकाल से भारतीय राजनीति धर्म मूलक रही है। उसके निर्माण-निर्धारण में शांति और सर्वोदयवादी वनवासी ऋषि मुनियों का बहुत बड़ा हाथ रहता था इसलिए उसमें धार्मिक और नैतिक तत्वों का पर्याप्त संमिश्रण रहता था। भारत के प्राचीन राजन्य धर्मभीरू होते थे, अतः वह प्रजा का पालन करते हुए उसे संरक्षण भी प्रदान करते थे। प्रजा भी निर्भीक धर्म प्राण, कर्त्तव्य बुद्ध सद्गुणसंपन्न और सुशिक्षित होती थी। महाराज रघु के राजत्व की महत्ता प्रतिपादित करते हुए महाकवि कालिदास ने लिखा है कि "माता-पिता केवल सन्तान को जन्म देने के अधिकारी थे। उसके पालन-पोषण और सर्वांगीण विकास का दायित्व राज्य पर था।" सुरक्षा के सम्बन्ध में महाराज दिलीप ने जो उदात्त संस्कार और उज्जवल आदर्श प्रस्तुत किया है। वह कहते हैं कि "जिस वस्तु की रक्षा में जो नियुक्त किया गया है, उस रक्षणीय वस्तु के नष्ट हो जाने पर वह उसके स्वामी के पास स्वयं क्षतिग्रस्त हुए बिना अक्षत रूप से कैसे जा सकता है ? कौन सा मुंह लेकर वहां जाया जा सकता है ? हम क्षत्रधारी हैं, अतः विनाश को रोकना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। हम अपने इस कर्त्तव्य से विचलित नहीं हो सकते।" दिलीप का यह आदर्श वसिष्ठ की गाय तक सीमित नहीं है, बल्कि उनका यह समष्टि-व्यापी संस्कार था।

रघु का आदर्श और भी जाज्वल्यमान है। कालिदास ने लिखा है — "सम्पूर्ण विद्याध्ययन कर लेने के पश्चात् महर्षि वरतन्तु के शिष्य महार्षि कौत्स जब रघु के दरबार में पहुंचे; तब महाराज ने राज्यासन से उतर कर उनका स्वागत-संमान किया और महर्षि के आश्रम की स्थिति पूछी। कौत्स ने आश्रम व्यवस्था बताई और राजा के प्रबन्ध की प्रशंसा की, किन्तु साथ ही स्वागत के लिए आये हुए मिट्टी के बर्तनों को देखकर उसकी आशा पर पानी फिर गया।

महाराज ने कौत्स से आगमन का कारण पूछा - कौत्स ने बताया कि हम तो बहुत बड़ी अभीष्ट सिद्धि के विश्वास को लेकर आप के पास आये हैं, किन्तु आपकी यह विपन्न दशा देखकर हमारी आशा क्षीणप्राय हो चुकी है, कुछ कहने का साहस नहीं होता।

रघु ने कौत्स को आश्वासन दिया कि हम यथाशक्ति आप की इच्छा पूर्ति का प्रयास करेंगे, आप अपना अर्थ बताइये।

कौत्स ने निवेदन किया — 'महाराज! गुरु से समस्त विद्यायें अर्जित कर लेने के बाद जब मैं अपने घर लौटने लगा। तब गुरुदेव से गुरुदक्षिणा स्वीकार करने की प्रार्थना की।'

गुरुदेव ने कहा — आश्रम-वासकाल में तुमने मुझे तथा आश्रम को जो सेवायें प्रदान की हैं, वह पर्याप्त हैं और दक्षिणा की जरूरत नहीं, लेकिन मेरे बार-बार

हठाग्रह करने पर गुरुजी सहसा कुपित हो उठे और कहने लगे— "अगर दक्षिणा देने की महत्वाकांक्षा है, तो मैंने १४ विद्यायें पढ़ाई हैं। प्रत्येक विद्या हेतु एक कोटि इस प्रकार १४ करोड़ स्वर्ण-मुद्रायें लाकर दो। गुरु का अभिवादन कर और उनका आशीर्वाद लेकर मैं आश्रम से चल पड़ा और आपके पास आ पहुंचा। आप के पास महती आशा लेकर आया था, परन्तु आपकी रिक्त दशा देखकर के अवसन्न हो उठा हूं; कुछ कहने का साहस नहीं होता।

रघु ने सांत्वना देते हुए कहा— "महाराज, आपको इस थोड़ी सी बात के लिये चिन्तित नहीं होना चाहिए। आप दो-तीन दिन मेरी यज्ञ-शाला की शोभा बढ़ायें, मैं आपका अभीष्ट सिद्ध करूंगा।"

धन-प्राप्ति के अनेक मार्गों का अनुसंधान करने के पश्चात् अन्त में रघु ने कुबेर पर चढ़ाई करने का संकल्प किया। युद्ध की सारी व्यवस्था कर लेने के पश्चात् महाराज रघु ने रात में युद्धोद्यत रथ पर ही शयन किया।

रघु का संकल्प घर बैठे ही सफल हो गया। किसी अदृश्य प्रेरणा से कुबेर ने उनके कोश-गृह को सुवर्ण-राशि से भर दिया।

रघु ने कौत्स से अनुरोध किया यह सारा धन आप के उपलक्ष्य में आया है। यह सब आप ले जायें। कौत्स ने कहा— जितना मुझे गुरु को प्रदान करना है,

उससे एक मुद्रा भी अधिक नहीं लूंगा। इस निस्पृह दृश्य को देखकर साकेत (अयोध्या) की प्रजा उन दोनों महात्माओं पर प्रशंसा के पुष्प बरसाने लगी।

इस प्रकार महाराज रघु के और भी महत्तर कार्य हैं। भारतीय राजाओं का यह सुसंस्कृत और आदर्श-निष्ठ राजभाव कितना दिव्य है।

राम भी महिमा-मय और आदर्शनिष्ठ राजा रहे; राज-परिवार तथा प्रजा में शांति बनाये रखने के लिये उन्होंने बहुत बड़े-बड़े त्याग किये; फलतः जनता ने भगवदीय सत्ता के रूप में उनका दर्शन किया और इस दिव्य विभूति को पाकर वह कृत कृत्य हो गई राम के राजत्व का वाल्मीकीय रामायण, तुलसी के 'रामचरित-मानस' और अन्य रामायण ग्रन्थों में बड़ी भावविदग्धता से चित्रण किया गया है। राम का व्यक्तित्व दैवी या अमानवीय क्षमताओं से भरपूर और अत्यन्त गौरवमय है। आज भी 'रामराज्य' सबकी जिह्वाओं पर रम रहा है। इतने विशाल काल-खण्ड के व्यतीत हो जाने पर भी सर्वत्र 'राम-राम' की आवाज गूंज रही है। उनका नाम-स्मरण और यशोगान घर-घर की पावन प्रतिष्ठा बना हुआ है। यह क्यों ?

क्योंकि उन्होंने अपने जीवन काल में जो कुछ किया, वह लोकमत के आधार पर लोक-रंजन के लिये ही किया। उनकी लोकोनुभूति व्यापक है। लोक-संलग्न मूलक जो भी प्रस्ताव उनके सामने आया या स्वयं अनुभव हुआ, उसे उन्होंने कार्यान्वित किया।

कृष्ण के काल में कौरवों और पाण्डुओं के बीच राजनैतिक संघर्ष चल रहा था। कंस, जरासन्ध, शिशुपाल आदि राजाओं के अत्याचार से प्रजा पीड़ित और दबी हुई स्थिति में सड़ रही थी। और चारों ओर हाथ फैलाकर सहायता मांग कर रही थी। कृष्ण के साहस, वीरता, पराक्रम, क्षमता, प्रभावशाली व्यक्तित्व, निर्भीकता कूटनीति आदि गुणों ने उन्हें एक विराट मानव तथा पुरुषोत्तम के पद पर सुशोभित किया। कृष्ण ने इन सभी अत्याचारी और निरंकुश राजाओं का ध्वंस किया और कराया और सर्वत्र शांति-राज्य का सूत्रपात किया।

इसके बाद चाणक्य के अर्थशास्त्र और पंचतन्त्र भारतीय राजनीति के पथ-दर्शक दीपक बने। यहां से राजनीति धर्मप्रधान न रहकर कूटप्रधान बन गई। राम-कृष्ण के काल में भी शाम, दाम, दण्ड, भेद नीति द्वारा दुश्मन को परास्त करने की अभीप्सा पाई जाती है। प्राचीन भारतीय राजनीति में इसका प्रमाण स्थल-स्थल पर पाया जाता है और मानवता के विरोधी को कठोर से कठोर दण्ड देने के लिये उसने अपने विधायक को प्रेरित किया है। राम वनवासी ऋषि-मुनियों की करुण दशा देखकर द्रवीभूत हो उठे। उनकी क्षत्रिय वृत्ति जाग हो उठी, रौद्र रस उमड़ पड़ा; भृकुटियां तन गईं वीर रस के अन्तः निःसृत उत्साह से भरपूर होकर वह कह उठे— "अब एक भी असुर जीता न बचेगा, मैं उन्हें नष्ट करके ही चैन की सांस लूंगा।" सीता कहने

लगी — "आप अकारण असुरों से झगड़ा मोल न लें और अपने रौद्र भाव — क्षुब्ध भाव को शांत कीजिये" राम ने सीता की सलाह को स्वीकार नहीं किया।

भारतीय राजनीति में चाणक्य के अर्थशास्त्र और पंचतन्त्र को भी विशेष महत्व दिया है। उसमें राजा के गुणों और कर्त्तव्यों का निदर्शन किया गया है। पंचतन्त्र के अनेकशः पात्रों ने शत्रु-नाश या अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये किसी भी प्रकार के साधन, उपाय का आधार लिया है। इन्हें पढ़कर राजनीति के अनेक दांव-पेंच खोजे जा सकते हैं। पंचतन्त्र में कहानियों के माध्यम से राजनीतिक चालबाजियों का बहुत बड़ा परिचय कराया गया है। प्रतिद्वन्द्वी का विनाश कर अपनी स्वयंभू सत्ता का विस्तार करने की महत्त्वाकांक्षा रखने वाली शक्तियों को अभीष्ट फल प्राप्त करते दिखाया गया है।

आधुनिक विश्व राजनीति में भी यही तत्त्व विद्यमान है। बुद्धि, बल, छल-कपट आदि से अपनी सत्ता का विस्तार करना ही आज के राजनीतिज्ञों का उद्देश्य है। बहुतेरे लोगों की स्वार्थ-साधन अभीप्सा इतनी बढ़ी चढ़ी है कि अपने व्यक्ति-गत स्वार्थ की पूर्ति के लिये वह राष्ट्र के हित को भी क्षतिग्रस्त कर सकते हैं। व्यक्तिगत हितों पर तो वह प्रहार कर ही रहे हैं। जयचन्द, मानसिंह, मीरजाफर, आदि विदेशियों के एजेन्ट का काम करके भारतीय राष्ट्र को युग-युग तक राज-नीतिक और आर्थिक रूप में परतन्त्र, परावलम्बी बनाते

के प्रयत्न में लगे रहें। जो राष्ट्रीय शक्तियां उभरी, उन्हें बलवत् दबाने या एक छोटे से घरौंदे में रहने के लिये विवश किया गया; किन्तु आज वह बात नहीं रही। आज सभी भारतीय एक दूसरे के निकट आ गये हैं और उनमें राष्ट्रीय एकता का भाव परिलक्षित होने लगा है। वह राष्ट्रीय स्वाभिमान को वहन कर एक सूत्र में संगठित होते जा रहे हैं। यही कारण है कि विश्व के शक्ति मदोन्मत्त राष्ट्र भी उसके इस अहं पर प्रहार नहीं कर सकते। ऐसा करने से पहले उन्हें कुछ विचार करना पड़ेगा। हमें ऐसे प्रयत्न करते रहने चाहियें, जो राष्ट्रीय एकता के इस निर्झर को अटूट और अजस्र बनाये रखने में सहायभूत हों।

महात्मा गांधी का सर्वोदय आदर्श या सरकार का समाजवाद दोनों ही एक मूलभूत लक्ष्य-जनकल्याण के लक्ष्य पर पहुंचने — अभिमत सिद्ध करने के मार्ग हैं। वही आदर्श लोक-प्रिय और ग्राह्य हो सकेगा, जिसमें समग्र जन-कल्याण के बीज निहित होंगे। जो वाद सर्व-हित साधक और सर्वग्राह्य हो, वही जन-कल्याण का स्वरूप लेकर काम कर सकेगा। इस दृष्टि से गांधीजी का सर्वोदयवाद ही सबके हृदय का स्पर्श कर सकेगा, अतः वही विधेय और स्वीकार्य होना चाहिये। भारत यदि खेत माना जाये, जिसमें जन-जीवन रूपी पौधे उगे उग रहे हैं — तो ऐसी सुव्यवस्थित क्यारियां बनानी चाहियें, जिससे कोई भी पौधा सिंचन जल से वंचित

मानना ही पड़ेगा, कि भारत की वर्तमान राजनीति अंतर राष्ट्रीय व्यवहार की दृष्टि से सुसंगत है। इसमें कहीं भी दुश्मनी या विरोध का अंश नहीं। वह अंतर-राष्ट्रीय या राष्ट्रीय प्रश्नों के समाधान के लिये परस्पर वार्ता-नीति का पोषण, समर्थन और स्वयं कार्यान्वयन करती है। ताशकंद समझौते में भारतीय शांति शुभेच्छा के मुख को और भी अधिक उज्जवल और गर्वोन्नत बना दिया। सुरक्षा और शांति दोनों ही हमारे विधेय कर्त्तव्य है। हमारी ऐसी सशक्त व्यवस्था होनी चाहिये जिससे हम आत्म-रक्षा में संपूर्ण समर्थ हों और जगत् में शांति और सदिच्छा स्थापित करने में भी सहायक बन सकें।

अतः भारत की राष्ट्रीय शक्तियों का कर्तव्य है कि वह अपनी क्षमता और प्रभाव का उपयोग राष्ट्र निर्माण के महान् कार्य में करें। वह राष्ट्र-जीवन में ऐसी शक्ति, क्षमता, समन्वय और उत्कर्ष की भावना भरें, जो उनकी ध्वंसात्मक प्रवृत्ति को रचनात्मक दिशा की ओर मोड़ने में समर्थ हो। निर्माण ही हमारा ध्येय होना चाहिये, विनाश नहीं। विनाशकारी मनोभावों या कार्यों से जन-कल्याण तो होगा नहीं बल्कि और भी अधिक संकटों का जाल सर्वत्र बिछ जायेगा और उनमें फंसकर जनता किंकर्तव्य विमूढ़ होकर पथभ्रष्ट हो जायेगी। हमें जन साधारण की रचनात्मक शक्ति को प्रोत्साहन देना चाहिये, फलतः राष्ट्र अधिक समृद्ध और बलवान् होगा, राष्ट्र स्वावलम्बी होगा। विश्व में हमारा प्रभाव बढ़ेगा और

हमारी भी आवाज सुनी जायगी। यदि हम शस्त्र-बल, धन-बल, अन्न-बल और अन्य क्षेत्रों में परिपूर्ण और सबल हैं, तो कोई भी शत्रु या विरोधी हमें दबा नहीं सकेगा। हम एक स्वयं सत्ताधारी राष्ट्र होंगे; पर-मुखापेक्षी नहीं होंगे। अतः देश की पथभ्रष्ट अदम्य मानव और साधन-शक्ति का अधिकाधिक सदुपयोग राष्ट्र निर्माण में किया जाये, तो कितना लाभ होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। नित्य जीवन-संचालन के लिये अन्न, वस्त्र, निवास, शिक्षा और दैनिक जीवन के लिये उपयोगी-आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन और निर्माण अधिकाधिक परिमाण में किया जाये। आज यह देखने की आवश्यकता नहीं कि लाभ कौन उठा रहा है? काम कौन कर रहा है? आज तो एक ही ध्येय होना चाहिये और वह राष्ट्रीय उत्पादन को निरन्तर बढ़ाते रहना। उत्पादन ही राष्ट्र के स्वावलम्बन और स्वाभिमान का मूलाधार है। वह कहां, किस तरह कौन कर रहा है, यह बात गौण होनी चाहिये। अधिकाधिक उत्पादन और कम से कम उपयोग का सच्चा ध्येय लेकर यदि भारतीय मानव-शक्ति एक संकल्प बद्ध होकर सहयोग सद्भावना के साथ कार्यरत होगी परस्पर अनुभव और कर्तत्व-शक्ति का यदि सामंजस्य होगा, योजनाबद्ध रूप से एक निश्चित धरातल पर यदि हम निर्माण की ओर प्रवृत्त होंगे, तो भारत की धरती हमें कभी किसी वस्तु से वंचित नहीं और अपना अन्तर्निहित

विपुल भण्डार प्रदानकर हमें खुशहाल और निहाल करेगी। भारत-वसुन्धरा के अन्तराल में सम्पत्ति का जो विराट् कोष सदियों से दबा पड़ा है, वह अदम्य और सतत परिश्रम करने पर हमें सुलभ हो सकेगा। बिना श्रम के सुख समृद्धि की आशा करना निरर्थक है। श्रम और प्रयास करने पर किसी प्रकार आशा संजोई जा सकती है।

अस्तु हमें प्रबल आशा विश्वास की भावनाओं को हृदय में धारण कर साहसपूर्वक कर्म-क्षेत्र में अपनी कारयित्री प्रतिभा, कार्य-शक्ति का सदुपयोग करना चाहिये, और उन्हें रचनात्मक आयोजनों में ही नियोजित करना चाहिये। निजी क्षेत्र, सहकारी और सरकारी क्षेत्रों का कर्तव्य है कि वह देशव्यापी जन-हित की महत्त्वाकांक्षा को ही अपने अन्तःकरण में स्थान दें। ऐसा करने से ही राष्ट्रीय उत्पादन और उपभोग के प्रश्न जटिल रूप धारणकर हमें भयभीत या हतोत्साह नहीं कर सकेंगे। ऐसे प्रश्नों का अस्तित्त्व ही नहीं रहेगा। आन्तरिक रूप से राष्ट्र की बलवत्ता यदि सुदृढ़ और आत्मनिर्भर होगी, तो सुरक्षा प्रश्न स्वतः हल हो जायेगा। अतः हमारा प्रथम कर्तव्य यह है कि राष्ट्रीय चिन्ताओं से पूर्णतया मुक्त रहें। परस्पर विरोधी शक्तियां (दलों) को मशीन के दांतेदार पहियों तथा पुर्जों की परस्पर तन्त्र होकर एक-दूसरे के साथ बंधकर अनुकूल क्षेत्र में कर्म-रत रहें और सभी प्रश्नों का निबटारा शांति, सद्भावना और विचार-विनिमय द्वारा ही करने का प्रयास करें।

उनका प्रत्येक कार्य रचनात्मक होना चाहिये, ध्वंसात्मक नहीं क्योंकि विनाश की दुष्प्रवृत्ति हमें अधिकाधिक क्षति पहुंचायेगी, जिनकी पूर्ति नहीं की जा सकती। यह अराजकता का तत्व है और इससे जनजीवन आतंकित और अस्त व्यस्त हो जाता है और व्यापक क्षेत्र पर उसका अशुभ प्रभाव पड़ता है। अतः ऐसे अवांछनीय कार्यों से मुख मोड़ने से ही राष्ट्र तथा समाजकी सुख सम्पन्नता को आश्वासन प्राप्त होगा, सुरक्षा के प्रति विश्वास बढ़े वह शांतिपूर्वक अपने कृतियों में अपने कर्म-कौशल का प्रतिबिम्ब प्रकट करता रहेगा !

अन्त में इस पत्र के देश के भी नव वर्ष के शुभावसर पर हम परम प्रभु से हार्दिक प्रार्थना करते हैं कि वह हम भारतीय जनों को सद्बुद्धि दे, जिससे हम प्रत्येक क्षेत्र में सुख-सम्पन्नता और स्वावलंबन के प्रयास करें और राष्ट्रीय एकता तथा संगठन की आधारभूमि-नींव को सुदृढ़ बनायें यही सदिच्छा !
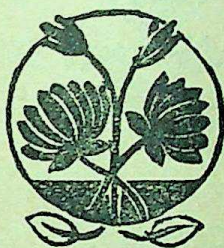
(पृष्ठ १६ का शेष)

लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़ेगी। इसके अति जिन देशों से ऋण की प्राप्ति की जाती है, उन देशों के सा विशेष सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध रखने पड़ते हैं और उन हितों का भी ध्यान रखना पड़ता है। ऋण लेने के पश्चा ऋणदाता देशों के प्रति लज्जा, दया, परोपकार, भय और नाना प्रकार के हिताहित के समय नीति के कठोर पालन में कठिनाई होती है। प्रभाव, व्यक्तित्व, प्रचार, विश्वा निश्चित ध्येय, साम, दाम, दण्ड, भेद आदि अनेक साध और उपसाधनों द्वारा विदेशों पर प्रभुत्व रखा जा सकता है। जैसे मधुर, पौष्टिक, सर्वांग विकसित एवं रूप-रंग से सु-शोभित फल-फूल की प्राप्ति के लिये शुद्ध मिट्टी, खाद, जल, वायु, अग्नि, (सूर्य प्रकाश) और आकाश द्वारा यथेष्ट परिमाण में जीवन-तत्त्व प्रदान कर सुचारु रूप से लता-वल्ली और पेड़--पौधों का पालन पोषण करना पड़त है, उसी तरह राष्ट्र के सर्वांगीण विकास और उद्धार के लिये परराष्ट्रों और आंतर-राज्यों पर दृष्टि रखनी पड़ती है। वर्तमान भारत--सरकार को यही दृष्टिकोण सामने रख अपनी वैदेशिक नीति निर्धारित करनी चाहिये।

मंत्रियों तथा उपमंत्रियों के गुण, कर्म और स्वभाव

जनतंत्र के सूत्रधारों को राजा नहीं कहा जाता। उन्हें प्रधान मंत्री, मुख्यमंत्री और उपमंत्री के नाम से पुकारा जाता है। उनके गुण, कर्म और स्वभाव का सर्वोत्कृष्ट होना अत्यावश्यक है। उनमें तमो और रजो गुण का स्थान गौण

होना चाहिये, और शुद्ध सात्विक गुण का प्रधान स्थान होना चाहियें। उनमें विवेक--बुद्धि और दूरदर्शिता अत्यन्त विकसित रूप में होनी चाहियें। सद्भावना, सहिष्णुता, कार्य-कुशलता आदि गुण विशेष मात्रा में होने आवश्यक हैं। निषिद्ध तथा अहित कर्मों से रहित होकर प्रजा-पालन के हेतु उन्हे अहिंसक कर्म करने चाहियें।

आततायी तथा दुष्टों का दमन करने के लिये भगवान् कृष्ण के आदेश से पाण्डवों ने साम, दाम, दण्ड और भेद नीति का प्रयोग कर कौरवों को समूल नष्ट कर दिया; दुष्ट राजा रावण, बलि आदि को मिटाने के लिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने साम, दाम, दण्ड, भेद आदि का उपयोग किया, परन्तु प्रजा-परिपालनार्थ और सज्जनों की रक्षा के लिये आजीवन सत्कर्म में संलग्न रहे। इतिहास उनका यशोगान उच्चस्वर से कर रहा है और यही उनके गौरवशाली जीवन का पुष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार हमारे प्रधान मन्त्री तथा मुख्य मन्त्रियों को भी चाहियें कि वह निर्व्यसन, दूरदर्शी सहनशील, चतुर, तीव्र बुद्धि-प्रतिभा-संपन्न, पवित्र मन, निरहंकार, त्यागमय, वैराग्यवान् और पर-हित भावना से परिपूर्ण हों। जिन महानुभावों में उपर्युक्त मानवीय गुणों का पूर्णतः विकास हुआ हो, वही प्रधान मन्त्री, मुख्य मंत्री तथा उपमंत्री के पद को सुशोभित करने के अधिकारी हैं और उन्हीं से प्रजा का कल्याण भी संभव है।

राज्य संचालन के लिये कौटिल्य नीति और विदुर नीति का विशेष महत्व है। राष्ट्रपति तथा मंत्रियों को

भगवान् के तुल्य समझा जाता है, अतः उनका कर्तव्य है कि वह भगवान् के गुण, कर्म और स्वभाव को धारण करें। आज मंत्रिगण प्रजा के प्रतिनिधि हैं। राम-राज्य के समान राज्य का सूत्र संचालन करने वाले राष्ट्र-प्रतिनिधियों की नियुक्ति प्रजा स्वयं करे, जिससे सर्वत्र एकता और संगठन का प्रवर्तन दृष्टिगोचर हो और गुटबन्दी, ईर्ष्या, द्वेष, कटुता आदिका विरोधाभास कहीं भी दिखाई न दे। जन साधारण की प्रवृत्ति स्वभावतः सुख की ओर रहती है और एतदर्थ वह भौतिक सुख साधनों को जुटाने में लगे रहते हैं वह सुरक्षा भी चाहते हैं। किन्तु इस के लिये देश-रक्षा और भौतिक सुख-साधनों की अभिवृद्धि (उत्पादन-वृद्धि) के लिये निरन्तर प्रयास और श्रम करना चाहिये। साथ ही लोकसभा और विधान-सभाओं में ऐसे सुयोग्य प्रतिनिधियों को नियुक्त करना चाहियें, जो जनता की आवश्यकताओं और कठिनाइयों से भली भांति परिचित हों। वह ऐसी व्यवस्था स्थापित करें, जिससे राष्ट्रीय सम्पत्ति और समृद्धि बढ़े और जीवनोपयोगी वस्तुएं सस्ती और सुलभ हों।

आचार-विचार और आहार

देश की उन्नति-अवनति का सम्बन्ध मानव के साथ घनिष्ठ रूप से है। देव, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, पिशाच, यवन आदि के आहार का दिग्दर्शन नीति शास्त्र और धर्म शास्त्र में विस्तार के साथ कराया गया है। राक्षस, दानव, यक्ष, यवनादि का आहार तमोगुण-प्रधान (मांस

मछली, अण्डे, शराब, तम्बाकू, साक-सब्जी, अनाज आदि) है और देव, गन्धर्वादि का आहार अनाज, शाक-सब्जी, फल, दुग्धादि सात्विक गुण प्रधान है। जैसा आहार वैसा डकार का नियम प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होता है। जैसा आहार, वैसी भावना अटल है। क्रोध, असहनशीलता, हिंसा वृत्ति, ईर्ष्या-द्वेष, शारीरिक रोग, मानसिक रोग, अधर्मपरायणता, आचार हीनता और भ्रष्टाचार के अनेक कारणों में एक कारण तमोगुण प्रधान आहार का सेवन है। मनुष्य का स्वाभाविक आहार शाकभाजी, फल-दूध आदि हैं। ये वस्तुएं सत्वगुण-संवर्धक हैं और अकारण उत्तेजना को प्रकट नहीं होने देतीं। उसका जीवन पवित्र और सुसंस्कृत होता है। उसके मनोभाव परिस्कृत और शांत होते हैं शाकाहार प्राकृतिक रुचिमय जीवन और नैतिक आचरण का मापदंडहै। अतः जब तक आहार की पवित्रता पर ध्यान नहीं दिया जायेगा, तब तक राष्ट्र की सुख सम्पत्ति बढ़ना असम्भव है। उत्तेजक हिंसामूलक आहार के साथ प्रशान्त और अहिंसामूलक आहार का संघर्ष हमेशा से चलता आ रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा। शांतिप्रिय व्यक्ति शाकाहारी और अहिंसा के पुजारी होते हैं। इतिहास में अमरत्व प्राप्त करने वाले और अहिंसा के आधार स्तम्भ पूज्य महात्मा गांधी, बुद्ध भगवान्, स्वामी महावीर स्वामी रामतीर्थ, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, आद्य शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु, समर्थ रामदास आदि महापुरुष

भूतकाल में हो चुके हैं और अपने पवित्र शाकाहारी जीवन का प्रभाव जनजीवन पर स्थापित कर चुके हैं। वर्तमान काल में भी अनेक राजपुरुष, त्यागी, सन्यासी, योगी, महन्त, अहिंसामूलक शुद्ध, सात्विक आहार के अधीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनकी विश्व-बन्धुत्व-मयी और सर्वतोभद्र विचारधारा आज भी जन-कल्याण का विस्तार कर रही है। वह जनता के सम्मानभाजन हैं और उनके उपदेश भौतिकता और शरीरवाद के अतिरेक से मानव को सुरक्षित बनाये हुए हैं। क्योंकि इन दोनों ही की चपेट में आकर मानव आध्यात्मिक गरिमा से मुख मोड़ता जा रहा है, फलतः शुष्कता और नीरसता आदि अवांछनीय सत्ताएं उसपर अपना प्रभुत्व जमाती जा रही हैं। अतः हमें ऐसे प्रयास और आयो-जन करने चाहियें, जिससे जनजीवन शुद्ध-बुद्ध और प्रशान्तचेता हो।

आज की राजसत्ता

प्राचीन राजसत्ता और अर्वाचीन राजसत्ता का तुल-नात्मक विवेचन करने पर पता चलता है कि राष्ट्रीय अभ्युदय, प्रजा का उद्धार, देश-रक्षा, आर्थिक समानता, नैतिक उन्नति और वास्तविक सुख-सुविधा की दृष्टि से प्राचीन और अर्वाचीन व्यवस्था में बहुत बड़ा अंतर है। इसके अनेक कारण हैं। एक कारण है सत्ता और कीर्ति की प्राप्ति होते ही मनोभावना में परिवर्तन। यौवन

सत्ता, कीर्ति, आदि एक प्रकार से उन्माद या नशे के समान हैं। गांजा पीने वाले व्यक्ति पर जैसा नशा चढ़ जाता है, उसी तरह राजसत्ताधारी भी मदोन्मत्त हो उठते हैं। वह सदैव अहंमन्य, असहिष्णु, उतावले स्वभाव के तमोगुण प्रधान होते हैं और इस भावावेश में हानिकारक कृत्य भी कर बैठते हैं। मिथ्या आवेश, स्तुतिकर्ता के वशीभूत हो जाना, अधर्म को धर्म मान ऐंठना आदि अनेक दुर्गुण उनमें घर बना लेते हैं। प्राचीन राज्याधिकारी विवेकी, पुरुषार्थी, निस्वार्थी, निरहंकारी, व्यवहार-कुशल, धर्मनीति परायण और भगवत् निष्ठ होते थे। राज-संचालनमें सत्यसमर्थ देने के लिये उनके सान्निध्य में सर्वतोभद्रभावी, उदारचेता, समभावी, अष्टांग योग के अभ्यासी ऋषि-मुनि और कर्तव्यशील अधिकारी लोग सुशोभित रहते थे और राज्य के सुचारु संचालन की प्रेरणा देते थे। वह शासक नित्यप्रति सत्संग, शास्त्राध्ययन, योगाभ्यास के साथ सज्जनों की तन-मन -धन से सेवा भी करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण के महर्षि शाण्डिल्य, भगवान् रामचन्द्र के महर्षि वसिष्ठ तथा वाल्मीकि, महाराज जनक के महर्षि याज्ञवल्क्य, छत्रपति शिवाजी कें समर्थ रामदास, धृतराष्ट्र के विदुर जी और अकबर के बीरबल सलाहकार रहे। ये महात्मा उन राजाओं के राज्य संचालन कें प्रेरणा-स्रोत थे। और हर समय उनके साथ रहते थे।

आर्थिक लाभालाभ

भारत देश कृषिप्रधान है, अतः यहां खेती उत्तम, व्यापार को मध्यम और नौकरी को कनिष्ठ जाता था। देश-विदेश में सत्ता हस्तान्तरण की घट राजकर्ताओं की दृष्टि और मनोभूमिका में परिवर्तन अंगरेजी द्वारा नौकरी को उत्तम, वाणिज्य को मध्यम खेती को निकृष्ट स्थिति पर पहुंचा देने के फलस्वरूप भारतीयों की मनोवृत्ति भी बदलती जा रही और शि वर्ग की प्रवृत्ति खेती की ओर नहीं रही। वह को लज्जास्पद और अनुचित मानते हैं। बल और सा की कमी के कारण उनमें खेती की ओर रुचि उत्साह नहीं रहा। देहातों की जनसंख्या शहरों अधिक है। भारत भरमें ७ लाख गांव हैं। ग्रामव पढ़ाई के लिये तहसील में आते हैं। तहसील से जिले के में और वहां से बड़े शहरों में पहुँचते हैं और श्रमजी व्यापारी या सत्ताधारी बनकर अपना जीवन चलाते वड़े शहरों में आनेके पश्चात् ग्राम में जाकर रहना उनके अत्यन्त कष्टकर होता है। वह समझते हैं कि गांवों में ध रोजगार, आर्थिक उन्नति के साधन, अच्छी नौकरी न से उनका गांव में रहना असंभव है। ऐसे ही अनेक का से शहरों की जनसंख्या बढ़ती जा रही है, फलतः शहरों निवासस्थान और अनाज का अभाव बढ़ता जा रहा नाना प्रकार के देश-विदेश के लोग शहरों में आ बसे हैं फलतः भ्रष्टाचार, अधर्म और अनीति का प्रभाव निरन्त

ढ़ता जा रहा है। लोग पथ-भ्रष्ट होकर धनोपार्जन, धन इकट्ठा करना, पूंजीपति बन जाना ही जीवन का चरम उत्कर्ष मान बैठे हैं। धन ही उनके सुख का साधन बन बैठा है। परन्तु वास्तव में देखा जायें, तो यह धारणा भ्रान्त है। हमारे मतानुसार अधिकाधिक अन्नोत्पादन करने से, यथा लाभ धन से संतुष्ट रहने से अधिकाधिक देशवासियों को लाभ पहुँचेगा। अन्न-वस्त्र, निवास-स्थान, शिक्षा, चिकित्सा आदि जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिये। इनका अधिकाधिक उत्पादन और निर्माण आवश्यक है। ऐसा करने पर ही सार्वजनिक जनता और देश की आर्थिक उन्नति संभव है और हम हर क्षेत्र में स्वावलम्बी बन सकेंगे।

वेगवान् आर्थिक परिवर्तन

भोग-विलास के साधनों, मनोरंजन के कार्यों, व्यसनी वस्तुओं के सेवन तथा सट्टा, रेस, जुआ आदि की ओर मानव की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई है, फलतः आर्थिक परिस्थिति वेगवान् गति से परिवर्तित होती जा रही है। इस परिस्थिति के निर्माण का कारण अदृष्ट भगवान् नहीं है, बल्कि स्वार्थ, मानसिक निर्बलता और आदतों के वश होकर मानव दुःखी बन जाते हैं। शारीरिक रोग, मानसिक पीड़ा तथा धन-हानि के कारण जीवन अनियन्त्रित और चलायमान बनकर अवनति के गर्त में जा गिरता है। वर्तमान काल में अधिकांश लोग धन का दुरुपयोग कर रहे हैं तथा अनावश्यक, अप्राकृतिक

हानिकारक मादक पदार्थों, साधनों, साहित्य, पेय पदार्थ, चमक-दमकमय वस्त्र-परिधान तथा भोग के साधन के चक्कर में फँसे हुए हैं।

जिस देश में वैद्य, हकीम, डाक्टर, दवा अस्पताल जितने अधिक होंगे, उतने ही जोर से वह करेंगे कि उस देश में रोगियों की संख्या अत्यधिक यह सब योगाभ्यास के प्रति दुर्लक्ष्य का परिणाम लोग आरोग्यवर्धक नियमों का पालन नहीं करते। चारी और अज्ञानी लोगों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती रही है। इससे समझ लेना चाहिये, कि ऐसे लोग धनवान हों, उपाधिधारी, सत्ताधारी, धन्धाधारी कर्मचारी हों, उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति अनेक आधि-व्याधि उपाधि के मूल में विद्यमान है। जिस देश में पुलिस-चौकी और न्यायालयों की संख्या अधिक हो, उस देश में डाकुओं की संख्या अधिक साबित होती है और यह साबित होता है कि वहां स्त्री, जमीन, प्रभुत्व, ऐश्वर्य आदि लिये खींचतान और लड़ाई-झगड़े चलते रहते हैं।

स्वार्थ और परमार्थ

राजनीति में स्वार्थ की मात्रा सीमित और परमार्थ मात्रा असीम होनी चाहियें। यह उदात्त भावना धारण से मानव जनता तथा साथ ही अपना भी विशेष कल्याण कर सकेगा। जीवनोपयोगी आवश्यक साधनों को करने की सीमित प्रवृत्ति को स्वार्थ नहीं माना जा सकता अष्टांग योग के द्वितीय अंग ५ नियमों के अंगभूत

अपरिग्रह का अर्थ यह है कि आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह न किया जाये। क्योंकि इस प्रवृत्ति से अन्य लोगों के उन जीवनोपयोगी वस्तुओं से वंचित रह जाने की आशंका है। धन का उपार्जन भी आवश्यक सीमातक करना चाहिये और परिस्थितिवश अधिक धन संचित हो जाये तो उसका विनियोग परोपकारमूलक कार्यों में करना चाहिये।

शिक्षा और राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध

कुमारावस्था में विद्यार्जन के समय पास-पड़ोस के लोग और माता--पिता कहा करते थे कि उत्तम, मध्यम अथवा अधम प्रकार की सरकार का निर्माण हमारे प्रयासों पर निर्भर करता है किन्तु कभी कभी उक्त तीन प्रकारों में से किसी प्रकार की सरकार का संगठन अनायास ही हो जाता है। भूतकाल में विदेशी सरकारों ने ऐसे मानवों का निर्माण किया, जो उनके मनोनुकूल शासन-संचालन में सहायक थे। उन्हें ऐसे आदमी मिल गये, जो हाव-भाव, वेश-भूषा, खान--पान और आचार-विचार में उनका अंशतः या पूर्णतः अनुकरण करने लगे। वह ऐसी शिक्षा से दीक्षित किये गये, कि वह अनायास ही अनपेक्षित और अपरिचित रंग में रँग गये। संस्कृति की जगह सभ्यता जड़ जमाने लगी और ऊपरी तड़क-भड़क को ही जीवन का मूल मंत्र माना जाने लगा। शिक्षा का यह अवांछनीय प्रभाव जड़ जमाता जा रहा है फलतः पाश्चिमात्य हीन संस्कारोंने प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया है और भारत के उच्चतम संस्कारों का स्थान गौण हो गया है। भारतीय विद्वान् लेखों, पुस्तकों

और भाषणादि में विदेशी विद्वानों, वैज्ञानिकों भूगोल-इतिहास वेत्ताओं को अपने अभिमत के प्रतिपादन में प्रमाण मानकर अत्यन्त गौरव के साथ उनका उल्लेख करेंगे उनकी प्रशंसा के पुल बांधेंगे और उन्हीं को अपना आधार प्रेरक तत्व मानेंगे। परंतु स्वदेश भारत के सब प्रकार सुयोग्य विद्वान्, पूज्य, वन्दनीय, गौरवशाली, सौजन्यपूर्ण तथा उच्च विचारशील महानुभावों का कहीं उल्लेख नहीं करेंगे, उनका नाम भी नहीं लेंगे। यदि कहीं अपवाद रूप में करेंगे भी, तो अपने संकुचित विचारों की सीमा में उन महात्माओं को भी बांध लेंगे, जो विश्व-बन्धुत्व के आदर्श के उद्घोषक हैं, जिनका दृष्टिकोण व्यापक है और जिनके रोम-रोम से मानव-कल्याण की भावना का सौरभ प्रस्फुटित हो रहा है। पश्चिम-प्रभावित ऐसे भारतीय विद्वानों का कर्तव्य है कि वह अनुकरण में अन्धे बनकर अन्ध विश्वास के पीछे आंख मूंदकर आगे बढ़ते ही न चले जायें, अपितु पीछे मुड़कर देखें कि उन्होंने अवांछनीय विचारों का जो बीजारोपण किया है, उसके फलस्वरूप समाज विशृंखल और विघटित होता जा रहा है और उच्छृंखलता बढ़ती जा रही है, परंपरावाद और परिवर्तनवाद में संघर्ष चल रहा है और एक सुव्यवस्थित संघटन में अन्धाधुन्धी और धांधली का प्रवेश अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। यह दोष उन विद्वानों का नहीं है, बल्कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ही दोषपूर्ण है, जिसके प्रभाव में आकर लोग बहक गये हैं-बह रहे हैं। अतः हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली से दूषित

विदेशी तत्वों और आदर्शों को निकाल फेंकना चाहिये और उनके स्थान पर राष्ट्रीय गरिमा को उच्छ्वसित करनेवाले स्वावलम्बन विधायक और तन-मन को विकसित करनेवाले, उच्चादर्शों को सुशोभित करना चाहिये। ऐसा करनेपर ही हम अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रख सकेंगे।

उदाहरणस्वरूप भारत में कुछ ऐसे गण्यमान्य व्यक्ति हैं जो, अपने गौरव को बढ़ाने की महत्त्वाकांक्षा को लेकर विदेशों की यात्रा करते हैं और वहां के लोगों से अपना प्रशंसात्मक प्रचार कराते हैं और वहां से लौटने के बाद देशपर अपने आदर, मान, कीर्ति एवं प्रतिष्ठा की धाक जमाते हैं। यह स्थिति प्रत्येक स्वाभिमानी भारतीय के लिये अशोभनीय तथा अवांछनीय है और देश की उन्नति में भी बाधक है। भारत को स्वराज्य प्राप्त हुये आज १७ वर्ष व्यतीत हो गये। हिन्दी-भाषा को भारत की राष्ट्रभाषा के पद पर बैठाया जा चुका है। किन्तु विभिन्न भाषाओं, मत-मतान्तरों और विवादों के कारण हिन्दी का प्रयोग बहुत सीमित क्षेत्र में किया जा रहा है। अभी उसे पूर्णतया कार्यरूप में परिणत किया नहीं गया है। प्रत्येक देश की अपनी राष्ट्रीय भाषा होती है। जैसे जर्मनी में जर्मन, रूस में रूसी, फ्रान्स में फ्रान्सीसी, चीन में चीनी, इंगलेण्ड में अंगरेजी और इटली की इटालियन राष्ट्रभाषा है, उसी तरह भारत की एक ऐसी राष्ट्रभाषा होनी चाहिये, जिसे सभी भारतवासी बोलते और समझते हों। राष्ट्रीय गौरव और उन्नति पर भाषा का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। समग्र

भारत की विभिन्न भाषाओं के साथ हिन्दी का बहुत साम्य है। संस्कृत और हिन्दी सब से मिलती-जुलती और सबके संनिकट हैं। सर्व साधारण तथा अनपढ़ों के लिये संस्कृत का उच्चारण कठिन है। परन्तु हिन्दी सुविधाजनक, सहज-साध्य, राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहन देनेवाली, मधुर और कर्णप्रिय, सरल सुलभ शब्दों से समलंकृत, पारस्परिक एकता और प्रेम को बढ़ानेवाली है। अल्प परिश्रम से ही हिन्दी को पढ़ा-लिखा और समझा जा सकता है। अतः भारतमाता के सुपुत्र कहलाने वाले महानुभावों का कर्तव्य है कि वह हार्दिक प्रेम भावपूर्ण मतैक्य से हिन्दी को अपनायें। हिन्दी के प्रयोग में आनन्द और गौरव का अनुभव करें और प्राणपण से उसे संरक्षण प्रदान करें—सर्वत्र प्रचार और प्रसार करने का बीड़ा उठायें। वस्तुतः यदि हम एक स्वर, एकभाव और सद्भावना के साथ सच्चा प्रयास करें, तो हिन्दी स्वतः अपना उचित स्थान ग्रहण कर लेगी। सच पूछा जाये, तो हिन्दी ही अनेकता में एकता, विषमता में समानता और विरोध में मेल-जोल और प्रेम की प्रतिष्ठा करने में सक्षम है। पारस्परिक कलह को प्रशमितकर हिन्दी देश के जन-जीवन में आत्मविश्वास, पारस्परिक योग-क्षेम और सहयोग भाव के बीज बोयेगी और एकता तथा संगठन की भावना को सुदृढ़ बनायेगी। जैसे अंगरेजों ने अंगरेजी को इंगलैण्ड तक सीमित नहीं रखा, बल्कि जहां कहीं—जिस देश में अंगरेज पहुँचे, वहां उन्होंने बड़ी चतुराई से अंगरेजी भाषा और संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया और वर्तमान काल

में भी वह शान्त-संतुष्ट होकर बैठ नहीं गये हैं—बल्कि अपनी प्रचार और प्रवृत्ति में अहर्निश संलग्न हैं, उसी तरह हम भारतवासियों को भी प्रयास करना चाहिये। आज का हमारा आरम्भिक कर्तव्य यही है कि हम हिन्दी का व्यापक विस्तार करें और उसे घर-घर में पहुँचा दें। इसके बाद हमें अपनी प्रवृत्ति आगे बढ़ानी चाहिये और दुनिया में जहां कहीं भारतीय प्रजा, भारतीय राजदूत, प्रजा-प्रतिनिधि, प्रचारक विद्यमान हैं; वहां सर्वत्र हिन्दी का प्रचार जोर-शोर से करना चाहिये। भारतवासी संख्या में अत्यधिक हैं। कहा जाता है कि दुनिया के प्रति सात व्यक्तियों में एक भारतवासी है। अतः हमारा अनुरोध है कि भारत के गौरव, आत्मसम्मान, प्रतिष्ठा, सुयश को बढ़ाने के लिये हिन्दी का प्रचार-प्रसार होना आवश्यक है।

राजनीति का दूसरा अर्थ है विश्वव्यापी मानव-कल्याण की नीति। किन्तु यह तभी संभव है, जब उसके साथ आध्यात्मिक तत्वों को भी प्रश्रय दिया जाये। आध्यात्मिक विचारों का समावेश होने पर ही शान्तिवादी, सह-अस्तित्व के पोषक, विश्व-बन्धुत्व के विस्तारक, मानवीय मूल्यों के प्रतिष्ठापक निर्भीक, कर्तव्यपरायण, उदारचेता कार्यकुशल, स्वाभिमानी और आत्मनिर्भर बनकर हम दुनिया में अपनी आवाज बुलन्द कर सकेंगे, हमारे मतामत का महत्त्व होगा और विवेकशील, सज्जनों में हमारा सम्मान बढ़ेगा। भारतीय राजनीति के विधायकों और संचालकों का इन तथ्यों पर विचार करना चाहिये और अपने आयोजनों से जन-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिये।

अन्त में विधि-विधायकों और कानून कायदे के निर्माताओं से हमारा विनम्र निवेदन है कि वह कानून कम बनायें और जनता को पवित्र आचार-विचारों के ओर अधिक प्रेरित करें। जनता जब स्वभावतः धर्म और नीतिमत्ता की ओर प्रवृत्त होगी, तब उसकी अपराध-वृत्ति स्वतः समाप्त हो जायगी; समाज को स्थायी सुख, शांति और योगक्षेम का आश्वासन मिलेगा, मानव को सुरक्षा की गारण्टी मिलेगी, परस्पर आत्मीयता और सहयोग के साथ वह काम करेंगे; चोर-लुटेरों और गुंडों का कहीं आतंक नहीं रह जायगा; अतः कानून-कायदों की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। अतः कानूनी-परिवर्तन की अपेक्षा मानस-परिवर्तन विशेष अपेक्षित और कल्याणकर है। गांधी और विनोबा का मानस-परिवर्तन सिद्धांत पूर्णतः सत्य है। विनोबा की विगतवर्षीय प्रवृत्तियों से प्रमाणित हो चुका है कि सदाचार के सिद्धांत अपराधी मानस में भी उत्क्रांति उत्पन्न कर सकते हैं — हलचल मचा सकते हैं और जीवन को बदल सकते हैं। विनोबा ने हृदय परिवर्तन के आदर्श की चरितार्थता प्रमाणित कर दी है। विनोबा की अहिंसक क्रांति में कौन सा कानून काम कर रहा है? किस शासन-सत्ता के दबाव में आकर भू-दान, सम्पत्ति-दान आदि मंगलकारी कार्यों की ओर लोग प्रेरित हो रहे हैं। विनोबा की प्रवृत्ति ... उत्कर्ष और जन-कल्याण की दृष्टि से सर्वमान्य है। सर्वोदय का प्रशांत मंगल दीप जन-मानस के अन्तःकरण को प्रकाशमान बना रहा है और वह अपनत्व और सह-

योग का मूल्यांकन करने लगे हैं। इस दशा में सरकारी कानून-कायदे केवल असंतोष ही उत्पन्न करते और अनिष्टकर क्रांति के बीज भी बो देते हैं। परंतु विनोबा की दिव्य वाणी ने यह सब अनायास कर दिखाया। इसके अतिरिक्त अन्य अनेकशः क्षेत्रों में कानून की पंगुता प्रमाणित हो रही है। मद्य-निषेध (नशाबंदी) में कानून की शक्ति काम नहीं कर रही है। भले ही कुछ लोगों ने कानून के भय या सम्मान की मनोवृत्ति से मादक वस्तुओं का उपयोग बन्द कर दिया हो, परन्तु अधिकांश में अब भी वह प्रचलित है। इसके विपरीत विद्वान् और अधिकारी प्रचारकों द्वारा यदि मादक वस्तुओं की अनुपयोगिता और दुर्गुणों को बताया जाता और उसकी हानियां समझाई जातीं, तो जन-जीवन पर अप्रतिहत शुभ प्रभाव पड़ता और वह इस नारकीय विभीषिका से मुक्त होने के लिये स्वयं प्रेरित होते। यह स्पष्ट है कि जन-मानस इतना उच्छृंखल और मनमाना हो गया है कि वह कानून-कायदों की परवाह नहीं करता। कानून का दबाव और विचार-परिवर्तन में बहुत बड़ा अन्तर है। कानून केवल मानव-मानस के अन्तर्मन में हलचल या आन्दोलन उत्पन्न करता है और वह स्वयं प्रेरित भाव से दुराचारों से विमुख होकर सदाचार और नीतिमत्ता को धारण करता है। अतः हमारी सरकारों और विधायकों का कर्तव्य है कि वह कानूनों का जाल बिछाने की अपेक्षा जनता में स्वयं प्रेरित सद्गुणों का विस्तार करें।

टैक्सों की भरमार भी जन-जीवन विपन्न बना रही है। उद्योग-व्यापार के पैर लड़खड़ा रहे हैं और समक्ष अनेक जटिल समस्यायें खड़ी हो गई हैं। सरकार का कर्त्तव्य हैं कि वह देश के सिर पर लदे कराधान के बोझ को हल्का करे और जनसाधारण को स्वतंत्रता पूर्वक काम करने का अवसर दे।

आभार प्रदर्शन

'रामतीर्थ' मासिक अपने यशोधवल जीवन का वर्ष पूर्ण कर ७ वें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। विगत ३५-४० वर्ष से श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की गति-विधि की जानकारी रखने वाले और पवित्र तथा आदर्श जीवन बिताने वाली विदुशी महिलाओं और सज्जन पुरुषों की तन-मन-धन से सेवा करते हुये 'रामतीर्थ' मासिक उत्तरोत्तर उन्नत स्थिति पर पहुंचता जा रहा है तथा संभ्रान्त परिवारों में इसका पठन और सम्मान बढ़ता जा रहा है। शुभ अनुष्ठान का सर्वत्र स्वागत होता है और वह दिन-प्रतिदिन उन्नतिशील बनता जाता है। इसके अतिरिक्त शुभ कार्य में सहयोग देनेवाले लोगों को भी यथेष्ट लाभ होता है और वह अपने क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति करते हैं। जन-मानस में सर्वोपरि और सतत आनन्द का स्रोत तरंगायित रखने वाला 'रामतीर्थ' मासिक पाठकों को अत्यन्त प्रिय लगता है। उनके अधमप्राय जीवन के उद्गारक, सच्चा मार्गदर्शक 'रामतीर्थ' मासिक के दर्शन यदि निश्चित तारीख तक नहीं होते तो उनका मन उदास

प्रतीक्षा में ऐसा आकुल-व्याकुल हो उठता है, जैसे स्वाति-बिन्दु के लिये चातक तरसता रहता है। किसीने प्रतिमास 'रामतीर्थ' मासिक के ११ ग्राहक बनाने का शुभ संकल्प कर रखा है। ऐसा करने में ही वह अपने जीवन को सार्थक मानता है। क्योंकि आत्मज्ञान के पुंज इस 'रामतीर्थ' मासिक का प्रचार-प्रसार करने में ही वह अपना अहोभाग्य समझता है। वैज्ञानिक योगी लोग कुछ समय के लिये वायु के वेग को रुद्ध करने—रोकने में समर्थ हो सकते हैं; किन्तु मनकी गति को अवरुद्ध करना दुष्कर है। 'रामतीर्थ' मासिक इस परम बलवान् और अप्रतिहत शक्ति मन को वश में करने के लिये प्रेरित करता तथा उपाय भी बताता है, समाज, देश, तथा धर्म को लाभ पहुंचाता तथा मानव-चरित्र को उन्नत बनाने के साधन-विधान प्रस्तुत करता रहता है। इसके पठन से अन्तर्निहित जीवनी शक्ति का अदम्य स्रोत उमड़ उठता है, मन प्रकृतिस्थ होकर आत्मचिन्तन की ओर प्रवृत्त होता है। यही कारण है, कि 'रामतीर्थ' मासिक पाठकों को अत्यन्त प्रिय है। योग और प्राकृतिक जीवन का मूल्य-महत्व असीम है — अनन्त है।

'रामतीर्थ' मासिक यौगिक और प्राकृतिक जीवन की ओर प्रेरित करता है। यह पाठकों को प्राणों के समान प्रिय है, क्योंकि 'रामतीर्थ' मासिक के निरन्तर पठन से ही उनका जीवन शुद्ध-बुद्ध और सफल हुआ है और उच्च

करते हैं। अन्त में इन सबके प्रति हार्दिक प्रशंसा के पुष्प बरसाते हुए हम यही अभीष्ट चिन्तन कर रहे हैं कि भविष्य में ये सब उदार महानुभाव और संस्थाएं 'रामतीर्थ' मासिक के प्रति आत्मीय और ममत्व भाव प्रकट करते हुए तन-मन-धन से स्वयं सहयोग करेंगे और अन्य लोगों को एतदर्थ प्रेरित करेंगे और इस हमारे इस जन-सेवा मूलक शुभ अनुष्ठान में हमारा उत्साह बढ़ायेंगे — यह शुभेच्छा !

अन्त में हम अपने ग्राहकों, अनुग्राहकों और एजेन्टों और विक्रेताओं, विज्ञापनदाताओं और हितैषी प्रचारकों के प्रति भी आंतरिक आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने 'रामतीर्थ' मासिक के प्रचार-प्रसार में अपना बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया है और आशा करते हैं कि भविष्य में भी वे अपने सहयोग द्वारा सत्साहित्य के विस्तार में हाथ बटा कर हमारे उत्साह को बढ़ाते रहेंगे।

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या का समाधान चाहते हों तो लिख भेजें --सम्पादक]

श्री कान्तिलाल मोहनलाल, बम्बई

पत्र नं. १

प्रश्न नं १ :— योग के कितने प्रकार हैं ? सर्वोत्तम योग कौन सा है ? योग का क्या अर्थ होता है ?

प्रश्न नं. २ :- मुझे बचपन से ही सत्संग में जाने की आदत है। महात्मा लोग धनवानों और उनके धनार्जन के प्रति अपने भाषणों में वारंवार तिरस्कार और निन्दात्मक उद्गार प्रकट करते हैं और कहते हैं - अर्थ अनर्थ का मूल है। किन्तु प्रायः देखा जाता है कि महात्मा लोग पूंजीपतियों के बंगलों में निवास करते हैं। मठ, मंदिर, आश्रम, अन्नक्षेत्र, गोशाला, आदि के निर्माण के

लिये धन की प्राप्ति धनवानों से ही करते हैं। यह मार्ग शुभ अवश्य है। किन्तु महात्माओं के कथन से जन-समाज में यह भ्रांत धारणा फैलती है कि धनवानों के आचार-विचार में अपवाद रूप से ही सुधार हुआ है और पाण्डित्य का प्रभाव जमाने तक ही सीमित है। क्या महात्माओं का यह परम कर्त्तव्य नहीं है कि वह अधर्म, राजनीति को ही परम धर्म समझाने वाले समाज को सन्मार्ग की ओर ले जायें।

उत्तर नं. १ :— भक्ति, कर्म, तंत्र, मंत्र, राज, अष्टांग योग आदि योग के अनेक प्रकार हैं। किन्तु इन सब में अष्टांग योग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसके अन्तर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास किया जाता है। यही सर्वोत्तम योग है। इस योग की साधना में मन को आत्मा में लीनकर अलौकिक आनन्द और सुख की अनुभूति की जाती है। योग का उद्देश्य है — लौकिक तथा पारलौकिक कार्यों में अन्तःकरण को जोड़ देना — तन्मय बना देना। युज् धातु से योग शब्द की व्युत्पत्ति होती है, जिसका अर्थ है — ऐक्य, सन्धि, मिलन, तल्लीन, तदाकार। कोई भी कर्म बिना योग के सुयोजित रूप से संपन्न किया नहीं जा सकता। एकाग्रता और मनोयोग पूर्वक कर्म करने से ही कर्म कुशलता चरितार्थ होती है और उसका फल भी उत्तम होता है। अतः जीवन की सफलता के लिये अष्टांग योग का अभ्यास करना मानव मात्र का कर्त्तव्य है।

उत्तर नं. २:— सेठ जी, आपका प्रश्न अनुरूप और श्रेयस्कर है। वर्तमानकालीन प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर आपने प्रश्न पूछा है, अतः आपका प्रश्न प्रशंसनीय है। यह प्रश्न अगर कोई गरीब या मध्य वर्ग का व्यक्ति पूछता, तो उसका और भी अधिक महत्त्व होता। क्योंकि आप स्वयं धनवान् हैं कदाचित् मेरा उत्तर आप के लिये असन्तोष का कारण ही हो। मुझे संदेह हो रहा है कि किसी महात्मा ने सम्भवतः आप से धन लेकर उसे परोपकारी काम में नहीं लगाया बल्कि स्वार्थ-साधन के लिये उसका दुरुपयोग किया है। महात्मा वस्तुतः उसी को माना जा सकता है, जो यमनिष्ठ, तपोनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ और कर्त्तव्यनिष्ठ हो। अष्टांग योग के निरन्तर अभ्यास, तपश्चर्या, ब्रह्माकार वृत्ति एवं त्याग वैराग्य रूप भगवा वस्त्र का परिधान कर जो निष्कामभाव से काम कर रहे हों, वही महात्मा धनी-निर्धन तथा सार्वजनिक जनता का कल्याण और उद्धार कर सकते हैं। किन्तु जो साधु-महात्मा, कीर्ति, धन और शिष्य-मण्डली का विस्तार करने में जीवन का सार मानकर प्रवृत्तिशील है, ऐसे स-कामभावी साधु-महात्मा कहलाने के अधिकारी नहीं। ऐसे अधिकांश साधु महात्मा भारतभूमि में विद्यमान हैं, जो धनवानों के बंगले में रहना पसन्द नहीं करेंगे, विस्तरे पर शयन नहीं करेंगे, ऐसे महात्माओं से धनवान्, गरीब और मध्यम वर्ग — सबका सच्चा कल्याण होता है और वह

व्यसनहीन बनकर धर्मप्रेमी, आचारप्रेमी और नीतिप्रेमी बनेंगे। वर्त्तमान समय में स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज का जीवन परम पवित्र और साधु-महात्माओं के लिये अनुकरणीय है। योगी-महात्माओं के उदात्त जीवन और उपदेशों से समाज निःसन्देह सुधरता है और सर्वत्र शांति तथा शुभ के दर्शन होते हैं।

श्री ओ३म् प्रकाश शर्मा, सलेमपुर लघु

पत्र नं.—२

प्रश्न नं.—१—वज्रोली मुद्रा, महामुद्रा, तथा कुण्डलिनी जागरण क्रिया की विधि, गुण और समय का विस्तृत परिचय कराइये।

प्रश्न—२—क्या दूध को बिना शक्कर डाले भी पिया जा सकता है ?

उत्तर—१—वज्रोली मुद्रा का अभ्यास अष्टांग योग के अन्तर्गत है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम के पश्चात् अनेक प्रकार की मुद्राएं आती हैं, जिनके नाम हैं—महामुद्रा, महाबन्ध मुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी, वज्रोली, विपरीत करणी, ताड़न, शक्तिचालन, परिधान युक्ति परिचालन इत्यादि। कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर आज्ञाचक्र तक ले जाना चाहिये। सहस्र दल पद्म से अमृतरस का प्रस्रवण नीचे की ओर होता है। ब्रह्मरंध्र से प्रस्रवित इस अमृत-रस को कुण्डलिनी पान कर जाती है, फलतः मनुष्य को उसका कुछ भी लाभ नहीं

मिल पाता । अनेक जन्मों के शुभाशुभ कर्मों की संस्कार रूप स्मृतियों के पुंज को कर्माशय कोष कहा जाता है। उस कर्माशय कोष को साढ़े तीन अंगुल से गोलाकार आवेष्टित कर कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई है। इस कुण्डलिनी शक्ति को प्राणायाम, मुद्रा तथा षट्चक्र-भेदन क्रिया आदि महत्वपूर्ण अभ्यास से जाग्रत करके क्रमशः ब्रह्म रन्ध्र तक ले जाना पड़ता है। छ चक्रों में अनेक प्रकार के देवताओं का निवास है। वीज-मंत्र, उनके स्वरूप, शब्द, विधि और नियमों के आधार पर कुण्डलिनी शक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाकर ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाना पड़ता है। प्रस्रवित अमृतरस को सारे शरीर में पहुँचाना पड़ता है। ओजस, तेजस, दिव्य शांति, दिव्यानन्द, मनोनिरोध, शारीरिक बल, नीरोगी काया, निर्मल बुद्धि, प्रशान्त चित्त. पवित्रअहंकार, दीर्घायु, विशेष सहन-शक्ति, व्यवहारिक सफलता, पारमार्थिक पथ में पारंगत, जन्म को सार्थक बनाने में कुशल, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यास आश्रमों में प्रवेश कर तत्तत् आश्रमों के नियमों के अनुसार श्रेयस का यथेच्छ अर्जन और धारण किया जा सकता है। मानव-जन्म का उद्देश्य या कारण यह है जीवन में कर्तव्य-कर्म का निर्वाह करते हुए जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्ति प्राप्त करना। एतदर्थ सुलभ कुण्डलिनी शक्ति को सजग बनाकर उसकी आरोहण-अवरोहणगति को सांमजस्य मिलाने में पारंगत होना आवश्यक है।

वज्रोली मुद्रा से पहले पालनीय नियम

वज्रोली मुद्रा के साधक की आयु १४ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये । शरीर के अंग-प्रत्यंगों और इन्द्रियों में पर्याप्त बल हो । नौलिकर्म का अभ्यास अच्छा हो । आहार-विहार और शयनादि प्राकृतिक नियमानुसार हों और अन्तःकरण वज्रोली मुद्रा के अभ्यास के लिये श्रद्धा-विश्वास से ओतप्रोत हो, यदि ऐसी परिस्थिति हो तो १०० वर्ष की आयु तक के स्त्री-पुरुष वज्रोली मुद्रा की साधना कर सकते हैं ।

आहार-सेवन

वज्रोली मुद्रा के अभ्यास-काल में मिर्च, मसाला, इमली, नमक आदि अत्यल्प मात्रा में ग्रहण किये जायें । चावल, गेहूं, साग सब्जी, फल, दुग्धादि का सेवन अनिवार्य है । शराब, गांजा, अफीम, सिगरेट-बीड़ी, तपकीर मांस-मछली, चाय, सिनेमा और अन्य मनोरंजक कार्यक्रम पूर्णतया वर्जित (निषिद्ध) हैं ।

जीवन का ध्येय

जीवन का ध्येय पारमार्थिक प्रमुख और व्यावहारिक गौण होना आवश्यक है । वर्तमान परिस्थिति और परिवर्तनशील जगत् के साथ त्याग-वैराग्यमयी दृष्टि रख कर-तारतम्य मिलाकर अपनी ध्येय-सिद्धि के मार्गपर आगे बढ़ना चाहिये ।

मानसिक विचार

योग विद्या के प्रति श्रद्धा-विश्वास और आ[illegible] भाव, योगियों के प्रति सम्मान और सेवा-भाव, नौकरी अथवा रोजगार-धन्धे के समय परोपकारमूलक कार्यों में संलग्न रहना, सत्संग-प्रेम, सत्कर्मानुराग, वज्रोली क्रिया की साधना करने तक नित्य-प्रति विधि विधानानुसार अभ्यास चालू रखने का दृढ़ संकल्प, निन्द-स्तुति में समत्व भाव, वाद-विवाद के प्रति अरुचि प्रदर्शन, योगविद्या के मूल निर्माता भगवान शंकर की कृपा-करुणा तथा गुरुदेव के अनुग्रह की बात हृदय में धारण करना एवं तदनुकूल आचरण करना-सब उत्कृष्ट मानसिक विचारों के साथ साधना में प्रवृत्त होने पर अभीष्ट लाभ प्राप्त होता है। "ॐ नमः शिवाय" मन्त्र उच्चारण और जप करते रहने से अन्तःकरण हर समय पवित्र बना रहेगा। छः मास तक प्रतिदिन प्रातः काल १००८, मध्याह्न काल में १००८, सायंकाल सूर्यास्त के समय १००८ और रात्रि को शयन के समय १००८ बार भगवान् शिव के मन्त्र को खण्डरहित जप करने से ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती है।

वज्रोली मुद्रा का आरम्भ

नौलिकर्म—वज्रोली क्रिया के अभ्यास के आरंभ में नौलिकर्म अवश्य करना चाहिये। पूर्ण पद्मासन, पद्मासन; लोलासन, सुप्त वज्रासन, भुजंगासन, शलभासन, विपरीत करणी, पवन मुक्तासन, अनुलोम-विलोम प्राणा-

याम, प्रातः काल ६ से १८ बार और संध्या काल ६ बार करें। वज्रोली क्रिया के समय बाह्य कुम्भक, अन्तः कुम्भक तथा केवल कुम्भक करना पड़ता है। शिश्नेन्द्रिय के संकोचन तथा प्रसारण, मूत्राशय के संकोचन तथा प्रसारण, वीर्याशय के संकोचन तथा प्रसारण एवं मलाशय के संकोचन तथा प्रसारण बाह्य कुम्भक तथा अन्तः कुम्भक के बिना सफल नहीं हो सकेगा। प्राणायाम के समय मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध निर्धारित विधि से निर्धारित समय तक करें। प्राणायाम में मात्रा और उसकी सीमा का ज्ञान भी आवश्यक है। १६ मात्रा तक पूरक, ६४ मात्रा तक कुम्भक तथा ३२ मात्रा तक रेचक किया जाये तब एक उच्च-कोटिका प्राणायाम सम्पूर्ण होता है। पूरक में १२ मात्रा, कुम्भक में ४८ मात्रा तथा रेचक में २४ मात्रा का समय लगाया जाये तो उसे मध्यम श्रेणी का प्राणायाम समझना चाहिये। पूरक ६ मात्रा, कुम्भक २४ मात्रा तथा रेचक १२ मात्रा तक करने पर कनिष्ठ प्रकार का प्राणायाम सिद्ध होता है। वज्रोली क्रिया-साधना के अधिकारी को चाहिये कि वह उच्चकोटि के प्राणायाम के अभ्यास में पूर्णतया पारंगत हो।

वज्रोली क्रिया करने का समय

प्रातःकाल स्नान करने के पश्चात इस क्रिया का अभ्यास करें। मलावरोध, जीर्णज्वर और अनिद्रा-पीड़ित अवस्था में, भोजन के ६ घण्टे तक, जल-सेवन से १

घण्टे तक, शरीर में दाह (अधिक उष्णता) हो [illegible]
तथा पित्तविकार पीड़ित लोग इस क्रिया को न करें।
जिन लोगों को प्रातःकाल समयाभाव हो, वह सायंकाल
पेट खाली होने पर वज्रोली मुद्रा का अभ्यास करें।

अभ्यास के उपकरण

घी (गाय का उत्तम), अरण्डी का तेल, ब्राह्मी तेल,
चांदी की भिन्न-भिन्न आकार की नलियां, १२ से १
अंगुल लम्बी सीसे की (पेन्सिल जितनी मोटी) सलाई,
जल से भरा हुआ पात्र आदि वस्तुएं अभ्यास के उप-
करण हैं।

वज्रोली मुद्रा का प्रारम्भ

उत्कटासन लगाकर बैठ जायें। सीसे की सली में
घी [अथवा तेल लगायें। सीसे की सली का अग्रभाग
दो अंगुल की अल्प मात्रा में टेढ़ा करें। शिश्नेन्द्रिय को
बायें हाथ से पकड़ रखें: दाहिने हाथ से शिश्नेन्द्रिय
के छिद्र में सीसे की नली को एक अंगुल तक प्रविष्ट
कर रखें इस प्रकार पहले दिन ३ बार करें। दूसरे
दिन ३॥ अंगुल सली को प्रविष्ट करें। इस प्रकार प्रति
दिन आध-आध अंगुल बढ़ाते हुए सला को शिश्नेन्द्रिय
में प्रविष्ट करायें। ६ से ८ अंगुल तक पहुँच जाने के
पश्चात् सली को और अधिक अन्दर पहुंचाने का प्रयत्न
करें। इस प्रकार १५ से २१ दिन तक अभ्यास जारी
रखें। तत्पश्चात् त्रिकोणाकार चांदी की नलीका के एक
भाग—जो सीसे की सली—जितना मोटा हो—को शिश्नेन्द्रिय

के छिद्र के अन्दर प्रवेश करायें। नलिका के दूसरे अग्रभाग—जो लम्बगोलाकार है—को मुख के अधरोष्ठों पर रखकर मुख से हवा की फूँक मारें। इस फूँक के आधार पर हवा शिश्नेंद्रिय के छिद्र द्वारा मूत्राशय-कोष में पहुँच जानी चाहिये। इस प्रकार वायु की फूँक ३ दिनतक ८ बार, ४ से १० दिन तक १२ बार, ११ से २२ दिन तक १६ बार, २३ से ३० दिन तक २० बार, ३१ से ४० दिन तक २४ बार फूँक मारनी चाहिये। तत्पश्चात् चांदी की नलिका—जो १२ इंच लम्बी और सीसे की सली—जितनी मोटी होती है और जिसके दोनों अग्रभाग किंचित् मुड़े हुये होते हैं—को शिश्नेंद्रिय के छिद्र में ६ से ८ इंच तक प्रवेश करायें। नलिका को अन्दर प्रविष्ट कराते समय बायें हाथ से नलिका तथा शिश्नेंद्रिय को पकड़ रखें और मध्य नौलिकर्म करें मध्यनौलि के समय नलिका के छिद्र द्वारा मूत्राशय में वायु का प्रवेश होगा और नौलि के पश्चात् वायु बाहर निकल जायेगा। यह १५ दिन पर्यन्त १ मिनट करें। तदुपरान्त शुद्ध पात्र में नलिका का अग्रभाग रखें, नौलिकर्म करें। मध्यनौलि स्थिर करें, उड्डीयान बन्ध करें। इस समय जल मूत्राशय में प्रवेश करेगा। यदि न करे, तो नलिका को साधारण रूप से आगे-पीछे की ओर संचालित करें। जल का भाग २ तोला से ५ तोलातक प्रथम दिन प्रवेश करने की सम्भावना है। ८ दिन तक ५ तोला जल खींच करके नलिका द्वारा निकालें। यदि जल नलिका से बाहर न निकले, तो नलिका को शिश्नेंद्रिन से बाहर निकाल लें। ८ से २१ दिन तक १० तोला, २२ से ३१ दिनतक

१२ तोला। तदुपरान्त १२ से २४ तोला तक जल नलिका द्वारा खींचें। यह जल-प्रयोग समाप्त हुआ।

दुग्ध प्रयोग

जल के स्थान पर दुग्ध पात्र में से नलिका द्वारा खींचें। परिमाण और समय जल के समान है।

तेल का प्रयोग

दुग्ध-प्रयोग के पश्चात् खोपरे (नारियल) अथवा तिल के तेल को दुग्ध-प्रयोग के समान खींचना चाहिये। मात्रा ८ दिन तक दो तोला, ९ से २० दिन तक ४ तोला, २१ से ३० दिन तक ६ तोला, ३१ से ४५ दिनतक ६ से ८ तोले तक खींचना चाहिये। १ से २ मिनट तक खींचे हुए तेल को अन्दर रोक रखना चाहिये; तत्पश्चात् निकाल देना चाहिये।

मधु का प्रयोग

मधु तेल से गाढ़ा होता है, अतः उसकी मात्रा आधी समझनी चाहिये। मधु को १ से ३ मिनट तक अन्दर रोक रखने के बाद निकाल दें।

पारे का प्रयोग

इस प्रयोग के समय विशेष ध्यान रखना होगा। पारा मधु से गाढ़ा होने के कारण उसका प्रवेश विशेष परिश्रम के साथ उचित ढंग से करना पड़ेगा। मेरे गुरुजी वज्रोली मुद्रा के समय विशेष सावधान रहते थे। जहां कहीं मुझे कठिनाई बाधक होती, तब तुरन्त उचित मार्गदर्शन कराते थे।। वज्रोली क्रिया को हम गुरुजी की अनुपस्थिति में नहीं

करते थे। जब पारा खींचने के अभ्यास को ६ मास बीत गये और हम निरापद रूप में यह क्रिया करने लगे, तब गुरुजी का ध्यान इस ओर नहीं रहता था। जब हम १० से ५ हजार की जनसंख्यामें वज्रोली क्रियाका प्रदर्शन सभीके समक्ष करते थे, तब उपस्थित सर्वसाधारण और प्रतिष्ठित वर्ग आश्चर्य-चकित हो उठता था और योग-बल को महत्त्वपूर्ण मानते हुये उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता था। योग के षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्राएँ, समाधि आदि अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयोग देखकर प्रयोग तथा भाषणों के पश्चात् गगनभेदी उच्च स्वर से जनसमुदाय जयघोष करने लगता था। मेरे योगी गुरु, महर्षि पतंजलि, भगवान् शंकर की जय-जयकार से वायुमंडल गूँज उठता था। आज से ३५ वर्ष पहले मेरे गुरुदेव सारे भारत में यौगिक प्रयोग और भाषण किया करते थे। वज्रोली क्रिया के समय मधु से भी आधा परिमाण पारे का होना चाहिये। १ से ३ तोला पारे के खींचने पर यह प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

आवश्यक तथा सावधानी की सूचना

जब सीसे की सली (जिसमें छिद्र नहीं होता) का अभ्यास किया जाता है, तब ३ से ५ दिन तक शिश्नेंद्रिय के छिद्र में कुछ जलन होती है। इस जलन के ४ से १२ घण्टेतक रहने की संभावना है। मूत्र के रंग में अधिक पीलापन भी रह सकता है। अधिक उष्णता के बहिर्गमन के समय ऐसा होने की संभावना है। इस समय प्रतिदिन के अभ्यास को भंग न करे। दिन भर में ६ से ८ बार शीतल जल का सेवन

अवश्य करें। इससे भूख बढ़ जाती है। फल, दूध, चावल, साग-सब्जी का सेवन उचित मात्रा में करें। त्रिकोणाकार नलिका से जल की फूँक मारनी चाहिये। फूँक मारते समय जल मूत्राशय में प्रवेश करता है। इस जल को नलिका द्वारा अथवा मूत्रमार्ग द्वारा निकालना चाहिये।

वज्रोली मुद्रा के लाभ

वीर्यनाश मृत्यु और वीर्यरक्षा जीवन है। वीर्य के दो प्रमुख मार्ग हैं—अधो और ऊर्ध्व। स्वप्नदोष, मूत्र के साथ, मैथुन से अथवा अन्य कुरीति से वीर्य पात होने से सारे शरीर के मुख्य आधार-स्तम्भ शक्ति का ह्रास होता है। फलतः जीवन-मरण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वीर्य का दूसरा गमन-मार्ग ऊर्ध्वमुखी (ऊपर की ओर) है। वीर्य जब गाढ़ा बनता है, तब ओजस बनकर दृष्टि तेज, श्रवण शक्ति, जिह्वा की आस्वाद-शक्ति, अंग-प्रत्यंगों में दिव्य बल, कुशाग्र बुद्धि, बलवत्तर स्मरण शक्ति, विशाल वक्षस्थल, गृहस्थ जीवन में बलवान् तथा तेजस्वी सन्तानों की उत्पत्ति तथा यश-प्राप्ति, परमार्थ-मार्ग में प्रवृत्ति-पटुता समाज का हित साधन, परमानन्दमय, उत्साह, कष्ट-सहिष्णुता, बल-ऐश्वर्य-प्राप्ति, संसार की असारता की अनुभूति और आत्मदर्शन की भावना, अन्तःकरण की पवित्रता, सिद्धि मिलते हुयें भी अपने प्रति दुर्लक्ष्य, समाधि-अवस्था में आत्मानन्द की दीर्घकालीन अनुभूति में मस्त रहने की आकांक्षा, एकान्त सेवन की इच्छा, वन-पर्वतादि नैसर्गिक सौन्दर्यधामों में भ्रमण करने की भावना आदि अनेक लाभ

के लाभ वीर्य-धारण से होते हैं। गृहस्थों के लिये वज्रोली मुद्रा से यह लाभ है कि वीर्य गाढ़ा और परिपुष्ट होने से मैथुन के समय दीर्घकाल तक वीर्यस्खलन नहीं होता। चाहे जितने समय तक वीर्य को वीर्याशयकोश में स्तम्भित रख सकते हैं और समग्र शरीर में विशेष तरह की शक्ति, इन्द्रियों पर अन्तःकरण का स्वामित्व, इन्द्रियों में सहन-शक्ति, धातु में पतलेपन का अभाव, वृत्ति की एकाग्रता के आधार पर वीर्य-पतन को अधिक समय तक (घण्टों तक) वीर्याशयकोष में अवरुद्ध रख सकते हैं और स्वेच्छानुसार निकाल सकते हैं। वज्रोली मुद्रा के और भी अनेक महत्त्वपूर्ण लाभ हैं। किन्तु यहां उत्तर के रूप में उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन करा दिया गया है। उमेश योगदर्शन के द्वितीय खण्ड में वज्रोली मुद्रा के महत्त्व, विधि, समय, साधन तथा लाभ के सम्बन्ध में विस्तार के साथ वर्णन किया जायेगा।

उत्तर-२— दुग्ध के साथ यदि जल का मिश्रण हो, तो अल्प मात्रा में शक्कर की आवश्यकता है। धारोष्ण दूध में शक्कर नहीं डालनी चाहिये। गाय का दूध अधिक लाभदायक है। गरम करते समय यदि दूध में पानी छोड़ा गया हो, तो शक्कर भी छोड़नी चाहिये। ठण्डा अथवा कच्चा (बिना गरम किया हुआ) दूध नहीं पीना चाहिये।

पत्र संख्या ३

श्रीमालाराम बालोतरा, राजस्थान

प्रश्न नं. १ :— मेरा नाम मालाराम है मेरी उमर २६ साल की है जब मैं ८ साल का छोटा था जब से मेरे

पांव के तलवे फटते हैं, फटते-फटते अब मेरे हाथ भी फटते हैं और मेरे पांव तो ऐसे हो गये जैसे ऊँट के पांव के तलवे होते हैं। यह बीमारी सरदी गरमी सभी मौसम में फटते हैं और ऐसे होजाते हैं जैसे कि ऊँट के तलवे रहते हैं नरम नहीं पड़ते हैं जब मैं वेसलीन लगाता हूं तब मुझे चलने में कठिनाई नहीं होती है और जो हाथ फटते हैं वो पावों की तरह अंगुलियां तथा अंगूठे फटते हैं हथेली कुछ कम फटती हैं शरीर मेरा दुबला पतला है और शारीरिक कमजोरी भी है और मैंने अंग्रेजी अस्पतालों में दवाइयां कराई, पर गरीबों का इलाज पूरा नहीं हो सकता है। कभी छोटी-छोटी सी फुन्सियां भी होती हैं और नाखून में बिलकुल खून नहीं है और जो मेरे पांव ऊँट के तलवे जैसे हैं कभी ज्यादा सरदी पड़ती है तो अधिक फटने लगते हैं तो दर्द ज्यादा होता है इसलिए मैं रामतीर्थ मासिक की सलाह से लाभ उठा सकूंगा।

अब मेरी ओर से संपादकजी से निवेदन है कि मेरे हाथ पैरों के फटने का नुक्सा लिखें ताकि मैं रामतीर्थ पत्रिका से लाभ उठा सकूं।

प्रश्न नं. १ :-- शरीर स्निग्ध तत्व कम हो गया है। रुक्ष तत्व बढ़ गया है।

निम्नांकित उपचार तुरंत आरम्भ करिये। प्रातःकाल मल विसर्जन के पश्चात् अरण्डी का तेल सरसों का तेल सम भाग में मिलावट करके सारे शरीर में ३५ मिनिट

तक गले से पावों के अगुष्ठ तक मालीश अवश्य करें। मालिश के ३० मिनिट के बाद ठंडे जल से स्नान करें। स्नान के बाद रामतीर्थ ब्राह्मी तेल शिर में ८ मिनिट मर्दन करें। ६ महीने तक मालिश की आदत चालू रखें।

आसनः- रक्त का संचार उचित ढंग से सारे शरीर तथा हाथ पावों में कराने हेतु आसन करना अनिवार्य है। विपरीत करिणी ३ मिनिट, शीर्षासन १० से २० मिनिट, शलभासन ४ मिनिट, अर्धमत्सेन्द्रासन ४ मिनिट, वृक्षासन २ मिनिट सूर्य, नमस्कार ३१ बार शवासन ६ मिनिट करें।

भोजन: — प्रातःकाल भोजन के पश्चात् अंजीर और दुग्ध पान। मध्याह्न भोजन :— गाय का घी और चावल, जौ की रोटी, उड़द् की दाल, भेंडी, मेथी की भाजी, गिलोई, अलकोल, टमाटर, भैंस का घी, और जिस सब्जी में चिकनाहट तत्व अधिक हो वह अनुकूल होगी।

अन्य उपचार

हाथ पावों के तलियों में रात्री के समय भैंस का घी १४, मिनिट तक मर्दन अवश्य करें। हप्ते में ४ दिन तक भैंस का घी ३ दिन तक रामतीर्त ब्राह्मी तेल पावों के तलियों तथा हथेलियों में मर्दन करें। ठण्डे जल से स्नान करने में असुविधा लगे तो साधारण गरम जल से स्नान करें। रात को शयन के १ घन्टे पहले ६ औंस दुग्ध, २ औंस जल तथा १ छोटा चमचा गाय के घी के साथ मिश्रण करके अग्नि में गरम करें पश्चात् ठंडा करके सेवन करें।

राजनीतिक विनोद

लेखक :—डॉ० गोपाल प्रसाद 'वंशी'

बुद्धिमानी

अमेरिका के एक सीनेटर ने, एक छोटे राजनितिज्ञ द्वारा बहस के लिये ललकारे जाने पर, महज यह लतीफा सुनाकर उसे खत्म कर दिया — एक गीदड़ ने एक शेर को कुश्ती के लिये ललकारा। शेर ने फौरन इनकार कर दिया।

गीदड़ बोला, "डरते हो ?"

"बहुत ज्यादा," शेर ने जवाब दिया, "क्योंकि तुझे शेर से लड़ने की वाह वाही मिल जायेगी और मेरे बारे में लोग कहने लगेंगे कि मैं गीदड़ की संगति कर चुका हूं।"

भारत के पर्चे

पाकिस्तान और भारत की सरहद पर भारत की तरफ रोज कूड़ा-कर्कट डाल दिया जाता।

एक दिन पाकिस्तानियों ने देखा कि इसके जवाब में उसकी सीमा में रोटी, बिस्किट, मक्खन, मिठाई, दूध के डिब्बे...... बिखरे पड़े हैं। साथ में पर्चे भी, जिनमें लिखा था, "हर मुल्क अपनी बेहतरीन पैदावार ही दूसरे मुल्क को भेजता है।"

पागल

जिन्ना साहब एक बार लाहौर का पागल खाना देखने गये। भटकता हुआ एक पागल सामने आकर बोला, "कौन है तू ?'

जनाब जिन्ना : "मैं हूं पाकिस्तान का गवर्नर जनरल मुहम्मद अली जिन्ना ।"

पागल : "मैं जब यहां आया तो नेपोलियन बोनापार्ट था। पर कोई हर्ज नहीं, तुझे ये लोग सुधार देंगे।"

विशिष्टाहार

उम्मेदवार : "हमें गेहूं उपजाना चाहिये और—" भीड़ में से एक : "और घास ?"

उमेम्दवार : "इस वक्त तो मैं इन्सानी खुराक का जिक्र कर रहा हूं, लेकिन आपके विशिष्टाहार पर मैं अभी आता हूं।"

हार कैसे गये

"आप इस चुनाव में हार कैसे गये ?"

"मैं शिकार हो गया।"

"काहे के शिकार हो गये ?"

"सही गिनती का।"

प्रार्थना

फ्रांसीसी : "यह क्या बात है कि अंग्रेजी बेड़ा हमेशा विजयी होता है ?"

अंग्रेज : "क्योंकि हम लड़ने से पहले प्रार्थना करते हैं।"

फ्रांसीसी : "प्रार्थना तो हम भी करते हैं।"

अंग्रेज : "हां, लेकिन हम अंग्रेजी में करते हैं।"

पुरानी खबर

राजनीतिज्ञ : "क्या आप के पत्र ने छापा था कि मैं झूठा और बदमाश हूं ?"

सम्पादक : नहीं।"

राजनीतिज्ञ : इस नगर के किसी अखबार ने तो जरूर छापा है।"

सम्पादक : "सामने की इमारत वाला हमारा सहयोगी होगा। हम पुरानी खबर नहीं छापते।"

समर्थन की आशा

"आपको वोट देने की बनिस्बत मैं शैतान को वोट देना पसन्द करूंगा।"

"लेकिन अगर आपके दोस्त उम्मेदवार न हों तो क्या मैं आपके समर्थन की आशा रखूं।"

अवसर

एक नेता चुनाव-आन्दोलन-सभा में भाषण देते हुये कह रहे थे, "इस बार आप हमारी पार्टी को ही वोट दीजिए। हमारा विरोधी दल आपको काफी धोखा दे चुका है। अब हमें भी अवसर दीजिए।"

नींद हराम

राजाजी : "डॉक्टर, इस कांग्रेस वजट से विरोधी पक्षों की शक्ति बढ़ते देखकर मेरी नींद हराम हो गई है।"

डॉक्टर : "लेकिन राजाजी, पहले आपको इस वजह से नींद नहीं आती थी कि कांग्रेस का विरोध काफी नहीं हो रहा था।"

डैमोक्रैसी

१ फरवरी १९६६ को शहीद नगर में नेहरूजी ने डैमोक्रैसी की नयी परिभाषा की। उन्होंने कांग्रेस की सब्जैक्ट्स कमिटी को बताया कि डैमोक्रैसी सदा सर्वोच्च सत्य का प्रतिनिधित्व नहीं करती। वह तो "मामूली लोगों की मामूली अक्ल का मामूली माप है।"

वह इसलिये कि

एक अंग्रेज: "अंग्रेजी साम्राज्य में सूरज कभी नहीं छिपता।" (सगर्व)

हिन्दुस्तानी: "हां, और वह इसलिये कि खुदा अंधेरे में अंग्रेज का यकीन नहीं करता।"

ज्यादा अक्ल

दो राजनीतिज्ञों में बहस छिड़ गयी गरम-गरम। एक उनमें बहुत ही मोटा था, दूसरा बहुत ही छोटा।

मोटा: "मैं तुझे निगल जाऊं और पता भी न चले कि कोई चीज खायी है।"

छोटा: "तब तेरे मोटे शिर की बनिस्बत तेरे पेट में ज्यादा अक्ल हो जायगी।"

बड़ा मंहगा

"वह तो बड़ा सस्ता राजनीतिज्ञ है?"

"क्या कहें, देश को बड़ा मंहगा पड़ा है।"

ठोस प्रमाण

महिला (एक राजनीतिज्ञ से किसी भोज में): "मैंने आपके बारे में बहुत सुना है।"

राजनीतिज्ञ (गैरहाजिर दिमाग से): "हो सकता है लेकिन आप उसे साबित नहीं कर सकतीं।"

आप का पेशा क्या है ?

एक संसदीय सदस्य मोटर में दिल्ली जा रहे थे। राजधानी से कुछ पहले ही आपको एक ग्रामीण मिल गया। उसे आपने गाड़ी में बिठा लिया।

थोड़ी देर में ग्रमीण ने पूछा, "आपका पेशा क्या है? आपके पास दवाइयों का डिब्बा नहीं इसलिये आप डॉक्टर नहीं हैं। आप अब तक झूठ नहीं बोले, इसलिये आप वकील भी नहीं हैं। आप करते क्या हैं।"

संसद के सदस्य बोले — "मैं ? मैं राजनीतिज्ञ हूं।"

ग्रामीण — "यह पेशा थोड़े ही है, यह तो बीमारी है।"

कुमारी से भी तो कहिये

पार्लियामेंट का शिष्टाचार है कि कोई सदस्य पहली बार भाषण देता है तो दूसरे सदस्य टोका-टोकी नहीं करते। उस भाषण को चलाऊ भाषा में कुमारी स्पीच कहा करते हैं।

केन्द्रीय असेम्बली में श्री एम. सी. राजा अपने पहले ही भाषण में कांग्रेस पर बुरी तरह बरसे, तो उन्हें कई बार टोका गया।

माननीय अध्यक्ष ने कहा — कुमारी स्पीच में सदस्यों को शांत रहना चाहिये।

श्री श्रीप्रकाश जी बोले — माननीय अध्यक्ष, यह ठीक है कि हम कुमारी के साथ छेड़-छाड़ न करें, पर कुमारी जी से भी तो कहियें, कि वह हमें छेड़तीं न चले।

बड़ा राजनीतिज्ञ

पत्नी — "यह आपने कैसे कहा कि हमारा रमेश बहुत बड़ा राजनीतिज्ञ है?"

पति — "वह अभी से ऐसी बातें करता है कि जो बहुत बड़ी और सुहावनी लगतीं हैं पर जिनमें तत्त्व जरा भी नहीं होता।"

बचपन की आकांक्षा

एक वक्ता भाषण दे रहे थे — "आज के समाज में हमारी आकांक्षाएं और आशाएं पूरी नहीं हो सकतीं।" अपनी बात पर जोर देने के लिये उन्होंने एक आदमी को खड़ा करके पूछा — "क्या तुम्हारे बचपन की कोई आकांक्षा अब तक पूरी हुई है?"

"हां हुई है," उस आदमी ने उत्तर दिया। "बचपन में जब मास्टर जी मेरे बाल पकड़कर खींचा करते थे तो मैं चाहता था कि मेरे बाल न रहें। देखिये, अब मैं बिलकुल गंजा हूं।"

(पृष्ठ १४ का शेष)

राय में परम ऐश्वर्य का कर्त्ता, शत्रुओं को जीतने वाला, प्रशंसनीय गुण कर्म स्वभावयुक्त, सत्करणीय, समीप जाने और शरण लेने योग्य सबका माननीय हो (अथर्व. कां. ६/अनु. १०/व. ९८/मं. १)

जो इस प्रकार से विद्वानों द्वारा प्रस्थापित सभापति हो उसके गुणों के बारे में मनु महाराज(मनु.अ.७/४,६,७) वे कहते हैं — वह समेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत के समान शीघ्र ऐश्वर्य कर्त्ता, वायुके समान प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जानने वाला, यम पक्षपात रहित न्यायाधीश के समान वर्तन वाला, सूर्यके समान न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक, अविद्याका निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों का भस्म करने वाला, आनन्द-दाता, जिसको तीखी निगाहसे देखने वाला कोई न हो, जो अपने प्रभावसे अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, धर्म प्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टों का बन्धनकर्ता, बड़े ऐश्वर्य वाला होवे वही सभाध्यक्ष समेश होने के योग्य है।

सच्चा राजा कौन है इस विषय में मनु महाराज कहते हैं (मनु. अ.७/१७-१९,२४-२८,३०,३१) जो दण्ड है वही पुरुष, राजा, वही न्याय का प्रचार कर्त्ता और सबका शासन कर्त्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का जामिन है। वही सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसीलिये बुद्धिमान् लोग दण्ड को ही धर्म कहते हैं। जो दण्ड

अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और बिना विचारे चलाया जाये तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है। बिना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न हो जाये। दंड के यथावत् न होने से सब ओर अराजकता फैल जावे, जहां पाप को नष्ट करने वाला दंड विचरता है वहां प्रजा मोह को न प्राप्त होकर आनन्द से रहती है। यह तभी हो सकता है जबकि उस दंड को चलाने वाला पक्षपात रहित विद्वान् हो। जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरुषों का संगी यथावत् नीतिशास्त्र के श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् है वही न्यायरूपी दंड के चलाने में समर्थ होता है। इसलिये (मनु. १२/१०१, ११०-११५) सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दंड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य और सबके ऊपर वर्तमान सर्वाधीश राज्याधिकार इन-चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में प्रवीण पूर्ण विद्या वाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनों को प्रस्थापित करना चाहिये अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा ये चारों सब विद्याओं के पूर्ण विद्वान् होने चाहियें। कम से कम दस विद्वानों अथवा बहुत कम हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उसका कोई भी उल्लंघन न करे। इस सभा में चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि

विद्वान् सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तो उस सभा में दस से कम सभासद् न हों। किन्तु जिस सभा में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जानने वाले तीन सभासद् हों वे जो व्यवस्था करें उसका कोई भी भंग न करे यदि एक अकेला सब वेदों का जानने वाला द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, परन्तु अज्ञानियों के लाखों हजार मिलके जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी भी न मानना चाहिये। जो ब्रह्मचर्य, सत्य-भाषणादि व्रत वेद विद्या वा विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं उन सहस्रों मानवों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती। जो अविद्यायुक्त मूर्ख, वेदों के न जानने वाले मानव जिस धर्म को कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्योंकि वैसा करने से सैकड़ों पाप लग जाते हैं। इसलिये तीनों विद्यासभा, धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करे, किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों को नियुक्त करे।

राज सभासद् और मंत्री कैसे होने चाहियें इस विषय में (मनु.७/५४–५७, ६०–६४) मनु महाराज का कहना है—सभापति [राजा] स्वराज्य स्वदेशमें पैदा हुये वेदादिशास्त्रों के जानने वाले, शूरवीर, जिनका विचार कभी निष्फल न हो और कुलीन, अच्छी तरह से सुपरिक्षीत सात या आठ उत्तम धार्मिक चतुर मंत्री नियुक्त करे। क्योंकि विशेष सहाय के विना जो सुगम कर्म

है वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है कि राजकर्म एक से कैसे हो सकता है ? इसलिये एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के शासन को निर्भर रखना बहुत ही बुरा है । इससे सभापति को उचित है कि नित्यप्रति राज्य कर्मों में कुशल विद्वान् मंत्रियों के साथ विचार विनिमय करके किसी से संधि किसी से विग्रह, समय और स्थिति देखकर चुपचाप रहना अथवा शत्रुपर चढ़ाई करना, अपने राजकोष की रक्षा करना, देशमें शांति बनाये रखने का विचार नित्यप्रति करे । विचार विनिमयमें बहुपक्षानुसार कार्यों में अपना और अन्योंके हितकारक हो वही करने लगा। जितने मनुष्यों से शासन कर्म सिद्ध हो सके उतने आलस्य रहित बलवान् और बड़े २ चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी बनावे । इनके आधीन शूरवीर बलवान् कुलोत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड़े २ ओहदों में और डरने वालों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे। चतुर कुलीन, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् को जानने वाले सब शास्त्रों में विशारद दूत को रखे और यह दूत ऐसा हो कि राज काममें अत्यन्त उत्साह, प्रीतिपूर्वक, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देशकालानुसार चलने वाला, सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो वही राजा का दूत होने योग्य है ।

किस-किस को क्या-क्या अधिकार देना योग्य है इस विषय में मनु महाराज का (मनु. ७/६५, ६६, ६८, ७०, ७४-७८) कहना है कि अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में अन्याय रूप दण्ड न होने पावे, राजा के आधीन कोश और राजकार्य तथा सभा के आधीन सब कार्य और दूत के आधीन किसी से मेल व विरोध करने का अधिकार देवे। दूत उसे कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों में फूट डाले। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े। वह सभापति और सब सभासद या दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे अपने को पीड़ा न हो। नगर सुरक्षित स्थान में बनावे। नगर के चारों ओर सुव्यवस्था हो, रक्षक यथा स्थान नियुक्ति रहें। नगर के अन्दर धन धान्य, वाहन, ब्राह्मण उपदेशक, कारीगर, यंत्र, नाना प्रकार की कला जानने वालों की व्यवस्था हो। पुरोहित और ऋत्विज का स्वीकार इसलिए करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघर के कर्म किया करें और सदा राजकर्म में तत्पर रहें अर्थात् राजा का यही सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात-दिन राजकार्य में लगे रहना और कोई राजकाज न बिगड़ने देना।

वार्षिक कर आप्त पुरुषों द्वारा ग्रहण करे और जो सभापति रूप राजा आदि प्रधान पुरुष हैं वे सब सभा वेदानुकूल होकर प्रजा के साथ पिता के तुल्य बर्ताव करें। ब्रह्मचर्य से वेदादि का अध्ययन कर जो कोई गुरु-

कुल से आवे राजा उसका यथावत् सत्कार करे जिससे राज्यमें विद्याकी उन्नति होकर सब दिशाओंमें उन्नति होवे।

इस प्रकार मनुस्मृति के सातवें व आठवें अध्यायों में उन सब बातों पर प्रकाश डाला गया है जो कि राजतंत्र को चलाने के लिये आवश्यक हैं।

आज समय बदल चुका है इसके लिए समयानुकूल व्यवस्था बदल लाने की आवश्यकता है परन्तु कुछ नियम ऐसे हैं जिनका होना किसी भी प्रजातंत्र को सुदृढ़ बनाने हेतु परम आवश्यक है। जैसा कि लोक सभा के सदस्यों की योग्यता का निर्धारण करना, क्योंकि जैसा की ऊपर कहा जा चुका है कि जो नियम बनाने वाले सभासद् निस्पृह भाव से न चलने वाले होंगे तो अनर्थ की वृद्धि होगी। आज हो भी यही रहा है कि कोई व्यक्ति कितनी ही गिरी हुई चरित्रहीनता से युक्त है परन्तु यदि मूर्ख लोग उसे चुन लें तो वह सभासद् बन सकता है। आज भारत में प्रजातंत्र प्रणाली तब तक व्यवस्थित नहीं कही जा सकती जब तक विद्वान् और संयमियों को राजकार्य में नियुक्त नहीं किया जाता। नहीं तो जो अनीति पूर्वक चाचा भतीजा वाद चल रहा है उसके दूर होने का कोई रास्ता अभी तो नजर नहीं आ रहा। इसके लिये तो परमात्मा को कोई क्रांति ही लानी पड़ेगी ताकि आज के स्वार्थी राजनीति लम्पटों [illegible] सफाया किया जा सके। अन्त में परमात्मा से यही [illegible] भारतवासियों को वही सुबुद्धि प्रदान करें [illegible] देश में धर्म अनुप्राणित प्रजातंत्र फल फूल सके।

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

(महत्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और ध्यान का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचार आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

पुरुषों के लिये समयः—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

महिलाओंके लिये समयः—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सवेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आनेवाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता है।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

...ताय संस्कार

...श निषेध ...ना:— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से ... श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबन्ध नहीं है।

रामतीर्थ
ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
REGD.
मगज, बाल और शरीर मालीश के लिये श्रे
श्री रामतीर्थ योगाश्रम
दादर, बम्बई १४

(प्रकाशन तिथि १-५-६६)

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और
पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

रामतीर्थ

सम्पादक-
योगिराज
उमेशचन्द्रजी

वर्ष-७ अंक-२
मई १९६६

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक 44289
विज्ञापन
तार-प्राणायाम दादर

लेख	लेखक	पृष्ठ
वैदिक प्रार्थना	संकलित	७
आम्रवृक्ष और उसकी उपयोगिता	सम्पादकीय	८
आश्रम समाचार	संवाददाता द्वारा	१४
योग संसिद्धि	योगिराज उमेशचन्द्रजी	१७
प्राकृतिक चिकित्सा और उपवास	डॉ. दिलराजसिंह	४१
भारतीय संस्कृति की झांकी	हरिमोहनलाल श्रीवास्तव	४९
मद्य निषेध	शिवनारायण सक्सेना	५६
प्रभु स्तवन (कविता)	जगन्नाथप्रसाद शर्मा	६४
स्वानुभव	सत्यभामा वरुणदेव पांडे	६७
...का स्वरूप	बुद्धिप्रकाश बाजपेयी	७१

मुखपृष्ठ का परिचय

आम का मौसम तैयार है उसका ही अवलो... कीजियें। विशेष विवरण हेतु इसी अंक के पृष्ठ ८ पर दे...

विशेष सूचना-'रामतीर्थ' मध्यप्रदेश व राजस्थान सर... शिक्षण विभाग की ओर से प्राथमिक, माध्यमिक उ... बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों व सार्वजनिक व पं... समिति पुस्तकालयों के उपयोग के लिये स्वीकृत है।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४... रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके लिये विन्सेन्ट... स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

विशिष्ट सूचनाएं

१- श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक के निर्धारित नियमानुसार अप्रैल १९६२ से यह निश्चय किया गया कि एक सीमित संख्या में सभी प्रकार के गैर सरकारी या सरकारी, पंचायती, नगरपालिका आदि के वांचनालयों व योगाश्रम तथा प्राकृतिक चिकित्सालयों से रामतीर्थ मासिक का वार्षिक शुल्क डाक व्यय सहित केवल २) ५० पैसे लिया जायेगा। अतः वाचनालयों के व्यवस्थापकों को अपनेवांचनालयका शुल्क यथाशीघ्र भेजने की व्यवस्था करनी चाहिये ताकि संख्या पूरी होने पर निराश न होना पड़े।

२- दिन--बदिन रामतीर्थ के पाठक वृन्द की संख्या बढ़ती रहने से हर मास में हम पाठक वृन्द की मांग पर्याप्त रूप में पूरी नहीं कर पाते। फिर भी यदि मासिक विक्रेता वर्ग (एजेन्ट) अग्रिम सूचना भेज दें तो उनकी मांग यथा समय यथा साध्य हम पूरी करने की व्यवस्था करेंगे। जिससे श्रद्धा सम्पन्न एव सुख शांति समृद्धि की तीव्र इच्छा रखने वाले हजारों वाचक बन्धुओं को निराश न होना पड़े।

३- बहुत से भाई श्रद्धा से रामतीर्थ मासिक के चन्दे को अनेक वर्षों के लिये हर मास में भेजा करते हैं उनका हम धन्यवाद करते हैं तथा उनसे आग्रह करते हैं कि अभी एक वर्ष से अधिक का चन्दा न भेजें और न बार-बार पूछ--ताछ करें कि आजीवन सदस्यता का क्या शुल्क है। इस विषय में जब भी नियम परिवर्तन किया जायेगा तो हम उसे मासिक में प्रकाशित करेंगे।

——— व्यवस्थापक

...एक बार भी जंजीर खींची तो समझ लीजिए कि गड़बड़ियों का एक सिलसिला शुरू हो गया। सैकड़ों मुसाफिरों से भरी एक पूरी की पूरी ...गाड़ी, दूसरी गाड़ियों का हिसाब चौपट हो गया। आगे के स्टेशनों पर इंतजार करनेवाले मुसाफिर मुश्किल में फँस गए। हो सकता है जो ...रही है वह सीमा-क्षेत्रों को जवान और साज-सामान या किन्हीं पीड़ित क्षेत्रों के लिए दवाएं और खाद्य सामग्री ले जा रही हो। आपकी ...पर कोई भारी संकट आ सकता है।

...अगर आपने एक बार भी जंजीर खींची तो...

पश्चिम रेलवे

* श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम *

१–इस योगाश्रम में प्रविष्ट होनेके बाद साधक को बीड़ी-सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२–ली गई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३–टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

४–सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

५–योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६–कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७–आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के २७रु. हैं

८–नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी होगी समय प्रात:काल ७॥ से ९॥ और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो मेंसे किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम ...

स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

वर्ष ७] मई १९६६ [संख्या २

वैदिक-प्रार्थना

अश्वावती र्गोमती र्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

ऋ. वे. म. सू. ७-४१-७

हे उषादेवियो ! तुम अश्वों के सहित हो, तुम गौओं के सहित हो और तुम वीर संतानों के सहित हो और इसीलिये हमारे कल्याणकारक बनकर अश्व, गाय और वीर जनोंको लेकर हमारे सदन पर प्रकाश करो। तुम जीवन नवनीत सार का दोहन करनेवाली हो और सब प्रकार के गुणों से युक्त होकर वृद्धि को देनेवाली हो; अतः सब प्रकार के कल्याण गुणों से हमारा नित्य निरंतर रक्षण करो ।

आम्र--वृक्ष और उसकी उपयोगिता

आम्र-वृक्ष भारत में सर्वश्रेष्ठ सर्वमान्य वृक्ष है और न्यूनाधिक रूपमें सर्वत्र इसका अस्तित्व है, किन्तु महाराष्ट्र, केरल, मद्रास, गुजरात और उत्तर प्रदेश में यह बहुतायत से पाया जाता है वस्तुतः आम्र वृक्ष को कल्पवृक्ष ही मानना चाहिये, क्योंकि इसके अमृत-रस को ग्रहण कर जन-जीवन परि-तृप्ति का अनुभव करता है । जहां आम्र-वृक्ष अगणित संख्या में हैं, वहां यह सर्व सुलभ सस्ता फल है । वसन्त और ग्रीष्म-ऋतुमें बौरों और फलों के गुच्छों आपाद मस्तक लदी हुई फल-भार-विनम्र डालियों की आकर्षक शोभा देखते ही बनती है उन डालों के बौरों की सुगन्ध स्थानीय वातावरण को पुलकित और मस्त बना देती है इन्हीं सुगन्ध बिखेरते बौरों के बीच बैठकर जब कोयल मधुर कूक सुनाती है, तब उस मनोरम दृश्य का सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है । मानव इस वातावरण में अपने आपको निमग्न कर आनन्द और उल्लास

से छलकने लग जाता है। सचमुच फूल फलों से परिपूर्ण आम-वृक्षों की अनेकशः पंक्तियों से समलंकृत बागीचों का दृश्य-सौन्दर्य दर्शनीय है। हरे, लाल, पीले, गुलाबी तथा अन्य विविध रंगी आम जब वृक्षों पर हिलते-झूलते दिखाई देते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है कि इनमेंसे कोई-न-कोई आम सामने टपकना ही चाहता है।

अस्तु आम्रफल अलौकिक फल है। पका हुआ आम परमोत्तम, मधुर और आरोग्यवर्धक है। पौष्टिक और रुचिकर होने के कारण यह जीवन की चेतना और रौनक को और भी अधिक बढ़ा देता है। गूदे-वाले आम कुछ दुष्पाच्य और मादकता उत्पन्न करने वाले ही होते हैं, किन्तु रसपूर्ण आम सुपाच्य होने से शारीरिक शक्ति के साथ जीवनी शक्ति का भी संवर्धन करते हैं। चैतन्य और उत्साह में भी अभिवृद्धि होती है।

कच्चे आमों का भी अनेक प्रकार से उपयोग होता है। इसका आचार और मुरब्बा बनाया जाता है। कच्चे आमों का छिलका निकालकर उसके गूदे के टुकड़े करके उन्हें सुखाया जाता है और मानव उनका विविध प्रयोग कर अपनी अम्ल वृत्ति को परितुष्ट करता है। मानव की इस रुचि या मनोवृत्ति को तृप्त करने के साधन के रूपमें कच्चे आमों का उपयोग बहुतायत से किया जाता है।

शारीरिक और मानसिक आरोग्य की दृष्टि से फलाहार सर्वोत्तम माना जाता है। फलाहार में समस्त आहारतत्व पाये जाते हैं : अन्नाहार से दुग्धाहार श्रेष्ठ

है और दुग्धाहार से भी श्रेष्ठ फलाहार है। फलाहार प्राकृतिक आहार है। दुग्ध और अन्न की तरह इनका पाक संस्कार नहीं किया जाता। इसीलिये आहार-शास्त्री इसे स्वयं परिपाकशील- पका हुआ-आहार मानते हैं। आम, केला, चीकू, अमरूद आदि फल सस्ते होने के कारण गरीबों को भी सुलभ हैं और इनका समय और पाचन-शक्ति के अनुसार ग्रहण करें तो वह स्वास्थ्य और सामर्थ्य का अर्जन कर सकते हैं। बुद्धि-प्रतिभा मानसिक शांति, सन्तोष आदि गुण फलाहारी व्यक्ति में पायें जाते हैं। फलाहार से बौद्धिक शक्ति बढ़ती है और मन कल्याणकारी मंगलभावों से परिपूर्ण होता। सत्वगुण की भी वृद्धि होती है।

अस्तु जीव-गणना की चार जातियों— अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज में वृक्ष का समावेश उद्भिज श्रेणी में हैं। इस वृक्ष-श्रेणी में आम भी एक वृक्ष है स्वाद, रंग, गुण और आकारों के विभिन्न गुण धर्मवाले आम पायें जाते हैं। उनके गुण शरीर और मन पर स्पष्ट भासित होते हैं। गूदा और रस भी अपने गुण-धर्मको स्पष्ट प्रकट करते हैं। आमके औषधि के गुणों का वर्णन करते हुये कहा गया है कि वह मधुर, शीतल और बलप्रदायक है और शरीर को परिपुष्ट बनाता और कांतिको बढ़ाता है। गूदेवाले आम मादक और जड़तामूलक हैं, किन्तु रसीले आम-जिन्हें रसाल भी कहा जाता है, में औषधिक गुण विद्यमान हैं। शरीर को पुष्ट और सूक्ष्म बनाने को रसयुक्त आमों का उपयोग अत्यन्त लाभकर है। आम का रस न निकाल कर यदि वे चूसकर खाये जायें

तो उनके गुण और लाभ बढ़ जाते हैं।

आम सचमुच मानव-जातिको प्रकृति का वरदान है। प्रकृतिने इस पुष्टिकर जीवनी--शक्ति संचारक आम्रफल को उत्पन्न कर मानव पर बड़ा उपकार किया है। इस दृष्टि से इसे अमृत--रस भरपूर फलका सेवन कितना हितकर है, यह सहज ही समझा जा सकता है। आम का बुद्धिपूर्वक और औचित्यपूर्ण उपयोग अत्यन्त लाभकर सिद्ध होता है। रसीला आम तृप्ति और बल प्रदान करने के साथ-साथ शरीरमें विद्युत-शक्ति दौड़ा देता है।

दक्षिण-भारतके कुछ भागोंमें बारहों मास आम पाये जाते हैं। किन्तु गूदेवाले आमों की श्रेणीमें गुण, रंग और स्वाद की दृष्टिसे महाराष्ट्रका हापुस आम अधिक प्रख्यात और लोकप्रिय है। यह सर्वोत्तम आम है। महाराष्ट्र के रत्नागिरी और कोलाबा जिलेमें हापुसकी अधिकाधिक उपज होती है।

आम की तैयारी

रत्नागिरी जिलेके कलमी हापुस आम सारे देश तथा विदेशों में भी ख्यातिलब्ध हैं। मैसूर, मद्रास, सौराष्ट्र, बलसाड और गोवा के आम गुण और रंगकी दृष्टि से श्रेष्ठ हैं, किन्तु हापुस की समानता नहीं कर सकते। गुण स्वाद और रंग दृष्टि से यही आम श्रेष्ठ माना जाता है. जो तब उतारा जाता है, जब फल वृक्षपर पकने की स्थिति पर पहुंच जाता है। केवल व्यापारमें लाभ उठाने की इच्छासे कच्चे आम वृक्ष से तोड़कर पत्ते, घास, पावडर तथा अन्य साधनों से आम का पकाया जाता है ऐसे आम आरोग्य और स्वाद की

दृष्टि से उपयुक्त नहीं होते। गुण और लाभ की दृष्टि से भी उनकी उपयोगिता कम हो जाती है। दशहरी तथा अन्य लोकप्रिय आम १ मई से पेड़पर परिपक्व होने लगते हैं।

आम की औषधिक गुणवत्ता

आम अनेकशः गुणों और लाभों से भरपूर फल है इससे कफ, वात और पित्तके विकारका नाश होता है शरीर में रक्त की वृद्धि होती है। पाचन-शक्ति तेज होती है। क्षुधा बढ़ती है। मलावरोध नहीं रहता। जिनके उदर में गैस की बीमारी या वायु विकार हो, पित्त तथा कफके विकारसे जो पीड़ित हों, उनके लिये आम का प्रयोग अत्यन्त गुणकारी और रामबाण इलाज है।

वजन बढ़ाने के लिये

आयु और ऊँचाई की दृष्टि से यदि शरीर का वजन कम हो, तो प्रतिदिन प्रातःकाल आसनाभ्यास के पश्चात् ६ औंस आमके रसमें ३ औंस गायका (गायका न मिलने पर भैंसका) दुग्ध मिलाकर सेवन करें। इसके बाद अपराह्न ४ बजे व रात में ९ बजे उसी विधि से आम्र-रस का सेवन करें। भोजनमें मिर्च, नमक, इमली अत्यन्त अल्प मात्रामें हों। सप्ताह में दो या तीन दिन रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से सारे शरीर की मालीश करें। पौष्टिक आहार ग्रहण करने से प्रतिमास दो या तीन पौण्ड तक वजन बढ़ता रहेगा और शारीरिक गठन की सीमापर पहुंच जाने के बाद वजन में स्थिरता आयेगी। अतः जो लोग शारीरिक शक्ति और स्वास्थ्य के सम्पादन के साथ वजन बढ़ाने की आकांक्षा

रखते हैं उन्हे मैं सलाह देता हूं कि वह इस आमके मौसम का भलीभांति सदुपयोग करें और इस अमृतोपम फलका सम्पूर्ण लाभ उठाने का प्रयास करें।

वजन बढ़ाने के अतिरिक्त आंतों के रोगी, पुराने मरोड़ के रोगी, यकृत की निर्बलता, रक्ताल्पता आमातिसार से पीड़ित रोगियों को अपनी शक्ति के अनुसार आमका उपयोग कर इसके गुणों से लाभान्वित होना चाहिये। निर्बल शरीर में पर्याप्त बल की वृद्धि के लिये आमका सेवन गुणकारी है। आम शरीरमें शक्ति, प्रसन्नता और उत्साह का उत्वेसन करता है। दूध और आम का प्रयोग शरीर की वृद्धिगत अम्लता को नष्ट कर क्षारीय तत्वों को उत्पन्न करता है, फलतः शरीर उत्साही और कार्यक्षम बनाता है। आम की गुणवत्ता अवर्णनीय है।

आम की अन्य उपयोगिता

आम की अन्य उपयोगिता भी है। आम के फल का कोई भी भाग निरर्थक नहीं होता। गुठली का मोटा छिलका जलाने के काम आता है तथा उसके अन्दर का बीज गाय भैंस आदि पशुओं को खिलाया जाता है, जिससे दूध देनेवाली गाय-भैंसों के दूधमें पर्याप्त वृद्धि होती है और उनका शरीर पुष्ट होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आम के फल का सर्वांगीण महत्व है और उसका कोई भी अंग निरर्थक नहीं है।

एक अन्य दृष्टि से भी भारतीय जनता में आमका वृक्ष अत्यन्त सम्मानीय और परम शुभ माना जाता पर्व-महोत्सवों और विवाहादि समारोहों के सुअवसर पर आमके पत्तों के तोरण-वन्दन बनाकर द्वारों और मण्डपों को सजाया जाता है। यज्ञ-कार्य में समिधा के लिये आम की ही लकड़ियां काम में लाई जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में आम्रवृक्ष का अत्यन्त आदर और गौरवमय स्थान है।

वक्ता:—डा. परमानन्द तुलसियान

विषय:—रोग और प्राकृतिक यौगिक चिकित्सा

स्थान:—श्री रामतीर्थ योगाश्रम

समय:—रविवार २-४-६६

सुविज्ञ उपस्थित सज्जनो! आजका विषय रोग और प्राकृतिक-यौगिक चिकित्सा है। इतिहासपर दृष्टिपात करने से मानना पड़ता है कि आज जबकि हम सभ्यता के युग-जैसा आचरण करने लगे, तबसे रोगोंकी शृंखला निरन्तर बढ़ती जा रही है। जमाने के प्रभाव से नीति में परिवर्तन होता जा रहा है। उदाहरणार्थ उच्चकोटि के सभ्य कहे जानेवाले समाज में अतिथि के आदर-सत्कार में शराब, चाय, सिगरेट आदि का अधिक प्रयोग होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा

प्रकृतिके आधाररूप पंचमहाभूतों की सहायता से स्थूल शरीर को सुरक्षित बनाये रखें। जैसे मकान की मरम्मत ईंट, सिमेंट और रेती से होती है, उसी तरह बिना दवा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि के आधार पर रोग का इलाज करना सर्वोत्तम है।

मिट्टी की पट्टी

पृथ्वी तत्त्वका आधारः—पीली, काली, मिट्टी की पट्टी (जल से तैयार कर) पेट पर तीन घंटे तक लगा रखने से पतला दस्त बंद हो जाता है और मल विसर्जन नियमित रूप से होगा। यदि मलावरोध की शिकायत होगी तो मल-विसर्जन यथोचित रूपसे यथा समय होगा।

मिट्टी की पट्टी केवल मलको बाहर निकाल फेंकने के लिये उपयोगी नहीं, अपितु हाईब्लड प्रेशर वीर्य-दोष जीर्णज्वर तथा अन्य बहुतेरे रोगों को दूर करने के लिये मिट्टी का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है।

प्राणायाम-प्रयोग

यौगिक साधकों की आयु अधिक लम्बी क्यों होती है? क्योंकि वह वायु का उपयोग उचित ढंग से करते हैं। योगाभ्यास को घर-घर का साधन अनिवार्य रूपसे बना लेना चाहियें। प्रातःकाल स्नानके पश्चात् संध्या-वन्दन के समय कम से कम छः बार अनुलोम विलोम प्राणायाम करना पड़ता है। यह योगाभ्यास

का एक अंग है, जो वायु शुद्ध और नियमित रखने का पूरा दायित्व वहन करता है। प्राकृतिक चिकित्सा की भाषामें इसे वायुतत्व के सूक्ष्म तत्व को ग्रहण करना कहते हैं। इससे अनेक रोग अच्छे होते हैं। हृदय रोग, रक्त-दोष, अधोरक्तचाप, पित्तविकार, वायु-रोग, संधिवात आदि अनेक रोग दूर होते हैं और आयु बढ़ती है।

अलसर-रोग-निवारण

इसके लिये मिट्टी की पट्टी लगानी चाहिये, गाजर का रस पीने से अलसर रोग दूर होता है।

मूत्रमें रुकावट

उक्त स्थितिमें गरम पानीमें नमक छोड़कर भिगोये गये कपड़े को नाभि के नीचे के भाग पर एक घंटे तक बांधे रहने के पश्चात् ठंडे पानीमें भिगोई कपड़े की पट्टी को पेटमें बांध रखना चाहिये। मूत्र खुल जायेगा।

नकसीर (नाक से रक्त गिरना) रोग का निवारण करने के लिये प्रात:काल जल-नेति करना चाहिये। यह कारागर प्रयोग है। गरम तथा तली हुई वस्तुयें त्याग देनी चाहियें। सिरपर ठण्डक पहुंचाने वाले तेल की मालिश करें। मुहांसों से त्रास पाने के लिये ठंडे जलका टब-बाथ १० मिनिट तक लेना पड़ेगा। रात को पानीमें पीली मिट्टी मिलाकर या खोपरे के तेल मिला-कर मुखमें १ महीना तक नित्य ३० मिनट तक लगाना आवश्यक है।

योग-संसिद्धि

लेखकः— योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी
संचालक : श्री रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

योग-साधन से तात्पर्य है वृत्तियों के वेग से तरंगायित मानस-सरोवर को सुस्थिर बनाकर मन को प्रबुद्ध-स्थितप्रज्ञ बनाकर किसी वस्तु विशेष में युक्त करना-किसी कार्यविशेष में तन्मय कर देना। जब मन किसी ध्येयवस्तु या कार्य में तन्मयता के साथ लग जाता है, तब उसकी चंचलता तिरोभूत हो जाती है और ध्येय या कार्य के प्रति वह अधिकाधिक चुस्त और निष्ठावान् बनता जाता है। इस प्रकार ध्येय-कर्म में चुस्ती, निष्ठा अथवा तल्लीनता का विनियोग होने पर ही—

'योगः कर्मसु कौशलम्'

का आदर्श चरितार्थ होता है और कार्य का 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' रूप स्वयं योगानुष्ठान बन जाता है। जिस आयोजित कर्म के साथ सत्य (कर्म की उपयोगिता), शिव (कर्म का कल्याणकर विधान) और सुन्दर (कर्म का आकर्षक, कलात्मक और सुव्यवस्थित विनियोजन का) समन्वय होगा: उसमें निस्सन्देह एक भव्यता के दर्शन होंगे और कर्त्ता को कर्मकुशल योगी माना जायेगा। योगी कर्म का सुचारु विनियोजक होता है और कर्म के प्रति वफादार रहता है। योगी की कारयित्रि प्रतिभा जन-जीवन के बीच निरन्तर संचरित रहती है और सर्वोदय तथा सर्वहित-साधन की ओर प्रवृत्त होती है। योगी की प्रखर और प्रभावशालिनी

दीर्घदृष्टि और बलवती विचार-भाव धारा अखिल सृष्टि के
प्राणिजीवन का स्पर्शकर सर्वत्र अपना शुभ सन्देश पहुँचाती
रहती है। योग वस्तुतः जीवन की एक तालबद्ध गति है
अतः जहां परस्पर विरोधाभास होता रहता है, उस
असंगति में भी योगी लौह-यन्त्र के दांतेदार पहियों की भांति
जीवन-संचालन की सुलभता और कर्म की सुव्यवस्था
स्थापित करने का मार्ग खोज निकालता है। योगी
सामाजिक प्राणी है। वह समाज का उपयोग भी करता
है, सहयोग भी करता है। योगी में व्यावहारिक और
परमार्थिक कला का अद्भुत समन्वय होता है।

योग का व्यावहारिक और पारमार्थिक स्वरूप

योग शब्द की उत्पत्ति युज् धातु से हुई है, जिसके
संधि, ऐक्य, ओतप्रोत, तल्लीन, तन्मय, तदाकार आदि
अनेक अर्थ होते हैं। इस अर्थ का चाहे व्यवहारमार्ग में
उपयोग करें, चाहे परमार्थ-मार्ग में। व्यवहार-मार्ग में
अभियान करते समय अनेक प्रतिकूल और बाधक परि-
स्थियां सामने आ सकती हैं। इस प्रतिकूलता को अनु-
कूल बनाने और बाधाओं का अतिक्रमण करने के लिए
अत्यधिक मानसिक शक्ति और धैर्य की आवश्यकता है।
इस शक्ति अर्थात् मनोबल की उद्गम-स्थली है सात्विक
गुणों से परिपूर्ण एकाग्रता। इसके अतिरिक्त शक्ति का
दूसरा स्वरूप कार्य कुशलता है। व्यवहारिक अभ्यास
मार्ग के पथिकों को इसका आधार मुख्यत्वेन लेना पड़ता

योग की व्यापकता

विश्व में जितने भी धर्म-मत-प्रवर्तक अथवा उनके अनुयायी हुए हैं और जितने भी धर्मग्रन्थ अबतक लिखे गये हैं, उन सब के लेखकों ने किसी न किसी रूप में योग का अवलम्ब लिया है। जैन-बौद्धादि ग्रंथों में विस्तार-पूर्वक योग का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त ईसाई धर्मग्रन्थ 'बाइबिल,' इस्लाम धर्मग्रंथ 'कुरान' और पारसियों के धर्मग्रंथ 'जेदावस्ता' में योगचर्चा पाई जाती है। हिन्दूधर्म ग्रंथों को सम्पूर्ण योगग्रंथ मानलिया जाये तो अत्युक्त न होगी। वेद, आरण्यक, उपनिषद्, पुराण, योगवासिष्ठ, घेरण्डसंहिता, पतंजलि योगदर्शन, शिवसंहिता और गीता आदि में से बहुतेरे तो आद्यन्त योगग्रंथ हैं। गीता तो योग का सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है और अन्य अनेक ग्रंथों में स्थल-स्थल पर किसी न किसी रूप में योग का विधान किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के 'ग्रहयोग' और चिकित्सा शास्त्र (वैद्यक) के 'औषधि-योग' योग की लोकप्रियता के परिचायक हैं। भक्ति-योग, मन्त्रयोग, लय-योग के ग्रंथों में प्रधानतः या आंशिक रूप में योग की झांकी मिल जाती है। इससे स्पष्ट है कि योग की लोकप्रियता कितनी व्यापक है।

योग का अहर्निश उपक्रम

प्राणिमात्र जन्म से मृत्युपर्यन्त योग के आधार पर ही अपने दैनिक जीवन का संचालन करते रहते हैं, यह कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। मनुष्य अपने दैनिक

जीवन में जिन नित्यकर्मों का अहर्निश अनुष्ठान हो
रहता है, उन्हें योग ही कहा जायगा। यहां तक
उठना-बैठना, खाना-पीना, सोना-जागना, काम करना-आ
करना आदि की गणना भी योग में ही की जाती है।
जो हो; योग जीवनव्यापी अनुष्ठान है और हमारा जी
उससे प्रभावित होता है।

यम-नियम

यम-नियम सामाजिक और वैयक्तिक सदाचार के पाल
विधान हैं और दूरदर्शी तथा प्रतिष्ठित जन इनका पाल
करते भी हैं। यमों का पालक समाज-जीवन के स
सम्पूर्ण सुसंगत होगा। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अ
(चोरी न करना), अपरिग्रह का यथोचित पालन क
से समाज में कभी वि विवाद आदि का उदय न
हो सकता और समाज का सर्वतोमुखी कल्याण हो
है। यमों के पालनकर्त्ता व्यक्ति का जीवन भी सर्वां
और पवित्र हो जाता है। नियमों का पालन य
व्यक्तिगत जीवन के साथ अधिकांश में सम्बद्ध है प
आनुषंगिक रूप में समाज पर भी इसका कल्याणक
प्रभाव होता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो
सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि नि
मांगों का पालन तथा यमों—सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अ
अपरिग्रह आदि का व्यवहार समाज में निरन्तर च
रहता है। सामाजिक और वैयक्तिक कल्याण का
आयोजन यदि एक क्षण के लिये भी स्थगित हो ज

तो सारा समाज अस्त-व्यस्त और विश्रृंखल हो जायें और जन जीवन एक विकट संकट से घिर जायें। यम-नियम का पालन दैनिक जीवन का अंग है। इनका विधिवत् पालन करने से मानव की सभी आकांक्षायें अनायास ही सफल होती हैं; मनुष्य व्यवहारिक जीवन में कृतार्थ होता है। पारमार्थिक जीवन के अनुयायी अलौकिक आनन्द रसका आस्वादन कर अपने जीवन को कृतकृत्य करते हैं ?

आसन

आसन योगी के अभियान-लक्ष्य की तीसरी मंजिल और उत्थान क्रम का तृतीय सोपान है।। इसमें शारीरिक सम्पत्ति के सम्पादन की कला में निपुण बना जाता है। इस सोपान पर पहुंचकर शारीरिक साधना का सविशेष और आंतरिक साधना का गौण महत्त्व रहता है। क्योंकि संसार के सभी रचनात्मक अनुष्ठानों को निर्विघ्न सम्पन्न करने का मूलाधार शरीर है। यदि शरीर सबल, सुगठित और कार्यक्षम है तो कोई भी कार्य असम्भव प्रतीत न होगा। शरीर जीवनव्यापी सभी साधनों का प्राथमिक साधन है, अतः इसे व्यावहारिक और पारमार्थिक कार्योंमें कुशल बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि हम इसे तद्विषयक किसी विशेष (व्यायामादि) अभ्यासक्रममें नियोजित करें। एतदर्थ योगासनोंका अभ्यास नितान्त उपयुक्त है। आसनोंके अभ्याससे शरीरका सर्वांगीण विकास होता है। अंग-

प्रत्यंग सुयोजित और कार्यक्षम रहते हैं तथा व्यक्तित्व के प्रभावकी गरिमा भासमान हो उठती है। जीवन के दैनिक व्यवहारमें शारीरिक गति, हावभाव और हलचल निरन्तर होती रहती है। इससे भी हमको उचित लाभ मिलता है; किन्तु शरीर को अनुशासित, नियन्त्रित और सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिये आसनों का अभ्यास निरन्तर करते रहना अनिवार्य कर्तव्य होगा। शरीर को आत्मवशी किये बिना आन्तरिक सूक्ष्म साधनाका अनुष्ठान कदापि सम्भव नहीं और बिना आसनादिका अभ्यास किये शारीरिक स्थिरता भी नहीं मिल सकती। आसनाभ्यास शरीर का रचनात्मक विनियोजन है। इस भूमिका (सोपान) को दृढ़ बनायें बिना आन्तरिक अध्यासकी पृष्ठभूमि भी निर्बल रहेगी।

प्राणायाम

प्राणायाम की स्थिति पर पहुंच जाने पर साधक शारीरिक अभ्यास के अंतिम छोर पर पहुंच जाता है और आन्तरिक साधना का श्रीगणेश करता है। आसनाभ्यास के बाद ही प्राणायाम का अभ्यास अभीष्ट है। शास्त्र की आज्ञा है :—

यथासने दृढ़ो योगी वशीहित मिताशनः।
गुरूपदिष्ट मार्गेण प्राणायामान्समभ्यसेत्।

अर्थात् आसनाभ्यास में पारंगत हो जाने के पश्चात् साधक जितेंद्रिय और मिताहारी बनकर गुरु के सान्निध्य में प्राणायाम का क्रमबद्ध अभ्यास करे। शरीर की समी

नस-नाड़ियों और अंगोपांगों के निर्मल और निर्विकार रहने पर ही प्राणायाम का सुयोजित अभ्यास सम्भव होगा। यही कारण है कि योगाभ्यास में प्रवेश करने से पहले षट्कर्मों द्वारा शरीर की आन्तरिक शुद्धि और निर्मलता का श्रेयस्कर विधान किया गया है। नेति, धौति वस्ति आदि से शारीरिक मल का निष्कासन होता रहता है, फलतः प्राणवायु के स्वच्छन्द आवागमन में बाधा नहीं होती और समग्र शरीर के अणु-परमाणु इस स्वच्छन्द प्राणशक्ति का स्पर्श पाकर तेजोद्दीप्त हो उठते हैं; अतः षट्कर्म अनिवार्य प्राथमिक कर्तव्य है। हिक्का, श्वास, कास, शिरोवेदना, कर्णशूल आदि विविध दोषों का उद्-भव प्राणवायु के व्यतिक्रम से ही होता है। यथा :—

हिक्का श्वास-कासश्च शिरः सि वेदना।
भवन्ति विविधः दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमः।

—सिद्धियोग

प्राणायाम का अयुक्त (असम्बद्ध) अस्तव्यस्त और क्रमहीन अभ्यास नहीं करना चाहिये; क्योंकि ऐसा करने से अनेक प्रकार के रोगों के उत्पन्न होने की आशंका रहती है। किन्तु जब प्राणायाम का युक्त, विधिवत्, क्रमबद्ध अभ्यास किया जाता है, तब शरीरगत सभी रोग मिट जाते हैं। सभी इन्द्रियों के दोष धुल जाते हैं। प्राण बाहर की ओर गति कर न सकेंगे; अतः देह का मरण कैसे सम्भव होगा? यथा :—

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यास योगेन सर्वरोगस्य सम्भवः॥
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाःप्राणस्य निग्रहात्।
न बहिः प्राण आयाति देहस्य मरणं कुतः॥

कुम्भक प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर जगत् में ऐसा कोई कार्य नहीं, जो सिद्ध किया जा न सके।

केवले कुंभके सिद्धे किं न सिद्धयति भूतले।

अर्थात् केवल कुम्भक के सिद्ध हो जाने पर वह कौन सी सिद्धि है, जिससे मनुष्य को वंचित किया जा सकेगा। इस प्रकार योगशास्त्र में प्राणायाम की महिमा का विवेचन विशद रूप से किया गया है। प्राण पर नियन्त्रण प्राप्त करना आवश्यक है।

प्राणायाम क्या है ?

तस्मिन्सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

—योगदर्शन

अर्थात् पद्मासन या सिद्धासन पर बैठकर श्वास-प्रश्वास (प्राण) की गति को रोकने (आयाम करने) को प्राणायाम कहा जाता है। प्राणायाम का वाच्यार्थ भी यही होता है :—

प्राणः शरीरजं वायुः आयामः तन्निरोधनम्।

अर्थात् शरीरगत वायु को प्राण कहते हैं और उस (प्राण) के निरोध को आयाम कहा जाता है। प्राण के भेदोपभेदोंको सुस्थिर और सुप्रवाहित रखने के प्रयास

को प्राणायाम कहा जाता है। प्राणायामके लाभों का वर्णन करते हुये कहा गया है–

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्"

अर्थात् प्राणायामकी सिद्धि हो जानेपर-प्राणोंके सभी भेदोंपर नियन्त्रण स्थापित कर लेनेपर अन्तःस्थ प्रकाश-पर पड़ा हुआ आवरण क्षीण हो जाता है और साधक आत्मदर्शन प्राप्तकर परमात्म-अनुभूति में निमग्न हो जाता है।

इसी प्रकार जब किसी गम्भीर विचारधारामें निमग्न होने अथवा महत्वपूर्ण कार्य करने की स्थिति उत्पन्न होती है, तब अनायास सी सुदीर्घ (लम्बा) श्वासोच्छ्वास निकल पड़ता है। यह साधारण प्राणायाम का ही प्रयोग है। योग की यह परिस्थितिजन्य आकस्मिक क्रिया भी पर्याप्त लाभ पहुँचाती हैं। मानवशरीरपर उसका शुभ प्रभाव हुये विना नहीं रहता।

प्रत्याहार

मनुष्य निरन्तर कर्म करते और उनका फल प्राप्त करते हुए जगत्-जीवनकी अनुकूल और प्रतिकूल परि-स्थितियोंका अनुभव भलीभांति कर लेते हैं, तब एक समयावधि के बाद उनके अन्तःकरणमें इस स्वाभाविक इच्छाका उद्भव होता है कि अब इन्द्रियोंका दमन किया जायें; उन्हें अपने कर्तव्य कर्मोंसे विराम दिया जावे। इन्द्रियोंको विश्राम देना–उन्हें उपराम की स्थितिपर पहुँचाना ही उनकी शक्ति बढ़ानेका एक विधान है।

इससे इन्द्रियोंकी बलवत्ता और कार्यकुशलता स्थिर रहती है। इसे योगके पंचमांग-प्रत्याहारका साधन समझना चाहिये। प्रत्याहारका स्वरूप-दर्शन कराते हुये महर्षि याज्ञवल्क्यने अपने संहिता-ग्रन्थ में लिखा है:--

इन्द्रियाणां विचरतां स्व-विषयेषु स्वभावतः।
बलादाकर्षणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते॥

अर्थात् अपने-अपने विषय-क्षेत्रमें स्वभावतः विचरण करती हुई इन्द्रियोंको बलपूर्वक खींच लेनेको प्रत्याहार कहा जाता है। विषयोंसे निवृत्ति प्राप्त कर लेने के पश्चात् चित्त जिस स्वरूप में स्थित होता है, उस तरहकी एकाग्रताका अनुभव जब इन्द्रियां करने लगती हैं, तब उस स्थिति में प्रतिष्ठित होने को प्रत्याहार कहा जाता है। इस प्रकार इन्द्रियों को आत्मवशी बना लेने के बाद द्वन्द्वजनित पापोंको भोगना नहीं पड़ता। मन जब एकाग्र दृढ़ संयत (प्रतिबन्धित) रहने के लिये बाध्य हो जाता है, तब उसे संसार की सभी इच्छाओं से निवृत्ति मिल जाती है। ऐसी दशा में मनुष्य सांसारिक पदार्थों को चर्मचक्षुओं से देखते रहनेपर भी इस दृश्य-दर्शन का उसपर कोई प्रभाव नहीं होता। उसका तद्दिशागत प्रत्येक आचरण तटस्थ रहेगा; अतः वह फल भोग के बन्धन में पड़ नहीं सकता यही न्याय अन्य इन्द्रियोंपर भी लागू होता है। प्रत्याहार-साधना का रहस्य यही है कि विषयों का नन्दन-निकुञ्ज कभी भी वास्तविक सुखकी अनुभूति कराने में समर्थ नहीं

इसीलिये हमारे विश्व-तत्त्वदर्शी ऋषि-महर्षियों ने विषयानन्द से परांगमुख होकर योग की प्रत्येक भूमिका (सोपान) पर पहुंच कर और दृढ़ स्थिति प्राप्त कर अलौकिक कार्य कर दिखाये हैं; फलतः आत्मा के परमानन्द-रसका पान करते हुये अक्षय सुयश का अर्जन किया है। अतः विचारशील प्राणियों को विषय-पदार्थों से उपरति प्राप्त करनेका अभ्यास प्रयासपूर्वक करते रहना चाहिये।

धारणा

प्रयत्न करनेपर भी जब इन्द्रियों का प्रत्याहार नहीं हो जाता और इन्द्रिय-सुख से उपरतिका-तृप्तिका बोध नहीं होता, तब इस अन्तःविरोधी प्रवाहको दूसरी ओर मोड़ दिया जाता है। इस अवस्था में एकाग्रता जितनी ही अधिक बढ़ती जाती है, उतने ही अधिक परिमाणमें आन्तरिक सुखकी अनुभूतिकी तन्मयता बढ़ती जाती है। इन्द्रियां अपनी-अपनी गतिके अनुसार स्थिर होने लगती हैं और बाह्य जगत्की दौड़ धूपसे परांगमुख होने लगती हैं। इंद्रियां अपने विषय-सुखकी ओर प्रवृत्त नहीं होतीं। यह योग का षष्ठांग है और इसे धारणा कहते हैं।

आसनेन समायुक्तः प्राणायामेन संयुतः।
प्रत्याहारेण सम्पन्नो धारणा च समभ्यसेत्॥

अर्थात् आसनसिद्धि, प्राणजित् (प्राणायामयुक्त) और प्रत्याहारसम्पन्न अर्थात् इंद्रियजित् बननेकी साधना के सोपानोंको क्रमशः पार कर लेनेके पश्चात् साधक धारणा का अभ्यास करे और धारणा की भूमिकापर दृढ़ स्थिति

प्राप्त करने का प्रयास करे । हृदयमें मन और पृथ्वी, ज
वायु, तेज और आकाशादि पंचतत्वोंको पृथक-पृथ
स्थान धारण करने को धारणा के नामसे अभिहित कि
गया है । यथा—

हृदये पंचभूतानां धारणं च पृथक-पृथक ।
मनसो निश्चलत्वेन धारणा साभिधीयते ।

महर्षिपतंजलिके मतानुसार (मनको सभी दिशाओंसे सं
कर) किसी विशेष ध्येयप्रदेश में केंद्रित करने का ना
धारणा है:—

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।

यो. ३/१

इस प्रकार किसी देशविशेष में चित्तकी धार
अथवा हृदयमें पंचमहाभूतोंकी धारणा भूमिका प्राप्त क
लेनेके बाद साधक सत्-चित् आनन्दकी दिव्यानुभू
निमग्न हो जाता है और उसे प्रभावशाली सिद्धियों
दर्शन भी होने लगता है । धारणाकी भूमिकापर दृढ़
पूर्वक जम जानेके अनन्तर ही साधक ध्यान का
अधिकारपूर्ण भूमिकामें प्रवेश करता है । वह
योग्य बन जाता है कि षट्चक्रोंका उद्भेदन कर
उनके रहस्योंका ज्ञान प्राप्त कर । धारणा सिद्ध
लेना सरल नहीं । कहा जात है कि तलवारकी धा
धारपर कदाचित् सुगमताके साथ चला अथवा
रहा जा सकता है; परन्तु योगकी धारणाको सिद्ध क
लेना किसी विक्षिप्त चित्तवाले मनुष्य के लिये कदापि
सम्भव नहीं । दुस्साध्यको साध्य बनाना ही चाहि

धारणा का महत्व

यस्तु तिष्ठति कौन्तेय, धारणासु यथाविधि ।
मरण जन्म दुःखं च स विमुंचति ॥ मोक्षधर्म

अर्थात् हे कौन्तेय ! जो मनुष्य विधिवत् अभ्यास करने के पश्चात् धारणा की सिद्ध भूमिकापर पहुंच जाता है, उसके जन्म-मरण और संसारजन्य सुख-दुःखादि के विकार घुल जाते हैं अर्थात् मनुष्य बारंबार के जन्म-मरणादि के बन्धन से मुक्त हो जाता है; फलतः सांसारिक सुख-दुःखादि के संघातोंसे भी वह सुरक्षित रहता है । साधक का अलौकिक आनन्दकी और अभि-यान करने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है ।

ध्यान

प्राणिमात्रमें यह स्वाभाविक गुण विद्यमान है कि चलने अथवा काम करनेके पश्चात् तज्जन्य क्लान्ति से मुक्ति पाने के लिये वह विश्राम अथवा निद्रा लेना चाहता है । पूर्णनिद्रा अथवा विश्राम ले लेने के बाद उठ पड़ने की, उठनेके बाद चल पड़नेकी और काममें लग जानेकी इच्छा का उदय स्वभावतः होता है । जबतक शरीरमें प्राण हैं; तबतक जीवनका यह क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित अनुष्ठान निरन्तर चला करता है । परन्तु जब मानव-बुद्धिमें विवेक और वैराग्यरूप दो पंख उत्पन्न हो जाते हैं, तब वह उद्बुद्ध हो उठता है और उसे अनुभव होने लगता है :—

चौरासी लक्ष योनियोंमें भटकने के बाद जो कुछ लाभ मिला; वह केवल शरीर और मनतक ही सीमित रहा; आगे बढ़ न सका। इस अवस्थासे हमें जितना ऊपर उठना आवश्यक था, उतना हम उठ न सके। इन चौरासी लक्ष योनियोंको पार करनेका घोर कष्ट सहन करने के पश्चात् अब हमें इस मानव-शरीरकी उपलब्धि हुई है। अब यह प्राप्त सुअवसर निरर्थक जाने न पायें; हमें इससे समुचित लाभ उठा लेना चाहियें। बहिर्गत—बाहरके जितने भी सुखों और दुःखों की अनुभूति हमें होती रहती है, वे अस्थिर और अल्पकालीन होने के कारण मुझे शाश्वत पवित्र सुखानुभूति करानेमें कदापि समर्थ नहीं अतएव इस मानव-जीवनको सार्थक बना लेनेका यही स्वर्ण-सुयोग है, यह विचार कर स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीरको परमात्मा के साथ तदाकार कर देने-जोड़ देने का क्रमबद्ध अभ्यास करते-करते अन्ततः अपनी ध्येय-भूमि-इष्ट स्थितिपर पहुंचकर साधकका मन परमात्म-तत्वकी रसानुभूतिमें मग्न होने लगता है। इस स्थिति को यागका सप्तमांग ध्यान कहा जाता है।

ध्यान का लक्षण

ध्यान का लक्षण बताते हुये महर्षि पतंजलि ने लिखा है—

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्

(योगदर्शन, विभूतिपाद, सूत्र २)

अर्थात् तत्र (धारणा में) प्रत्यय (बुद्धि अथवा चित्त) की एकतानता (एकाग्रता) को ध्यानावस्था कहकर पुकारते हैं। इससे यह भासित होता है कि धारणा की अपेक्षा अधिक कालपर्यन्त ध्येय-वस्तु पर चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने का नाम ध्यान है। धारणा उस स्थिति को कहते हैं, जब कि किसी ध्येय-वस्तु में चित्तवृत्तियां पांच घटी पर्यन्त निरवच्छिन्न रूप से लीन रहती हैं—लय रहती हैं। किन्तु जब चित्त ध्येय के साथ २४ घटी पर्यन्त निरवच्छिन्न रूप से तादात्म्य-बोध करता रहता है, तब चित्त की उस अवस्था को ध्यान कहा जायेगा। चित्त में निर्मल और निर्विकार चिन्तन के उदय को भी ध्यान माना जाता है।

यश्चित्ते निर्मला चिन्ता, तद्धि ध्यानं प्रचक्षते।

—गोरक्षपद्धति

पतंजलि योगसूत्र और गोरक्षपद्धति के ध्यान-स्वरूप के निर्धारण में केवल इतना ही अन्तर है कि कितनी काल-सीमा तक चिन्तन करते रहने को ध्यान माना जाये। गोरक्षपद्धति में काल-सीमा का स्पष्टीकरण नहीं है; परन्तु योगदर्शन का 'तत्र' शब्द काल-सीमा का भी बोध करा देता है।

ध्यान का महत्त्व

यथा सुवर्णं पटुपाकशोधितं
त्यक्त्वा मलं स्वात्मगुणं समृच्छति।
तथा मनः सत्त्वरजस्तमो मलं
ध्यानेन संत्यज्य समेति तत्त्वम्।

अर्थात् जिस प्रकार क्षार आदि पदार्थों द्वारा विधिपूर्वक शुद्ध कर देने पर स्वर्ण अपने मल को त्यागकर उज्ज्वल स्वरूप धारण कर लेता है, उसी तरह ध्यान के प्रभाव से सत्त्व, रजस और तमोगुण के संयोग से मलिन हुआ मन निर्मल होकर आत्मतत्त्व में समाहित होने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। इस स्थिति में भ्रमर-कीट-न्याय पूर्ण चरितार्थ होता है। जैसे भ्रमर के पंजों में जकड़ा हुआ कीट भ्रमर का ध्यान करते हुए-निरन्तर भ्रमरत्व की अनुभूति में तन्मय रहकर अपने कीट-कलेवर को भ्रमर के रूप में रूपान्तरित कर देता है; उसी तरह साधक भी आत्मतत्त्व के ध्यान में तल्लीन रहकर परमात्म-प्रकाश में रूपान्तरित हो जाता है। ध्यान का प्रभाव अप्रतिहत है और उसकी सिद्धि हो जाने पर साधक (जीवात्मा) अपनी जीवसंज्ञा को परमात्म-प्रकाश में लय कर देता है। अर्थात् साधक मुक्त हो जाता है।

समाधि का निरूपण

परम संतुष्ट, सचेत, शांति और निर्विकार अवस्था में प्रवेश कर केवल लोकोत्तर आनन्दरूप अमृत रस से अहर्निश आप्यायित होते रहना कोई साधारण बात नहीं। विरले व्यक्ति ही इस सच्चिदानन्द सागर में गोते लगाने के लिये भाग्यशाली हैं। यद्यपि देखा जाये तो भूचर, नभचर, जलचर आदि चराचर प्राणिजगत् परमात्मा के दिव्य वैभव से भरपूर हैं। वह परमात्मा स्वरूप ही है। परन्तु अज्ञान के वश प्राणी अपने को दुर्बलावस्था, हीनावस्था और

निकृष्टावस्था के घेरे में डाले हुये हैं। वस्तुतः जगत् के अणु-अणु से प्रस्फुटित महाशक्ति से परिचित होना और पिण्ड में ब्रह्माण्ड के दर्शन करना ही आत्मानुभूति की अंतिम स्थिति है। साधक विश्व के कण--कण में सुरभित सत्-चित्-आनन्द की अनुभूति में तन्मय होकर आत्मविस्मृत हो जाता है। साधु निश्चलदास का कथन है कि—

जो सुख नित्य प्रकाश विभु नाम-रूप-आधार।
मति न लखै जेहि मथि लखै, सो मैं अपरंपार॥

अर्थात् मैं वह अपार शक्ति और प्रकाश का पुंज हूँ जिसे बुद्धि-बल से नहीं; बल्कि मंथन करके—साधना करके ही जाना जा सकता है। वह ब्रह्मांडव्यापी ज्योति-पुंज पंचकोशों और स्थूल, सूक्ष्म. कारण तथा महाकारण शरीर एवं नाम-रूपात्मक जगत् से परे हैं। बुद्धि उसका तलस्पर्शी विवेचन कर नहीं सकती, अर्थात् उसकी थाह पा नहीं सकती। वह स्वयं इस जड़ बुद्धि पर चैतन्यमय प्रकाश डालता है और दिव्यज्योति का स्पर्श पाकर अन्धकाराच्छन्न बुद्धि उद्भासित हो उठती है और हम बुद्धि का परिचय प्राप्त करते हैं। अखिल ब्रह्मांड-तल, अतल, वितल, सुतल आदि १४ लोकों का जो आधार है, वही सर्वशक्तिमान् परमात्मतत्त्व मेरे रोम-रोम में रम रहा है और मैं उसी अनादि और अनन्त विभूति का अभिन्न अंश हूँ। इस प्रकार की दिव्य अनुभूति में निरन्तर निमग्न रहने और निरन्तर इसका अभ्यास करते हुये ब्रह्मरन्ध्र में उत्तरोत्तर जब प्राण की गति का गमनागमन होने लगता है, तब कुण्डलिनी शक्ति भी जाग्रत हो उठती है

और फलतः ब्रह्मा, विष्णु महेश्वरादि देवों की दर्शन-प्राप्ति का भाग्य--विधान स्वतः बन जाता है और अन्ततः साधक अपने मूल स्वरूपका रसास्वादन उसी तरह करने लगता है जैसे मधुमक्खियां मधु के स्वाद में तन्मय हो जाती हैं अथवा भ्रमर कमल पुष्प के मकरन्द का आस्वादन करने में देह-सुधि का विस्मरण कर देता है। इसी को योग का अंतिम अंग समाधि समझना चाहिये।

समाधि का शास्त्रीय स्वरूप

जब बारह दिनतक लगातार अविच्छिन्न रूप से शरीर के अन्दर प्राणवायु तदाकार--भाव से ब्रह्मानन्द-रस-पान में संलग्न रहे, तब उसकी समाधि-संज्ञा होती है– 'दिन द्वादशकेन स्यात् समाधि प्राणसंयमात्।' समाधि का लक्षण बताते हुए कहा है:—

सलिले सैन्धवं यद्वत् साम्यं भजति योगतः
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥

अर्थात् जैसे सेंधा नमक जल का स्पर्श होनेपर जलके साथ एकीभूत हो जाता है, उसी तरह जब आत्मा और मनका ऐक्य हो जाता है, अर्थात् आत्मा और मन एकरूप हो जाते हैं, तब उस अवस्थाको समाधि कहा जाता है। आत्मा में धारण किया हुआ मन तदाकार हो जाता है, अतः वह आत्माके स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

जब ध्याता अपने अस्तित्वको ध्येय-वस्तुमें विलय कर स्वयं शून्याकार-आत्मविस्मृत हो जाता है-अपने आपको भूल जाता है, तब उस अवस्थाको समाधि कहेंगे। इस अवस्थामें केवल ध्येयका प्रतिबिम्ब स्पष्ट रहता है और ध्याताका अस्तित्व ध्येय में लीन हो जानेसे वह शून्याकार हो जाता है। ध्याताको यह भी ध्यान नहीं रहता कि मैं ध्यान कर रहा हूं:—

तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

यो. विभूति पाद ३

श्री. गौड़पादाचार्य के अनुसार सभी दोषों से मुक्त होकर निर्मल मन जब परमात्म-तत्व में लीन होता है, तब उस अवस्था को समाधि कहेंगे। मन जब विक्षेप, लय (अज्ञान में), कषाय (निष्क्रिय-चेष्टारहित), रसास्वाद (अर्थात् साधक का केवल ब्रह्मानन्द- रसका पान करने तक ही अपनी साधनाकी सीमा मानना) को मिटाकर अर्थात् मन के निरुपयोगी भ्रमणपर नियन्त्रण लगा कर उसे संयत बनाया जायगा, मन अज्ञानान्धकार में न डूब कर (लय न होकर) ज्ञान के प्रकाश में लीन (लय) होगा, जब निश्चेष्ट और स्तब्ध न रहकर अपने ध्येय के प्रति सजग, सचेत, और सचेष्ट रहोगे और जब मन केवल ब्रह्मानन्द-रस-पानतक ही अपनी साधना सीमित न रखेगा, अपितु ब्रह्माकार-वृत्ति की भूमिका तक पहुंच जानेका प्रयत्न करेगा, तभी उसे वास्तविक समाधि अवस्था की अनुभूति सम्भव है।

समाधिके भेद

समाधिके दो रूप हैं-निर्विकल्प और सविकल्प। निर्विकल्प समाधिकी स्थिति पर पहुंच जाने के पश्चात् साधककी चित्तवृत्ति एकाग्र होकर किस प्रकार तदाकार की अनुभूति करती है, यह निम्नलिखित श्लोकमें बताया गया है:—

अन्तःशून्यो बहिः शून्यः
शून्यः कुम्भ इवाम्बरे ।
अन्तःपूर्णो बहिः पूर्णः
पूर्णः कुंभ इवार्णवे ।

जिस प्रकार आकाशस्थ घट अन्दर और बाहर शून्य रहता है; उसी तरह निर्विकल्प समाधि के सोपान पर पहुंचा हुआ योगी शून्याकार अर्थात् वासनाशून्य हो जाता है । इसी प्रकार जिस तरह समुद्र के अन्दर गया हुआ घट अंदर- बाहर पूर्ण रहता है; उसी प्रकार स्वयंप्रकाश सच्चिदानंद-रससे सर्वांगपूर्ण योगी जब ब्रह्म तद्रूपता का अनुभव करने लगता है, तब उस दशामें किये गये पुरुषार्थ सफल माने जाते हैं और साधक सिद्धयोगी की निष्ठा प्राप्त करता है।

सविकल्प समाधि उस भूमिका का कहते हैं, जहां पहुंचकर साधक ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञानरूपी त्रिपुटीके लयकी अपेक्षा रखते हुए एक अद्वितीय वस्तुके साथ नियमित कालसीमापर्यन्त तद्-रूपता का अनुभव करता रहता है और विश्व के कण-कण में आत्मब्रह्मकी सुरभि

पाकर उसका रोम-रोम पुलकित होता रहता है। सविकल्प समाधिमें यद्यपि द्वैतकी अनुभूति होती है, परंतु विशेष स्थितियोंमें अद्वैतका व्यापक प्रभाव रहता है।

समाधिके बोधक अन्य शब्द

समाधि अवस्थाका उद्बोधन करानेवाले सोलह शब्द हैं:—राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, शून्याशून्य, परंपद, अमनस्क, (मनका तिरोभाव) अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन, जीवन-मुक्त, सहजा, तुर्या, आदि शब्द समाधिके वाच्यार्थ बोधक हैं:—

राजयोगः समाधिश्च,
उन्मनी च मनोन्मनी।
अमरत्वं लयस्तत्त्वं
शून्याशून्य परंपदम् ॥
अमनस्कं तथाद्वैतं
निरालम्बं निरंजनम्।
जीवन्मुक्तिश्च सहजा
तुर्या चेत्येक वाचकः

उपर्युक्त १६ शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं।

इस प्रकार योगाभ्यासकी क्रमबद्ध उन्नति करते और योगकी उत्थान-भूमिकापर प्रभुत्व स्थापित करते हुये साधक जब समाधिकी सिद्ध भूमिकापर प्रतिष्ठित होता है, तब वह मृत्यु-भयसे सर्वथा रहित हो जाता है अर्थात् साधकका सामर्थ्य कालगत सीमाका अतिक्रमण कर जाता है, अतः कालका उसपर वश नहीं चलता।

सुख-दुःख हानि-लाभ, शत्रु-मित्र, पाप-पुण्यसे सर्वथा मुक्त हो कर वह निर्विकार-निर्विकल्प भावभूमिमें सुशोभित होता है।

संयमका रहस्य

इस प्रकार यमसे लेकर समाधितककी योगाभ्यासकी आठ क्रमिक भूमिकाओं का संक्षिप्त परिचय देने के बाद अब मैं संयम शब्द का रहस्योद्घाटन करने जा रहा हूं। संयम शब्द धारणा, ध्यान और समाधि की एकीभूत अवस्था का बोधक है—

त्रयमेकत्र संयमः।

यो. विभूति ४

अर्थात् एक ध्येय-पदार्थ में जब धारणा ध्यान और समाधि-इन तीनों का तिरोभाव हो जाता है, तब उस अवस्थाविशेषको संयम कहा जाता है। योगशास्त्रमें संयम शब्द इसलिये ग्रहण किया है, कि जिससे धारणा, ध्यान, समाधि आदि पृथक्-पृथक् अंगों के फल आदि की चर्चा बारंबार करनी न पड़े और एक 'संयम' शब्द से ही अपनी अभीष्ट सिद्धि कर ली जाये। फलादिका वर्णन पतंजलि योगदर्शनके विभूति और कैवल्य-पादमें विस्तार के साथ किया गया है।

अस्तु यहां योगके व्यावहारिक और पारमार्थिक मार्गका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है योगके प्रत्यक्ष लाभ उठानेके लिये उसके अंगोपांगोंका विधिवत्, आचार्य-

अनवद्य और शास्त्रीय अभ्यास करना अत्यावश्यक है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके सान्निध्यमें योगाभ्यास करनेसे यथेष्ट लाभ मिलता है। अतः साधक का परम कर्तव्य है कि वह शास्त्रीय विधिसे योगविद्या की अभ्यास-कलासे दीक्षित करनेवाले योग-पारंगत गुरुके नियन्त्रणमें अधिकारी साधक बनकर योगाभ्यास करे।

गीता में भगवान् श्रीकृष्णने योगशक्तिको सर्वशिरोमणि बताते हुए अर्जुनको योगी बनने के लिये उत्साहित किया है। योगीकी महिमाका वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने अपने श्रीमुखसे स्वयं घोषित किया है कि योगी तपस्वीसे बड़ा है, ज्ञानीसे भी बड़ा है; कर्मवान् भी योगीकी शक्ति का सामना नहीं कर सकता; अतः हे अर्जुन, तुम योगकी कलामें पारंगत बनो-योगकी सर्वोच्च भूमिकापर पहुंचनेका प्रयास करो। योगी सिद्ध योगी बनोः—

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद् योगी भवार्जुन।

गीता सर्वांगपूर्ण योगग्रंथ है। समग्र गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने योगकी जीवनव्यापी सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थितियों का उद्घाटन किया है; अतः योगकी महत्ता स्वतःसिद्ध है।

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा चुने हुये धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह मानव जन्म सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सुन्दर सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश-विदेशों में पर्यटन करके अपने स्वानुभव को बताया है। हरेक घरमें नित्य पठन पाठनकर सुख--शांति का लाभ लीजिये।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४-०० डाक व्यय अलग।

बहुरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों का संग्रह है। रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए रखने के लिये आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये। आसनों के नाम तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं। डाक व्यय के साथ ३-०० रु.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

प्राकृतिक चिकित्सा और उपवास

लेखकः—डा. दिलराजसिंह

मेरे जीवन की आतिश बाजी समाप्त होने को थी, मेरे जीवनकी रोशनी अंधेरे में बदल जाने को थी, मेरे जीवन की जिन रंगरलियों को मैं सुनहरी किरण समझ बैठा था वे ही अभिशाप बन कर हाजिर हो चुकी थीं कि तभी मैं समझ गया कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है । काश ! मैं अपने हाथों से अपनी कब्र न खोदता, प्राकृतिक जीवन के रहस्य को पूरी तरह समझता तो मैं उन रोगों से अवश्य बच जाता जिन्होंने फलते-फूलते अरमानों को निचोड़ दिया था वसन्त की सुन्दर बहारों को पतझड़ में बदल दिया था ।

बात कुछ ऐसी ही थी कि बम्बई में सौभाग्य से मेरी दूध और मिठाई की अच्छी खासी दूकान थी । जिसमें खाने पीने की सुविधायें थीं । दिन भर बैठे २ मिठाई एवं रबड़ी उड़ाता, और शाम को सिनेमा देखता, मेरे जीवन के यही दो व्यवसाय थे । किन्तु अन्तमें निद्रा की कमी और भोजन की गरिष्ठता से मेरी पाचन शक्ति धीरे-धीरे कमजोर होने लगी । स्वास्थ्य भी गिरने लगा, इससे मैंने अपने वजनको बढ़ाने के लिये रबड़ी और मिठाई की मात्रा भोजन में और बढ़ा दी । इसका परिणाम यह हुआ कि मेरा रहा सहा स्वास्थ्य भी चौपट हो गया । शरीर पीला पड़ गया, आंखोंमें पीलिया हो गया । दैनिक कब्ज, सिर दर्द, बेचैनी,

हरारत, अभिशाप रूप में मेरे सामने आये। अब मैं क्या करूँ ? जिन्दगी डाक्टरों के हवाले गिरवी रख कर उनके हाथकी कठपुतली बन बैठा। पहले एक फिर दूसरा, फिर बम्बई के अनेक स्पेसियलिस्ट डाक्टरों के दरवाजों को खटखटाता रहा। उनकी कीमती से कीमती औषधियों, इन्जेक्शनों, टेबलेटों आदि का आस्वादन करता रहा किन्तु वही शुरू की चाल बेढंगी जो पहले थी वह तब भी थी। हजारों रुपयें इस साधारण से रोग के पीछे बिगाड़ दियें किन्तु रोग तो बढ़ने के शिवाय घटने का नाम ही नहीं लेता था। दवाओं के वरदान रूपमें मुझे मिला एक भयंकर रोग गठिया। अब तो मैं बिलकुल निराश हो गया। इस रोग से मेरे दोनों घुटने फील पांव की तरह काफी सूझ गये। दिन तो किसी प्रकार बीत जाता परन्तु रात के समय इतनी भयंकर पीड़ा होती कि जैसे प्राण निकल जाते, १०४ डिग्री बुखार चढ़ जाता। उस घड़ी की याद कर आज भी मेरा हृदय कांप उठता है। अब मैंने डाक्टरों की इस मृग मरिच्चिका में पड़ा रहना अच्छा नहीं समझा और अपने गांव चले जाने का विचार किया। मरना है तो वतन ही प्यारा है।

परन्तु घर आकर भी परिवार वाले मुझे सुख से नहीं मरने दियें। मेरी इस दशा पर मानो वे भी घबरा गये। अतः संतोष के लियें कुछ करना ही चाहिये, इसलिये गांव के आस पास के बड़े २ वैद्यों की दवा

मालूम हुई। रोग के निदान में वैद्यों को घंटों बीत जाते, तब तर्क वितर्क चला फिर किसी मारतन औषधि पर विचार होता।

किन्तु ये औषधियां भी मेरे लिये निरर्थक सिद्ध हुई। मैं इस समय एक प्रयोगशाला बन गया था। कोई भी नीम-हकीम आकर मुझ पर अपने आजमायशी नुक्शे का प्रयोग करता। मैं परिस्थिति से ग्रस्त था बोलता ही क्या। किन्तु उन चरक के चेलों का क्या दोष, मेरे कर्म में ही ऐसा लिखा था कि रोग से तड़फूँ और वैद्यों को निराश करूँ।

दो वर्ष के अंग्रेजी और देशी इलाज से मेरे गठिया रोग में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। अब तो मैंने चारपाई पकड़ ली थी। शौच-पेशाब के लिये भी दूसरे का सहारा लेना पड़ता। आध पाव दूध के शिवाय कुछ भी न खा पाता। घरसे किसी प्राणी को सदा के लिये बिदा करना, परिवार वालों को कभी मंजूर नहीं होता। इसलिये लोगों की दृष्टि भूत, प्रेत, ग्रह एवं अन्य पैशाचिक करामातों पर गई। गाँव में ओझा, सोखा एवं तंत्रियों की कमी नहीं थी, अब वे भी ससम्मान बुलाये गये, किन्तु कालकी सवारी के आगे वे भी माथा पीटकर पीछे हट गये और मुझे असह्य पीड़ा से तड़पते हुए छोड़ने में उन्हें तनिक भी तरस नहीं आई। तब बचा था मेरे पास झिलमिलाती काया और चंद रोजी प्राण। क्या दुःखद समय था

मेरा ? इस समय जब अपने उन चंद भावी सुनहरे अरमानों को सोचता, गत मधुर दिनों की याद करता तो दिल टुकड़े २ हो जाता । यों ही मनुष्य एक कीड़े से बदतर है । मैं कभी २ भगवान् से यही प्रार्थना करता कि वह शीघ्र मेरे इस प्राण से इस अस्थिपंजर का का नाता छुड़ा दे । किन्तु किस्मत में जब फल भोगना ही लिखा था तो उसे कौन टाल सकता था।

समय परिवर्तनशील है । प्रातःकाल का समय था मैं विपत्ति रूपी सागर में गोते लगा रहा था कि मेरे एक चिर एवं निकट संबंधी मित्र श्री लाल बिहारी सिंह मुझसे मिलने आयें, मेरी आकुलता पर उन्हें तरस आई और साथ २ अश्रु की अविरल धारा प्रवाहित हो गई जो कि उनके आंतरिक दर्द को प्रदर्शित करती थी । रोग को सब प्रकार से असाध्य जानकर उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा कराने के लिये आग्रह किया और एक दो पुस्तक पढ़कर अपनी चिकित्सा स्वयं करने की मंत्रणा दी । मैंने उनसे कहा "भाई आप मेरे लियें अधिक कष्ट न करें । जब मैं बम्बई जैसे नगर में बड़े २ डाक्टरों द्वारा ठीक न हो सका तो आपकी इन साधारण पुस्तकों को पढ़कर भला कैसे ठीक हो सकता हूँ । शरीर की और दुर्दशा न हो, यही अंतिम इच्छा है ।" उन्होंने कहा "आप मेरी बात समझ नहीं पाये, यह पाश्चात्य चिकित्सा नहीं बल्कि कुदरती इलाज है । जल, वायु, मिट्टी, प्रकाश,

उपवास, भोजन सुधार आदि के द्वारा रोगसे लड़ा जाता है और पुराने से पुराने एवं भयंकर से भयंकर रोग को मार भगाया जाता है। मरता क्या न करता, आजमाना था। मित्र की बात कैसे ठुकराई जाती। इसके पहले मैंने इस चिकित्सा का कभी नाम भी नहीं सुना था। भाई लाल विहारी सिंहजीके आग्रह करने पर मैंने भिन्न २ प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी पुस्तकों का अध्ययन किया, जिनमें हमारे सर्वश्रेष्ठ प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमी डा. कुलरंजन मुखर्जी, डा. विट्ठलदास मोदी, डा. हीरालाल, डा. खुशीराम दिलकश आदि द्वारा लिखित मुख्य हैं। उन्हीं के आधार से स्वयं अपनी चिकित्सा प्रारंभ की।

प्रथम ही तीन दिन नीबू और शहद के रस के साथ उपवास कर गया साथ में एनिमा द्वारा पेट भी साफ करता गया। दर्द के स्थानों पर तीन मिनट गर्म सेक के बाद एक ठंडा सेक करता, इस तरह तीन बार दिन में करता। एक दिन खाट पर कम्बल ओढ़कर वाष्प स्नान भी कर लिया। मुझे कुछ आराम हुआ चौथे दिन संतरे का रस लिया, चार दिन बाद फिर उपवास। इसी तरह फलाहार, रसाहार, उपवास, पेट पर मिट्टी की पट्टी, एनिमा, सेक आदि के द्वारा खाट पन्द्रह दिन के भीतर ही छोड़ दी। शौचादि जाने के लियें किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं रही, एक माह पूरा होते होते बाहर टहलने के लियें भी जाने लगा। स्वास्थ्य अब काफी

अच्छा हो चुका था। वजन भी बढ़ने लगा। अ किसी प्रकार का ऐसा कष्ट नहीं रह गया था जि आसानी से न सहा जा सके।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा को मैंने अपने में इस प्रकार उतार लिया कि आठ-दस दिन का उपवास आसानी से कर जाता। इसी बीच मैंने एक पुस्तक डा. हीरालाल की पढ़ी "उपवास और स्वास्थ्य।" उसी की प्रेरणा से घर बार छोड़कर बिना किसी को कुछ बताये कलकत्ता मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी के प्राकृतिक चिकित्सा विभाग में डा. भरतनारायण पांडेजी की देखरेख में उपवास करना शुरू किया। इस उपवासकाल में अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद् के प्रधानमंत्री धर्मचन्द सरावगी, राधाकृष्ण नेवटिया जैसे महानुभाव लोग मुझसे मिलते और उपवास के विषय में जानकारी लेते। उनसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती।

क्या बताऊँ २१ दिन के उपवास के पश्चात् ही मेरे दाहिने पांव के घुटने में गठिया का फिर से उभार हुआ घबराया नहीं क्योंकि मालूम था कि प्राकृतिक चिकित्सा में उभार होता ही है। इतने दिनों के बाद घरवालों को सूचना दे ही दी, सभी हमारी खोज में थे। पता मिलते ही हमारे बड़े भाई कलकत्ता मेरे पास पहुँच गये। उसी दिन बम्बई से भी रातको ११ बजे ट्रंककाल आया। घर के सभी लोग घबरा गये थे। किन्तु जब उनको मैंने सारी बातें बताई कि "मैं उपवास कर रहा हूँ और ठीक हूँ" तो उन्हें कुछ सन्तोष हुआ।

इस तरह ४० दिन का उपवास करके सन्तरे के रस के साथ उपवास छोड़ दिया। डाक्टर साहब की राय थी ४० दिन का सन्तरा कल्प देने की। किन्तु एक तो परिवार वालों की चिन्ता दूसरे घर की परिस्थिति के कारण मैंने डा. साहब से प्रार्थना की कि यदि आप छुट्टी दें तो यह कल्प घर पर ही कर लेंगे। अन्त में डा. साहब ने कल्प के बारे में सब कुछ समझाकर घर पर ही करने का निर्देश दिया।

घर आने पर लोगों को संतोष हुआ। परन्तु उपवासकाल के जर्जर शरीर को देखकर लोग कांप उठे और दूसरी चिकित्सा एवं स्वास्थ्य संबंधी टानिक लाने का विचार करने लगे, लेकिन मैंने उन्हें समझाया कि मुझे कोई तकलीफ नहीं है और पूर्ण स्वस्थ भी हूँ। उपवास से हमारा शरीर विकार रहित हो गया है। डाक्टर साहब के कथनानुसार घर पर ही कल्प करना शुरू किया। २० दिन सन्तरा कल्प करने के बाद आम कल्प शुरू कर दिया, क्योंकि सन्तरा आसानी से मिल नहीं पाता था और मँहगा भी था। आम का मौसम था आसानी से मिल भी जाता था। इसलिये सन्तरा कल्प के बदले आम कल्प से ४० दिन का कल्प पूरा किया। पहले देखने में बहुत दुर्बल, उम्र लगभग १० वर्ष के ऊपर की लगतीं थीं, परन्तु कल्प पूरा होते होते ४० पौण्ड वजन बढ़ा और सुडौल भी दिखाई देने लगा।

उपवास द्वारा गठिया रोग से तो छुटकारा मिल ही गया साथ ही स्वप्नदोष, चिड़चिड़ापन भी दूर हो गया। स्मरण शक्ति बढ़ी, पेशाब की फासफेटक बन्द हुई, सिर के बाल

गिरने बन्द हुयें, पेटदर्द, सिरदर्द आदि स
मिट गये। रोग से मुक्ति पा जाने पर निराश मन में आ
का संचार हुआ। धन्य है माया भगवान् की। जहां ह
की दवा असफल रही वहीं प्रकृति मां सहायक बनी।
पंच तत्वों से, जिसमें पहले मिल जाना चाहता था,
से छुटकारा पाया और अपनी असली अवस्था में आ ग

प्रकृति मां के दिये वरदान से जहां मैं एकाकी मह
करता था आज एक चिकित्सक के रूप में हूँ। स्व
माताजी के नाम पर "श्री महाराजी प्राकृतिक चिकित्साल
बम्बई ७० में है। प्रकृति से सभी साधनों से परिपूर्ण है:
ही तरह निराश रोगी मेरे पास आते हैं तो उनकी
करने में मुझे बड़ा ही आनन्द मिलता है। अपनी पूर्व अव
की कल्पना मात्र से ही उनके दुःखों का अनुभव कर ले
हूँ। चिकित्सालय में रोगियों की चिकित्सा तथा रहने
व्यवस्था के अतिरिक्त प्राकृतिक चिकित्सा सम्बं
पुस्तकों का एक विशिष्ट संग्रह भी है जहां इच्छुक व्यक्ति
को पुस्तकें पढ़ने के लिये निःशुल्क वितरित की जाती हैं।

मैं गर्व से कह सकता हूँ कि कठिन से कठिन रोग पं
तत्व एवं उपवास की सहायता से दूर किये जा सकते हैं
उपवास का स्थान प्रधान होना चाहियें, विशेषकर उपवा
ही सब रोगों का इलाज है। मैं भी उपवास के बल पर आ
स्वस्थ एवं प्रसन्न हूँ। महिने में लगभग ४ दिन का उपवा
अवश्य करता हूँ। उपवास से स्वास्थ्य की रक्षा ए
खाद्यान्न की बचत होती है, जिसका अभियान भारत जैसे
कृषिप्रधान देश में जोरों से चल रहा है।

'संस्कृति' से अभिप्राय उन नैतिक आदर्शों से होता है, जिन पर किसी समाज का जीवन निर्भर करता है। धार्मिक विश्वासों और सामाजिक लोकाचारों के रूप में संस्कृति की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। किसी भी देश की भाषा और साहित्य पर उस समाज की संस्कृति के आदर्शों की छाप रहती है। भारतीय साहित्य में धार्मिकता और दार्शनिकता के भावों की प्रधानता रही है। यहां के निवासी भौतिकता से दूर रह कर आध्यात्मिकता को महत्व देते रहे हैं। गंवार से गंवार व्यक्ति भी इस भारत भूमि में इस लोक की अपेक्षा उस दूसरे लोक की चिन्ता अधिक करता दिखाई देता है।

आर्य संस्कृति को अपना मूलाधार बनाने वाली भारतीय संस्कृति ईश्वर और धर्म में पूर्ण आस्था

रखती है धर्माचरण द्वारा ईश्वर को प्रसन्न रखने से ही दोनों लोक सुधरने की बात यहां प्रत्येक मनुष्य के रक्त में भली भांति मिली हुई है। 'आत्मवत् सर्वं भूतेषु' के सिद्धांत के अनुसार सभी प्राणियों को अपना जैसा समझना, निष्काम कर्म करते हुए समस्त संसार के हित के लिये तत्पर रहना तथा दिव्य ज्ञान की प्राप्ति में तल्लीन रहना, यहां जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

'आचारो परमो धर्मः' के महामंत्र द्वारा ऋषियोंने सदाचार में ही मानवता की प्रतिष्ठा देखी है। सेवा-धर्म पर बल देने वाली भारतीय संस्कृति ने व्यक्तियों का स्वार्थ से ऊँचा उठा कर परमार्थ का पाठ पढ़ाया है। 'सर्वं भूत हिते रता' के महामंत्र के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को समस्त जीवधारियों के कल्याण में लीन रहना चाहिये। भारत की इस उदार संस्कृति के अंतर्गत 'हिंसावाद' के लिये तनिक भी स्थान न रहा। भारत भूमि के महापुरुषों ने मानवता की रक्षा से प्रेरित होकर ही दुष्टों का संहार किया।

सम्पूर्ण सुखों का त्याग कर आत्मोत्सर्ग के द्वारा धर्म और नीति की रक्षा करना भारत के प्रत्येक समर्थ नागरिक का प्रमुख कर्तव्य है। प्राणों के मोह पर विजय पाना सरल नहीं; परन्तु भारतीय संस्कृति ने देश और समाज के लिये प्राणों को हथेली पर लिये रहने के ज्वलंत आदर्श का प्रदर्शन अनेक अवसरों पर

किया है। शिवि और दधीचि के दान और त्याग की कहानियां आज भी आर्य जीवन में गूँज रही हैं। सच्चे वीरत्व से अनुप्राणित हमारी भारतीय संस्कृति की निष्ठा इस बात में बराबर रही है कि जीवन एक पवित्र धरोहर है, जीवन में ऐसा कुछ अवश्य किया जाना चाहियें, जिससे व्यक्ति को सदैव आदर के साथ स्मरण किया जाय। कर्तव्य-पालन में प्राणों का मोह भी नहीं होना चाहियें, क्योंकि वीर पुरुष के प्राण केवल एक बार ही तो निकलते हैं। मनुष्य कायरों की भांति अनेक बार क्यों मरे ?

सत्य और अहिंसा के प्रति ममत्व का पाठ पढ़ाने वाली भारतीय संस्कृति ने ठगने की अपेक्षा ठगायें जाने में ही आनन्द माना है। हरिश्चन्द्र के इस देश में राजपूतों ने वीरता के साथ सच्चाई का सुंदर मेल कर दिखाया। गौ और ब्राह्मण के यें अनन्य पुजारी कई बार धोखा खाकर रह गयें, परन्तु इन्होंने धूर्तता को नहीं अपनाया। छत्रपति शिवाजी ने उसी का थोड़ा-सा बदला लेने के लियें कुछ व्यावहारिक कूटनीति को अपनाया, परन्तु उन्होंने दूसरे मत की धर्म-पुस्तकों और अन्य मत वाले स्त्री-बच्चों का मान बनायें रखा। धार्मिक सहिष्णुता हमारी भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। कट्टर साम्प्रदायिकता यहां कभी भी न पनप सकी।

अतिथि सत्कार का भाव प्रत्येक भारतीय पुरुष के हृदय में कुछ ऐसी गहरी जड़ें जमाकर बैठा है कि आज देश में हट्टे-कट्टे भिखमंगों की भारी भीड़ खड़ी हो गई है। शरणागत की रक्षा के लिये यहाँ कितने ही मर मिटे हैं। दान औदार्य चरित्र के पूरक हैं, परन्तु पात्र की योग्यता पर भी हमें उचित ध्यान देना चाहिये। सहायता के योग्य दीन-हीन व्यक्ति को हमें दान देना चाहिये किन्तु अयोग्य व्यक्तियों को दिये जाने वाले दान का यदि थोड़ा-सा भी भाग दुष्कर्मों में लगता है, तो उसका दोष दाता को लगे बिना नहीं रह सकता।

भारतीय संस्कृति में नारी को विशेष गौरव का स्थान मिला है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' हमारी संस्कृति का एक विशिष्ट लक्षण है। मनु महाराज ने बलपूर्वक कहा है:—"जिस गृह में नारी का सम्मान होता है, उसमें देवता वास करते हैं।" भारतीय नारी एक बार पति के रूप में जिसका वरण कर लेती है, आजीवन उसकी ही बन कर रहती है। भारतीय नारियों के लिये पति ही देवता है। जौहर की ज्वाला में जीते जी जल जाने वाला निष्ठ प्रेम इसी देश का अपना गौरव है। आज भी भारतीय नारी लज्जा, शील और सेवा की प्रतिमूर्ति है। अन्धे और बहरे, कोढ़ी और रोगी पति की सेवा में जीवन को उत्सर्ग कर देना भारत की ही आन है। आज

की बदली हुई परिस्थितियों में साधना की कुछ कमी के कारण कहीं २ यह श्रद्धा अनर्थ की जड़ समझी गई है। अतः आज के समाज-सुधारकों ने तलाक आदि की व्यवस्था सोच निकाली है।

परिस्थितियों के अनुसार समाज सुधार की ओर ध्यान दिया जाना अनुचित नहीं ठहराया जा सकता। किन्तु सुधार क्रमिक और संतुलित होने से ही देश और समाज के कल्याण की आशा की जा सकती है। नवीनता से किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये, परन्तु यह नवीनता हमें अनैतिकता और मात्र भौतिकता की ओर ले जाने वाली भी न हो। भारतीय संस्कृति के मूल तत्व हैं नैतिकता तथा आध्यात्मिकता। आज के सुधारकों को इतना समन्वय कर रखना चाहिये कि वे नैतिकता और आध्यात्मिकता के साथ ही इस लोक में समुचित सुविधायें उपलब्ध कर रखें। घड़ी का पेन्डुलम् या लटकन एक ओर से हट कर बिल्कुल दूसरे छोर पर न जा पहुंचे, यह ध्यान हमें बना रहना चाहियें।

जिस भारतीय संस्कृति ने कभी भूमंडल पर प्रेम और प्रकाश की किरणें छिटकाई थीं, वही आज अनेक घात- प्रतिघातों के कारण अपने अस्तित्व को भुला बैठी है। उसकी व्यापकता ने बहुत समय तक विभिन्न संस्कृतियों को अपने उदर में पचाया है। किन्तु दीर्घ कालीन पराधीनतासे भारतीयोंका आत्म-गौरव नष्ट हो गया।

पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में भारतवासी सब कुछ भुला बैठे । आत्माभिमान नष्ट होने के ही उनके नैतिक पतन का मार्ग प्रशस्त हुआ । नारियों ने फिर भी अपने धर्म की बहुत-कुछ की, तथापि अविद्या के अन्धकार में देर तक रहने के कारण वे भी दूषित प्रभाव से बच न विलासता की ओर दौड़ में आज के अधिकांश पुरुषों के बीच एक भयंकर होड़ लगी हुई है । के भद्दे चित्रों और गानों ने पतन के गहरे खोद रखे हैं । एक बड़ी समस्या सामने है कि पौध को इस विष-बुझी खाद से कैसे बचाया जा पुराने खेवे के बूढ़े तो कुछ २ 'कारी कामर' समान हैं, जिन पर सिनेमा या रेडियो का चमकीला रंग नहीं चढ़ सकता ।

आज जब भारत स्वतंत्र है, उसे अर्जित स्वा को सुदृढ़ता प्रदान करने के निमित्त अपनी संस्कृ प्रेम जगाना ही होगा । भारतीय संस्कृति के अ विभिन्न विचार धाराओं का आदर आवश्यक है हमारी संस्कृति पहले से ही विभिन्नताओं के एकता देखने पर बल देती रही है और वह कुछ पचा रखने में सर्वथा समर्थ है । महात्मा ने कहा है;—"कोई भी संस्कृति, जो अलग रहने प्रयास करती है, जीवित नहीं रह सकती ।" सं का अर्थ है 'व्यक्ति का चतुर्दिक विकास' । यदि

की परिस्थितियों के अनुरूप सभी उपयोगी साम-ता को अपनाते हुयें अपने वास्तविक गौरव की के लिये सतत जागरूक रहें, तो कोई कारण कि हमारी संस्कृति आज भी अपना योग्य प्रभाव सिद्ध कर सके। अनेक निराशाओं के बीच भी ल भविष्य हमारे स्वागत के लियें प्रस्तुत है। य ही आर्य संस्कृति इस देश में प्रथम स्थान करके रहेगी।
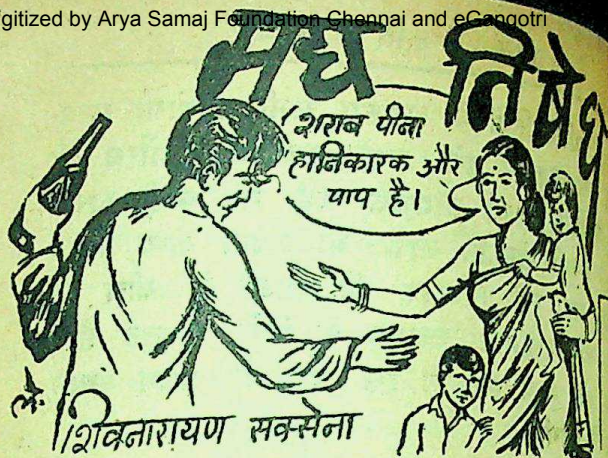
महात्मा गांधी ने २४ जून सन् १९३९ को 'हरिजन' पत्र में शराब बन्दी से सम्बन्धित एक लेख लिखा था जिसमें दिये गये विचार प्रत्येक विवेकशील प्राणी के लिये मनन करने योग्य हैं। "जो लोग व्यक्तिगत स्वाधीनता के नाम पर बातें करते हैं वे हिन्दुस्तान को नहीं जानते। एक व्यक्ति को अपनी विषय वासना के लिये राज्य से सहूलियतें भोगने का जितना अधिकार है उससे अधिक किसी को शराब पीने की सहूलियतें मांगने का नहीं है। मुझे उम्मीद है कि जो लोग अपने शराब के विषपान पर गर्व करते हैं वे इस उदाहरण पर बुरा न मानेंगे। इस देश में लोग इस बुराई को नियंत्रण में रखने के लिये कानून के अभ्यस्त नहीं। जर्मनी जैसे देश में सतीत्व बेचने वाली वेश्याओं के मकानों के लिये लाइसेंस लेना पड़ता है। मैं नहीं जानता कि

उन देशों पर किस बात पर अधिक नाराजगी प्रकट की जायगी बदनाम औरतों के मकानों के लाइसेन्स बंद करने पर या शराब खानों के लाइसेन्स बन्द करने पर ? जब वहां की महिला अपने गौरव को समझने लगेंगी तो वे अपने सतीत्व को बेचने से इन्कार कर देंगी। वे महिलायें जिन्हें स्त्री जाति के सम्मान का ख्याल है कानून सम्मत व्यभिचार की निन्दा करेंगी। तब क्या यह कहा जायगा कि वेश्यागृहों का लाइसेंस बंद करने से वेश्याओं को हानि पहुंचेगी, क्योंकि उनके परिवार के गुजारे का एक मात्र साधन वही था।"

उपरोक्त लेख बापू ने बम्बई के एक पादरी के पत्र का उल्लेख करते हुए लिखा था। पादरी का तथा अन्य लोगों का यह कहना था कि शराबबन्दी से जिस लाभ की आशा की जा रही है क्या उससे अधिक त्याग किसी शराबी को तो नहीं करना पड़ेगा। अरे भाई! शराब पीना किसी एक व्यक्ति की समस्या तो है नहीं, यह दुर्व्यसन तो पूरे देश को पतनोन्मुख करने वाला है।

शराब एक प्रकार का विष है, फिर भी जानबूझकर इसका पान किया जाता है, दिन प्रतिदिन पीने वालों की संख्या में वृद्धि ही हुई है। विदेशी विचारक रसले का तो यही कहना है "शराब पीना मौत की आराधना करना है।" आज लाखों करोड़ों ऐसे हैं जिन्हें ईश्वर, धर्म, ज्ञान, परिवार तथा चीज से भी

अधिक मोह शराब से है ऐसे व्यक्तियों को शराब से अधिक महत्व की वस्तु कोई दिखाई ही नहीं पड़ती आज शराब की गुलामी से जकड़े हुये व्यक्ति अपना धन तथा स्वास्थ्य बरबाद कर रहे हैं। इस विनाश से बचने के लिये हमारा धर्म तथा महापुरुष समय समय पर चेतावनी देते आये हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अशोक महान् के राज्य काल में मदिरा और मांस पर पूरी तरह प्रतिबन्ध था। चीनी यात्री फाहियान, तथा हुयेनसांग, अरब सौदागर सुलेमान तथा वास्कोडिगामा जैसे अनेक यात्रियोंने भारत को मदिरा, मांस तथा वेश्यालओं से रहित पाया था उनके संस्मरण आज भी हमारे गौरव को बढ़ाने के लिये पर्याप्त हैं।

भगवान् बुद्ध ने तो शराब को ज्ञान, शक्ति तथा विवेक को नष्ट करने वाली, और नारकीय जीवन बिताने के लिये तत्पर करने वाली मायाविनी कहा है। वैदिक बौद्ध, जैन, इस्लाम, ईसाई, तथा पारसी धर्म का सम्पूर्ण साहित्य मदिरा की घोर निन्दा करता है। मुगलकाल में भी शराब का प्रचलन ज्यादा न था, औरंगजेब के शासन काल में दिल्ली की दूकानों पर शराब देखने तक को न मिलती थी, उस समय भी शराबका आयात जहाजों द्वारा विदेशों से ही होता था। अकबर और जहांगीर के राज्य में भी शराब पर प्रतिबन्ध था। अलाउद्दीन खिलजी को तो शराब से इतनी चिढ़ थी

थी कि उसने शराब के वर्तन तक तुड़वा दिये और मदिरा पान करने वाले व्यक्तियों को जीवित जमीन में गड़वा दिया जाता। मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर ने तो यहां तक कह दिया था—

मेरे नजदीक जफर वादापरस्ती अच्छी,
पर नहीं है मय-पिचार की मस्ती अच्छी।
है जिन्हें होश जफर रहते हैं दुनियां से अलग,
कि नहीं उलफते मैरवाना-ए-हस्ती अच्छी॥

अर्थात्-मेरे पास कोई आश्वासन देकर भी बदल जाये तो बुरा नहीं है, पर मुझे शराबी की मस्ती पसन्द नहीं है। जिन्हें जरा भी ज्ञान रहता है वे तो शराब से दूर ही रहते हैं क्योंकि कलाली की मित्रता तो किसी भी प्रकार अच्छी नहीं है।

उर्दू के प्रसिद्ध शायर अकबर इलाहाबादी ने पशुता का प्रतीक बताते हुये इसकी घोर निन्दा की है देखिये वे क्या कहते हैं ?

नफस के ताबे हुये ईमान रुखसत हो गया।
वह जनाने में घुसे मेहमान रुखसत हो गया।
मय उन्होंने पी अब उनके पास क्यों कर दिल लगे।
जानवर एक रह गया, इन्सान रुखसत हो गया।

अर्थात्—जब व्यक्ति पर वासना का भूत सवार हो जाता है उस समय उसका ईमान विदा हो जाता है। उन्होंने शराब पी है इसलिये उनके पास दिल

नहीं लगता । शराब पीने के बाद उसमें से मनुष्यता विदा हो जाती है और पशुता रह जाती है ।

मुगल काल में शराब का इतना अधिक विरोध होने पर भी, इस बात से सभी परिचित हैं कि मुगल शासन का पतन प्रमुख रूप से ऐश और आराम की ज़िन्दगी बिताने से ही हुआ था ।

मादक पदार्थों का अधिकतम प्रयोग अंग्रेजों के शासन काल में दिखाई पड़ता है । छोटे से लेकर बड़े तक का ध्यान विभिन्न प्रकार की नशेबाजियों की ओर गया है । शराब पीना तो एक फैसन हो गया बड़े २ समारोहों तथा भोजों में खुले आम शराब पी जाने लगी । सरकार द्वारा एक शराब का ही विभाग खोला गया । उस समय भूमि कर के बाद सरकार को इसी विभाग से अधिक आमदनी थी । मनुष्य की दुर्बलता तथा अज्ञानता का ब्रिटिश शासन द्वारा खूब दुरुपयोग किया गया । १९४३ में ब्रिटेन के हाउस आफ लार्डस में लार्ड चेस्टर फील्ड ने आलोचना करते हुये कहा था 'शराब को पैदा करनेवाला व्यक्ति कैसा भी होशियार क्यों न हो वह मनुष्य समाज के लिये कदापि उपयोगी नहीं हो सकता है । देश में बीमारी, हत्या और दुःख को बढ़ाने के कारण यही लोग हैं यह लोगों को फंसाकर व्यभिचार के गड्ढे में गिरा देते हैं ।"

विश्वास रखियें यदि भारतवासी शराब पीना बन्द कर दें, और सरकार द्वारा मद्य-निषेध की नीति पूरे देश पर लागू की जावे, तो लोगों का जीवन स्तर उच्च हो सकता है, जो शराबी परिवार आज अभाव ग्रस्तता में जीवन यापन कर रहे हैं वे अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति कर अपने परिवार की स्थिति को सुधार सकते हैं। न्यायालयों में मुकदमों की संख्या कम हो सकती है, कारागृह अपराधियों से खाली हो सकते हैं, समाज में शांति तथा सुख की स्थापना हो सकती, भय तथा आतंक दूर भगाये जा सकते हैं। बैंक, पोस्ट-आफिस तथा सहकारी समितियों में लोगों की पूंजी बढ़ सकती है। रोजगार में विकास हो सकता है। मोटर, ट्रक, रेल तथा कारखानों में कार्य करने वाले व्यक्तियों की दुर्घटनाग्रस्त संख्या में न्यूनता आ सकती है। व्यभिचार, भ्रष्टाचार, बलात्कार तथा चरित्रहीनता में अवश्य कमी आवेगी। उत्पादन केन्द्रों का उत्पादन अच्छा तथा अधिक किया जा सकता है। मद्य-निषेध हो जाने से एक नहीं देश में अनेक लाभ हो सकते हैं। सरकार को अपनी आमदनी कम होने का भय हो सकता है, पर अन्य तरीकों से राष्ट्र की आय बढ़ेगी, तथा नैतिकता के अनेक कार्यों में शराब का पैसा लगाया जा सकेगा।

यद्यपि शराब बन्दी की पहली आवाज दादाभाई नौरोजी ने लगाई थी। पर आगे चलकर यह कार्य तो कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों में सम्मिलित हो गया तथा स्त्री-

पुरुष दोनों ने ही अफीम तथा शराब के ठेकों पर धरना देना शुरू किया। आश्चर्य की बात तो यह है कि कांग्रेस के जो कर्मचारी ब्रिटिश शासन से शराब बन्द कराने के लिये प्रयत्नशील थे, आज उन्हीं के हाथों में शासन की बागडोर आने पर भी, १८ वर्ष होने पर भी शराब की दूकानों पर ताले न डाले जा सके। किसी भी देश की पूंजी लम्बे-लम्बे बांध अथवा धड़धड़ाती हुई गाड़ियां या विशाल काय राजमार्ग नहीं हुआ करतीं। राष्ट्र की सच्ची पूंजी उस देश की स्वस्थ तथा सुसम्पन्न जनता ही होती है। एक ओर हम शराब पर पैसा व्यय करते हैं दूसरी ओर अपना स्वास्थ्य चौपट करते हैं, तथा कुसमय में ही मृत्यु के मुख में जाने के लिये विवश होते हैं, शराब पर किया जानेवाला व्यय हमें कितनी ही सुविधाओं से वंचित करता है।

शराब के द्वारा शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की शक्तियों का क्षय होता है। सरविक्टर होर्सले ने कहा है "मदिरापान से मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं की नियन्त्रण शक्ति बढ़ने की अपेक्षा नष्ट हो जाती है।" शराब पीने से स्मरण शक्ति घटती है, छात्रों पर मदिरा पान का प्रभाव देखने पर पता लगा कि जो छात्र जितनी अधिक शराब पीता है उसके उतने ही कम नम्बर आते हैं। नार्वे के प्रोफेसर श्री योग्ड ने तो स्वयं मदिरा पान कर उसका प्रभाव बताया है, जब ये शराब पीने लगे तो कविता की उतनी पक्तियां याद न कर सकते थे

जितनी शराब पीने से पहले कर लिया करते थे। और जो पंक्तियां पहले याद की थीं वह भी शराब पीने के दिनों में भूल गये। शराब के इस परीक्षण को करने के एक महीने बाद उन पंक्तियों को फिर से याद किया जिन्हें वे भूल चुके थे तो अधिक समय ही लगा।

इस तरह शराब हमारे जीवन को नष्ट करने वाली एक बुरी आदत है जिससे छुटकारा हमें पाना चाहिये इस इस ओर कवि की वाणी हमें प्रेरित करती है, क्या ही अच्छा हो कि इसे मानकर आचरण में लावें—

मदिरा पीकर मद बढ़े, मद से गुमते होश।
शूर क्रूर सा भोकता, झूठा भरके जोश॥

मैं आर्त्त शरण में आया
प्रभु बांह गहो अब मेरी !
अपनाओ मुझे दयानिधि
क्यों नाथ करी अब देरी !!

यह भौतिक माया जग की
कठ-पुतली मुझे बनाती !
पथ-भ्रष्ट बनाकर मुझको
मन माना नाच नचाती !!

मैं ऊब उठा अकुलाया
पथ-भूल स्वर्ण-सा अपना !
माया ने मुझे भ्रमाया
लखता हूं केवल सपना !!

पथ मुझको नाथ दिखाओ
काटो माया का बन्धन !
मैं मुक्त बनूं हो जायें
उर में नूतन स्पन्दन !!

अमरों का लोक न मुझको
प्रिय केवल भक्ति तिहारी !
दो अभय इष्ट वर मुझको
हे भक्तों के भय हारी !!

मैं नहीं चाहता वैभव
जो अन्धा मुझे बनायें !
मादक मदिरा वैभव की
मादकता मुझे न भायें !!

वह वैभव ठुकरा दूंगा
जिसको पा तुम्हें भुलाऊं !
कुसुमों की सेज सजा क्यों
सर्पों को भला सुलाऊं !!

हे नाथ हृदय रोता है
कहता है आओ—आओ !
दो दरश तृषित नयनों को
मुझको न अधिक तरषाओ !!

हे राम रमो प्राणों में
जन—रंजन नाम तुम्हारा !
अवतार लिया जनहित ही
वसुधा का भार उतारा !!

बरसो करुणा घन बरसो
मरु-भूमि हृदय यह मेरा !
लहलहा उठे क्षण भर में
पाकर करुणा-जल तेरा !!

हे कृष्ण—कृष्ण उर मेरा
क्यों तुम्हें आज भूला है!
माया मदिरा के मद में
मद—होश बना फूला है!!

यह रमा रहे बस तुम में
ऐसा आकर्षण कर दो!
तुम उर में रमो सदा ही
हे कृष्ण मुझे यह वर दो!!

हे निराकार जग कारण
व्यापक हो जड़-चेतन में!
निस्सीम निरूपम अविचल
निरुपाधि वास कण-कण में!!

हे सत्य शिवम् चिर सुन्दर
निरगुण साकार दयानिधि!
निरलेप सदा नारायण
पहचानूं तुम्हें कवन विधि!!

घट—घट बासी अविनाशी
सबके उर अन्तर यामी!
अपनाओ तजो न मुझको
लख पतित नीच खल कामी!!

मैं पतित—पावन तुम
करुणा के सागर आओ!
करुणा की ज्योति जगाओ
जीवन का दीप जलाओ!!

अरण्यरुदन का स्वरूप और फल।

मैं अबला हूँ। निराधार स्थिति मेरी है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मैं निर्धन अवस्था में जीवित हूँ। परलोक सिधार गये मेरे प्राणपतिने आजीवन तक सुख, समृद्धि में जीवन गुजारने के लिये मेरी व्यवस्था कर रखी है। मेरे पतिराज के साथ अनेक वर्ष तक अनेक प्रकार के भोग-विलासों का यथेच्छ अनुभव लेने में किसी प्रकार का संकोच नहीं रखती थी। आधुनिक युगके कतिपय क्षेत्रोंके विविध नृत्य-गान, भोजन, शयन, देह की सजावट, सुंदरतम स्थान, चमनों की किमती सामग्री, श्रेष्ठ साधनों का उपभोग करनेमें-भोगने में, अनुभव लेने में, सुख में तल्लीन रहनेमें किसी प्रकारकी त्रुटी न रखी।

४ बरस पहले की बात

जब मेरे पति जीवित थे। उच्चकोटि के पदवीधारी थे। ग्रीष्मऋतु थी। १ मास की छुट्टीमें हम उटकमण्ड (मद्रास से ४०० मील दूरी पर पर्वतीय प्रदेश है। जहां मई, जून मासमें भी ठंडे जलसे स्नान नहीं किया जा सकता इतनी ठंडी पड़ती है) १ रात १० बजे हम भोजन करते थे। पतिदेव मुझसे कहने लगे, प्रिये! तुम प्रतिदिन ३ घंटे तक आसन प्राणायाम का अभ्यास करतीं हो। ४० बरस उम्र बीत जाने पर भी २०-२५ वर्ष के सौंदर्य में मनोकार्षक देदीप्यमान मुख मुद्रा से सर्वांगसुंदर अवयवों से सुसज्जित हो। क्या यह बात सच है कि योगाभ्यास से इतना लाभ प्राप्त हो सकता है? सच कहो क्या बात है। मुझे विश्वास नहीं आता। मेरे शरीर में ३ रोग घर कर ४ वर्षों से बैठे हैं। डायबिटीस, हाय ब्लड प्रेसर और हृदय का विकार।

अरण्यरुदन और आपकी आपबीति

मैंने कहा; पतिदेव जैसा समय मुझे तन के आरोग्य, मनकी शांति तथा आत्म चिंतन के लिये प्राप्त होता है वैसे आपको भी अवश्य मिलता है, किन्तु आप माया जालमें फसे हुए हैं। इंद्रिय सुख के पीछे लगे हो।

आपकी ४५ वर्ष की उम्र होने पर भी ६० वर्ष से अधिक लगती है। मैं १० वर्षों से योग मार्गमें प्रवेश कर अपके भले के लिये प्रतिदिन कहती आई हूँ। किन्तु आपने एक दिन मुझे कहा कि "प्रिये! तुम क्यों ? अरण्य रुदन कर रही हो। उच्चकोटि के लोग तुम्हारी बात नहीं मानेंगे तो मैं कैसे मान सकूँ। भोग विलास में अधिक प्रेम कैसे बढ़े वही बात किया करो। उस दिन से मैंने आपसे योग-मार्ग के बारे में बात-चीत नहीं की।"

११ दिनके बाद।

दिनको ११ बजे हम भोजन करते थे। पतिदेव का आधा भोजन समाप्त हुआ था। मुझसे कहने लगे मैंने बड़ी गलती की तुम्हारी बात अनसुनी की। जीवन सुधारने का मौका मैंने गुमा दिया। प्रिये १ वर्ष से शरीर की कमजोरी बढ़ गई है। रोगों ने मुझे घेर लिया है। अब मन की कमजोरी आगई है। सदाचार का रास्ता अपनाकर स्वर्ग में जाने का प्रयास करना था किन्तु दुर्भाग्य और धन, सत्ता, व्यसन, दुराग्रह मलिन अहंकार के वशीभूत होकर नरकगामी बन बैठा हूँ। ऐसे वचन कहकर निःशब्द हो गये। शरीरकी चेतनावस्था दुर्बल होने लगी। सदा के लिये शरीर एवं मनसे अलिप्त होगये। हमारे कोई संतान नहीं थीं।

बहिर-दृष्टि अबला हूँ किन्तु ?

लौकिक अध्ययन है विषय सुखानुरागी का अनुभव मुझे आरम्भ में प्रिय प्रतीत हुआ। जब मैं योग विद्या (यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) में प्रवेश करने लगी तबसे वैषयिक सुख गौण तथा आत्म-सुख महत्वशील भासने लगा। मेरी बुद्धि पवित्र होने से मैं अबला नहीं हूँ। मेरा जन्म मोक्षमार्ग हुआ है। उसी पंथमें मैं गमन कर रही हूँ।

सबकी कृपाभिलाषीनी
सत्यभामा वरुणदेव पांडे
रांची (बिहार)

दुःख के रहस्य को पूर्ण हृदयंगम करने के लिये हमारे समक्ष सबसे सुन्दर उदाहरण आधुनिक सिनेमा और नाटकों का है। सबसे श्रेष्ठ नाटक कौन-सा समझा जाता है? कौन-सा सिनेमा लोगों को अत्यन्त पसन्द आता है? अधिकतर लोग यही उत्तर देंगे कि जिस नाटक में संघर्ष अधिक होता है जिसमें दुःख ही दुःख अधिक भरा होता है, जिसमें शत्रु ईर्ष्या-द्वेष तथा विघ्न-बाधा उपस्थित करने का काम अच्छा करते हैं, जिसमें स्थल-स्थल पर करुणा के दृश्य भरे हों, तथा जिसमें हिंसा, अत्याचार व पीड़ा इतनी अधिक हो कि उसे देखते ही हमारा हृदय भीतर से रोने लगे — ऐसे नाटकों व चित्रपटों को हम सबसे उच्चकोटि का नाटक व चित्रपट कहते हैं। और जिस नाटक में इतना सब दुःख, अत्याचार व संघर्ष नहीं होता है, जो दर्शकों के लिए करुणा के दृश्य उपस्थित करने में सफल नहीं हो पाते हैं, ऐसे

नाटकों की प्रशंसा करते हुए कभी कोई दिखलाई नहीं देता। क्या कभी हममें से कोई ऐसे नाटक को पसन्द करेगा, जिसमें एक नवयुवक एक नवयुवती से प्रेम करके दाम्पत्य जीवन में प्रवेश कर ले और उसे माता-पिता की ओर से तथा अपने सम्बन्धियों की तरफ से कोई विघ्न-बाधा न प्रस्तुत हो? क्या कोई भी व्यक्ति ऐसे नाटक की प्रशंसा करेगा? हम तो समझते हैं कि हममें से हर व्यक्ति ऐसे नाटक को देखने के पश्चात् यही कहता हुआ बाहर निकलेगा कि अरे! इस नाटक में तो कुछ भी नहीं है व्यर्थ में पैसा और समय खर्च किया। संस्कृत साहित्य में शकुन्तला व मेघदूत क्यों इतना उच्च स्थान लिए हुए हैं? इस लिए कि वे आदि से अन्त तक संघर्ष से भरे हुए हैं, और स्थल-स्थल पर उनमें दुःख, करुणा, क्लेश, भय, विभत्सता, विरह आदि के अनेकों दृश्य उनमें विद्यमान हैं।

यहां पर कोई भी हमसे यह प्रश्न कर सकता है कि हम सब लोग तो सुख और शांति के इच्छुक हैं, आनन्द की चाहना ही हमेशा किया करते हैं और दुःख, अत्याचार व क्लेश आदि से तो नितान्त घृणा रखते हैं; अतएव पुनः क्यों ऐसे दुःखपूर्ण नाटकों व चित्रपटों को पसन्द करते हैं जिनमें सुख-शांति लेशमात्र भी नहीं है, तथा जिनमें विपरीततः हिंसा, लड़ाई-झगड़े, मार-पीट और ईर्ष्या-द्वेष इत्यादि ही आदि से अन्त तक

देखने-सुनने में आते हैं? क्या भय, घृणा, अत्याचार, विरह आदि के दृश्य देखने पर हमारे हृदय में कष्ट नहीं होता है? क्या क्रूरता और अन्याय से पूर्ण कृत्यों को देखकर हमारे चित्त की शांति और आनन्दमय अवस्था भंग नहीं होती है? यदि शांति होती है, यदि इन अरुचिकर दृश्यों को देखने पर हमारा हृदय दुखित होता है, पुनश्च व्यर्थ में हम अपना पैसा खर्च करके ऐसे चित्रपटों को देखने क्यों जाते हैं, और क्यों प्रति वर्ष हमारे देश का लाखों रुपया साहित्यिक उपन्यासों कहानियों व नाटकों पुस्तकों के प्रकाशन में व्यय होता है? इधर पैसा भी जाये और उधर मनकी शांति भंग हो और साथ में दुःख भी प्राप्त हो। यह कैसा?

यही सबसे बड़ी गुत्थी है जिसे सुलझा लेने पर अखिल विश्व-प्रपंच का रहस्योद्घाटन हो सकता है। यही यदि हम तनिक गम्भीरता पूर्वक विचार करें तो हमारे लिये यह समझना कठिन नहीं होगा कि दुःख वस्तुतः आनन्दस्वरूप है, आनन्द का विरोधी तत्व नहीं है जैसा कि अधिकांश लोगों की धारणा बनी हुई है। जब हम दुःखपूर्ण नाटकों को देखते हैं तो ऐसी बात नहीं है कि हमारी अन्तरात्मा को दुःख व कष्ट की अनुभूति न होती हो। लेकिन तथ्य तो यह है कि उस दुखानुभूति में भी आत्मा को आनन्द-रस का आस्वादन होता है। जितना ही दुःख अधिक होता है, उतनी

ही उस नाटक को देखने में सुखानुभूति होती है और हम बार-बार देखने की इच्छा करते हैं। बिलकुल यही स्थिति संसार के दुःख की भी है। यह संसार एक विशाल नाटक है। इसलिए इसमें जितना ही दुःख संघर्ष अत्याचार इत्यादि अधिकतम होगा, उतना ही हमारी अन्तरात्मा को इसे देखकर बाद में सुख एवं आनन्द प्राप्त होगा।

इस संसार-नाटक में और हमारे कृत्रिम, पर्दों पर दिखलाए जानेवाले लौकिक नाटकों में एक भारी अन्तर भी है। लौकिक नाटकों में दर्शन अलग होते हैं और पात्र अलग होते हैं, लेकिन संसार-नाटक में दर्शक और पात्र दोनों एक हो गए हैं। हम अपना अभिनय पूरा करते हैं और अन्य लोग उसे देखते हैं और जब अन्य लोग अपना अभिनय निभा रहे होते हैं तब हम उनके दर्शक बन जाते हैं। इस तरह हम संसार-नाटक के पात्र भी हैं और दर्शक भी।

हम सभी लोगों का, मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी तथा कीट-पतंग तक समस्त जड़ चेतन का इस संसार-नाटक में अपना पृथक अभिनय है और वह अभिनय हर जन्म में बदलता रहता है; जिस प्रकार कि एक ही व्यक्ति एक लौकिक नाटक में राजा या रानी बनते हैं और दूसरे नाटक में दरिद्र व भिक्षुक का कार्य निभाते हैं। एक नाटक में जब एक व्यक्ति राजा या रानी का कार्य करता है तब उसे अपने चरित्र

व्यवहार में वे सभी अच्छाइयां व बुराइयां दिखलानी पड़ती हैं जो कि किसी वास्तविक राजा व रानी में संभव हो सकती हैं। उसी व्यक्ति को जब दूसरे नाटक में एक भिक्षुक व दरिद्र का काम करना होता है, पुनः उसे एक भिक्षुक के समान ही दुःख प्रदर्शित करना होता है, उसी दरिद्र का भोजन करना पड़ता है। विपरीत यदि दरिद्र का अभिनय करते वक्त वह दरिद्र के समस्त आचरणों को अपने शरीर से नहीं प्रकट कर पाये, तब वह असफल अभिनेता सिद्ध होगा और वह नाटक भी लोगों को अति रोचक नहीं लगेगा। इस तरह रोने, हंसने व खुशियां मनाने के जितने भी कार्य हैं उनको निभाने में अभिनेता जितना ही तन्मय हो जाय, उतना ही वह चित्रपट या नाटक श्रेष्ठतम बनता है और उतना ही वह दर्शकों को आकर्षित कर सकता है।

यह संसार भी तो एक नाटक है। अतः इसकी भी वही स्थिति है। इसमें माता-पिता, भाई-बहन, शत्रु-मित्र, शासक-प्रजा, सज्जन-दुर्जन एवं पाप-पुण्य के नाना अभिनय रचे गयें हैं। एक जन्म में कोई जीवात्मा शासक, मंत्री व राजा बनकर सुख एवं विलास को भोगता हुआ अपने ऐश्वर्यशाली अभिनय को सफलतापूर्वक निभाता है। दूसरे जन्म में उसी जीवात्मा को भिक्षुक बनकर दर-दर ठोकरें खाने का भाग भी निभाना पड़ सकता है। जब हममें से अनेक जीव दुष्ट व चोर

के अभिनय में आते हैं, तब उन्हें छल-छिद्र के [illegible] सभी कृत्य मदोन्मत्त होकर करने पड़ते हैं जिनसे संसार नाटक का संघर्ष जटिलतम बनता है। परमात्मा है [illegible] संसार-नाटक का रचयिता व निर्माता (डायरेक्टर) और सब जीवात्मा हैं अभिनेता (ऐक्टर)। चूंकि इस सृष्टि-नाटक को श्रेष्ठतम बनाना है अतः इसकी रोचकता बढ़ाने के लिये इसमें अधिक से अधिकतम दुःख क्लेश हिंसा, व संघर्ष भरा गया है जिसके बिना कोई [illegible] नाटक रोचक बन ही नहीं सकता। जिस प्रकार [illegible] किसी ऐसे नाटक को पसन्द नहीं करते जिसमें दुःख कष्ट व विघ्न-बाधायें कम हों अथवा बिल्कुल ही न हों जिसमें सभी पात्र बड़ी सुख-शांति के साथ रहते हुए दिखाई दें और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा-अभिलाषा हर प्रकार से पूरी हो जाती हो। उसी प्रकार यदि हमारे वास्तविक जीवन से समस्त संघर्ष सभी दुःख-द्वन्द्व छीन लिए जांय और हमारा जीवन बिल्कुल शांतिमय बन जाय, पुनः हमारा यह जीवन-नाटक भी हमारे लिए नितान्त नीरस एवं भारस्वरूप बन उठेगा और इसकी सम्पूर्ण रोचकता का अन्त हो जायगा। हम कभी भी ऐसे जीवन को प्राप्त कर संतुष्ट एवं आनन्दित नहीं हो सकते। कारण, इन तमाम झंझटों व द्वन्द्वों में ही हमारी आत्मा को सूक्ष्म एवं अति गहरा सुख उपलब्ध होता है। तभी तो हमें दुःखपूर्ण किस्से सुनने में, दर्द भरे

नाटकों को देखने में, संघर्षमय कथाओं व उपन्यासों को पढ़ने में रस मिलता है, अन्तरात्मा को एक सूक्ष्म संतोष-सा प्राप्त होता है।

वेदान्त का यह एक नितान्त नवीन सिद्धांत है कि जिसे हम दुःख कहते हैं और अपने लिए अत्यन्त ही अनावश्यक एवं प्रतिकूल समझते हैं, वह सचमुच हमारा सबसे बड़ा अज्ञान है। यथार्थ तथ्य तो यह है कि दुःख भी आनन्द का एक रूप है। वेद आनन्द स्वरूप परमात्मा की सत्ता को अद्वैत वर्णन करते हैं अतः अद्वैत आनन्दमयी सत्ता में दुःख जैसे कोई विजातीय तत्व का प्रवेश कैसे संभव हो सकता है? सच्चिदानन्द की अद्वैत भूमिका में जितना कुछ भी होगा वह सब आनन्द का ही कोई न कोई विचित्र प्रकार होगा, आनन्द से भिन्न कोई विजातीय तत्त्व नहीं अस्तित्त्व रख सकता, अन्यथा सर्वं खल्विदं आनन्दमय ब्रह्म का श्रुति वचन सार्थक नहीं हो सकेगा। अतएव दुःख को भी आनन्द का एक विशिष्ट रूप ही समझना चाहियें। जिस प्रकार संसार के अनेकों पदार्थ हमें विविधरूप से आनन्द प्रदान करते हैं, उसी प्रकार दुःख में भी एक प्रकार का आनन्द अन्तर्निहित है जिसका अनुभव करने के लियें ही इस विश्व-प्रपंच का सृजन होता है।

आज कल देश एवं विदेश में प्रायः हार्टफेल (हृदय गति का अवरुद्ध होना) आदि हृद्रोग द्वारा मृत्यु की संख्या बढ़ गई है। हृदय रोग बहुत ही भयंकर एवं प्राण घातक महारोग है। जब इस रोग का आक्रमण होता है तब मनुष्य मरणासन्न हो जाता है। इन्द्रियों का कार्यक्रम बन्द हो जाता है।

हृद्रोग की उत्पत्ति:—मिथ्या आहार बिहार, गरम, गरिष्ठ, भारी, कषैला, तीक्ष्ण आदि पदार्थों का सेवन, अधिक मानसिक एवं शारीरिक परिश्रम करना, चिन्तन करना, वक्षस्थल पर आघात लगना, मलमूत्र व अधोवायु के वेग को रोकना, क्षुधा से पीड़ित होने पर आहार न करना, तृषा को रोकना, भय करना, जागरण आदि कारणों से हृदय में रोग उत्पन्न होता है। आयुर्वेद के मतानुसार हृदय रोग ५ प्रकार का होता है।

वायुदोष संकुचित होकर रस को विषाक्त करके हृदय में प्रवेश कर जाता है और हृदय के कार्य में बाधा उत्पन्न कर हृदय रोग की उत्पत्ति करता है।

लक्षण—वातज हृदयरोगः—इस रोग में हृदय में तनाव, सुई चुभने जैसी पीड़ा, हृदय का ऐंठना, मसलने जैसी वेदना, मानो हृदय कट कर दो खंडों में विभक्त हो रहा हो, चाकू से हृदय को काटने जैसा आभास होना आदि वातज हृदय रोग का लक्षण है।

पित्तज हृदय रोगः—मुख का सूखना, स्वेद (पसीना) निकलना, मुर्छा, ग्लानि मोह, प्रदाह, तृष्णा, गले का जलना, हौलदिल, घबराहट, हृदय का सूखना आदि पित्तज हृदय रोग का लक्षण है।

कफज हृदय रोगः—मुख का मीठा रहना, शरीर का भारीपन, अरुचि, हृदय का भारीपन, अग्नि का मन्द होना, मुख मार्ग से कफ का अधिक गिरना, हृदय का कम्पन, शरीर का शीतल होना आदि लक्षण कफज हृदय रोग में पाये जाते है।

त्रिदोषज व कृमिज हृदय रोग का लक्षणः—इस रोग में वात, पित्त, कफ तीनों दोषों का लक्षण विद्यमान रहता है, जिसे त्रिदोषज (सानीयातज) हृदय रोग कहते हैं। इस रोग के अपथ्य करने से गुल्म उत्पन्न होता है, और उसके प्रभाव से कृमि उत्पन्न हो जाती है। कृमिज हृदय रोग में मचली, अरुचि,

नेत्रों का काला होना, आंखों के आगे अंधेरा छाना, शरीर का शुष्क होना, हृदय का धड़कना, बार बार शूल का उठना, सुई चुभाने जैसा दर्द होना, वमन होना, हृदय में असह्य वेदना एवं टीस उत्पन्न होना, खुजली होना, हृदय में नुकीली चीज चुभाने जैसी पीड़ा, धुक धुकी लगना आदि कृमिज हृदय रोग का लक्षण मात्र है।

हृदय रोग के उपद्रवः—हर प्रकार के हृदय रोगों में शरीर का सूख जाना, भ्रम होना, ग्लानि, शरीर विशीर्ण होना आदि उपद्रव प्रगट होते हैं। कृमिज हृदय रोग का उपद्रव बहुत कुछ अंशों में कफज हृदय रोग के उपद्रव से मिलता जुलता है—जैसे मिचली, अरुचि, अन्न का न पचना आदि लक्षण उपद्रव स्वरूप प्रगट होते हैं।

उपचारः—१:—चातुर्जातक चूर्ण- तेजपत्र, दालचीनी, लघु इलायची, नागकेशर, वंशलोचन, स्याहजीरा, सफेद जीरा, धनिया, तालीसपत्र, अनारदाना. इन द्रव्यों को १२-१२ ग्राम ले और तंतडिक कैथ, पीपल. पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, काली मिर्च, अम्लबेत, अजमोद, अजवायन, इनको ७२-७२ ग्राम लेवे और सम्पूर्ण औषधि के बराबर मिश्री मिलाकर चूर्ण कपड़ छान कर शीशी में भर लें।

मात्राः— १ ग्राम से ३ ग्राम तक प्रातः मध्याह्न सायंकाल जल के साथ सेवन करना चाहिये।

गुणः—इस चूर्ण के सेवन करने से हर प्रकार का हृदय रोग, हृद्शूल, अरुचि, वातव्याधि आदि रोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

२:—तालीसादि चूर्णः—तालीसपत्र, चव्य, कालीमिर्च, सेन्धानमक, नागकेशर, गजपीपल, पिपलामूल, जीरा, अम्लबेत, सोंठ, अनार दाना, नागर मोथा, अजमोद, धनिया, इलायची, बेर, चित्रकमूल, तंतडकि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके चूर्ण वजन का आधा भाग मिश्री मिलाकर शीशी में रख लेना चाहिये।

गुणः—हर प्रकार का हृदय रोग, कृमिजन्य व्याधि उदर पीड़ा आदि व्याधियां दूर होतीं हैं।

मात्राः—एक ग्राम से तीन ग्राम तक चूर्ण प्रातः मध्याह्न सायंकाल अर्जुन क्वाथ के साथ सेवन करना चाहिये।

३:—गगनाशय चूर्णः—सोंठ, मिर्च, पिपला, तज, पत्रज, इलायची. लौंग, जायफल, बंशलोचन, क्षीरी, जवाखार, कचूर, काकड़ासिंगी, असगन्ध, अनारदाना सब औषधियों को समभाग बराबर लेकर बारीक चूर्ण कर चूर्ण के बराबर शुद्ध अभ्रक लेकर मिलाकर कुल वजन के बराबर मिश्री मिश्रित कर शीशी में रख लेवें।

गुणः—हर प्रकार के हृदयरोग, त्रिदोषजनित हृदयरोग, राजयक्ष्मा, भयंकर प्रमेह, श्वास कास आदि रोगों में लाभदायक है।

मात्रा:— आधा ग्राम से एक ग्राम तक प्रातः दोपहर सायंकाल ।

सेवनविधि:— हृदयरोगों में अर्जुन छाल क्वाथ, अर्जुन छाल स्वरस और मधु तथा रोगानुसार अनुपात के से सेवन करना चाहिये ।

४:—क्षारामृत:—खार, ढाक, कालीपांडरी, श्वेतकत्था ओंघा, केला, तिल, जीवन्ती, धतूरा, हल्दी, कुम्हड़ा अडूसा, निसोत, जीमीकन्द, इन सबको भस्म कर उस भस्म को जल में घोल अग्नि पर रख कर क्षारविधि से क्षार निकाल कर शीशी में रख लेवें ।

गुण:—हर प्रकार का हृदयरोग, हृद्‌शूल, उदररोग आदि में लाभदायक है ।

मात्रा:—आधा ग्राम से एक ग्राम तक प्रातः दोपहर सायंकाल जल से सेवन करना चाहिये ।

५:—पोसकर मूल को बारीक चूर्ण कर शीशी में भर लेवें ।

गुण:—हर प्रकार के हृदयरोग, हृदय वेदना में इस चूर्ण का अच्छा प्रभाव पड़ता है ।

मात्रा:—३ ग्राम से ६ ग्राम तक प्रातः दोपहर मधु के साथ सेवन करना चाहिये ।

६:—सोंठ और चित्रकमूल दोनों को समभाग लेकर बारीक चूर्ण बनाकर कपड़ छानकर शीशी में भर लें ।

गुण:—हर प्रकार का हृदयरोग, हृदयशूल पार्श्ववेदना,

हृदय कम्पन, घबराहट, हृदय की धड़कन आदि में इस चूर्ण से विशेष लाभ होता है।

मात्रा डेढ़ ग्राम से तीन ग्राम तक प्रातः दोपहर सायंकाल गरम जल के साथ सेवन करना चाहियें।

७:—शुद्ध हींग, पीपला, नमक, अनारदाना, सोंठ इन सब औषधियों को बारीक चूर्ण कर नींबू के रस में घोंटकर १-१ ग्राम की गोलिया बना लें।

गुण:—हर प्रकार का हृदयरोग, हृदूशूल, हृदयवेदना, हृदय कम्पन आदि रोगों में लाभकारी है।

मात्रा:—२ गोली से ४ गोली तक प्रातः दोपहर शाम गरम पानी के साथ सेवन करना चाहियें।

विभिन्न औषधियां :—अर्जुनारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट, मुक्ताभस्म, सिद्धमकरध्वज, योगेन्द्र रस, वृहद्वातचिन्तामणि रस, हृदयार्णव रस, नागार्जुनाभ्र रस, आदि औषधियों को रोगानुसार अनुपान भेद अथवा रोगी के बलाबल के अनुसार मात्रा निर्धारित कर सेवन करना चाहिये।

पथ्य:—हर प्रकार के हृदय रोगों में मूंग कुल्थी का यूष, परवल की सब्जी, मूली, मुरब्बा, अजवायन, लहसुन, पुराना गुड़, सोंठ; सेन्धानमक, शहद, अदरख, इमली, चंदन, कस्तूरी, सिरका, द्राक्षाशव, पान आदि का सेवन पथ्य है।

अपथ्य:—अधिक परिश्रम, मानसिक चिन्तन, मलमूत्र के वेग को रोकना, भेड़ का दूध, दूषित जल, पहाड़ी

नदियों का जल, जवाखार, महुवा, मैथुन आदि अपथ्य है।

विशेषः—हृदयरोगों में पूरी सावधानी रखते हुए रोगी को अधिक उठने बैठने हिलने डोलने तथा मानसिक एवं शारीरिक परिश्रम नहीं करने देना चाहिये। साधारण सा हृदयरोग भयंकर हो जाता है और रोगी मृत्यु को प्राप्त होता है।

युक्ति संगत बात यह है कि हृदयरोग होते ही उसकी चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहियें।
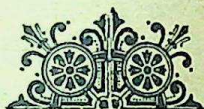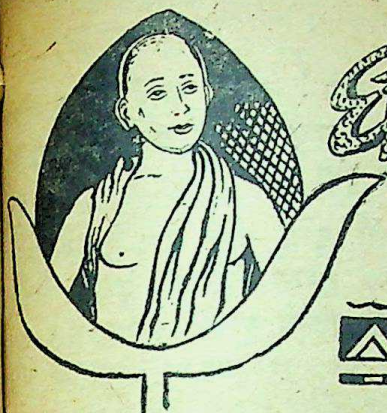
(गतांक से आगे)

इन्द्रिय सुखकी आसक्ति पर आत्मा का प्रज्वलित प्रकाश प्रकट करके उसको जलाकर भस्मकर डालो। संसारी वासनाओं को हृदय में स्थान नहीं दो, और सत्य स्वरूप राम से हमेशा अपने हृदय को भरपूर रखो। "मेरे प्रियजन शिवाय दूसरों के विचार को मेरे हृदय रूपी नगर से बाहर निकाल दो।" क्या इन्द्रिय सुख के विषय बराबर भी ईश्वर प्रिय नहीं है? लोग ईश्वर भक्ति करते अटकते हैं; कारण वे ऐसा मानते हैं कि, जगत के मिथ्या पदार्थों पर के प्रेम के समान ईश्वर की भक्ति से भी उनको कुछ बदला नहीं मिलता; परन्तु यह मूर्खता से भरा हुआ अज्ञान है कि जिसके कारण लोग भ्रांति में पड़े हुए हैं परन्तु प्यारे भाइयो! उसका हृदय तो तुम्हारे हृदय के साथ ही शीघ्र उछलने लगता है।

बाहर दीखते हुए मित्र और शत्रु के वर्णन का कारण

कहीं दूसरी जगह मत ढूँढ़ो! सत्य कार्य कारण भाव तो तुम्हारे सत्य स्वरूप आत्मा में ही वास करता है इसलिये उसको वहीं पर ढूंढ़ो।

तुरन्त ही उड़ते सीखा हुआ पक्षी एक पत्थर अथवा झाड़की डाली को छोड़कर तुरन्त वैसे ही दूसरे ठिकाने जाकर बैठता है, वहां से किसी दूसरी जगह और वहां से किसी तीसरे आधार पर, इस प्रकार यहां से वहां वह उड़ते रहता है; परन्तु जिस प्रकार वह अपने आधार की वस्तु को छोड़कर एकदम ऊपर आकाश में नहीं उड़ता है; उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान का नूतन जिज्ञासु भी किसी एक पदार्थ एवम् मनुष्य को आसक्ति में से अपना चित्त उपराम होते ही शीघ्र दूसरे, पदार्थ में अपने मन को आसक्त करता है, उस स्थान से वह फिर अपने मनको उठाता है तो शीघ्र वैसे ही किसी दूसरी मिथ्या वस्तु में जाकर टिक जाता है; परन्तु वह ऐसे क्षण-भंगुर पदार्थ के आधार का और संसार की सर्व वासनाओं का एकदम त्याग नहीं कर सकता। अनुभवी ज्ञानी तो इस जगत की दगा देने वाली मिथ्या वस्तुओं को अनन्त ब्रह्म में उछलकर उल्लंघन करने के एक आधार समान बना देते हैं। छोटे से छोटे अनुभव को भी अनंत ब्रह्म में उछलकर निमज्जन करने के एक प्रसंगरूप बनाने में आना है। यही धर्म का कौशल्य है। "योग कर्मसु कौशलम्" है। यह सर्व दृश्य पदार्थ परिच्छिन्न होने के

कारण जब उन पदार्थों का एक के बाद एक इस प्रकार बाहर से त्याग करने में आता है तब हृदय में आंतर त्याग के संस्कार उत्पन्न करने होते हैं। देहाभिमान और देहाध्यासका नाश करना यह दैवी जीवन का नियम है। इसको जो जानता नहीं है वह यथार्थ में अभी अज्ञान के घोर अंधकार की शोचनीय स्थिति में बसा हुआ है। सत्य रूपी त्रिशूल यह देहाभिमान और देहाध्यास को निर्मूल कर देता है। देहाभिमान और देहाध्यास को निर्मूल करना यही अनन्त जीवन का पुनरुज्जीवन है। तुम अनन्त जीवन प्राप्त करो। ऐसा तुमको मेरा आशीस है।

जीवन्मुक्ति

जब रामने लाहौर का त्याग किया तब विष्णुपुराण के जो अद्वैत सिद्धांत का एक उत्तम ग्रंथ है, उसका फारसी अनुवाद पढ़ना था। इस अनुवाद में से लेटिन भाषा में अनुवाद किया हुआ है, कि जिसका उल्लेख इमर्सन, थ्योरो और इसी प्रकार के विचार शील जीवन वाले दूसरे महापुरुष अपने ग्रंथों में करते हैं। विष्णु पुराण का पंजाबी भाषा में किया हुआ अनुवाद भी इस फारसी अनुवाद में से करने में आया हुआ है। काली कमली वाले बाबा का "अनुभव प्रकाश" नाम का ग्रंथ भी पंजाबी विष्णुपुराण का सुधारा है। यह एक इस प्रकार का ग्रंथ है कि, उत्तम मनुष्य कैसे उच्च प्रकार का जीवन बिताते हैं उसका विचार बतलाता है; वैसे

ही उनके आंतर जीवन का दर्शन करवाता है। जिनके पास पहनने के वस्त्रों में और रहने के मकान में मात्र एक काली कमली के शिवाय दूसरा कुछ नहीं है। जो मनुष्य किसी प्रकार के विद्वान् नहीं है, और किसी कुटुंबीजनों को स्वतः भाररूप न हो जाये इसके कारण घर-घर से भिक्षाटन करके अपने शरीर का निर्वाह करते हैं। ऐसे विरक्त मनुष्य के नाम से विना किसी रुकावटके आज अनेक परमार्थ के कार्य हो रहे हैं। उसी में उसका रहस्य समाया हुआ है। इन काली कमली वाले बाबा के नाम से आज नदियों पर पुल बांध रहे हैं। रास्ते तैयार हो रहे हैं। धर्मशाला बांध रहे हैं। अनाज और वस्त्र बांटने में आ रहे हैं, विद्या का प्रचार हो रहा है, और गरम जलती हुई रेती के मैदानों में और पर्वत की ऊंची टेकरिओं में विना कामवाले भटकते हुए मनुष्यों को काम पर लगा रहे हैं।

प्रपंच और युक्तियों में से मात्र धूम्र को पकड़ने के शिवाय क्वचित ही दूसरा कुछ सिद्ध होता है। कितनेक मनुष्यों को संसार का प्रवृत्तिमय जीवन ही प्रभु परायण जीवन व्यतीत करने में परोक्ष सहायता रूप होता है। कितनेक मनुष्यों को एकांतवास ही ईश्वरीय जीवन व्यतीत करने में सहायता करता है। कितनेक मनुष्यों को इस प्रभु परायण जीवन के लिये "आपत्ति" उत्तम समय हो जाता है; कितनेक मनुष्य भयंकर घोर युद्ध में अपनी

छाती को बंदूक की गोलियां झेलने की ढाल के समान करके शरीर का होश भूल जाते हैं और दुनिया में वीर पुरुषों की प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। कितनेक चित्रकला वगैरह में ही अपना जीवन अर्पण करके अमर जीवन प्राप्त करते हैं। चोर जैसे भी यदि किसी के घर में घुसकर चोरी करने में सफल होते हैं, तो वे भी इस "निःशब्द निर्विकल्पवाली आत्म समर्पण की" अवर्णनीय स्थिति का अज्ञान पूर्वक अवलम्बन का ही परिणाम है; परन्तु इसमें पापबुद्धि और असार द्रव्य संपत्ति में सत्यमाननेपना रहा हुआ होने से ही यह चोरी करनेवाला मनुष्य अपने ऊपर ईश्वरीय नियम के भविष्य का कोप अवश्य प्राप्त करते हैं।

जितने प्रमाण में हमने दृश्य प्रपंच की आसक्ति में से मुक्ति प्राप्त की हुई होती है, उतने ही प्रमाण में अपना कार्य सिद्ध होता है। संसार में रहकर ऐसा जीवन्मुक्त जीवन व्यतीत करने से ही अपना कार्य पूरा होता है। एकांतवास में नहीं, संसार त्याग या अन्य उपायों से नहीं। जीवन चरित्र के लेखक केवल बाह्य प्रसंगों को और साधनों को देखकर ही उसकी जीवन सिद्धि का कारण मानते हैं और उनके अमुक अनुयायी हैं ऐसा बताते हैं। परन्तु कार्य सिद्धि के सत्य आत्मा को वे देखते नहीं है। जिस वृक्ष के नीचे बैठकर मैं लिखता हूं। उस वृक्ष पर कितनी जाति के पक्षी बैठे हैं इस पर से मेरी कार्य सिद्धि की परीक्षा होती हो उसके समान है।

हमारी बाह्य स्थिति और प्रसंग इसकी कुछ कीमत नहीं जब कोई युद्ध में विजयी होता था तब उस विजय का सत्य कारण प्राचीन ऋषि-मुनि बराबर देख सकते थे वे उसकी विजय का वास्तविक कारण आंतर (इन्द्र) और बाह्य, वरुण देव हैं, ऐसा वे बताते हैं।

सुदा समिन्द्रा वरुणा वंसावतम् ॥ (ऋग्वेद) "पर्वतराज गरुड़ का पराजय करती है" ऐसे पंजाब के एक मस्त अनुभवी बुल्लाशाह के वचनों का हम हमारे जीवन में हररोज अनुभव करते हैं। अर्थात् क्षण-क्षण में हमारी आशायें और भासमान होती हुई अनुकूलताओं के फुग्गे फूट जाते हैं क्राईस्ट के शब्दों में कहें तो फेंकी हुई ईंटों को ही महल के आधाररूप पाये में चुनी हुई देखते हैं। बाहर की परिस्थिति पर कोई आधार नहीं संसार की बुद्धिमत्ता लवलेश भी हमारी विजय का कारण नहीं। हमारे सभी संबन्ध, मैत्री, संपत्ति और बाह्य वस्तुओं की हमारी आशाएं तथा विश्वास और अन्य ऐसे सभी बाह्य साधन केवल भ्रम और भ्रम का भी भ्रम हैं। उसका मिथ्यात्व सिद्ध करने के लियें सुरेश्वराचार्य और शंकराचार्य की सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता नहीं। जिन्हें नेत्र हैं एकाध विशाल तोप की भीषण गर्जना की तरह छोटे से छोटा अनुभव भी वेदांत के इस सत्य को सिद्ध कर दिखाता है।

तत्त्वमस्यादि वाक्यानां स्वतः सिद्धार्थ बोधनात्।
अर्थान्तरं न संद्रष्टुं शक्यते त्रिदशैरपि ॥

अर्थात् तत्त्वमसि आदि वाक्यों का जो स्वयं सिद्ध अर्थ हैं, उसके सिवा उसका अन्य कोई अर्थ हो ही नहीं सकता! हमारा महात्मात्व, महत्ता-सुधारक भाव संमान, पद प्रतिष्ठा, सम्बन्ध आदि गत रात्रि के स्वप्न, पिछले जन्म के उड़ते हुए बादल, सायंकालीन भूत-प्रेत और विकार ग्रस्त मस्तिष्क के विचारों के सिवा अन्य कुछ भी नहीं। जब हम सम (ईश्वर) से बहिर्मुख हो बैठते हैं, तभी हमें कोई रास्ता नहीं सूझता; ईश्वरीय नियम के मार्ग को भूल जाते हैं और अन्त में दुःख उठाते हैं; किन्तु जब हम ईश्वराभिमुख होते हैं, तब सत्य मार्ग, सत्य वृत्ति, सत्य नीतिविचार व्यवहार आदि गुणों का स्फुरण स्वभावतः हमारे हृदय में होता है और वह हमें पृथ्वी के रमणीय भाग, पर्वतीय दृश्य, शांति-विस्तारक और आनन्दजनक झरने आदि हमें उत्कर्ष और पवित्रता की ओर अभिमुख करते हैं, सुखकर ज्योति हमारे हृदय में प्रकट हो उठती है और वह हमारे प्रति जीवन और प्रेम को प्रेरित करती है। जैसे प्राचीन ऋषियों के देव रुद्र थे उसी तरह मुझे मृत्यु में जीवन का नियम उग्र तथा अचल प्रतीत होता है। उसकी अवहेलना करते ही तुम्हारी आंतरिक और बाह्य स्थिति में प्रहारों और बाणों की वर्षा होने लगेगी।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः बाहुभ्यां उत ते नमः।

अर्थात् हे रुद्र (ईश्वरीय नियम) तेरे कोप को मैं नमस्कार करता हूं। तेरे अमोघ बाणों को मेरे शतशः

नमस्कार हैं तेरे अविश्रांत बाहु को मेरे नमस्कार हैं।

हमारे प्रत्येक छोटे से छोटे अनुभव में भी समग्र इतिहास भरा हुआ है। हम उसे पढ़ते नहीं। यदि हम उचित मार्ग ग्रहण करें, तो बुद्ध और ईशामसीह बन जाना भी सुगम है। उचित मार्ग ग्रहण करने का अर्थ यही है कि अपने अन्तर्निहित अहंभाव को त्याग कर ईश्वर को जीवन समर्पित किया जाये। एक म्यान में दो तलवारें रह नहीं सकतीं। हमारे ऊपर भले ही स्तुति निन्दा की वर्षा होती रहे; तो भी उसकी ओर लक्ष्य न करने की शक्ति का यदि हम समुचित विकाश करें, कर्त्ताभाव के ज्वर से मुक्त हों, विजय या उपलब्धि को यदि हम जीवन का उद्देश्य न बनायें, सत्य का हिमायती बनने की अपेक्षा यदि हम सत्य स्वरूप बनने की इच्छा रखें, सूर्य दिनभर प्रकाश का विस्तार करता रहता है, फिर भी इस सम्बन्ध में उसे सम्मान प्राप्ति की इच्छा नहीं, उसी तरह अपनी समग्र शक्तियों का उपयोग करने पर भी उसके उपलक्ष्य में यदि हम सम्मान भाजन बनने की इच्छा न करें, तो निःसंदेह हम ईश्वर के भी ईश्वर बन जायेंगे।

जगत् हमारे लिये क्या कहता है, इसका जिस क्षण हम विचार करने बैठते हैं, उसी क्षण हम सत्य जीवन से — अहंमयत्वरहित जीवन से च्युत होते हैं। मित्रो! वस्तुतः यह जगत् है ही नहीं। जगत् नहीं और उसकी

बातें भी नहीं। सत्य मात्र एक ईश्वर ही है।

जिस प्रकार स्वर्ण को विशुद्ध बनाने के लिये अग्नि की आवश्यकता है, उसीतरह हमारे चरित्र के लिये दुःख भी आवश्यक है, इसका क्या कारण है? बीज अन्य तत्वों में मिलजाने से वृद्धिगत होता है। खान में से निकले हुये मिश्रित धातुपदार्थों को शुद्ध धातु रूप ग्रहण करने से पूर्व प्रहार सहकर टुकड़े-टुकड़े हो जाना पड़ता है और भट्ठी की कठिन आंच में जलना पड़ता है। बाह्य प्रदर्शन और भावनाओं में बह जानेवाले मनुष्य आशा और उज्ज्वल भविष्य से उत्तेजित होकर, उसके प्रति विश्वास रखकर आगे बढ़ता ही चला जाता है, परन्तु इतने में तुरन्त ही उसके मस्तक पर कठिन प्रहार होता है। और ऐसा आवश्यक विधान होने के पश्चात् कार्य उसका स्वागत करने के लिये आगे बढ़ता है। लोग कुछ भी कहें, नियम तो नियम ही है। ईश्वरीय जीवन से कैसे भी विमुख हुये बिना जीवन्मुक्ति के पथ में से विमुख हुयें बिना अकारण ही ईसा को कष्टों का सामना करना ही पड़ा। फिर भी उनपर जो अत्याचार किये गये और कष्ट दियें गयें, उसी ने उन्हें समत्व की पूर्ण स्थिति पर पहुंचाया। ईश्वर — जो कालातीत है — के अन्दर संपूर्ण देहाभिमान को त्याग देने के पश्चात् कुछ ही घण्टों में — फांसी के तख्ते पर उनकी बाह्य मृत्यु होने से पहले वह अनन्त जीवन के चिरभोगी बने। परन्तु ऐसे दुःख और कष्ट के पश्चात् तुरन्त ही

सुख और आनन्द का अवतरण हो, ऐसा कोई नियम नहीं। कभी-कभी एक के बाद एक दुःख ही आते रहते हैं। लोगों में कहावत भी है कि आपत्ति आती है, तो एक साथ ही आती है। थोड़ी ही आपत्ति से यदि हम प्रबुद्ध-प्रकृतिस्थ होकर ईश्वरीय मार्ग की ओर मुड़ें, तो उसी समय वास्तविक जीवन का प्रकाश हम पर पड़ता है; परन्तु यदि हम इस थोड़ी-सी आपत्ति से सावधान न होकर ईश्वरीय नियम का उल्लंघन करते ही रहेंगे, तो फिर हमें आपत्ति-आपत्तियां चारों ओर से घेर लेंगी। इस बज्रवत् कठोर और महान् नियम से यदि परिचय प्राप्त किया न जायेगा, तो हम पर आघात और प्रहारों की वृष्टि होती ही रहेगी। जो लोग इस भयावह स्थिति के साथ संघर्ष करते हुये उसे पार कर जाते हैं, उन्हीं को अवर्णनीय अमर जीवन की उपलब्धि होती है बहुत दिनतक बाष्प को नियन्त्रण में रखने का यन्त्र न था; फलतः इंजिन की बहुत सी बाष्प निरर्थक नष्ट हो जाती, परन्तु उस यन्त्र का आविष्कार हो जाने के पश्चात् भी उसे क्यों निरर्थक नष्ट होने दिया जाये? इसी प्रकार सत्य जीवन, आनन्दमय जीवन ज्ञानमय जीवन प्राप्त करने का यन्त्र अर्थात् अहंमन्यता के त्याग का उपाय जब खोज निकाला गया है, तब क्यों दुःख और आपदाओं को मानव-जाति पर शासन करने दिया जाये?

—क्रमशः

(१९६५ दिसम्बर मास से आगे)

रामहिं प्रेम-समेत लखि, सखिन समीप बुलाय,
सीता-मातु सनेह वश, कहें वचन बिलखाय।

रामको स्नेह पूर्वक देखते हुए सीता की माता अपनी सखियों को पास बुलाकर स्नेह के वशीभूत अत्यन्त विह्वल भाव से कहने लगी—

सखि सब कौतुक देखन हारे,
जेउ कहावत हितू हमारे;
कोउ न बुझाय कहै नृप पाहीं,
ये बालक अस हट भल नाहीं।

हे सखी! जो लोग हमारे हितैषी कहलाते हैं, वह सभी केवल तमाशबीन हैं। कोई भी नृप (जनक) को समझाकर यह नहीं कहता कि यह (राम) अभी

बालक हैं। इनके प्रति ऐसी हठ भावना उचित नहीं

रावण बाण छुआ नहिं चापा,
हारे सकल भूप करि दापा;
सो धनु राजकुंअर कर देही,
बाल मराल कि मन्दर लेहीं।
भूप सयानप सकल सिरानी,
सखि विधि-गति कछु जात न जानी।

रावण और बाणासुर जैसे बलशाली राजाओं ने जिस धनुष को हाथ भी नहीं लगाया और उपस्थित सभी राजा जिस पर अपना बल आजमाकर हार गये, ऐसे धनुष को उठाने के लिये एक अल्पवय-कोमलांग राजकुमार से कहा जा रहा है। क्या हंसका बच्चा मंदराचल को उठा सकता है?

राजा जनक की सारी बुद्धिमत्ता आज समाप्त हो गई है। हे सखी! विधि का विधान कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

बोली चतुर सखी मृदु वाणी,
तेजवन्त लघु गनिय न रानी;
कहँ कुंभज, कहँ सिन्धु अपारा,
सोखेउ सुयस सकल संसारा;
रवि-मंडल देखत लघु लागा,
उदय तासु त्रिभुवन-तम भागा।

रानी की अकुल वाणी सुनकर एक विदुषी सखी उन्हें आश्वासन देते हुये समझाने लगी कि तेजस्वी लोगों को छोटा मानना उचित नहीं। कहां वन-वासी कन्द-मूल का आहार करने वाले महर्षि अगस्त्य और कहां अनन्तव्यापी सागर जिसे वह एक ही बार में आचमन कर गये। सूर्य का बिम्ब देखने में अत्यन्त छोटा प्रतीत होता है, किन्तु उसके उदित होते ही अखिल-विश्व-ब्रह्माण्ड का अन्धकार भाग खड़ा होता है पता नहीं कहां चला जाता है।

मंत्र परम लघु जासु वश, विधि-हरि-हर सुर सर्व;
महामत्त गजराज कहं, वशकर अंकुश खर्व।

मन्त्र बहुत छोटा होता है; किन्तु उसका प्रभाव इतना अप्रतिहत है, कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि सभी देवता वशीभूत रहते हैं तथा मदोन्मत्त गजराज को एक साधारण अंकुश अपने वश में कर रखता है।

काम कुसुम धनु-शायक लीन्हे,
सकल भुवन अपने वश कीन्हें
देवि तजिय संशय असजानी,
भंजब धनुष राम सुन रानी।

अत्यन्त कोमल पुष्पों का धनुष-बाण धारण करके भी कामदेव ने लोक-लोकान्तरों को अपने अधीन कर रखा है। हे देवि! यह सब जानकर आप अपने संशय

का निराकरण कीजिये और विश्वास रखिये कि राम इस धनुष को निश्चय ही तोड़ डालेंगे।

सखी वचन सुनि भइ परतीती,
मिटा विषाद, बढ़ी अति प्रीती।

सखी की बातें सुनकर रानी के मन में विश्वास का उदय हुआ। सारा विषाद-खेद दूर हो गया और राम के प्रति स्नेह-भाव और भी बढ़ गया।

तब रामहिं विलोकि वैदेही,
स-भय हृदय विनवति जेहि तेही,
मन-ही-मन मनाव अकुलानी,
होहु प्रसन्न महेश-भवानी,
करहु सफल आपनि सेवकाई,
करि हितु हरहु चाप गरुआई।

इधर राम को धनुष की ओर जाते देखकर सीता भी भय-कातर भाव से जिस-तिस देवता की आंतरिक अनुनय-विनय करने लगीं। मन ही मन मनाने लगीं— हे शिव-पार्वती! प्रसन्न हो जाओ। मैंने आजतक तुम्हारी जो सेवा-पूजा की है, उसे सफल बनाओ और अनुग्रहपूर्वक धनुष की गरुता (वजन) को हरण कर लो— दूर कर दो।

गणनायक वरदायक देवा,
आज लगे कीनी तव सेवा,

बार-बार विनती सुनि मेरी,
करहु चाप गरुता अति थोरी।

हे सब पर वरद हस्त रखने वाले गणपति देव! आजतक मैंने तुम्हारी बहुत सेवा की है, अतः तुम मेरी विनय-याचना को सुनकर धनुष के वजन को अत्यन्त कम कर दो।

देखि-देखि रघुवीर तन, सुर मानव धरि धीर,
भरे विलोचन प्रेम-जल, पुलकवली शरीर।

बारंबार राम की ओर देखकर धैर्यपूर्वक सीता देवआओं की मनौतियां मनाने लगीं। उनके नेत्र प्रेम-जल से परिपूर्ण हो गये हैं और सारा शरीर पुलकायमान हो उठा है।

नीके निरखि नयन भरि शोभा,
पितु प्रण सुमिरि बहुरि मन क्षोभा।
अहह तात दारुण हठ ठानी,
समझत नहिं कछु लाभ न हानी।

भलीभांति आंख भरकर वह राम के सौन्दर्य को देखने लगीं, परन्तु पिता के प्रण का स्मरण होते वह पुनः विक्षुब्ध — विचलित हो उठीं और कहने लगीं — हे पिता तुमने कठिन प्रतिज्ञा कर रखी है— दारुण हठ ठान रखा है। कुछ हानि-लाभ आपकी समझ में नहीं आ रहा है।

सचिव सभय सिख देय न कोई,
बुध समाज बड़ अनुचित होई।
कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा,
कहँ श्यामल मृदु गात किशोरा।

मन्त्रि-गण भी भय और संकोचवश पिता का ... सलाह देने से हिचक रहे हैं, क्योंकि बौद्धिक समाज ... ऐसा करना— प्रतिज्ञा से मुख मोड़ना अत्यन्त अनुचित माना जाता है। कहां तो यह धनुष कुलिश से ... अधिक कठोर और कहां राम का किशोर, श्यामल ... कोमल शरीर।

विधि केहि भांति धरौं उर धीरा,
सिरिष कुसुम कत बेधिय हीरा;
सकल सभा की मति भइ भोरी,
अब मोहिं शंभु-चाप गति तोरी।

हे भगवान्! मैं किस तरह धैर्य धारण करूं-... मन को समझाऊं? शिरीष कुसुम हीरा को कैसे ... सकता है? सारी सभा की बुद्धि विकृत हो गई है ... अतः हे शिव-धनुष! अब तू ही एकमात्र मेरी ... है। मेरी आशाएं तुझ में ही केन्द्रीभूत हो गई हैं।

निज जड़ता लोगन पर डारी,
होहि हरुअ रघुपतिहिं निहारी।

अति परिताप सीय मन माहीं,
लव निमेष युग सम जाहीं।

हे शंभु-धनु ! तुम लोगों पर अपनी जड़ता का प्रभाव स्थापित कर चुके, अब राम की ओर देखकर उसे दूर करो—अर्थात हलके हो जाओ। इस प्रकार सीता मन ही मन बड़ी ही सन्तप्त हो रहीं हैं और एक क्षण भी सौ युग के समान व्यतीत हो रहा है।

प्रभुहिं चितै पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन युग, जनु विधु-मंडल डोल।

प्रभु-राम को देखकर सीता भूमि को देखने लगती हैं। उनके चंचल नेत्र ऐसे सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं, मानो चन्द्र-मंडल में कामदेव के मीन खेल रहे हों।

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी,
प्रकट न लाज-निशा अवलोकी।
लोचन-जल रह लोचन-कोना,
मानहु परम कृपण कर सोना।

सीता की वाणी-भ्रमरी मुख-कमल के अन्दर बन्द हो गई, क्योंकि लज्जा-निशा के मुख-कमल की पंखुड़ियां खुल नहीं रही हैं। नेत्रों का जल (अश्रु) नेत्रों के कोनों में ही स्थिर रह गया। जैसे कृपण व्यक्ति अपने हाथ में स्वर्ण छिपाकर रखता है।

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी,
धरि धीरज प्रतीति उर आनी।
तन-मन-वचन मोर प्रण सांचा,
रघुपति-पद-सरोज मन रांचा।

अपनी बृद्धिगत व्याकुलता के कारण सीता अत्यन्त संकुचित हो उठीं। फिर उन्होंने मन में विश्वास-भाव लाकर धैर्य धारण किया। वे विचार करने लगीं यदि तन-मन-वचन से मेरा संकल्प सच्चा है और नाथ कमलों में अनुराग रखता है,—

तौ भगवान् सकल उर-वासी,
करिहैं मोहिं रघुबर कै दासी।
जाको जापर सत्य सनेहू,
सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू।

तो सबके अन्तःवासी भगवान् मुझे राम की अनुचरी अवश्य बनायेंगे। जिसके प्रति जिसके हृदय में सच्चा प्रेम होता है, वह उसे निस्सन्देह प्राप्त होता है।

प्रभु-तन चितै प्रेम-प्रण ठाना,
कृपानिधान राम सब जाना,
सियहिं विलोकि तकेउ धन कैसे,
चितव गरुड़ लघु व्यालहिं जैसे।

राम की ओर अवलोकन कर सीताजीने प्रेम की प्रतिज्ञा

जान ली। रामने भी सीता की यह मनःस्थिति भली-भांति समझ ली। उन्होंने सीता को देखकर फिर धनुष इस प्रकार ताका, जैसे गरुड़ सर्प के छोटे बच्चे को ताकता है।

लखन लखेउ रघुवंश-मणि, ताकेउ हर-कोदण्ड।
पुलकी गात बोले वचन, चरण चापि ब्रह्माण्ड।

लक्ष्मण ने जब देखा, कि रघुकुल-भूषण राम शंकर के धनुष को ताक रहे हैं, तब उनके अंग-प्रत्यंग पुलकित हो उठे और ब्रह्माण्ड को पैरों से दबाकर कहने लगे —

दिशि कुंजरहु कमठ अहि कोला,
धरहु धरणि धरि धीर न डोला।
राम चहहिं शंकर धनु तोरा,
होहु सजग सुनि आयसु मोरा।

हे दिग्गजो, कच्छप, शेष, हे वराह ! धरती को धैर्यपूर्वक धारण किये रहो, जिससे यह हिलने डोलने न पाये। राम शंकर के धनुष को तोड़ने जा रहे हैं, अतः मेरे आदेश को मानकर तुम सब पूरी तरह सजग सावधान हो जाओ। किसी तरह की गड़बड़ी होने न पाये।

—क्रमशः

(१) जैसे प्रथम अंक के अभाव में शून्य की कोई कीमत नहीं, उसी तरह जिस साहित्य में जीवन-सुधार की ओर ले जानेवाली कोई उत्तम रचना न हो, उस साहित्य को पढ़ना और अपने बहुमूल्य समय को निरर्थक नष्ट करना है। 'रामतीर्थ' मासिक से मुझे देव-तुल्य जीवन-यापन का सुलभ मार्ग प्राप्त हुआ है।

वास्तविक पथ प्रदर्शकाभिलाषी —
पं. कोमलशरण वृजानन्द

(२) ज्ञान और अज्ञान—यह एक नदी के दो किनारे हैं। प्रथम मानव अज्ञानरूपी किनारे (मायाजाल) को सत्य समझकर सांसारिक बन्धन में फँस जाता है। जब वह ज्ञानरूपी सामने के किनारे पर पहुंचने का प्रयास करता है, तब जल के मध्य-भाग के भंवर (जन्म-मरण) के चक्कर में फँस जाता है। परन्तु जब मोक्षरूपी

समने के किनारे पर पहुंचने के लियें योगमार्ग का अनुसरण करता है, तब वह निस्संदेह निश्चित ध्येयपर पहुंच जाता है। 'रामतीर्थ' मासिक में योग-मार्ग पर चलने के उत्तम उपाय बताये जाते हैं।

श्रीमती गौरीप्रदीप चतुर्वेदी B. A.
(जम्मू-काश्मीर)

(३) मुझे 'रामतीर्थ' मासिक अत्यन्त प्रिय लगने के अनेक कारणों में एक कारण यह भी है कि उसमें स्वामी रामतीर्थ के सदुपदेश पढ़ने को मिलते हैं। मैं प्रतिमास 'रामतीर्थ' मासिक की प्रतीक्षा करती रहतीं हूं। भगवान् सबका भला करें।

कुमारी वैजयन्ती नन्दकुमार
कनाट सर्कस, नई दिल्ली

(४) जीवन के सच्चे सुख के अनेक साधन, अभ्यास विधि हैं। उनमें साहित्य भी एक योग्य साधन समझा जाता है। 'रामतीर्थ' मासिक के साहित्य से जीवन का ध्येय एवं आनन्द प्राप्त करने का मार्ग प्राप्त होता है।

पं. विश्वेश्वर नारायण पाण्डे
काठमांडु (नेपाल)

(५) चातुर्मास में गंगा का पवित्र नीर भी मिट्टी और अन्य कलुषित वस्तुओं से मलीन प्रतीत होता है। किन्तु पाप से मुक्त एवं पुण्य संपादन के हेतु श्रद्धा-जक लोग चातुर्मास में भी गंगा में स्नान करके

अपने को धन्य मान लेते हैं। वैसे ही हरेक व्यक्ति संसार को भगवान् का स्वरूप मानकर उसमें विषय वासना रूपी मायाजाल को हटा करके उपयोग करे तो संसार नरक न होकर स्वर्ग हो जाये। 'रामतीर्थ' मासिक में नरक को कैसे स्वर्ग बनाना? इस बारे में मार्ग दर्शन रहता है। मुझे 'रामतीर्थ' मासिक से लाभ मिला है।

पं. वसंतकुमार व्यास जगदालपुर

(६) साकार में निराकार स्वरूप तथा निराकार में में साकार रूप देखने के लिये जैसे दिव्य ज्ञान की आवश्यकता है वैसे 'रामतीर्थ' जैसे श्रेष्ठ मासिक पढ़ने के लिये पवित्र बुद्धि की जरूरत है। सुख शांति का स्रोत योग में है ऐसी प्रतीति इस मासिक से होती है।

स्वामी दिव्यानन्द गिरी
स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश)

(७) सूर्य की ज्योति और दीपक की ज्योति में अंतर है। इसी तरह मैं भूतकाल में ब्रह्मांड नायक परम सत्ता के दर्शन के लिये प्रयत्न चालू रखा था किन्तु सफलता नहीं मिली। पता लगा मेरे प्रयास में गल्ती थी वह गल्ती 'रामतीर्थ' मासिक के अवलोकन से दूर हो गई। अर्थात् जबतक दीपक के प्रकाश का अनुभव न हो तबतक सूर्य प्रकाश की खोज के पीछे लगना यह व्यर्थ प्रयास है। ऐसा प्रतीक 'रामतीर्थ' मासिक से ज्ञात हुआ।

प्रो. धोंडीराम वी. काकरे
B. A, B. T. गोहाटी (असम)

(८) मेरे प्राणप्रिय मित्र रास्ते में मिले मुझसे कहने लगे उदास क्यों दीखते हो। मैंने कहा कुछ कारण से उदास मन हुआ है। तुरन्त मेरे मित्र ने मुझे कहा योगाभ्यास द्वारा काया कल्प कर लो। मैंने कहा मुझे योग्याभ्यास के प्रति तनिक भी श्रद्धा नहीं है। दूसरा इलाज बताओ। तुरन्त मेरे मित्र ने मुझे कहा श्रद्धा संपन्न कर तुरन्त योगाभ्यास के बारे में कार्यरत बन जाओ नहीं तो मरो। मुझे बहुत बुरा लगा। मित्र से कहा कटुशब्द मत कहा कोई रास्ता ठीक बताओ। मित्र ने कहा भैया प्रथम 'रामतीर्थ' मासिक पढ़ो। अवश्य पढ़ करके श्रद्धा भाजन बनो पश्चात् जीवन जीने का सर्वोत्तम मार्ग प्राप्त होगा।

शेषगिरि वेंकट राघ
तीर्थ हल्ली (मैसूर)

(९) आकाश में असंख्य तारा मंडल हैं, किन्तु दिशासूचक बताने वाला ध्रुवतारा एक ही है। वैसे ही सारे भारत में सर्वांग, सर्व विषय में तथा अभ्युदय की दिशा सूचन करने वाले मासिक विरले ही प्राप्त होते हैं। मेरे लिये 'रामतीर्थ' मासिक ध्रुवतारा के समान दिशा सूचन दिखाने वाला प्राप्त हुआ है।

सौ लक्ष्मीगौरी तेजबहादुर
(एम. ए.. पि. एचडी.)
काठमांडु (नेपाल)

हम विचार कर रहे हैं कि जीव स्वरूप से सत्य है, सत्य उसे कहते हैं जिसका तीन काल में बाध न हो। इस ज्ञान स्वरूप अन्तरात्मा के समक्ष कभी सुषुप्ति अवस्था कभी स्वप्न अवस्था तथा कभी जाग्रत अवस्था उतर जाती है लेकिन यह ज्यूं का त्यूं स्वाभाविक ही सत्य है। हालतें बदलती हैं परन्तु टलती नहीं। थोड़ी के लिये हमारा निजरूप इन हालतों में दब भी जाता है परन्तु जैसे पानी की शीतलता को अग्नि खा नहीं सकती, जैसे दो-चार मधु की शीशियों से समुद्र मीठा नहीं हो सकता इसी प्रकार बाह्य पदार्थों के सुख स्वाभाविक नहीं होते इनकी घड़ी की रमणीयता मानव के हृदय में एक प्रबल टीस पैदा कर देती है और जिनके पीछे वह मारा-मारा फिरता है। अगर कोई हब्शी तीन-चार घण्टे साबुन लगा-लगाकर खूबसूरत होना चाहे

ता क्या हो सकेगा ? नहीं क्योंकि स्वाभाविक नहीं। हमारे ऋषियों ने सौंदर्य के पुजारी होते हुये भी मानव के आंतरिक सौंदर्य को बाहर निकाला है आंतरिक प्रसन्नता, देह को भी चमका देती है। जो जिसकी जात होती है वह उससे अलग नहीं होती। इसलिये दुःख प्रकृति की जात में ही नहीं है। तू नेक बन, ऊँचा उठ, बेदार हो शायद तुझे देखकर कितने ही तेरे जैसे हो जाएं।

अध्यात्म विद्या की झलक बिना इतनी ऊँची दृष्टि को प्राप्त करना भी कठिन ही है। पहले तो हृदय में इस ज्ञान की उत्पत्ति हो कि इस सांसारिक रमणीयता में सुख नहीं यह केवल आंख का धोखा ही है। दुर्योधन की तरह पानी को बल्लौर और बल्लौर को पानी समझ रहा है। कैसी-कैसी कल्पनायें हम करते रहते हैं ? लेकिन दो-चार धक्कों में जीवन समाप्त हो जाता है। जब तक अन्दर से तुझे आनन्द की उपलब्धि नहीं होती तब तक तेरा जन्म-मरण का चक्कर समाप्त नहीं होगा। यह सारी भटकना आनन्द के मूल को भूल जाने से ही है। अनुकूल वेदनीय सुख और प्रतिकूल वेदनीय दुःख। खुशी के समय में तेरा होना जरूरी है और तुझमें पहले प्रसन्नता का ज्ञान होना भी जरूरी है, सत्य काम, आप्तकाम आत्मा की ही सब लीला हैं प्रगाढ़ निद्रा में जब कि तेरे साथ न इन्द्रियों का, न मन और बुद्धि का कोई सम्पर्क होता है तब भी वह ज्ञान स्वरूप

भगवद्ज्ञान तेरी इस अवस्था को प्रकाशता है और उठकर कहता है कि मैं बड़े सुख से सोया और मुझे कुछ भी खबर नहीं रही। कारागार में, श्मशान में तथा जंगल में जहां भी तुझे सुषुप्ति हो जाये तो आनन्द ही आनन्द होगा क्योंकि आनन्दस्वरूप तेरा अपना आप है। जाग्रत अवस्था में यह ज्ञान-स्वरूप आत्मा अन्तःकरण तथा इन्द्रियों की सहायता से प्रकाशता है। आत्मा आनन्दस्वरूप है तभी तो यह बूढ़ा होने पर, दांत निकल जाने पर भी, आंखें न रहने पर भी यह जीवित रहना चाहता है। क्योंकि यह सत्य स्वरूप है। जब वह ज्ञानस्वरूप आत्मा शीलरूप को छोड़ देती है तो उसे देह का उठाना कठिन हो जाता है। जन्म के साथ कैसे मृत्यु की घंटी लगी हुई है कैसे अलार्म (घुंघरू) बजता है। यह पानी जो अग्नि की सहायता से गर्म हुआ है फिर ठण्डा हो जाएगा, ज्यादा तेज गर्म है तो देर से ठण्डा होगा, थोड़ा गर्म है जल्दी ठण्डा होगा। ठण्डा अवश्य होगा क्योंकि स्वाभाविक धर्म शीतलता है। बेगाना धर्म अवश्य उतर जायेगा।

जब विवेक पैदा होता है कि वह "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" मैं हूँ, "तत्व मसि" वह तू ही है तब तमाम हृदय और मन की नस-नस देदीप्यमान हो जाती है। आत्मा सत् चित् तथा आनन्दस्वरूप है चौथा विशेषण इसका मुक्त स्वरूप है। जब तक इस चौथे विशेषण

का अपने आप में अनुभव न हो तब तक सच्चिदानन्द स्वरूप का भी बोध नहीं होता। जब तू सोचता है कि ईश्वर कृपा से काम बनेगा, किसी की दयादृष्टि से मैं आनन्दित हूँ इससे स्वतन्त्रता तेरे हाथ नहीं लगेगी। इसको परावलम्बन कहते हैं। पानी की गर्मी का आनन्द देर तक नहीं रहेगा। गुलामी में कोई देश भी आगे नहीं बढ़ते। किसी की इमदाद के बगैर ईश्वर को अपने से भिन्न न समझकर अपनी अन्तरात्मा की ओर ही बढ़। वही तेरा स्वरूप है उससे इतर जो भी कुछ भास रहा है उसकी सत्तामात्र नहीं। आभूषणों के नक्शे को रख कर कोई बादशाह नहीं बन सकता। सर्वत्र ज्ञान का ही राज्य है। तमाम चीजों में एक कौड़ी भी तेरे ज्ञान के बिना नहीं। नचिकेता ने इसी ज्ञान का दान अपने पिता को दिया। किसी तरह अपने हृदय में इस ज्योति को जला। अज्ञानी होकर मरना किसी काम का नहीं। मृत्यु भी मेरे से जुदा वस्तु है। उतर जाती है। जैसे कोई आफिस का सूट घर आते उतार देता है क्योंकि उसका स्वाभाविक नहीं अगर उसे नौकर को देता है तो वह नौकर भी उसे पहने रखेगा वह उसे उतारने के लिये उतावला नहीं होगा इसी तरह पामर और विषयी पुरुष इस सूट को स्वाभाविक बना देते हैं। वैसे तो हमारा जीना, जिन्दगी सत्य है और स्वाभाविक है। लैम्प का और बल्बों का कुछ फर्क है करंट सो सब में है।

जिनको बिलकुल इच्छा ही नहीं, वह जानवर खरगोश कुत्ता इत्यादि सुन्दरी की गोद में कैसे आ गये। यह कर्म और काल का वेग है और जिससे अपने आप खिंचा जाता है। बीज में वृक्ष डाला नहीं जाता। कर्म का बीज है जो काल के वशीभूत हुआ बड़ा वृक्ष खड़ा कर देता है। जब काल और कर्म का वेग होता है जीवन खुद रौशन हो जाता है। गुरु, शास्त्र, सत्संग तथा उपदेश किसी भी द्वारा अपने को सूझ हो जाये। इन्जेक्शन की जिन्दगी में जीने के बदले अपने अन्दरस्वास्थ्य को पैदा कर। वेद भगवान् साक्षात् कहता है कि तू वही है, जैसे सूर्य नया नहीं वही है लेकिन बादलों से आच्छादित है। साधन रूप होकर, उपदेश रूप होकर, गुरु सामने आते हैं। गुरु शिष्य का नाता ऐसा है, जैसी भी भावना से शिष्य गुरु के पास आते हैं गुरु वैसे ही हो जाते हैं। एक केन्द्र होता है और एक चक्र। यह सब तभी तक है जब तक केन्द्र में आ नहीं जाता। केन्द्र में आने वाले का चक्र नहीं रहते। सोऽहमस्मि यह एक केन्द्र है इसी पर ही स्थित होकर देख यह दुनियां तुझे कैसी आनन्दमयी प्रतीत होती है?

आजीवन सुखी रहने पर भी मानव के जीवन में चमक तब तक नहीं आ सकती, जब तक स्वावलंबी न हो, परावलम्बी सुख तो ऐसे प्रतीत होता जैसे सिर पर बोझ हो। पर पुरुष को देखकर स्त्री का

दिल नहीं भर सकता ! सुख तो नौकर को भी पर समझता, बेगाना है विषय सुख भी सुख है परन्तु इसको प्राप्त करने का जरिया गलत है। गटर के रास्ते से कंचनी का तमाशा देखना वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं है। लड्डू और मिठाइयों में स्वाद चीनी का ही है लेकिन जो केवल चीनी का स्वाद होता है वह और है और मैदे में मिली हुई का और ही है। जब तुच्छता और परिच्छिन्न है। ज्ञानवान की इच्छा में भी बल है। इच्छायें उसकी दास होकर रहती हैं क्योंकि त्याग में बल है संग्रह वृति पाप है। जैसे खाये हुये अन्न को कोई बाहर न आने दे तो क्या होगा ? यह संग्रहवृत्ति देहाध्यास को ही बढ़ाती है। मन तेरा है या तू मन का हैं। जो यह कहते हैं कि जो हमारा मन कहेगा हम करेंगे और हम किसी की भी नहीं मानेंगे, वे आजाद नहीं हैं मन के नौकर हैं, और गुलाम के भी गुलाम हैं। कार्य सहित कारण की निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति को मोक्ष कहते हैं, जब तक यह अनर्थ की भावना कि "मैं देह हूँ" यह ज्ञानाग्नि से दग्ध नहीं होगी आवागमन का चक्कर बना रहेगा।

काबा में मुसलमां को भी कह देते हैं काफिर
मयखाना में काफिर को भी काफिर नहीं कहते।

तू इतना महान् बन कि छोटों को भी पता ही न

लगे और तू तब तक पूज्य है जब तक तुझे पू... कराने का ख्याल नहीं है। यह त्याग का मसाला... इच्छा का नहीं। तू अपने अन्दर योग्यता पैदा कर।

जरा जो आंख खुले, अक्ल में शहूर आए।
हम अपने आप में आयें तो वह जरूर आए।

यह हमारी स्वाभाविकता है कि कोई हम पर शा... लित न हो, कोई हमारा अनुकरण न करे हम अनु... हैं, यह सब हमारी मानें। क्योंकि आत्मा मुक्त स्व... है, वह अपने पर कोई बोझ नहीं चाहता। हे राम... विष खाकर मर जा अज्ञानी का संग न कर-

तू राजे मुहब्बत को समझा ही नहीं वरना
पाबन्दी-ए-इन्सां ही आजादी-ए-इन्सा है।

जैसे गाड़ियां लाइनों में सटकर होकर निश्चित स... पर चलती हैं तो लक्ष्य पर पहुंचा देती है यह पाबन्दी... आजाद करने के लिये है। इसी प्रकार शिष्य गुरु... के बताये हुये मार्ग पर पाबन्द होकर चलता है... अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। तू सत् चित् आनन्द... तथा मुक्त स्वरूप है यही तेरा अपना आप है... इसकी पहचान कर—

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

—:—

आजकल विशेषकर यह देखा जाता है कि प्रेम का अर्थ लोग स्त्री-पुरुष के प्रेम से ही व्यक्त करते हैं। यही आशय अंग्रेजी शब्द Love (लव) का भी लगाया जाता है, पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेम शब्द की सीमा केवल यहीं तक नहीं। अपने भारतीय साहित्य में प्रेम शब्द मनुष्य जीवन में सर्वोच्च स्थान रखता है। गुरु शिष्य एक दूसरे के स्नेह वश ही विद्यादान, विद्या ग्रहण के अधिकारी माने गये हैं। माता-पिता के वात्सल्य भरे प्रेम से ही बालक संसार यात्रा को पार करने में समर्थ पाया जाता है, इसी तरह भाई-बहन, चाचा-चाची, भाभी, नानी, मामी, मौसी का भी प्रेम मनुष्य जीवन में एक आदर्श मय बनकर अलौकिक स्नेहानुभूत करता है। ईसाइयों के पवित्र ग्रंथ बाइविल में एक जगह कहा गया है कि यदि प्रेम, प्रेम तक ही सीमित है तब तो उचित है किन्तु उसका

अर्थ किसी भौतिक पदार्थ से है तो वह विनाश की ओर ले जाने वाला प्रेम है। Thy love to me... wonderful, passing the love of woman (old testament) इसी बात को पाश्चात्य विद्वान् थामस मेडालसन ने सार शब्दों में लिख दिया है कि प्रेम एक पवित्र भाव है परन्तु जब तक कलुषता का भाव नहीं आता तभी तक। जिस तरह अग्नि में पानी डालने से आग बुझ जाती है उसी तरह सारा प्रेम कपट (खटाई) के पहले ही हवा हो जाता है। 'Love is all in fire; and yet is ever freezing— इस प्रकार प्राचीन पाश्चात्य विद्वानों का अगणित विचार भी प्रेम शब्द की पवित्रता की सीमा से ही सम्बन्धित बताते हैं। शैली, शैक्सपीयर, मिल्टन के काव्यों में न जाने कितने ऐसे उदाहरण मिलेंगे जो वास्तविक प्रेम के चित्रण से चित्रित होंगे।

कहना न होगा कि इसके विपरीत भी अनेक विदेशी विद्वानों ने ही विकृत मस्तिष्क में खुराफात की भावना का जन्म दिया। कीट्स ने सुन्दरता को मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य माना तो शैली ने प्रेम को उस पर अधिष्ठित कर संसार को पूज्य बताया। महात्मा टाल्स-टाय ने प्रेम को भगवत्साम्राज्य प्राप्ति का प्रथम साधन माना है। उसने एक कहानी करुण रस से भरी भग-वद्मार्ग में सहायिका बड़ी सुन्दर लिखी है। वैसे टाल्स-टाय की प्रत्येक कहानियों में कुछ न कुछ विशेषता

रहती है। फिर भी इसमें प्रेम का चित्रण किस और कितना मनोरम है इसको पाठक वृन्द ही देखें। एक गरीब मोची जो थोड़े ही दिन पूर्व विवाह किया था। उसकी पत्नी की मृत्यु हो जाती है। उसका एक मात्र १ साल का बच्चा उसके साथ रहता है, समय का चक्र उसे भी उस दीन-हीन मोची से छीन लेता है। मोची एक धार्मिक आदमी था नित्य भगवान् का नाम लेता कपड़े साफ एवं पवित्र पहनता। किन्तु अब उसे भगवान् से उदासीनता सी होने लगी। उसे ऐसा लगा जैसे भगवान् के नामों में कोई शांति नहीं हो। कुछ समय के पश्चात् उसे प्रायः भगवान् के नाम से बिल्कुल ही विराग हो गया और एक प्रकार से भगवान् के नाम से चिढ़-सी पैदा हो गयी। जो भी व्यक्ति उससे भगवन्नाम सम्बन्धी चर्चा छेड़ता उसे बड़ी डाट बताता और अपनी जीवन कहानी सुनाकर कहता बोल! भगवान् को मेरी सुधि क्यों नहीं आयी? कहा जाता है भगवान् की याद करने वाले हमेशा भगवान् की दृष्टि में रहते हैं। प्रभु उनको कभी कष्ट नहीं देते। फिर मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ? क्या हम उनका नाम नहीं लेते थे? एक दिन उसके घर कई तीर्थों का भ्रमण करता धर्माचार्य रात व्यतीत करने के लिए ठहरा। एक छोटी सी कोठरी में मार्टिन नामक मोची ने उसकी भी रहने की व्यवस्था कर दी। रात को अपने मेहमान के लिये उसने कुछ भोजन बनाया और प्रेम के साथ

उसे खिलाया तथा स्वयं भी खाने लगा। इसी बीच धर्माचार्य ने उससे उसकी औरत बच्चे के बारे में पूछा और अनेक प्रकार से धार्मिक उपदेश दिये। इस पर उसने ईश्वर को भला-बुरा कहना आरम्भ किया और अनेक उदाहरणों द्वारा अनेक प्रकार से ईश्वर को कोसा। फिर भी वह धर्माचार उसकी नादानी पर हँसते रहा। अन्त में उन्होंने जो उत्तर दिया वह प्रेम का कितना उच्च एवं आदर्शमय उपदेश है यह कहना कठिन है। उन्होंने कहा मार्टिन! तुम एक भक्त थे यह मैं मानता हूं। तुमने ईश्वर सेवा में बहुत सा जीवन भाग व्यतीत किया। यह भी किसी हद तक ठीक है। तुमने अतिथियों की भी सेवा की है। परन्तु प्यारे मार्टिन! तुमने अभी अपने आपको नहीं समझा। तुम अपनी जिन्दगी को अभी तक अपना ही समझते रहे। स्त्री, बच्चे को अपने सुख का साधन माना है। तुमने यह कभी नहीं सोचा कि जिस महात्मा ने तुमको जन्म दिया। तुम्हारे बच्चे को जन्म दिया, तुम्हारी स्त्री को पैदा किया, तुम्हारा विवाह किया। वह कुछ भलाई के लिये ही तुमसे तुम्हारी पत्नी बच्चे को छीन लिया हो। तुम अपनी जिन्दगी को भगवान् के लिये दिया हुआ क्यों नहीं मानते? जिन्दा रहो भी तो उसी के लिये मरो भी तो उसी के लिये। उसकी नजर में शायद तुम गुनाहगार हो तभी तो उसने तुम्हें ऐसी सजा दी। धर्माचार्य के उपदेश से उसका मस्तिष्क स्वच्छ हो गया। उसने धर्माचार्य से एक किताब मांगी और उनको अपने गुरू के समान मनाने लगा।

जाते-जाते धर्माचार्य ने उससे हमेशा ईश्वर के प्रति कृतज्ञ रहने को कहा और एक शब्द में "ईश्वर के के लियें जीने" को कहा।

कुछ दिनों के बाद वह इतना अधिक भगवत्प्रेमी बन गया कि जो कोई भी उसके सामने सड़क पर जाता उसको भगवत्स्वरूप ही समझता। उस धर्माचार्य के उपदेश से सारा संसार ईश्वर का साम्राज्य और उसमें रहने वाले प्राणी ईश्वर के प्रतीक होने लगे। एक दिन जब वह अपने छोटे से कमरे में जूते बनाने का काम कर रहा था तो अचानक लगा कि साफ शब्दों में उससे कोई कह रहा हो कि भगवान् आज तुम्हें दर्शन देंगे और इसी कमरे में। फिर भी वह अपने काम में ही लगा रहा और सोचता रहा कि देखें आज भगवान का कैसे दर्शन होता है। कुछ देर के बाद वह देखता है कि उसकी खिड़की के पास एक वृद्ध आदमी जाड़े से कांप रहा है। शायद वह काम करनेवाला मजदूर था। पैसे और पेटने उसे काम करने को मजबूर किया था और शरीर उसका साथ नहीं दे रहा था। वह चलकर मार्टिन के दरवाजे के सामने गिर पड़ा। मार्टिन उसे अपने बन्द कमरे में लाया और आग के सामने उसके कपड़े और अंग गर्म किए। फिर उसे पीने के लियें गर्म चाय दी। चाय पीने के बाद उसे शरीर में ताजगी महसूस हुयी। उसने मार्टिन से कुछ खाने को मांगा। जो

भी उसके पास था रूखा सूखा उसके सामने रख एक रोटी और चटनी खाकर धन्यवाद देता हुआ बाहर काम करने चल दिया। थोड़ी ही देर में एक महिला भी एक छोटे से बच्चे को लिये ठंडक में सिकुड़ती हुयी उसके दरवाजे के सामने रुकी। उसके पास इतना वस्त्र भी नहीं था कि अपने बच्चे का पूरा तन ढक सके। मार्टिन ने दरवाजा खोलकर उसे बुला लिया आगसे उसके भंगे वस्त्र सुखाए और बच्चे का शरीर गर्म किया। पूछने पर उस महिला ने बताया कि वह एक सिपाही की औरत है पर उसके पति का पता नहीं। तीन दिन भूखी रहने के बाद वह आज काम करने के लिये बाहर निकली है। उसने थोड़े पैसे में अपनी कम्बल भी गिरवी रख दी है। मार्टिन ने उसे डबल रोटी और कुछ रस खाने को दिया और अपना एक पुराना कपड़ा भी बच्चे को ढकने के लिये दिया। साथ ही उसने यह भी आश्वासन दिया कि यदि शाम तक कोई काम का प्रबन्ध न हो तो फिर उसी के घर में आ जाय। कुछ पैसे देकर कम्बल भी गिरवी छुड़ा लेने को कहा। उस महिला ने भी जाते समय मार्टिन की दया की प्रशंसा की।

इस तरह उसने संसार में प्रेम करना आरम्भ किया। एक दिन रात में उसे भगवान की स्पष्ट वाणी सुनाई दी। प्रभुने उससे कहा कि मार्टिन तुम मुझे अच्छी तरह से समझ गये हो अब तुम्हें मेरा साम्राज्य शीघ्र प्राप्त होगा। मैं ही स्त्री के साथ बच्चे तथा बूढ़े

आदमी के रूप में तुम्हारे घर आया था। तुमने अपने प्रेम से मेरी खूब सेवा की। अब मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं।

वस्तुतः उपरोक्त कहानी में वास्तविकता हो या न पर प्राकृतिक (नैसर्गिक) प्रेम का एक अद्भुत उदाहरण है। आजकल यह देखने में अवश्य आता है कि लोग जमाने के अनुसार सभी विषयों में अग्रसर होते जा रहें हैं पर इतना अवश्य है कि अपनी संस्कृति सभ्यता को तिलांजलि देकर विकृत एवं भ्रष्ट पाश्चात्य स्पराबादी समाज की ओर विशेष अभिरुचि रखने लगे हैं जो समयानुसार अधःपतन की ओर ही ले जाने वाला है।

श्री नारायण प्रसाद, हजारी बाग

पत्र नं. १

प्रश्न नं. १— कभी-कभी दस्त काले रंग का होता है और इसके बाद तत्काल कमजोरी महसूस होती है। दस्त के परीक्षण करने पर कोई विशेष शिकायत महसूस नहीं हुई।

प्रश्न नं. २— मोतियाबिन्दु के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। नित्य प्रातःकाल त्रिफला जल से आंखें धोता हूं और सूर्योदय काल में आंखें खुली रखकर ५ मिनिट तक सूर्य-बिम्ब में दृष्टि केंद्रित करते हैं। आपका मत क्या है ? क्या इसके अलावा और भी कुछ करना चाहिये ?

उत्तर नं. १— वायुप्रधान प्रकृति के लोगों का मल साधारणतः काले (भूरे) रंग का होना स्वाभाविक है, क्योंकि हरी पत्तियों का शाक, जामुन आदि फलों के

सेवन से मल का रंग भूरा तथा काला होता है। इस रंग से किसी प्रकार की हानि का भय नहीं। कमजोरी काले रंग के मल का कारण नहीं; अन्य कोई कारण होना चहियें दिन में दो बार (प्रातः और सायं) सें अधिक बार मल-विसर्जन होने, मल अधिक पतला होने से; अधिक सूखे और कड़े मल को गुदा द्वार से बाहर निकालने में उदर के बल का प्रयोग करने से, शरीर में अशक्ति होने से मल के काला हो जाने की संभावना है।

उत्तर नं. २— सामान्य रूप से यदि आंखों की दृष्टि कम होती जा रही हो, तो शीर्षासन २० मिनिट, शवासन ५ मिनिट, भुजंगासन ३ मिनिट, जानु-शिरासन १ मिनिट, विपरीतकरणी ४ मिनिट, उड्डीयान २ मिनिट, शवासन ६ मिनिट दिन में चार बार। इसके अतिरिक्त आंखों को ठण्डे जल से धोना चाहिये। आंखें धोने की हर बार की समय सीमा ५ मिनिट होनी चाहियें। भोजन के साथ गाजर का सेवन करें। टमाटर, शाक-सब्जी का उपयोग विशेष करें।

त्राटक

हरे पत्ते के सामने ६ फुट अंतर में बैठकर त्राटक करना चाहियें। आंखें मूंदे बिना पेड़ के पत्ते को देखें। पहले दिन ६० गिनती तक दूसरे दिन १०० गिनती तक तीसरे दिन १२० गिनती तक देखें। आंखों में जल धारा बहे तो चिन्ता न करें आंखें मूंदनी नहीं चाहियें। त्राटक के बाद दोनों हाथों की उंगलियों के

अग्रभाग अथवा करतल से शनैः शनैः आंखों का आं पटल (आंखें बन्दकर) की मालीश ४० सेकेंड तक करें पश्चात् ४० सेकेंड स्वस्थ चित्त से बैठ जाना चाहिये मन में आंखों की दृष्टि बढ़ रही है ऐसी भावना करनी चाहिये। यह प्रयोग ३ महीने तक करें। आंखें त्राटक के अभ्यास के पश्चात् ठंडे जल से ६० सेकेंड तक धोनी चाहिये

नेती कर्म

शरीर में विजातीय द्रव्य बढ़ जाने से रक्त, मांस आदि धातु दूषित बनकर मोतियाबिन्दु आदि रोग होते हैं। फल, दूध मिरच-मसाले की तायदाद अत्यन्त कम हो ऐसा आहार दिन में १ बार केवल दूध तथा फल। कभी आवश्यकता पड़ने पर पत्ती की भाजी उबाल कर सेवन करना।

नेती कर्मः आंखें तथा नाक के अवयवों का शुद्धीकरण करना पड़ता है। सूत के डोरे से निर्माण की गई नेती श्री रामतीर्थ योगाश्रममें उपलब्ध होती है। कीमत केवल ०-८० पैसे है। जल में डुबोकर प्रातःकाल दंतधावन के समय नाक के दाहिने छिद्र में नेती का कड़क भाग प्रवेश कर मुख से निकालनी चाहिये तुरन्त जल में नेती धोनी चाहिये और कुल्ला करके नाक के बांयें छिद्र में हाथों से प्रवेश कर मुख से निकालनी चाहिये। ८ दिन के बाद मुख से बाहर निकाली गई नेती का अग्र भाग तथा नाक के छिद्र के बाहर भाग में रही हुई नेती के अग्र भाग को दोनों हाथों से पकड़कर ८ से १० बार आगे पीछे की ओर ले आना

ले जाना चाहिये । अर्थात् घर्षण कर्म करना चाहिये। यह प्रयोग ४ मास तक प्रति नित्य करना चाहिये। गाय के घी से तैयार किया गया अंजन आंखों में प्रतिदिन योगाभ्यास के पश्चात् आंजना चाहिये । इन प्रयोगों से अवश्य लाभ प्राप्त होगा ।

श्री मिठालाल व्यास (पोनोरी)

पत्र नं. २ प्रश्न नं. १—मैं आपसे पूछना चाहता हूं किमेरी उम्र १८ साल की है और कभी-कभी थोड़ी देर बैठकर खड़ा होता हूं तो आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है और तारों के समान दिखाई देने लगता है सो इसका उपाय कृपा करके 'रामतीर्थ' में प्रश्नोत्तर में देने की कृपा करें और इसका इलाज लिखें।

उत्तर नं १ — वायुविकार, पित्तविकार, शरीर की अशक्ति, मगज के अवयवों की अशक्ति, रात को देरी तक पढ़ने से, एक साथ ३ घंटे से अधिक देरी तक पढ़ने से, मगज से अधिक काम लेने से, धातुक्षीणता से, रात को अधिक स्वप्नावस्था में समय व्यतीत होने से, चिन्ता से, अधिक क्षुधा लगने से आंखों में अंधेरा पन आता है। तथा मगज काम थोड़ी देर तक नहीं कर सकता।

उपाय

आहार :— दुग्ध, मक्खन, शाक-सब्जी, फलों का अधिक सेवन करें।

योगाभ्यासः— शीर्षासन १२ मिनिट, शवासन ६ मिनिट लोलासन २ मिनिट, मत्स्यासन २ मिनिट, अर्ध मत्सेन्द्रा-

सन ४ मिनिट करें।

अन्य उपचार :— चिन्ता न करें। मात-पिता, गुरु की सेवा करें। भगवान् का भजन, कीर्तन, देवपूजा, गुरुमंत्र का जाप करें। सिनेमा नहीं देखना। शुद्ध सात्त्विक भोजन करें। सिरपर ब्राह्मी तेल नित्य प्रति लगाना चाहिये।

कन्हैयालाल बी. जानी

पत्र ३ प्रश्न १:—

मैं कोमल दिल आदमी हूं। इसमें कोई बुरी बात नहीं है लेकिन छोटी सी बातसे भी मेरे दिलको धक्का पहुंचता है। मेरी बात सत्य हो और किसी के साथ बहस छिड़ जाय तो अन्तमें मेरे दिलको ही दुःख होता है और मेरा मन अशांत हो जाता। मेरे इस स्वभाव की वजह से मेरा मन हमेशा के लिये अशांत रहता है। मैं हाईस्कूल में अध्यापक हूं और एम. ए. में अभ्यास करता हूँ। मेरे ऐसे स्वभावसे पढ़ाई में भी कभी-कभी मेरा मन नहीं लगता है। मैं अंतर्मुखी बनना चाहता हूँ कि जिससे दुन्यावी ऐसी बातोंसे मेरा मन अशांत न बन जाय। इसके लिये आप प्राणायाम की विधि और कोई योगके आसन सूचित करें तथा अन्य सूचनायें जो कि मुझे फायदेमंद होंगी।

प्रश्न २:—मैं एम. ए. में पढ़ता हूँ। कभी-कभी मुझे सिरदर्द होता है। स्मरणशक्ति की भी कमी मालूम पड़ती है। कभी २ आंखें भारी लगती हैं। योगके आसन में मुझे श्रद्धा है। मैं पहले शीर्षासन करता था। कोई योगका इलाज लिख भेजें।

प्रश्न नं. १:—शिक्षकोंका मगज हमेशा विशेष रूप में कार्यरत बना रहता है। ज्ञान-क्रिया तंतुओं को अधिक काम मिलनेसे मगजके अवयवों के साथ ज्ञान क्रिया तंतुओं में उग्रता का अंश बढ़ जाता है। फलस्वरूप हताश, बेचैनीसी, असहन शीलता, डर, चिन्ता बनी रहती है। घरमें पढ़ाई, हायस्कूलमें लेक्चर तथा एम. ए. के अभ्यास क लिये रात को देरी तक अभ्यासमें मगजसे अधिक काम लेना पड़ता है। फलतः मन उदास, भय, चिन्ता, संकोच, अवयवोंकी कमजोरीका अनुभव लेना पड़ता है।

उपाय

आहारः—प्रातःकाल स्नान के बाद देवपूजा। देवपूजा के बाद आसन प्राणायाम करें। प्राणायाम के २० मिनिट पश्चात् ४ औंस दुग्धमें सार्सापरिला का चूर्ण २ रत्तीभर छोड़करके २ औंस जलके साथ गरम करें। ठंडा करने के बाद सेवन करें। सार्सापरिला वैद्योंकी दूकानों में मिलता है। नहीं मिले तो शिखावलीका चूर्ण दूधमें २ रत्ती छोड़कर सेवन करें। ब्राह्मीका अवलेह सेवन करें।

आहार-भोजनः—गेहूँ तथा जौ के आटे से तैयार की गई रोटी, चावल, मूंगकी दाल ३ दिन, तुवरकी दाल २ दिन, २ दिन उड़दकी दाल, साग सब्जि, छास, दही सेवन करें। योगाभ्यास— पवन मुक्तासन ३ मिनिट, वज्रासन २ मिनिट, जानु शिरासन ४ मिनिट, पूर्ण पद्मासन २ मिनिट, भुजंगासन २ मिनिट, सुप्त धनुरासन

२ मिनिट, शवासन ४ मिनिट। अनुलोम विलोम प्राणायाम ३ से ९ प्राणायाम आसन अभ्यासके बाद करें। प्रातःकाल समय नहीं मिले तो सायंकाल भोजनके ३ घंटे पहले कर सकते हैं। प्राणायामकी विधि जानने बारे में रामतीर्थ मासिक में अनेक प्रकार के प्राणायाम के बारेमें विस्तारपूर्वक लिखा गया है। आपके लिये प्राणायाम आवश्यक है। आसन के अभ्यास से लाभ प्राप्त होता है। सन् १९६४ तथा १९६५-६६ का रामतीर्थ मासिक हमारे यहां से मंगवा लीजिये वार्षिक रु. ५) मनिओर्डर से भेजने से अंक भेजे जायेंगे। आसनों के बारे में विस्तार रूप से चाहिये तो उमेश योग दर्शन प्रथम खंड हिन्दी भाषा में हमारे यहां से मंगवा लीजियें, डाक व्ययके साथ १९-५० है। आहार परिवर्तन तथा योगाभ्यास से आपकी बीमारी दूर होगी। निर्भय बनोगे। फेफड़े हृदय बलवान् बनेंगे। शरीरके सर्व अवयव बलवान विकास युक्त बनेंगे। मगजके अवयव विकासके साथ आरोग्य सम्पन्न रहेंगे।

उत्तर २:—उपरोक्त चिकित्सासे सिरदर्द मिटेगा, आंखों की कमजोरी दूर होगी। प्रातःकाल स्नानके बाद रामतीर्थ ब्राह्मीतेल से शिर में ८ मिनिट तक मालिश करिए।

हफ्तेमें ३ दिन रामतीर्थ ब्राह्मीतेल सारे शरीर में मालिश करके स्नान करिए। कानमें तेल छोड़िये।

रात्रीको सयनके समय रामतीर्थ ब्राह्मीतेल पांवोंके तलियोंमें ७-७ मिनिट तक हाथोंसे अथवा चांदीकी वाटिकासे मालीश करिए।
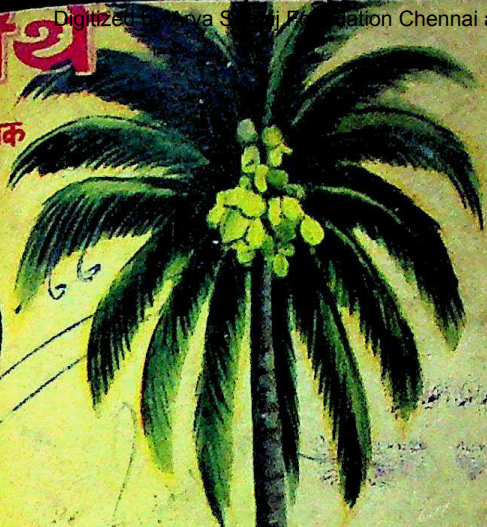
विकासक
जूलाई 50 पैसे १९६६
नारियल (श्री फल) का वृक्ष
तीर्थ योगाश्रम
बम्बई.१४ (भारत)
RAMTIRTH HINDI MONTHLY
JULY 1966

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

(महत्त्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छ: प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचार आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

पुरुषों के लिये समय:—प्रात:काल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

महिलाओंके लिये समय:—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सवेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आने वाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रात: १० बजे व्याख्यान होता है।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन, कीर्तन, वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

विशेष सूचना:— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबंध नही है।

(प्रकाशन तिथि १-७-६६)

मध्यप्रदेश व राजस्थान की शिक्षण संस्थाओं और पुस्तकालयोंके लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

सम्पादक—
योगीराज
उमेशचन्द्र जी

रामतीर्थ

वर्ष—७ अंक—४
जुलाई १९६६

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 442899
विज्ञापन
तार—प्राणायाम दादर

लेख	लेखक	पृष्ठ
वैदिक प्रार्थना	संकलित	७
उमेश वाणी		८
हँसी का व्यापारी (कविता)	महावीर प्रसाद अग्रवाल	९
नारियल	सम्पादकीय	१३
योग का आनन्द दर्शन	राजमोहन मिश्र	१७
संगीत मंगल पथ (नाटक)	श्रीकृष्ण शॉदरे	२२
विश्वविहार	काल्लूभाई वसिया	३२
रूप का जादू (कहानी)	एम. आर. गुप्त	३६
आश्रम जिज्ञासु कक्ष	एक आश्रम वासी	४९
रामचरितमानस	टी. योगिराज उमेशचन्द्र जी	५४
जगन्नाथ पुरी का मंदिर	डा. गोपाल प्रसाद 'वशी'	७१
नौकरशाही राष्ट्र स्वातंत्र्य घातक	विश्वम्भरदत्त नौटयाल	९२

मुख पृष्ठ का परिचय

श्रीफल (नारियल) वृक्ष का अवलोकन कीजिये विशेष विवरण हेतु इसी अंक के पृष्ठ १३ पर देखिये।

विशेष सूचना- 'रामतीर्थ' मध्यप्रदेश व राजस्थान सरकार के शिक्षण विभाग की ओर से प्राथमिक, माध्यमिक उच्चतर, बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों व सार्वजनिक व पंचायत समिति पुस्तकालयों के उपयोग के लिये स्वीकृत है।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० ... रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके लिये विन्सेन्ट ... स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

विशिष्ट सूचनाएँ

१- श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक के निर्धारित नियमानुसार अप्रैल १९६३ से यह निश्चय किया गया कि एक सीमित संख्या में सभी प्रकार के गैर सरकारी या सरकारी, पंचायती, नगरपालिका आदि के वांचनालयों व योगाश्रम तथा प्राकृतिक चिकित्सालयों से रामतीर्थ मासिक का वार्षिक शुल्क डाक व्यय सहित केवल २ रु. ५० पैसे लिया जायेगा। अतः वाचनालयों के व्यवस्थापकोंको अपनेवांचनालयका शुल्क यथाशीघ्र भेजने की व्यवस्था करनी चाहियें ताकि संख्या पूरी होने पर निराश न होना पड़े।

२- दिन--वद्दिन रामतीर्थ के पाठक वृन्द की संख्या बढ़ती रहने से हर मास में हम पाठक वृन्द की मांग पर्याप्त रूप में पूरी नहीं कर पाते। फिर भी यदि मासिक विक्रेता वर्ग (एजेन्ट) अग्रिम सूचना भेज दें तो उनकी मांग यथा समय यथा साध्य हम पूरी करने की व्यवस्था करेंगे। जिससे श्रद्धा सम्पन्न एव सुख शांति, समृद्धि की तीव्र इच्छा रखने वाले हजारों वाचक बन्धुओं को निराश न होना पड़े।

३- बहुत से भाई श्रद्धा से रामतीर्थ मासिक के चन्दे को अनेक वर्षों के लिये हर मास में भेजा करते हैं उनका हम धन्यवाद करते हैं तथा उनसे आग्रह करते हैं कि अभी एक वर्ष से अधिक का चन्दा न भेजें और न बार-बार पूछ--ताछ करें कि आजीवन सदस्यता का क्या शुल्क है। इस विषय में जब भी नियम परिवर्तन किया जायेगा तो हम उसे मासिक में प्रकाशित करेंगे।

——— व्यवस्थापक

❋ श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम ❋

१-इस योगाश्रम में प्रविष्ट होनेके बाद साधक को बीड़ी-सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२-ली गई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३-टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

४-सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

५-योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६-कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७-आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के २७रु. है

८-नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी होगी। समय प्रात:काल ७॥ से ९॥ और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो मेंसे किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

ग्राहकोंसे

१. 'रामतीर्थ' अंग्रेजी मासकी पहली तारीख को प्रकाशित होकर ग्राहकों को डाक से भेजा जाता है।

२. वार्षिक शुल्क रु. ५ विदेशों के लिए १५ शिलिंग अथवा रु. ७॥ है।

३. रामतीर्थ का नया वर्ष अप्रैल से शुरू होकर मार्च में पूरा होता है परन्तु ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

४. ग्राहकों को अंक विशेष देखभाल से भेजा जाता है फिर भी यदि किसी को १५ तारीख तक अंक न मिले तो अपने डाक घर से पूछिए वहाँ से जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेज दीजिए ताकि उस पर गौर किया जावे।

५. पताबदलने के लिए कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचना साफ साफ अक्षरों में लिखे पतेके साथ मिलनी चाहिए। वह भी अधिक समय के लिए पता बदलना हो तभी हमें लिखें।

६. ६५ न० पैं० मिलने पर ही नमूना अंक भेजा जाता है परदेशवालों को एक शिलिंग भेजना चाहिए।

पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपना पता तथा ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

८. वार्षिक शुल्क मनीआर्डर' से भेजना लाभदायक है क्योंकि वी० पी० मे एक तो रजिस्ट्री खर्च लगकर ६ रु० पड़ेगा दूसरे देरी से अंक मिलेगा तथा विदेश में वी० पी० तो होती ही नहीं।

९. रामतीर्थ के साथ पुस्तकें आदि नहीं भेजी जातीं।

१०. व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पतेपर करें।

व्यवस्थापक

रामतीर्थ मासिक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

वर्ष ७] जुलाई १९६६ [संख्या ४

वैदिक-प्रार्थना

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

ऋ. वे. पु. सू. १०, ९०-२

भावार्थ—इस वर्तमान काल में जो सब कुछ है, उस भूतकाल में जो सब कुछ था और अब भविष्यकाल में जो सब होनेवाला है, वह सब पुरुष ही पुरुष है। वह पुरुष अमृत के भोगी देवों का स्वामी है और अन्न भोग से वृद्धि को प्राप्त करनेवाले (जीवात्मा जैसे) भोक्ताओं का भी स्वामी है।

(२७८) संयुक्त कुटुम्ब से संघ शक्ति का विकास होता है। धन का व्यय कम होता है। बाहरी दुश्मन लोग डरते हैं। बाहर मित्राचारी बढ़ती है। घर के यजमान (संयुक्त कुटुम्ब के) देव तुल्य समझे जाते हैं। उनके पवित्र जीवन का प्रभाव अन्य लोगों पर पड़ता है। संयुक्त परिवार में रहने का आग्रह रखना चाहिये। यह आग्रह पुरुषों से अधिक मात्रा में बहनों का होना जरूरी है। अधिकांश गृहों में असंयमी महिलायें अपने पति को संयुक्त परिवार में रखना पसंद नहीं करती हैं। यह भारत की दुर्दशा है।

(२७९) संसार में सार नहीं है। आत्म दर्शन में जो सार ग्रहण करते हैं वे महान महात्मा तथा योगी हैं। जो लोग संसार में सर्वोपरि सुख का आधार रखते हैं वे लोग अज्ञान से भरे पड़े हैं। सत्ता, डिग्री, धन और यौवन के मद से अन्धे बन जाते हैं और पशु, पक्षी,

(शेष पृष्ठ १२ पर)

हँसी का व्यापारी

—महावीरप्रसाद अग्रवाल

नहीं चाट चटनी, नहीं नोन-राई
नहीं कोई मक्खन दही बेचता हूँ।
नहीं खांड शक्कर, नहीं तर मिठाई,
मगर मैं तो केवल हँसी बेचता हूँ॥
हँसी जो हँसाती है हारे मनोंको,
हँसी जो खिलाती है सूखे तनोंको।
हँसी नाम सँजीवनी वह जड़ी है,
जिलाती जो मुरदा हुए तन मनोंको॥
कहीं जब किसी को बुझा देखता हूं,
कहीं जब किसी को दुखी देखता हूँ।
तभी हर गली में तभी हर घरोंमें,
लगा टेर टानिक-हँसी बेचता हूं॥

शिशु हास्य

वह आई बिखरती हुई सब तरफसे,
वह आंखों पे, होठों पे; सारे बदन पे।
खिला फूल-सा सारा मुखड़ा उसीसे,
वह भोली हंसी खेलता बालपन में॥

[श्र]म हास्य

धूपमें तपाके तन शीतसे कँपा बदन,
श्रमकण भीगता वह, कठिन कमाई है।

रामतीर्थ

भार धार शीशपे, विचार पंक डूबता-सा,
ऊबता वह देखके समाज निठुराई है।
कामको इमान औ आरामको हराम मान,
समझी 'हाथ बीच जगन्नाथकी' सचाई है,
देखो जान कृषक औ मजूरोंके आननपे,
जानी पहचानी हँसी रानी चली आई है॥
विधि सुघराईमें दिखाई निपुनाई आज,
लाज आवरण ढाँप कौन मुसकाई है,
अंग अंग बोल रहा खुशियों में डोल रहा,
घोल रहा अमी रस, भरी तरुनाई है।
आँख न अघात, ललचात अति देख देख,
पूर्णिमाकी ज्योत्स्ना सी मृदुल लुनाई है,
ललनाकी लालिमा लजीली लाज भरी लाल,
मोहिनी मुस्कान जवानी बन आई है॥

वृद्ध हास्य

हाथ-पैर शीश कंप दाँत आँतकी थकान,
जीवनकी मिट गई सारी विपुलाई है,
फूलोंकी जो सेज नहीं अति कठिनाई भरी,
अंधड़ तूफान भरी, भरी विचलाई है।
जीवनकी, साँझ मांझ बैठी बुढियाई एक,
पोपले वदन से न साँस सही आई है,
जीवनके झंझटोंको झेल-झेल खेल खेल,
झुर्रियोंके चाप बीच हँसी मुसकाई है॥

उषा हास्य

भोर चित-चोर उगी पूरब ललाई है,
हास्य बिखराते देखा उषा चली आई है,
बाग वन उपवन ग्राम औ डगर बीच,
महल अटारियोंके छत छितराई है।
कोकिलकी कूक बीच, पंछियोंके शोर बीच,
नाचत मयूर चित थिति न समाई है।
सरित, तडाग, गिरि अम्बर अशेष वास,
सारे संसार हँसी उषाकी सुनाई है॥

अट्टहास

गगन गुँजाती, सोयें हुओं को जगाती हुई,
मौन को भगाती झटपट चली आई है,
भवन कँपाती और जीव चौंकाती मानो,
अट्टहास हास सरिता सी बिखराई है।
फैलता है मुख या कि मुखद्वार अपावृत,
दांत की सुहानी पांत परत दिखाई है,
छूत सी यह भूत सी यह धूत अवधूत जैसी,
जैसी काग उड़नी हँसी लोगन्ह लुभाई है॥

अनेकों हँसी हैं अनेकों ही रंगत,
अनेकों ही भावों की है यह पिटारी।
बढ़ातीं है जीवन, घटाती है चिंता,
हँसी की अदाएं मनो मुग्धकारी॥

हँसी इक कुटिल जो भरी स्वार्थ से है,
लगे दांव तो लूट लेवे सभी को।
बड़ा जाल फैला फंसाते किसी को,
सड़े स्वार्थ के गन्ध से है सड़ी जो॥

बचो उससे-हँसी नहीं, यह रुलाना,
हंसी क्या जो पर को रुला चैन पावे।
हँसी जो हँसा दे रुलाते हुओंको,
अकृत्रिम हँसी ही हँसी यहां कहावे॥

(शेष पृष्ठ ८ का)

जीव-जन्तु तथा मानव की हत्या में सुख प्राप्ति व आनंद मानते हैं वे लोग जीते-जागते नरकगामी होते हैं।

(२८०) शून्य की कीमत एक से होती है वैसे ही परमात्मा अजर-अमर होने से प्रतिदिन परमात्मा के दर्शन के बारे में प्रयत्न शील होना जरूरी है। ईश्वर जगत का मूलाधार परमात्मा है।

(२८१) प्रभु परमात्मा आनन्द मय है, अपनी लीला हेतु ही संसार की सृष्टि करते हैं, इस सृष्टि में उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। अनादिकाल से जुदा हुये जीवों पर कृपा करने हेतु ही उनके द्वारा सृष्टिलीला का श्रीगणेश होता है।

(२८२) संसार की समस्त वस्तुओं से मुह मोड़कर एकमात्र प्रभु की ओर लग जाना ही हितकर है, क्योंकि आज नहीं तो कल इस संसार को छोड़ना ही पड़ेगा।
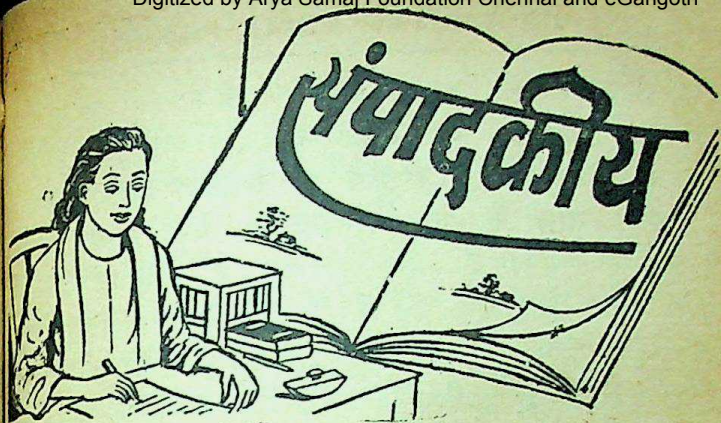
नारियल (श्रीफल) का महात्म्य

भारत में नारियल के वृक्ष का बहुत बड़ा महात्म्य है। प्रत्येक धार्मिक विधि-विधान और मांगलिक अनुष्ठान में नारियल का तेल अनिवार्य है। नारियल को अत्यन्त पवित्र, महिमामय और उपयोगी फल माना जाता है। इसे श्रीफल और नारियल भी कहा जाता है। पूजन अनुष्ठान आदि मांगलिक कार्यों में देवप्रतिमा के प्रतीक के रूप में इसकी स्थापना की जाती है। शुभ शकुन के रूप में श्रीफल (नारियल) की भेंट देने की परिपाटी है।

समग्र भारत में नारियल (श्रीफल) देश की सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। सभी हिन्दू परिवारों में नारियल को समान रूप से आदरभाव प्राप्त है। इसे परमोत्तम और शुभ फल माना गया है।

नारियल के उत्पत्ति स्थान

नारियल की उत्पत्ति सभी देशों में नहीं होती। यह लंका, हिन्देशिया तथा भारत में अधिक परिमाण में उत्पन्न होता है। भारत में भी इसकी उपज कुछ विशेष

समुद्रतटवर्ती क्षेत्रों में होती है। गोमान्तक (गोवा), मैसूर, कालीकट और महाराष्ट्र के सह्याद्रि पर्वतीय अंचल में अत्यधिक मात्रा में इसका उत्पादन होता है।

कहा जाता है कि नारियल का पेड़ ७-८ वर्षतक फल देने लगता है और लगभग ८० वर्षतक निरन्तर देता रहता है। एक पेड़ से औसतन १००-१२५ श्रीफल प्राप्त होते हैं। पुराने तथा उत्तम वृक्षों के फलों को परिपक्व होने पर उनका उपयोग बीज के रूप में किया जाता है।

नारियल की उपयोगिता

नारियल को गरीबों का कल्पवृक्ष कहा जाता है, क्योंकि उसके पत्ते, फल, तना, रेशा आदि सभी जीवन व्यवहार के लिये उपयोगी और आवश्यक हैं। इसकी डण्डियों से छड़ियां और डण्डे बनाये जाते हैं। पत्ते छप्पर बनाने के उपयोग में आते हैं। चोटी तथा मूल का भाग जलाने के काम में आता है। इसके रेशों से छोटी-बड़ी और मोटी-पतली नानाप्रकार की रस्सियां बनाई जाती हैं। जो अत्यन्त मजबूत और टिकाऊ होती हैं। इसका ठोस भाग गूदा-जिसे खोपरा कहते हैं-खाने के काम में आता है। इसे पौष्टिक माना जाता है।

नारियल का तेल

नारियल का तेल शीतल, मधुर, गुरु, ग्राहक, पित्त-नाशक, कफ उत्पन्न करने वाला, हृद्य, और बालों को बढ़ाता है। नया तेल हृद्य और रुचिकारक होता है। शिर में तिल के तेल की अपेक्षा नारियल का तेल लगाना अधिक गुणकारी माना जाता है। नारियल का

तेल निकालने की दो विधियां हैं। ताजे फल और सूखे नारियल में से भिन्न-भिन्न विधि से तेल निकाला जाता है। नारियल का तेल अधिक समय तक नहीं रखना अन्यथा वह खराब हो जाता है।

खोपरे का तेल खाने, दीपक जलाने, शिर में लगाने तथा साबुन बनाने के काम में आता है। कहा जाता है महाराष्ट्र, मैसूर, गोवा आदि के स्त्री-पुरुष जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त शिर में लगाने के लिये एक मात्र नारियल के तेल का ही प्रयोग करते हैं, फलतः उनके बाल वृद्धावस्था में भी काले रहते हैं। कदाचित् कोई अपवाद रूप में ही ऐसे आदमी मिलेंगे, जिनके बाल वृद्धावस्था से पहले श्वेत दिखाई देंगे। नारियल के तेल का यह महत्व श्लाघनीय है।

नारियल की खली जानवर खाते हैं। यह खली जानवरों को परिपुष्ट और बलवान् बनाती है। इसके अतिरिक्त नारियल के केक और बिस्कुट भी बनाये जाते हैं। मिठाइयों में भी नारियल का उपयोग किया जाता है, जो स्वादिष्ट और रुचिकर होने के साथ-साथ पुष्टिकर और बलप्रद होती है।

नारियल का जल

नारियल के हरे फल के अन्दर पानी होता है। इसे लोग पीते हैं। यह अत्यन्त स्वादिष्ट और मधुर, रुचिकर और तृप्तिकारक होता है। इसके अन्दर की कोमल गिरी जो मलाई की तरह होती है-को भी लोग खाते हैं। नारियल के ताजे रस को नीरा कहा जाता है और

इसे स्वादिष्ट पेय पदार्थ माना जा है। यह शीतलता प्रदायक पेय है अतः इसे ज्वर में भी दिया जाता है। कालेरा-दस्त आदि में इस जल का उपयोग निर्भयता से किया जाता है। इनके अतिरिक्त नारियल का जल शीतल, प्रियकर-रुचिकर, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, वीर्यवर्धक, हलका, प्यास-शामक, मधुर, और मूत्राशय को स्वच्छ-साफ बनानेवाला है। कुछ रोगों में जब कि पानी पिलाना हितकर नहीं माना जाता-नारियल का पानी निस्सन्देह रूप से दिया जाता है। बम्बई के चौपाटी आदि समुद्रतटीय स्थानों, जहां लोग टहलने और शुद्ध वायु -सेवन के लिये जाते हैं-पर लोग नारियल जल पीकर अपनी प्यास का उपशम करते हैं।

नारियल शीतल दुष्पच अर्थात् कठिनता से पचनेवाला, मूत्राशय को स्वच्छ रखने वाला, मलावरोधक (दस्त रोकने वाला), शक्ति तथा पुष्टि प्रदान करनेवाला, तथा वायु, पित्त, रक्तविकार, रक्त पित्त तथा दाह को मिटाने वाला है। कोमल नारियल पित्तज्वर को विशेष रूप से मिटा देता है। पुराने नारियल को भारी पित्तकारक दाह उत्पन्नक और दस्त को रोकनेवाला माना जाता है।

नारियल के औषधिक गुण

नारियल में अनेक औषधिक गुण विद्यमान हैं। चूहे के काटने पर उसके विषाक्त प्रभाव को रोकने के लिये सूखा नारियल मूली के रस में घिसकर लगाना चाहिये। पाताल-यन्त्र द्वारा निकाला गया काचली का तेल दाद पर चुपड़ना

(शेष पृष्ठ १२७ पर)

योग का आनन्द-दर्शन

ले. राजमोहन मिश्र

भारतीय संस्कृति आदिकाल से ही अध्यात्म से प्रभावित है। भारत का समग्र प्राचीन (संस्कृत) साहित्य भारतीय आध्यात्मिक जीवन की सुरक्षित निधि है। युग-युग से भारतीय जनता अपनी इस निधि को परंपरागत रूप में आत्मसात् करती आ रही हैं, इसलिये ऋषि-महर्षियों की अभ्युदय और निःश्रेयस दायिनी जीवन संस्कृ। आज भी अधिकांशतः सुरक्षित है। भारतीय संस्कृति सर्वोदय वादिनी है। यहां किसी को विशेषाधिकार नहीं, किसी के प्रति पक्षपात नहीं, किसी के लिये पृथक नियम नहीं। इन समष्टिगत सर्वतोभद्र नियमों का जब कभी भंग किया गया है। तभी-तभी विशृंखलता, अराजकता, और विषमता का निस्सन्देह उदय होता है और सामाजिक जीवन विवाद तथा कलह की जंजीरों से जकड़ कर जड़ बन जाता है।

अस्तु, हमारी कुछ निर्बलताओं के कारण हमारी इस सुख शान्ति दायिनी परंपरा पर परिवर्तन-झंझावत प्रबल प्रहार कर रहा है। सर्वत्र उत्क्रांति की प्रवृत्ति चल रही है और हमारी चिर-परंपरा जो हम पर अपनी दिव्यता का प्रतिबिम्ब डाल रही है। अर्वाचीन बवण्डरों के आघात सहन कर रही है। ऐसी दशा में हमें कोई ऐसा मार्ग आज निकालना चाहिये, जो हमारे उदात्त जीवन को अक्षुण्ण रख सके। हमारे कुछ आदर्श इतने ऊंचे और व्यापक हैं, जिनकी अवहेलना करने से हमारा जीवन

पशुवत् हो जायेगा और 'खाओ-पीओ मौज उड़ाओ' के घेरे में बंध कर हम जर्जर, नीरस और भार रूप बन जायेंगे। हमारा आत्मबल तथा शरीरबल पराहत हो जायेगा, तपोमयी साधना, सहिष्णुता, भयंकर, शरदी, गर्मी और वर्षा, प्राकृतिक उपद्रवों, आंधी-बवण्डर, दुर्गम पथ, समुद्री, पहाड़ी और भयंकर वनों से आच्छन्न मार्गों पर अबाध गति से अभियान आदि स्वाभाविक गुण हमारा साथ छोड़ देंगे, अतः इन प्राचीन आदर्शों को जीवन क्षेत्र से बहिष्कृत करने का प्रयास करना बुद्धि-संगत नहीं, अपितु आधुनिक जीवन के साथ सुसंगत बनाने की दृष्टि से उनका नव संस्करण और परिष्करण होना चाहिये और तदनुसार ऐसे व्यक्ति का निर्माण भी आवश्यक है, जो समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को समझता और पालता भी हो।

भारत का व्यवहारिक दर्शन

सभी भारतीय दर्शन जीवन-व्यापी व्यवहार दर्शन हैं। वह प्रकृति और पुरुष की सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचना तक पहुंच गये और जगत् का वास्तविक रहस्य उद्घोदित कर रहे हैं। भारतीय दर्शन जीवन के दैनिक व्यवहारों के प्रतीक हैं। वे हमें सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करते हैं और तदनुसार आचरण करते हुये हम जीवन का निर्माण और परिष्कार करते हैं। इस तारतम्यिक विधान में परस्पर घर्षण की कहीं भी संभावना नहीं—टकराने का खतरा नहीं। पृथक अस्तित्व, पृथक व्यक्तित्व और पृथक गति होते

हुए भी हम आकाशीय ग्रहों की भांति अपनी परिधि में चक्कर लगा रहें हैं, या हमारा जीवन अनन्त काल से इसी प्रकार गतिशील है।

योगदर्शन की महिमा

यद्यपि सभी भारतीय दर्शन मानव को वास्तविक जीवन-दृष्टि प्रदान करते और अपनी उपयोगिता चरितार्थ करते हैं, फिर भी योगदर्शन जीवन व्यापी व्यहार-दर्शन है और सदाकाल सबके लिये उपयोगी और सुलभ है। योग-साधना से मानव की आन्तरिक और शारीरिक शक्तियों का अप्रतिहत विकास होता है। शरीर नीरोगी और बलवान् होता है। योग एक कला है और इसकी शिक्षा जीवन के नित्य व्यवहारों की शिक्षा है। इसके नित्य के अभ्यास से मानव उच्च कक्षा का नागरिक बनता है। आर्थिक जीवन के सुचारु संचालन के लिये जैसे विद्या, विज्ञान और अन्य लोकोपयोगी कलाओं की शिक्षा लेना आवश्यक है, उसी तरह इन हलचलों के सुव्यवस्थित संचालन के लिये शारीरिक और मानसिक रूप से सबल, स्वस्थ और प्रकृतिस्थ रहने का भी अत्याधिक महत्त्व है। योगकला जीवन की इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। योगाभ्यास मानव कार्यशक्ति की स्थापना करता है और जीवन चेतना अधिकाधिक उर्ज्वेसित बनाये रखता है और अन्तः जन्य चैतन्य का सर्वांग प्रस्फुटन होता है।

कुछ लोग योगाभ्यास को गहन और असम्भव मानते

हैं। उनके मतानुसार गृहत्यागी और वनवासी ही योगाभ्यास के अधिकारी हैं। दैनिक कार्यों को सुचारु और कलात्मक रूप देने के लिये जिस शक्ति, कौशल, संकल्प लगन और मनोयोग की आवश्यकता है, वह योगाभ्यास द्वारा सुलभ हो सकती है। जीवन को उत्साही और आनन्दमय बनाने का सर्वोत्कृष्ट साधन योग है। इसकी साधना और संकल्प के बल पर निर्माण और अभ्युदय की अभीष्ट-सिद्धि संभव होगी। रूस और अमेरिका अपने बुद्धि-वैभव और अनवरत कर्म-साधना से उत्कर्ष और विकास की चरम उन्नति की भूमिका पर पहुंच गये। कोई भी साधना—भौतिक या आध्यात्मिक, शारीरिक या मानसिक—साधक के जीवन में एक महान उत्तरदायित्व लगन और तपस्या का जन्म देती है, फलतः जन-जीवन संतुलित, अनुशासित, नियन्त्रित, कर्तव्य प्रबुद्ध कर्मप्रवण होता है। आज भारत में भौतिक संपत्ति संवर्धन और स्वावलम्बन प्राप्ति की जो योजनाएं चल रहीं हैं, उनकी सफलता का श्रेय उन्हीं को प्राप्त होगा, जो उनके संचालन में अपनी प्रतिभा, अनुभव और कार्य-शक्तियां का पूर्णतः उपयोग करेंगे और संकल्प तथा लगन के साथ अपनी बौद्धिक और शारीरिक क्षमता के साथ कर्तव्य-रत रहेंगे। बौद्धिक या शारीरिक—किसी प्रकार का श्रम किये बिना किसी भी नियोजित कार्य की सफलता संभव नहीं। यदि हम ईमानदारी के साथ अपने कर्तव्य-कर्म में संलग्न रहेंगे, तो निस्सन्देह एक दिन यह नियोजित साधना सफल

होंगी और हम भौतिक समृद्धि से संपन्न राष्ट्र बन जायेंगे।

जो हो, योगाभ्यासी को प्रकृति का पुत्र ही कहना चाहिये, क्योंकि वह प्रकृतिनिष्ठ जीवन का अनुसरण करता है और तदनुसार जिस आदर्श, चरित्रवान्, उत्तरदायी, कार्यक्षम व्यक्तित्व की रचना होती है, जिस सुसंस्कृत और परिष्कृत मस्तिष्क का विकास होता है, वह किसी भी उन्नत और क्रियासिद्धि समाज के लिये अत्यन्त आवश्यक है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कल्पना को योगी चरितार्थ कर दिखलाता है। धर्मार्जित आर्थिक शक्ति से अपनी ऐहिक आवश्यकताओं को पूर्णकर वह मुक्ति जीवन के लोकोत्तर आनन्द-बाग में विचरण करता है। रोगों तथा अन्य विघ्न-बाधाओं को लांघकर योगी हँसते हुये आगे बढ़ते चलने के लिये प्रशस्त हृदय और अदम्य सामर्थ्य से परिपूर्ण और पूर्ण-काम होता है। उसका जीवन संतुलित, अनुशासित और सुव्यवस्थित होता है। वह प्रतियोगी नहीं, सहयोगी होता है। जैसे स्वर्ण अग्नि में तपने के पश्चात् निर्मल होकर नवीन आभा से दीप्त हो उठता है, उसी तरह योग-कला की दीर्घकालीन साधना मानव जीवन को अधिकाधिक उज्ज्वल बना देती है। अतः जनता को योग की ओर प्रवृत्त होकर लाभ उठाना चाहिये।

* * * *

[रामपुरग्राम का दृश्य। ग्राम की टूटी सी झोपड़ी का दृश्य। शुद्धमतिदेवी गाय दुह रही है। प्रातः का समय है। पास ही बालक गोपाल बिल्ली के साथ खेल रहा है। अवस्था लगभग ९-१० वर्ष की है। सिर और बदन पर धूल लगी है। हाथ में लकड़ी है।]

गोपाल— मां !

शुद्धमति— बेटा !

गोपाल— मां ! मुझे भूख लगी है।

शुद्ध०— बेटा ! थोड़ा और दूध दुह लूं। फिर भोजन बनाकर, तुझे भोजन परोस दूंगी। जा, बेटा ! तबतक बाहर खेल आ।

गोपाल— नहीं मां ! मुझे बड़ी भूख लगी है।

शुद्ध०— अच्छा, बेटा ! ले थोड़ा दूध पीले और जा बाहर खेल आ और फिर भोजन कर लेना।

(माता एक ग्लास में दूध देती है। गोपाल उसे एक ही

घूंट में पी जाता है ।)

गोपाल— मां !

वृद्ध०— बेटा !

(गोपाल मां से लिपट जाता है । मां गोपाल के सिर पर हाथ फेरती है और स्नेह-दुलार से उसका प्यार करती है; चुंबन लेती है ।)

वृद्ध०— मेरा राजा बेटा ! गोपाल ! बेटा गोप ! जा, बाहर खेल आ । तबतक मैं घर का काम कर लूं ।

गोपाल— अच्छा मां !

("मैया ! मेरी कबही बढ़ेगी चोटी ?" गाता हुआ बाहर जाता है ।)

वृद्ध०— अहाहा बालपन भी क्या ही सुहावना काल है ! अच्छा, अब थोड़ा और दूध दोहन कर लूं ।

(दूध दोहने लगती है और दोहते समय गाती है ।)

— गीत —

गैया ! मैया ! तू अमृत भंडार !
महिमा तेरी अपरम्पार !!
दूध, दही, घृत अमृत पावन,
तुझसे पावें यह मन भावन,
होवे सुखमय इससे जीवन,
तू तन मन जीवन आधार ।
मैया गैया ! तू अमृत भंडार !!
तेरे पद में अमृत का बल,
करती है जग का मन निर्मल,
होता है तन निश्चल, सम्बल,

करतीं जग का दूर विकार !
गैया मैया ! तू अमृत भंडार !!
गोरस ही बस अमृत रस है,
सारा ही जग इसके वश है,
इसका पान मधुर जग-यश है,
मैया ! तू है प्रेम उदार।
गैया मैया ! तू अमृत भंडार॥

(एक अष्टवर्षीय बालिका 'तारा' का प्रवेश)

तारा— गोपाल की मैया ! गोपाल की—

शुद्ध०— कौन है री ! काहे प्रातः से रार मचाये रक्खी है !

तारा— मैं हूं मां ! तारा।

शुद्ध०— बैठ बेटी तारा ! निगोड़ी ! भला इतने सवेरे कैसे आई रे ! मेरा बेटा गोपाल तो बाहर खेलने गया है। बाहर भेंट न हुई ?

तारा— हूं। (क्रोध के स्वर में) गोपाल की मैया ! देखो हमको न चिढ़ाओ।

शुद्ध०— अरे ! बेटी ! रूठ गई ! (दोहनी अलग रखते हुये और तारा को हृदय से लगाते हुये) अरे ! बेटी ! इतने से ही रूठ गई !

तारा०— (रोते हुये स्वर में) मां ! मैं तो तुम्हें खुश-खबरी देने आई थी, पर तुम तो हमें उल्टे ही उलाहना देने लगी।

शुद्ध०— (हँसते हुए) कैसी खुश-खबरी री।

तारा— (हंसकर) मां ! गांव के चौपाल में एक सुन्दर भजन मंडली आई है। बड़ा ही सुन्दर भजन गाते

हैं। सुना है आज रहकर कल ही सवेरे अयोध्या की ओर जानेवाले हैं। मैया ! उनका गाना-भजन सुनने हम लोगों को न ले चलोगी ?

शुद्ध०— बेटी ! यह तो सच में बड़ी अच्छी खबर है। अरी ! भजन गाना वहां जाकर सुनने में क्या रक्खा है ? अरी उस भजन मंडली को तो अपनी गरीब झोपड़ी में बुलाकर उनका यहीं मान-दान, अतिथि सत्कार कर, यहीं भोजन कराकर, यहीं भजन सुनकर अपना जीवन सफल करेंगे।

तारा— तब तो यह बड़ा अच्छा होगा, मां !

शुद्ध०— मैंने भी जगदंबा भगवती को, किसी भी अच्छी सी भजन मंडली द्वारा, भजन-कीर्तन और उनका भोजन-सत्कार किया है।

तारा— अच्छा !

शुद्ध०— तो फिर भला, इससे बढ़कर फिर कब मौका मिलेगा ?

तारा— हां, मां !

शुद्ध०— तो फिर बेटी ! जा, देख आ, तेरे चाचा—गोपाल के बाबा कहां हैं ? उनके ही जरिये उनको भोजन और भजन का निमंत्रण भिजवाऊं।

तारा— (हर्षोल्लास से) मां ! तब तो बड़ा आनन्द रहेगा। मैं अभी जाती हूं और चाचाजी को खबर देती हूं। पर— (उदास हो जाती है)

शुद्ध०— पर '—पर क्या री ! अरे ! ऐसी उदास क्यों

हो गई ? यह रंग में भंग कैसा ?

तारा— गोपाल की मैया ! पर चाचाजी मानेंगे तब ना !

शुद्ध०— क्यों न मानेंगे ?

तारा— पर मेरा तो विश्वास नहीं होता। उनको तो भक्तों संतों और महंतों पर विश्वास ही नहीं होता ! चाची उनको तो भजन से बड़ी चिढ़ है। भक्तों से बड़ी घृणा !

शुद्ध०— अरी ! तू जाकर उनको खबर देती है या नहीं! या यहीं बातें बधारेगी ? जा, जल्दी अपने चाचाजी गोपाल के पिताजी को बुला ला। मैं उनको मना लूंगी। ऐसे मौके बारबार और घड़ी घड़ी थोड़े ही आते हैं। जा, जल्दी जा, और गोपाल के पिताजी को यहां जल्दी ही बुला ला।

तारा— अच्छा, जाती हूं चाची। पर मेरा तो--

शुद्ध०— अरी ! जाती है या नहीं ?

(दुलार से दोहनी फेंककर मारने का प्रदर्शन करती है)

तारा— अच्छा, मैया ! जाती हूं।

शुद्ध०—अहाहा ! धन्य हमारे भाग्य ! घर बैठे ही भगवान ने हमें अतिथि भेजदिया ! कितना आनन्द आवेगा! जब भजन-मंडली हमारे यहां भोजन स्वीकार कर, दीन के यहां प्रेम से भजन कर, हमारा यह घर और यह टूटी कुटिया पावन और पवित्र करेंगे, तो कितना आनन्द आवेगा !

गोपाल के जन्म दिवस पर प्रतिवर्ष तो भजन-पूजन होता ही है। आज तो अनायास ही यह भजन-मंडली

घर बैठे ही प्रभु ने भिजवा दी है! अहह! धन्य हो प्रभु! धन्य है तुम्हारी लीला! (गीता है)

— भजन —

तुम्हारी लीला अपरम्पार!
भगवन! लीला अपरम्पार॥
तुम हो परम उदार, भगवन्! तुम हो परम उदार!
भक्तों का मन राखन हारे! पावन दीन दयार॥ भगवन्०
विनती सुनो, करो मेरे प्रभु! जीवन का उद्धार॥ भगवन्०

अहाहा! कैसा आज आनन्द का दिवस है!

[गोपाल के पिता आनन्द का प्रवेश]

आनन्द— गोपाल की मां! सुनती हो?

शुद्ध०— क्या?

आनन्द— क्यों, कैसे याद किया? तारा के हाथ से कैसे बुला भेजा?

शुद्ध०— वाह, कैसे याद किया? कैसे बुला भेजा?— वाह, यह भी कोई प्रश्न है? यह भी कोई पूछने की बात है? क्या घर की कुछ भी सुध-बुध नहीं है?

आनन्द— क्यों, है न! क्या बात में?

शुद्ध०— क्या बात है? अरे! आज घर में आनन्द और उत्सव का दिवस है। तुम्हारे लाड़ले सपूत और मेरे आंखों के तारे स्नेह के दुलारे, गोपाल का आज जन्म दिवस है और वर्ष-गांठ है, और तुम कह रहे हो कि क्या बात है! वाह!

यह भी ठीक रही और खूब रही।

आनन्द— तो, यह क्या ? यह तो हरसाल और प्रतिवर्ष आते ही रहता है और फिर मेरी भी जरूरत क्या है इसमें ? तुम जो हो। अरी! रुपये-आठ आने की मिठाइयां पेड़े लाकर बच्चों, लड़कों को बांट दो, वर्ष-गांट हो जावेगी! इसमें और क्या रखा है!

शुद्ध०— नहीं, नहीं, ऐसा नहीं। वाह! यह भी खूब रही! जबतक संतान न थी, तबतक बड़ी मन्नत कबूली मनाई। और अब भगवान् के दिये और दया से एक संतान है, तो उससे भी अब आपने अपनी आंखें ही जैसे फेरलीं। अरे! हमारे क्या दस बारह संतान हैं ?

आनन्द— तो फिर ?

शुद्ध०— तो फिर क्या ? जाइयें, भजन-मंडली का इंतजाम कीजिये। प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी गाना-बजाना और भजन-पूजन का कार्यक्रम और प्रोग्राम होगा।

आनन्द— अच्छा।

शुद्ध०— और भजन-मंडली को भोजन कराना होगा। बच्चे के नाम की प्रसादी बाटना होगा। आज ही गांव में एक सुन्दर सी एक भजन-मंडली आई है। बेटी तारा ने खबर दी है। जाइयें, उन्हें जल्दी ही भोजन और भजन के लिये,

आज के ही लिये, अभी ही निमंत्रण दे आइये।

आनन्द— गोपाल की मां! यह सब मुझसे तो न हो सकेगा! तुम तो जानती ही हो कि भजन-वजन में मेरा कोई विश्वास नहीं है। यह तो सब ढकोसले हैं, ढकोसले! हां, मैं गोपाल के मामा मोहनदास जी को भेज देता हूं। उसी को तुम उस भजन-मंडली के पास भेज देना। मुझे तो युधिष्ठिर महाराज की कौड़ी और सुरा-देवी की ही बोतल से फुरसत नहीं है।

(प्रस्थान)

शुद्ध०— हे भगवान्! इनकी मति दिन-दिन कैसे बिगड़ती ही जा रही है! कुसंगति से ही ये दिन-ब-दिन बिगड़ते चले जा रहे हैं! हे भगवन्! तू ही अब रक्षक है! अच्छा अभी तो मैं भैया मोहनदास के ही हाथों खबर भेजकर भजन-मंडली को भजन और भोजन के लिये निमंत्रण भेजे देती हूं।

(गोपाल का प्रवेश)

गोपाल— मां!

शुद्ध०— बेटा! देख जा, तो जरा अपने मामा मोहन-दास को बुला लाना।

गोपाल— अच्छा, मां!

(प्रस्थान)

शुद्ध०— तबतक मैं व्यवस्था करूं।

(मोहनदास का प्रवेश)

मोहन०— बहिन! तुमने मुझे बुलाया है?

शुद्ध०— हां, भैया! देखो, आज बेटा गोपाल की जन्म तिथि है, वर्ष-गांठ है। गांव में एक भजन-मंडली आई है।

मोहन०— अच्छा, तो फिर?

शुद्ध०— भैया! उनको गोपाल की वर्ष-गांठ के उपलक्ष में आज अपने ही यहां भोजन और भजन का निमंत्रण दे आना होगा। मैंने उनके हाथों खबर देने को सोचा था, किन्तु भैया! वे तो दिन-बदिन कैसे से कैसे होते जा रहे हैं। उन्होंने वहां जाने से ही साफ इन्कार और अस्वीकार कर दिया। भैया! तुम्हीं जाकर उन्हें निमंत्रण दे आओ न! जाओ, भैया! मोहन! अपने लाड़ले भांजे के लिये यह काम कर आओ।

मोहन०— अच्छा! पर बहिन! भजन-मंडली के इतने लोगों के लिये कैसे व्यवस्था और इन्तजाम हो सकेगा?

शुद्ध०— भगवान् सब कर देंगे भैया! वे सब लाज रख लेते हैं!

मोहन०— इतना अटूट और अखण्ड विश्वास जीजी!

शुद्ध०— हां, भैया! घट-घट के निवासी हैं भगवान्! सबकी परख करते हैं। अपने एक छोटे से भक्त के लिये क्या वे इतना भी न कर सकेंगे! उन्होंने गोवर्धन पर्वत को एक उंगली से धारण

कर लिया, द्रौपदी की लाज रख ली, गजको जल में डूबने से बचा लिया, प्रह्लाद को तार लिया, अजामिल का उद्धार कर दिया, तो क्या वे अपने एक अबला भक्त की पुकार का ख्याल भी न करेंगे? भैया! वे सब सँभाल लेंगे! जाओ, भैया! जाओ! उन्हें भोजन और भजन के लिये, आज के लिये, निमंत्रण देकर, मुझे जल्दी ही खबर दे दीजिये।

मोहन०—(स्वगत) धन्य हो बहिन! धन्य हो, तुम्हारी भक्ति! (प्रगट) ठीक है, बहिन! मैं शीघ्र ही उन्हें, जाकर निमंत्रित कर आता हूं।

गुद्धू०—हां भैया! जाओ, शीघ्र जाओ।

मोहन०—अच्छा, जीजी!

(प्रस्थान)

गुद्धू०—आज मेरे मन में कितना आनन्द है!

(हर्षोल्लास से गाती)

"आज दिवस आनन्द-गीत का!
उमँगी कलि, फूली उपवन वन,
पुष्प बना हृदतम पुनीत का।
मेरा ही गलहार बना वह,
प्रेम हर्ष आनन्द जीत का॥"

— पटाक्षेप —

विश्व विहार

ले. काल्लूभाई बसिया
(गतांक से आगे)

पृथ्वी का विस्तार

पृथ्वी का कुल विस्तार १९, ६९, ५०, ००० वर्गमील का है, जिसमें जल का क्षेत्र-विस्तार ५॥। करोड़ है। इसमें उपजाऊ जमीन ३। करोड़ वर्ग मील, नदी-सरोवर ... लाख वर्ग मील, द्वीपक्षेत्र २० लाख वर्गमील हैं और ... क्षेत्र का विस्तार लगभग २ करोड़ वर्ग मील है। रेगिस्तान ५० लाख वर्गमील है। पृथ्वीकी औसत ऊंचाई समुद्र की सतह से ३ हजार फीट है।

पृथ्वी विषयक नवीन धारणा

अब यह माना जाने लगा है कि पृथ्वी और चन्द्र एक ही अरसे में अन्तरिक्ष वायुरज से निर्मित हुए हैं। इसके रचना-काल में पृथ्वी का पदार्थ वर्तमान कालीन पदार्थ ० ३ से ०.५ भाग था। पृथ्वी के निर्माण-काल में इसकी गति का वेग--परिमाण अधिक था। यह अतिरिक्त गति चन्द्र को प्राप्त हुई, जिससे पृथ्वी को स्थिरता प्राप्त हुई..... और धीरे-धीरे उसने घन (ठोस) रूप धारण किया।

गति की व्यवस्था

इस समय पृथ्वी और चन्द्र की गति व्यवस्था में कुल गति का ८० प्रतिशत गति अकेले चन्द्र की है। इस दृष्टि से सूर्य-माला के सभी ग्रहों में पृथ्वी का स्थान आगे है चन्द्र पृथ्वी का उपग्रह होने से गति विभक्त

है। शुक्र ग्रह का एक भी उपग्रह नहीं, अतः उसकी गति बहुत अधिक है। दूसरी बात यह है कि शुक्रग्रह के निर्माता अणुओं की भ्रमण-गति गोलाकार थी और अणुओं का एक दूसरे के साथ से योजन धीमी गति से हुआ था, फलतः शुक्रग्रह बहुत शीतल हो गया है, परन्तु पृथ्वी की रचना के समय में उसके अणु लम्ब-गोल भ्रमणगति में थे और एक दूसरे के साथ जोर से टकराते थे, अतः पृथ्वी का पिण्ड घर्षण के कारण खूब धधकने लगा था और उसके अणु बहुत गति से घूमने लगे फलत: पृथ्वी का मूल वातावरण कुछ ही समय में परिवर्तित हो गया……और उसपर पानी की भाप अत्यधिक मात्रा में व्याप्त हो गई थी। उसका वातावरण सेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति के अनुकूल बन गया था, परन्तु शुक्र के मूल वातावरण में परिवर्तन नहीं हुआ, अतः शुक्र में जीवन की संभावना अत्यल्प है। फिलहाल विज्ञान ने ढाई लाख वर्ष पहले के निर्जीव जन्तुओं को पोषक द्रव्य में रखकर जीवित किया है। और ऐसे तत्त्व की खोज की है, जो सबसे सूक्ष्म समग्र सृजनका मूलाधार प्रतीत होता है। उसे सी ०-० नाम से अभिहित किया गया है। उसका जीवन-काल एक सेकेण्ड के २० लाखवें भाग का १६ भाग है ऐसे अन्य प्रकार के १० तत्त्वों की खोज की गई है।

पृथ्वी के ऊपर ३ हजार मील की ऊंचाई तक पतली वायु का पर्त है। परन्तु वह सूर्य के वातावरण का

बाह्य भाग है। उसमें धातुओं के परमाणु पाये जाते हैं। अवकाश में कहीं खाली जगह नहीं। अवकाश के ऊपरी वातावरण में से प्रति वर्ष डेढ़ करोड़ टन धूल पृथ्वी पर बरसती है।

पृथ्वीविषयक दिलचस्प जानकारी

१— पृथ्वी का विषुवत् वृत्त वर्ती चारों ओर का घेरा २४,९०२ मील है।

२— पृथ्वी का उत्तर-दक्षिण ध्रुव वर्ती चारों ओर का घेरा २४,५६० मील का है। पृथ्वी का व्यास विषुवत् वृत्त के चतुर्वर्ती ८,००० मील और ध्रुववर्ती ७,९०० मील का है।

३— पृथ्वी एक घण्टे में १,१२४ मील की गति से अपनी धुरी के चतुर्दिक् घूमती है। पृथ्वी की उम्र चार अरब वर्ष की है।

४— पृथ्वी से सूर्य का अन्तर ९ करोड़ ३० लाख मील है।

पृथ्वी के दो बड़े भाग

५— पृथ्वी के दो बड़े भाग हैं, जिन्हें उत्तरीय गोलार्द्ध और दक्षिणी गोलार्द्ध कहा जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में जमीन अधिक दक्षिणीय गोलार्द्ध में पानी अधिक है। इसका कारण यह है कि पृथ्वी के अन्दर रासायनिक क्रिया का दबाव। इस स्थिति से उत्तर की ओर जमीन और दक्षिण की ओर पानी का अधिक जमाव हो गया है।

१३ प्राकृतिक विभाग

६—पृथ्वी का जलवायु विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार का होने से प्राणी और वनस्पति विभिन्न जाति के होते हैं, जिस भाग में उनका साम्य दृष्टिगोचर होता, ऐसे पृथ्वी के १३ प्राकृतिक विभाग हैं, जिसमें उत्तरीय ध्रुव और दक्षिणीय ध्रुव समान होने से दोनों ध्रुवों का एक विभाग माना गया है।

७—पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति के डेढ़ करोड़ वर्ष हुये हैं। पृथ्वी पर प्रति मिनट ९० का जन्म होता है, ७५ की मृत्यु होती है और २० विवाह होते हैं, जिसमें एक विच्छिन्न होता है। परन्तु सत्य ज्ञान किसी को उपलब्ध नहीं होता।

रूप का जादू

लेखकः— एम. आर. गुप्त

हरद्वार में प्रति ६ वर्ष के पश्चात् अर्ध कुम्भ का, तो १२ वर्ष के पश्चात् पूर्ण कुम्भ का मेला होता है। अर्ध कुम्भ की अपेक्षा पूर्ण कुम्भ का स्नान करने को अधिक महत्त्व दिया जाता है और उसे अधिक फलप्रद समझा जाता है। कुम्भ के लोभातुरों का यह विश्वास है कि कुम्भ के अवसर पर हरद्वार पहुँच कर गंगाजी में डुबकी लगाई नहीं कि आधे दर्जन या एक दर्जन वर्षों के उनके कुल पाप धुल नहीं गये। जिन पाठकों ने हरद्वार कुम्भमेले में पहुंच हरकी पौड़ी पर हर-हर गंगा और हर-हर महादेव कहते हुये गंगाजी में दो-चार डुबकियां लगाने का पुण्य प्राप्त न किया हो, उनके लिये कुम्भ का आकर्षण भले ही कम हो, किन्तु कुम्भ प्रेमियों के लिये हरद्वार को स्वर्ग का द्वार ही समझिये।

इसी विश्वास को हृदय में संजोयें उस दिन श्री हरद्वारी लाल पठानकोट एक्सप्रेस में मथुरा से सवार हुयें थे। कुम्भ मेले की यह आपकी चौथी यात्रा थी। एक बार आप बिना टिकट के यात्रा कर आयें तो दूसरी बार आधी टिकट से तथा तीसरी बार पूरी टिकट से। चौथी बार अब आप जा रहें थे। पहली बार जब आपने कुम्भ की यात्रा की थी तो टिकट का कोई प्रश्न ही नहीं उठा था क्योंकि आपका जन्म ही हरद्वार में ऐन कुम्भ के मेले के दिन हुआ था। आपके माता-पिता ने पुण्य लाभ के साथ पुत्र-लाभ भी

किया। इसी कारण आपका नाम हरद्वारी लाल रखा गया। दूसरी बार जाने पर १२ वर्ष की आयु होने के नाते आधा टिकट लगना ही था। तीसरी बार जब आपकी उम्र २४ वर्ष की हो गई तो पूरा टिकट लेकर यात्रा करनी ही थी। इस बार साथ में मुहल्ले के कुछ लोग अवश्य थे किन्तु माता-पिता दोनों अपने जीवन में न जाने कितने कुम्भों का पुण्य लूट कर स्वर्गवासी हो चुके थे। चौथी बार आप बिल्कुल अकेले ही गये और अपने इस पुण्य में किसी मुहल्ले वाले को भागीदार बनाना उचित न समझा। दिल्ली पहुंचकर हरिद्वार के लिये गाड़ी बदली। इस समय गाड़ी में भीड़ का क्या कहना। तिल रखने की जगह न थी फिर इतने बड़े शरीर को डिब्बे के अन्दर ठूंसना कोई आसान काम तो नहीं था, किन्तु कुलियों की सहायता से और पैसे के जोर से बैठने की कौन कहे लेटने तक की जगह मिल गयी सो आप सीट पर बिस्तर फैला कर जम गये।

कितने ही मुसाफिर डिब्बे में चढ़ते तथा उतरते रहे, कितनों ने खड़े-खड़े तो कितनों ने डिब्बे की फर्श पर बैठ कर यात्रा की, किन्तु श्री हरद्वारी लाल का बिस्तर वैसे का वैसा ही लगा रहा। कितनों ने थोड़ी सी जगह की याचना भी की और कितनों ने उपदेश भी किया, किन्तु किसी की याचना तथा उपदेश इतना प्रभावशाली सिद्ध न हो सका जो श्री हरद्वारी लाल अपना बिस्तर थोड़ा समेट कर किसी अन्य यात्री को बैठने का स्थान दे देते। इतने पर भी किसी यात्री ने झगड़ा करना उचित न समझा वह शायद इसीलिये

कि जिस पुण्य के लिये वे जा रहे थे, वह कहीं कम न हो जाय। इसी स्थिति में गाड़ी बढ़ती गयी, एक एक करके स्टेशन छूटते गये और अन्त में गाड़ी सहारनपुर स्टेशन पर जा लगी।

सहारनपुर में भी जितने यात्री उतरे उसके दूने डिब्बे पर पिल पड़े। शोरगुल, धक्कम-धुक्का और ठेल-पेल का पूरा दृश्य जो हरद्वार के कुम्भ मेले में मिलना चाहिये था, उसका एक रिहर्सल इसी डिब्बे में होने लगा। इसी ठेल-पेल में एक कुली के सर पर एक ट्रंक तथा बिस्तर रखाये हुए और स्वयं हाथ में एक बास्केट मय कुछ सामान के पकड़े हुये एक मिस साहिबा प्रकट हुई। उम्र बीस के ऊपर और पच्चीस के नीचे थी। शरीर न बहुत मोटा और न बहुत पतला। आकार भी न बहुत लम्बा और न बहुत छोटा। रंग न बहुत सफेद और न बहुत काला। यूं समझिये कि आयु, शरीर, आकार तथा रंग सब मिडियम क्वालिटी का था। यदि कोई वस्तु मिडियम नहीं थी तो वह थी मिस साहिबा की सुन्दरता, कि हजारों में नहीं बल्कि लाखों में एक। पोशाक सादा और चेहरा भोला, किन्तु दोनों ही बहुत आकर्षक। ओठों पर हर दम खामोश हंसी जैसे नाचती रहती हो। जिस समय आप डिब्बे में कुली की सहायता से घुसी उस समय कुछ परेशान सी जरूर नजर आ रही थीं, किन्तु केवल थोड़ी देर के लिये। आपने डिब्बे में जो इधर-उधर नजर डाली तो कहीं सामान रखने तक की गुंजाइश न दिखाई दी। परन्तु मिस साहिबा की आंखों में न जाने कैसा

आकर्षण था कि सभी यात्री इधर उधर को सरक गये। कुछ ने बिस्तर समेटे तो कुछ ने अपने को समेटा और मिस साहिबा के लिये स्थान किया किन्तु मिस साहिबा हर ऐरे-गैरे के पास तो बैठ नहीं सकती थीं। इसी बीच मिस साहिबा के आकर्षण ने श्री हरद्वारीलाल पर भी ऐसा चुम्बकीय प्रभाव डाला कि वे भी लेटे से उठकर बैठ गयें, और लगे अपने को समेटने तथा दिल और बिस्तर को फैलाने। मिस साहिबा की आंखें जाकर श्री हरद्वारीलाल की आंखों से टकराई और एक सेकैंड में मामला तय हो गया। श्री हरद्वारीलाल ने मिस साहिबा का ट्रंक तथा बिस्तर अपने ट्रंक पर रख लिया। बास्केट को सीट के नीचे रखवा दिया और अपने ही बिछौने पर बगल में बिठा लिया। मिस साहिबा ने "थैंक यू" कहा जिसका उत्तर श्री हरद्वारीलाल ने "नो मेन्शन प्लीज" कहकर दिया। कुली अपनी मजदूरी लेकर चला गया। गाड़ी स्टार्ट हुई तो श्री हरद्वारी लाल के दिल की धड़कन भी स्टार्ट हुई। सबकी नजरें श्री हरद्वारी लाल पर थीं तो श्री हरद्वारी लाल की नजर केवल मिस साहिबा पर थी।

श्री हरद्वारीलाल ने सकुचाते हुयें किन्तु वाणी में रस घोलते हुये मिस साहिबा से प्रश्न किया "ऐसा ज्ञात होता है कि आप भी मेरी तरह कुम्भ स्नान करने जा रही हैं, किन्तु क्या अकेले ही?" मिस साहिबा ने या यूं कहिये कि कुमारीजी ने एक मीठी-सी निगाह श्री हरद्वारीलाल पर डालते हुयें मीठे ही स्वर में उत्तर दिया "आपका अनुमान

सही है।" और फिर मीठी सी हंसी के साथ पलकें नीची कर लीं। श्री हरद्वारी लाल को कुमारी जी की यह अदा बहुत पसन्द आई। मन ही मन कहने लगे "गाड़ी आज चार छः घंटे लेट क्यों नहीं हो जाती।" कुम्भ का सारा पुण्य जैसे गठरी बनकर उसके पास में ही बैठा हो। या यूं कहिये कि स्वयं भागीरथी उनकी सीट पर आकर विराजमान हो गयी हों। अगले तथा पिछले सारे कुम्भों का जैसे एक ही साथ फल पा गये हों।

कुछ बात-चीत बढ़ी तो कुछ परिचय बढ़ा और परिचय बढ़ा तो फिर प्रश्न पर प्रश्न करने का साहस भी बढ़ा। धीरे-धीरे श्री हरद्वारी लाल जी ने उन सभी बातों को कुमारी जी के श्री मुख से कहलवा लिया, जो वे अपने संतोष और समाधान के लिये कहलवाना चाहते थे।

रास्ते में अगले स्टेशन पर डबल चाय और नाश्ते का आर्डर दिया गया, जिसे कुमारी जी ने यह कह कर स्वीकार किया आप मेरे लिये बहुत कष्ट कर रहे हैं, कभी मुझे भी अपनी सेवा का अवसर दीजियेगा। श्री हरद्वारीलाल जी ने कहा मैं तो आप की सेवा में ही अपनी सेवा समझता हूं। यह तो मेरी खुशकिस्मती ही थी जो आप जैसी पढ़ी लिखी और सुशिक्षित देवी से मेरा साक्षात्कार हो गया। इतना कहकर आपने बटुये से पान का एक बीड़ा निकाल कर कुमारी जी को पेश कर दिया। जिस नजाकत के साथ बीड़ा पेश

किया गया था, उसी नजाकत के साथ कुमारी जी ने उसे श्री हरद्वारी लाल के हाथ से उठा कर खा भी लिया। कुमारी जी ने कटाक्ष के साथ देखते हुयें तथा होंठों पर भीनी-भीनी मुस्कराहट बिखेरते हुए कह दिया मेनी थैंक्स, श्री हरद्वारी लाल के हांथों को जिस समय कुमारी जी ने पान का बीड़ा लेते हुयें टच किया तो शरीर में एक करन्ट सी दौड़ गई और मेनी थैंक्स से तो उनके शरीर में अजीब सी सिहरन होने लगी।

इस समय डिब्बे के अन्य यात्रियों पर क्या बीत रही थी, इनका न बताना ही ठीक होगा। बस इतना समझ लीजिए कि कोई जला जा रहा था कोई कटा जा रहा था तो कोई अपने कर्मों को कोष रहा था और कोई अपने भाग्य को ठोंक रहा था। परन्तु पुण्य तो मनुष्य को उतना ही प्राप्त होता है जितना वह स्वयं पुण्य के कार्य करता है। श्री हरद्वारी लाल ने इस जन्म में नहीं तो पिछले जन्म में ऐसे पुण्य कार्य अवश्य किये होंगे जिनका उन्हें इस जन्म में समुचित फल मिल रहा था। परन्तु उस डिब्बे में संयोग से सबके सब भाग्यवादी ही थे, अतएव किसी ने किसी प्रकार की अड़चन पैदा न की और यदि भागीरथी बहकर उनके पास नहीं आयीं तो उन्होंने भागीरथी को नहीं वरन अपने भाग्य को ही दोषी माना बस डिब्बे में संतोष तथा शांति बनायें रखने के लिये यह विचार बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ। यदि कुमारी मीना कुमारी जी चाहतीं तो उन्हें उसी

डिब्बे में एक के स्थान पर चार सीटें बैठने को मिल सकती थीं, किन्तु औरों की अपेक्षा श्री हरद्वारीलाल के पुण्य-कार्य कुछ अधिक थे।

रास्ते में मीनाकुमारी तथा श्री हरद्वारीलाल में खूब खुलकर बातें हुयीं। एक दूसरे का पूर्ण परिचय प्राप्त किया गया तथा पते का आदान प्रदान हुआ। परन्तु कुमारी जी उतना ही खुलीं, जितना उन्हें उस स्थिति में खुलना उचित था। वे बात भी करती थीं, प्रश्न भी करती थीं, और उत्तर भी देती थीं तथा मुस्कराती भी थीं। किन्तु एक गम्भीरता के साथ। उस गम्भीरता का निभाव उन्होंने हरद्वार पहुंचने तक बराबर किया। श्री हरद्वारीलाल कुमारी जी की यह एक विशेष अदा समझते थे और ऐसी अदा जिस पर तन-मन-धन सब कुछ कुर्बान करने के लिये तैयार थे। कुमारी जी ने श्री हरद्वारीलाल को यह तो विश्वास दे ही रखा था कि वे हरद्वार किसी धर्मशाला में उनके साथ ही ठहरेंगी तथा कुम्भ का स्नान कर फिर देहरादून तथा मंसूरी की सैर भी साथ ही साथ करेंगी। इतना ही क्यों कुमारी जी ने लौटते समय सहारनपुर में अपने ही मकान में ठहरने की बात भी श्री हरद्वारीलाल से कह दी थी और यह भी कह दिया था कि वह अपने मकान में बिल्कुल अकेली हैं केवल एक नौकरानी है जो सुबह शाम आकर घर का काम कर जाती है। जिस समय वह पढ़ाने के लिये अपने पाठशाला को चली जाती हैं, तो ताला बन्द करके जाती हैं। श्री हरद्वारीलाल के लिये यह बहुत बड़ी बात थी और

सीधे स्वर्ग में पहुंचने की दावत थी। इस समय श्री हरद्वारी लाल को सब परिस्थितियां अपने अनुकूल दिखाई देती थीं और सौभाग्य जैसे उनके साथ ही साथ डोल रहा था। अतः इस कुम्भ की यात्रा को लाला हरद्वारीलाल हर प्रकार से शुभ समझते थे और मन ही मन मन-मोदकों का स्वाद ले रहे थे। रास्ते में बात-चीत के समय जब कुमारीजी ने अपनी उम्र २३ साल की बताई तो श्री हरद्वारीलाल ने बिना कुमारी जी के पूछे ही उनसे प्रश्न किया "और मेरी उम्र के बारे में आपका क्या अंदाज है?" तो कुमारीजी ने बड़े नाज के साथ कहा "मुझे तो आपकी उम्र २६ या २७ साल से अधिक नहीं जंचती है।" इसपर श्री हरद्वारीलाल ने कहा था "कुमारी जी आपने जो-जो अनुमान अभी तक मेरे विषय में लगाये हैं वे सब ठीक निकले। यह अनुमान भी आपका बिलकुल ठीक है। इस समय श्री हरद्वारी लाल ने अपनी असली उम्र ३६ वर्ष बताना किसी विशेष कारण से उचित न समझा।

हरद्वार पहुंचकर सभी कुम्भस्नानार्थियों ने डिब्बा खाली कर दिया। इन दोनों प्राणियों के सामान को भी नीचे उतारा गया। कुमारी जी ने श्री हरद्वारी लाल से कहा "कृपया आप अभी प्लेटफार्म पर ही कुछ देर बैठें मैं जबतक अपनी सहेली को जोकि मेरी प्रतीक्षा में मोटर लिये खड़ी होगी, उसे अपना यह बिस्तर तथा टोकरी दे दूं, ताकि उसे यह विश्वास रहे कि मैं उसके यहां एक एक दिन के लिये अवश्य ठहरूंगी। मैंने उसे पहले ही से तार कर दिया था। आपके

पास बिस्तर तो काफी मालूम होता है, फिर मैं अपना बिस्तर क्यों ढोये-ढोये फिरूं। आज आपके साथ तो कल सहेली के घर रह लूंगी, जिससे न आप नाखुश हों और न सहेली ही नाखुश हो। उससे मैं कह दूंगी कि मेरे एक पूर्व परिचित मित्र गाड़ी में मिल गये थे, अतः मैं आज के लिये माफी चाहती हूं और कल अवश्य आ जाऊंगी। कहिए आपकी क्या राय है? श्री हरद्वारीलाल ने कहा मेरी क्या राय, जो आपकी राय वही मेरी राय है। आप शौक से उसे जो कुछ सामान देना चाहतीं हों दे आयें। इस पर कुमारी जी ने कहा अच्छी बात है फिर ट्रंक की जिम्मेदारी आप पर रही। देखिए इसमें मेरा कीमती सामान है, कहीं गाफिल न हो जाना। मेले की बात है। नहीं ऐसी क्या बात है। आप किसी बात की चिंता न करें और सहेली को सामान देकर शीघ्र लौट आयें। श्री हरद्वारीलाल ने निश्चित भाव से कहा।

कुमारी जी ने एक कुली को अपना बिस्तर तथा टोकरी थमा दी और एक कटाक्ष करती हुई बाहर चली गयीं। श्री हरद्वारीलाल उस कटाक्ष में अपना भविष्य पढ़ने लगे। थोड़ी ही देर में कुली लौट आया और कहने लगा देवीजी बाहर मोटर पर आपका इंतजार कर रही हैं। उनकी कोई सहेली उन्हें लेने के लिए आने वाली थी, वह नहीं आई है। इसलिए आपको मय सब सामान के बुलाया है। इस बात से श्री हरद्वारीलाल को हर्ष ही हुआ। सहेली का झंझट भी खतम हो गया।

कुली ने दो-दो ट्रंक सर पर लादे ऊपर से बिस्तर रखा और हाथ में एक अटैची केस लटकाया, आगे-आगे कुली तो लाला जी उसके पीछे-पीछे चले। गेट

पर पहुंच कर जब गेट बाबू को केवल एक टिकट दिया गया और उसने कुली के सर पर कायदे से अधिक सामान देखा तो उसने एतराज किया और सामान तौला-कर चार्ज देने के लियें कहा। श्री हरद्वारी लाल ने कहा "इसमें से एक ट्रंक मेरा नहीं है, वह दूसरे यात्रीका है। कुली ने भी इस बात का समर्थन किया, किन्तु बाबू ने विश्वास नहीं किया। बाबू ने समझा कुली लालच पाकर झूठ बोल रहा है। इस पर श्री हरद्वारी लाल ने कहा "मेरी मोटर गेट के बाहर खड़ी है और जिस सवारी का यह ट्रंक है वह भी उसी में बैठी है। इस बाबू ने उस सवारी को बुला लाने के लियें कुली को भेजा और उसके सर पर का सारा सामान अपने पास ही उतरवा कर रखवा लिया। कुली ने लौटकर सूचित किया कि जिस मोटर पर में सवारी को बिठाकर आया था वह तो चली गयी है, अब तो वहां कोई मोटर नहीं है। इस पर बाबू का शक और भी अधिक बढ़ गया और उसने कहा "मिस्टर आप मुझे बेवकूफ बनाना चाहते हैं। यहां रोजाना सैकड़ों बाबू आते रहते हैं। भला कोई सवारी अपना ट्रंक आपको देकर चली जायेगी। कुली के बहुत कहने पर और कसमें खाने पर बाबू ने यह स्वीकार कर लिया कि किसी सवारी को कुली मोटर पर छोड़ आया होगा, जो अपना सामान लेकर के चली किन्तु यह ट्रंक इन्हीं महाशय का है और रेल-भाड़े से बचने के लियें ही उसे दूसरे का ट्रंक बता रहें हैं। पर सब सामान तौला गया और श्री हरद्वारी लाल को

मय जुर्माने के उसका महसूल भरना पड़ा, और कुली को भी दूनी मजदूरी देनी पड़ी। लाला जी को कुम्भ के पुण्य की पहली किस्त मिल गयी। शहर का चुंगीघर भी स्टेशन के पास ही था, जब लाला जी एक तांगे पर सामान लादकर जाने लगे तो वहां भी सामान रोक लिया गया, और चुंगी के लिये सामान की तलाशी ली गयी। लाला जी के यह कहने पर कि इनमें से एक ट्रंक उनका नहीं है, वह एक दूसरे मुसाफिर का है, जो उनके पास रखकर कहीं चला गया है तब तो चुंगी के अधिकारियों का और भी अधिक शक बढ़ गया और उन्होंने लाला जी की हर बात का अविश्वास करते हुये ट्रंक खोलकर देखने की आज्ञा चपरासियों को दी। लाला जी को कुम्भ के पुण्य की यह दूसरी किस्त मिल रही थी।

ट्रंक का ताला तोड़ा गया और उसका सामान निकाल कर देखा गया तो उसमें नये कपड़ों के एवज में निकले पुराने कपड़े और निकली केवल एक पोटली जो जतन पूर्वक कपड़ों में लिपटी हुई थी। चुंगी वालों को उस पोटली में शराब की बोतलों का या किसी नशीली चीज के छिपे होने का शक हुआ। इधर पोटली खोली जा रही थी तो उधर लाला जी के प्राण सूखे जा रहे थे कि न जाने उस पोटली में क्या चीज बंधी हो। पोटली में से निकला एक बच्चे का शव जो थोड़े ही दिन का

दामत थ

था और जिसकी गरदन टूटी हुई थी। यह देखकर लाला जी के शरीर में काटो तो खून नहीं। और लाला जी का चेहरा उस बच्चे की तरह ही पीला पड़ गया था। लाला जी को कुम्भ के पुण्य की यह तीसरी और बड़ी किस्त मिली। फौरन पुलिस को बुलाया गया और लाला जी को हवालात में बंद कर दिया गया। कभी हवालात न देखी थी सो उसे भी देख लिया। जिस भाग्य की थोड़ी देर पहले सराहना कर रहे थे, उसी को अब बुरी तरह कोसने लगे।

लाला जी पर, जो पुण्य के कम किन्तु रूप के अधिक लोभी थे, मुकदमा चलाया गया। लाला जी कोई सफाई न जुटा सके। घर से मंगा-मंगा कर हजारों रुपये मुकदमें में फूंक दिये। कुमारी जी द्वारा बताये गये नाम, पते-ठिकाने सब झूठे निकले। अतः लाला जी को छः महीने की कड़ी सजा तथा ५०० रु० जुर्माने का हुक्म सुना दिया गया।

रूप का जादू लाला हरद्वारी लाल पर कुछ ऐसा चला कि उससे उन्हें एक नया इन्सान ही बना दिया। वे अपनी सब पुरानी आदतें जेल में ही छोड़ आए। यह एक और भी मजे की बात हुई कि जिस दिन लाला हरिद्वारी लाल जेल से छूट कर आये उसके ठीक तीसरे दिन उन्हें एक लिफाफा मिला। आपने बड़ी उत्सु-

कता से लिफाफा खोलकर पढ़ा जिसमें लिखा था "तुम जैसे रूप के लोभी दुराचारी व्यक्तियों ने ही मेरा जीवन बर्बाद किया है। मैं अब तबाह हो चुकी हूं। मेरी जैसी न जाने कितनी ही बहिनों की तुम जैसों ने लाज लूटी होगी। अतः तुम्हें जो सजा मिली, वह उचित ही मिली और मुझे उससे प्रसन्नता हुई।

इस जीवन में फिर जिससे कहीं, कभी भेंट न हो सकेगी—

तुम्हारी वही
मीनाकुमारी अज्ञात

आश्रम-जिज्ञासु--कक्ष

प्रश्नः— पूज्य स्वामी जी, मैंने सुना है कि आप केवल योग-विषयक जानकारी नहीं बल्कि अन्य अनेक क्षेत्रों का ज्ञान आपको प्राप्त है। अतः मैं जानता हूं कि पूजा-पाठ के समय देव-मन्दिरों में, वैदिक समारोहों में, हवनादि कार्यों में तथा अन्य प्रसंगोपात्त कार्यों में ललाट, भुजाओं, हाथ, वक्षस्थल, तथा पेट में कपूर केशर मिश्रित चन्दन का लेप क्यों किया जाता है ? अथवा केवल जल में घिस कर चन्दन का उपयोग क्यों नहीं किया जाता है। यह विधान पुरातन रूढ़िका अनुसरण मात्र है या इस में कोई वैज्ञानिक रहस्य गुंफित है ? विज्ञान परंपरा में पले हुये मानव की बुद्धि वस्तु के निरीक्षण परीक्षण में दौड़ती रहती है और कसौटी पर कस लेने के बाद ही किसी अन्य पत्र-पत्रिका में मुझे तद्विषयक उल्लेख नहीं मिला, अतः आप इसपर विस्तृत प्रकाश डालने की कृपा करें।

उत्तरः—बुद्धिमान शिष्य ! कारण से कार्य और कार्य से फल प्राप्त होता है तुम्हारा प्रश्न वास्तविकता से परिपूर्ण है। सुनो। नैतिक, पारमार्थिक तथा धार्मिक क्रिया-कार्य करते समय स्नान संध्या तथा देवपूजा जपतप आदि के समय सुगन्धित द्रव्यों का व्यवहार पुरातन काल से होता चला आ रहा है। पवित्र स्थान, स्वच्छ वस्त्र, पवित्र साधन और स्नानादि से शरीर स्वच्छ किये बिना मन पवित्र नहीं रहता है। मन तथा शरीर को सुधारने के लिये नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म और काम्य कर्मों के समय विधि-विधान का पालन अनिवार्य होता है।

चन्दन में निम्नलिखित गुण विद्यमान हैं:—चन्दन शीतल, सुगन्धिपूर्ण, बुद्धि वर्धक, ज्योतिवर्धक, चर्म की कांति बढ़ाने-वाला, मानसिक विचारों को पवित्रता की ओर ले जाने वाला है। ललाट पर चन्दन का लेप इसलिये भी किया जाता है कि उसके नीचे तीन चक्षुओं का अस्तित्व और चन्दन उन्हें शीत-लता पहुँचाता है, इसलिये चन्दन का प्रयोग किया जाता है। छाती, दाहिने बायें वक्षस्थल, फेफड़े, हृदय आदि अवयवों को चन्दन आरोग्यवर्धक जीवन-तत्व प्रदान करता है। ब्रह्मरन्ध्र में लगाने से सुख-शांतिमयी गहरी नींद आती है। बालों की आयु बढ़ती है। शिर पर आनेवाले पसीने के दूषित तत्व नष्ट हो जाते हैं। मस्तिष्क के अनेकशः अवयवों को विकसित, तेजोमय तथा दीर्घायुस्य मय बनाने के लिये चन्दन का उपयोग हितावह है।

भारत के कुछ राज्यों में न्यूनाधिक चन्दन के वृक्ष पाये जाते हैं; परन्तु मैसूर राज्यमें इनकी संख्या अत्यधिक है। मैसूर चन्दन की अगरबत्ती तथा चन्दन में मीनाकारी उत्कीर्ण कर मन्दिर तथा अन्य अनेक वस्तुओं का निर्माण किया जाता है, जो देश-विदेश में ख्याति लब्ध है। लगभग प्रत्येक धर्मस्थान में किसी न किसी रूप में चन्दन का उपयोग किया जाता है। पारसियों की अगियारी में बिना चन्दन के धर्मानुष्ठान पूरे नहीं होते। हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों में चन्दन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के निर्माणमें चन्दनका उपयोग किया जाता है। चन्दन का गुण लेप करनेसे रजो-तमो गुणका प्रभाव दूर होकर सात्विक

की अभिवृद्धि होती है, दूषित भावनाओं का नाश होकर शुभ भावनाओंका उदय होता है। मधुर सुगंधि से मन प्रफुल्ल होता है, वायुमंडल शुद्ध होता है। देह पर कपूर-केशर मिश्रित चन्दन का लेप करने से फुन्सी, दाद, खुजली आदि चर्म रोग दूर हो जाते हैं। त्वचा में किसी प्रकार के दाग नहीं रहते। बुद्धि प्रकृतिस्थ और एकाग्र होती है। चन्दन की सुगन्ध में दीर्घ श्वासोच्छ्वास की क्रिया करने से आनन्द प्राप्त होता है। दीर्घ श्वासोच्छ्वाससे फेफड़ों तथा हृदयके संकोचन प्रसारणकी क्रिया नैसर्गिक रूप में होती रहती है। फलतः वे सशक्त तथा रोग रहित होते हैं। सभी ऋतुओं में चन्दन का व्यवहार लाभप्रद है, किंतु ग्रीष्मकालीन चार महीनों में चन्दन का प्रतिदिन व्यवहार करने से महत्वपूर्ण और अधिकाधिक लाभ प्राप्त होता है, जहां कहीं दूषित जीव-जन्तुओं का निवास होगा वहां चन्दन की सुगंधि पहुंचने से वे वहां से हट जायेंगे। चन्दन के साथ केशर और कपूर अवश्य मिश्रित करना ही चाहिये ऐसा कोई अनिवार्य नियम नहीं है। केवल चन्दन को जल में घिस-कर शरीर में लगाया जाता है।

हे शिष्य ! चन्दन की अनेकश जातियां हैं। अधिक सुगंधि पूर्ण चन्दन अधिक लाभ प्रद होता है। सन्ध्या-वन्दन के समय में, पंचपात्र के जल में, तुलसीपत्र, सुगंधित पुष्प, घिसा हुआ चन्दन, बिल्वपत्र, आदि अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण, सुगंधित द्रव्य डाले जाते हैं। और वह जल अत्यन्त पवित्र नीरोग तथा प्राशन करते समय अत्यन्त आह्लादक होता है—स्वादिष्ट लगता है। उसमें नारियलका जल भी छोड़नेकी प्रथा होती है। सन्ध्या

या चन्दन के समय अनेकबार भिन्न-भिन्न समय में उपर्युक्त सुगंधित द्रव्यों से संयुक्त पवित्र जल का सेवन किया जाता है। यह विधि-विधान पुरातन परम्परामूलक अन्धविश्वास नहीं है, अपितु इसके अन्तर्निहित महत्वपूर्ण गुणों के आधार पर ही इसका प्राशन किया जाता है। वर्तमान काल के पंडित तथा धर्म गुरु भी जनता को इस संबंध में समझाने और चन्दन के गुणोत्कर्ष का दिग्दर्शन कराने के प्रयास नहीं करते। प्रवचन के समय केवल अपनी विद्वता का प्रदर्शन के लिये दृष्टांतमूलक कुछ श्लोक सुनाकर जन मानस को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

अस्तु उपर्युक्त चंदन मिश्रित जल का नित्य सेवन करने से दुराचार की ओर प्रवृति नहीं होगी। रक्त का शुद्धीकरण भी निस्सन्देह होगा। कैंसर, टी. बी. (क्षय) मधुप्रमेह (डायबिटीज) जीर्णज्वर, धातु की क्षीणता, मेद रोग आदि किसी प्रकार की बीमारी शरीर में होने की भावना नहीं रहेगी और दुर्व्यसनों—जैसे गांजा, शराब, तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी, मांस, मछली आदि के सेवन में लगे हुयें लोगों के मनमें इन दूषित वस्तुओं के प्रति घृणा भावना उत्पन्न होगी और इन दुर्व्यसनों से छुटकारा मिलेगा धार्मिक अनुष्ठानों में पंचामृत का भी बहुत बड़ा महत्व है। गाय का घी, दूध, शहद, और मक्खन के मिश्रण को पंचामृत कहा जाता है। परंतु हे शिष्य तुम्हारा आज का प्रश्न केवल चन्दन संबंधी है। अतः केवल चंदन की उपयोगिता तथा

गुण लाभों पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। चंदन अन्य भी अनेकशः गुण और लाभों से भरपूर है, जिन पर प्रसंगोपात समुचित प्रकाश डालने का प्रयास किया जायेगा।

चंदन के तेल का उपयोग अनेक तरह से लाभदायक है। यह शिर पर लगाने से मस्तिष्क को शीतल और प्रशांत बनाता है। शुद्ध और प्रशस्त विचार उत्पन्न होते हैं। बुद्धि सात्विक, प्रखर और सूक्ष्म बनती है। कहा जाता है कि ठण्डाई या शर्बतके साथ चंदन तेलकी एक दो बूँदोंका प्रतिदिन सेवनकरनेसे पसीने में भी चंदनकी सुगन्धि भर जाती इसके अतिरिक्त चंदन तेलके अन्य बहुतेरे लाभ भी हैं जिन पर यथा समय प्रकाश डाला जायेगा।

(गतांक से आगे)

कोलाहल सुनि सीय सकानी,
सखी लेवाय गई जहँ रानी,
राम सुभाय चले गुरु पाहीं,
सिय सनेह बरनत मन माहीं।

कोलाहल—होहल्ला-सुनकर सीता सशंकित हो उठीं। सखियां उन्हें रानी (उनकी माता) के पास ले गई। राम भी सीता के प्रेम का स्मरण करते हुये स्वाभाविक निश्चिन्त गति से गुरु के पास गये।

रानिन सहित सोचवश सीया,
अब धौं विधिहिं काह करनीया,
भूप वचन सुनि इत-उत तकहीं,
लखन राम डर बोलि न सकहीं।

रानियों सहित सीता भी चिन्तातुर हो उठीं और सोचने लगीं कि पता नहीं, अब विधाता क्या करना चाहता है? राजाओं की बातें सुनकर लक्ष्मण इधर-उधर ताकने लगे, राम के डर से कुछ कह नहीं पाते।

अरुण नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन स-कोप;
मनहुं मत्त गज-गण निरखि, सिंह किशोरहिं चोप।

उनके नेत्र लाल हो उठे, भौंहे टेढ़ी हो गई और वह क्रोधाविष्ट होकर राजाओं की ओर ताकने लगे, मानो मदोन्मत्त गजों के समूह को देखकर सिंह का किशोर बच्चा उत्तेजित हो उठा हो।

खरभर देखि विकल पुर-नारी,
सब मिलि देहिं महीपन गारी,
तेहि अवसर सुनि शिव-धनु भंगा,
आये भृगु-कुल कमल पतंगा।

यह सब हलचल देखकर नगर की नारियां विकल हो उठीं और सभी एक साथ राजाओं को गालियां देने लगीं। उसी समय शिव-धनुष भंगका समाचार सुनकर भृगु-वंश रूपी कमल के दिवाकर मुनिवर परशुराम वहां आ पहुंचे।

देखि महीप सकल सकुचाने,
बाज झपट जिमि लवा लुकाने,
गौर शरीर भूप भलि भ्राजा,
भाल विशाल त्रिपुण्ड विराजा।

उन मुनिवर परशुराम को देखकर सभी राजा संकुचि[त] और आतंकित हो उठे, जैसे बाज के झपाटे से छोटी चिड़िया छिप जाती हैं। उनका शरीर गौरवर्ण था और विभूति से सुशोभित हो रहा था। प्रशस्त भाल पर त्रिपुण्ड विराजमान था।

शीश जटा, शशि वदन सुहावा,
रिस वश कछुक अरुण होइ आवा,
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते,
सहजहुं चितवत मनहुं रिसाते।

शिरपर जटा सुशोभित है, तेजोद्दीप्त सुंदर मुखमंडल रोष-वश से कुछ लाल हो उठा है, भृकुटियां टेढ़ी हो गई हैं और आंखें भी क्रोध से लाल हो उठी हैं। उनकी स्वाभाविक सीधी दृष्टि भी उत्तेजित जान पड़ती है।

वृषभ कन्ध उर बाहु विशाला,
चारु जनेउ माल मृगछाला,
कटि मुनिवसन, तूण दुइ बांधे,
धनु-शर कर, कुठार कलकांधे।

वृष के समान उनके उन्नत कन्धे हैं, वक्ष-स्थल और बाहु अति विशाल हैं, सुन्दर यज्ञोपवीत और माला पहने हुये हैं, मृगछाला भी साथ में है। कमर पर मुनियों के वस्त्र (वल्कल) का परिधान है, दो तरकस भी बांधे हुये हैं। हाथ में धनुष-वाण और कंधे पर कुठार रखा हुआ है।

सन्त-वेश, करणी कठिन, वरणि न जाय स्वरूप;
धरि मुनि तनु जनु वीर रस, आये जहँ सब भूप।

वेश तो प्रशान्तमूर्ति साधु का, परन्तु कर्म अत्यन्त कठोर हैं। उनके स्वरूप का वर्णन करना संभव नहीं। मानो मुनि का वेश धारण कर साक्षात् वीर रस ही वहां आ पहुंचा, जहां राजा लोग उपस्थित थे।

देखत भृगुपति वेश कराला,
भये सकल भय-विकल भुवाला,
पितु समेत कहि-कहि निज नामा,
लगे करन सब दण्ड—प्रणामा।

मुनिवर परशुराम का विकराल वेश देखकर उपस्थित राजा भय से आतंकित हो उठे। पिता सहित अपना-अपना नाम बता कर सब उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करने लगे।

जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी,
सो जानै जनु आयु खुटानी,
जनक बहोरि आय शिर नावा,
सीय बुलाय प्रणाम करावा।

जिस राजा की ओर स्वाभाविक रूप से ही मंगल दृष्टि डालते हैं, वह समझता है कि अब आयु पूर्ण हो चुकी है। तदनन्तर जनक ने आकर उन्हें शिर झुकाया—अर्थात् उनके समक्ष प्रणत हुए और सीता को भी बुलाकर प्रणाम करवाया।

आशिष दीन, सखी हरषानी,
निज समाज लै गईं सयानी,

विश्वामित्र मिले पुनि आई,
पद-सरोज मेले दोउ भाई।

परशुरामने सीता को शुभाशीष दी और बुद्धिमती सखियां प्रसन्न होकर उन्हें अपने समुदाय में ले गयीं। तदुपरान्त विश्वामित्रजी आकर मिले और दोनों भाइयों—राम-लक्ष्मण को पद-कमलों पर आनत कराया।

राम-लखन दशरथ के ढोटा,
दीन अशीष जानि भल जोटा,
रामहिं चितै रहे थकि लोचन,
रूप अपार मार-मद-मोचन।

विश्वामित्र ने बताया कि यह राम और लक्ष्मण दशरथ के पुत्र हैं। यह जानकर और उन दोनों की सुन्दर जोड़ी देखकर उन्हें शुभाशीर्वाद दिया। राम की ओर अपलक देखते हुये उनके नेत्र थकित हो उठे। राम का रूप अनन्त कामदेवों के दर्प को चूर्ण करनेवाला था।

बहुरि विलोकि विदेह सन, कहहु काह अति भीर,
पूछत जान अजान जिमि, ब्यापेउ कोप शरीर।

फिर इधर-उधर दृष्टि डालकर और सब जान-बूझकर अजान की तरह जनक से पूछने लगे— बताओ, आज यहां इतनी बड़ी भीड़ क्यों एकत्र हुई है। यह पूछते हुये उनके सारे शरीर में क्रोध व्याप्त हो गया।

समाचार सब जनक सुनायें,
जेहि कारण महीप सब आयें,

सुनत वचन फिर अनत निहारे,
देखे चाप-खण्ड महि डारे ।

जनक ने धनुष-यज्ञ के सब समाचार बता दिये और यह भी बताया कि यह राजा यहां क्यों आये हैं। जनक की बातें सुन लेने के बाद परशुरामने फिर अन्यत्र दृष्टि डाली और देखा कि धनुष के दो खण्ड भूमि पर पड़े हुए हैं।

अति रिस बोले वचन कठोरा,
कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा,
वेगि देखाउ मूढ़ न तु आजू,
उलटौं महि जहँ लगि तव राजू।

वे अत्यन्त रोषपूर्वक कठोर वचन कहने लगे—हे जड़ जनक! बता, यह धनुष किसने तोड़ा है ? हे मूढ़ शीघ्र ही उस धनुष तोड़नेवाले को हमारे सामने ले आओ, अन्यथा जहांतक तेरा राज्य है, वहांतक की भूमि को उलट दूंगा।

अति डर उतरु देत नृप नाहीं,
कुटिल भूप हरषे मन माहीं,
सुर-मुनि-नाग, नगर-नर-नारी,
सोचहिं सकल, त्रास डर भारी।

राजा जनक इतने भयभीत हो उठे कि उनसे सहसा कोई उत्तर देते न बना। यह देखकर दुष्ट राजा मन ही मन प्रसन्न हो उठे। देव, मुनि, नाग और नगर के नर-नारी सभी चिन्ताकुल हो उठे। उनके हृदय में आतंक समा गया।

मन पछितात सीय महतारी,
विधि संवारि सब बात बिगाड़ी,

भृगुपति कर स्वभाव सुन सीता,
अर्ध निमेष कल्प–सम बीता।

सीता की माता का मन पश्चात्ताप से भर गया। वह सोचने लगीं कि भगवान् ने सब बात बनाकर भी अन्त में बिगाड़ दी। परशुराम का स्वभाव को जब सीताने सुना-समझा, तब उनका आधा क्षण भी एक कल्प—हजारों वर्षों के समान व्यतीत हुआ।

सभय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु,
हृदय न हर्ष–विषाद कछु, बोले श्री रघुवीर।

उपस्थित लोगों को भयाक्रान्त देखकर और सीता को अत्यन्त आतंकित जानकर हर्ष–विषाद से परे रहकर राम परशुराम से कहने लगे—

नाथ शंभु–धनु भंजन हारा,
है है कोउ एक दास तुम्हारा,
आयसु काह, कहिय किन मोही,
सुनि रिसाय बोले मुनि कोही।

महाराज ! इस शंभु–धनुष को तोड़नेवाला आपका कोई एक दास ही होगा। आप अपना आदेश मुझे क्यों नहीं सुनाते ? यह सुनकर स्वभावतः क्रोधी मुनि रुष्ट भाव से कहने लगे—

सेवक सो, जो करै सेवकाई,
अरि करनी कर, करै लड़ाई,
सुनहु राम जेहि शिव–धनु तोड़ा,
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।

सेवक वही है जो सेवा करे, न कि शत्रुताचार करके लड़ाई करने की ठान लेनी चाहिये। हे राम! मेरी बात सुनो। जिसने यह शिव-धनुष तोड़ा है, उसे सहस्रबाहु के समान ही मैं शत्रु मानता हूँ।

सो बिलगाय बिहाय समाजा,
न तु मारे जैहैं सब राजा,
सुनि मुनि वचन लखन मुसकाने,
बोले परशुधरहिं अपमाने ।

वह—धनुष तोड़नेवाला—समाज से पृथक हो जाये, अन्यथा सभी राजा मारे जायेंगे। मुनि की यह बात सुनकर लक्ष्मण मुसकरा पड़े और परशुराम के प्रति अपमानपूर्ण स्वर से कहने लगे—

बहु धनुहीं तोरेउँ लरिकाईं,
कबहुं न अस रिस कीन गुसाईं,
यहि धनु पर ममता केहि हेतू,
सुनि रिसाय बोले भृगुकेतू ।

बचपन में मैंने ऐसे अनेक धनुहीं तोड़ डाली हैं, परन्तु हे देव! तब आप इस तरह कभी रुष्ट नहीं हुये। इसी एक धनुषपर आपका ममत्व-भाव क्यों उमड़ उठा है? यह सुन कर भृगु-कुल-केतु परशुराम रोषपूर्वक कहने लगे—

हें नृपबालक कालवश, बोलत तोहि न संभार,
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार।

हे राजकुमार ! इस समय तू कालवश होकर सावधानी से बातें नहीं कर रहा है। क्या यह विश्वविख्यात शिव-धनुष धनुही के समान है ?

लखन कहा हँसि, हमरे जाना,
सुनहु देव सब धनुष समाना,
का क्षति-लाभ जीर्ण धनु तोरे,
देखा राम नयें के भोरे।

लक्ष्मणजी ने हंसकर कहा— हे देव ! मेरी बात सुनिये। मैं तो यही जानता हूं कि सभी धनुष समान हैं। इस पुराने सड़े हुये धनुष के टूटनेसे कौन-सा हानि-लाभ हुआ ? राम तो इसे नया धनुष समझते थे।

छुअत टूट रघुपतिहु न दोषू,
मुनि बिनु काज करिय कत रोषू ?
बोले चितै परशु की ओरा,
रे शठ ! सुनेसि स्वभाव न मोरा।

यह धनुष छूते ही टूट गया। राम का इसमें कोई दोष नहीं है। हे मुनिवर ! आप अकारण रुष्ट क्यों हो रहे हैं ! तब परशुराम अपने परशु की ओर देखकर कहने लगे- रे शठ ! क्या तूने मेरे स्वभाव को नहीं सुना ?

बालक बोलि बधौं नहिं तोहीं,
केवल मुनि जड़ जानेसि मोहीं,
बाल ब्रह्मचारी अति कोही,
विश्व-विदित क्षत्रिय-कुल-द्रोही।

बालक समझ कर मैं तुझपर प्रहार नहीं करता। क्या तू मुझे कोरा मुनि ही समझ बैठा है। मैं बाल ब्रह्मचारी और अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का हूँ, साथ ही सारा विश्व जानता है कि मैं क्षत्रिय-कुल का शत्रु हूं।

भुज-बल भूमि भूप बिनु कीनी,
बिपुल बार महिदेवन दीनी,
सहस्रबाहु भुज छेदनहारा,
परशु बिलोकु महीपकुमारा।

अनेक बार अपने बाहुबल से राजाओं को मिटा कर मैं यह पृथ्वी ब्राह्मणों को समर्पित कर चुका हूं। हे महीपकुमार! सहस्रबाहु की भुजाओं का उच्छेदन करनेवाले मेरे इस परशु को देख।

मातु-पितहिं जनि सोचबश, करसि महीप किशोर,
गर्भन के अर्भन दलन, परशु मोर अति घोर।

हे महीपकिशोर! अपने माता-पिता को दुःख-शोकमय मत बना। गर्भस्थ शिशुओं पर भी प्रहार करने में मेरा परशु आनाकानी नहीं करता।

बिहँसि लखन बोले मृदु बानी,
अहो मुनीश महाभट मानी,
पुनि-पुनि मोहि दिखाव कुठारू,
चहत उड़ावन फूंकि पहारू।

लक्ष्मण पुनः हँसते हुये मृदु शब्दों में कहने लगे— हे मुनिवर! आप बड़े ही बल-दृप्त योद्धा जान पड़ते हैं। मुझे

बारंबार कुठार की धमकी सुना रहे हैं, फूंक मार कर पहाड़ को उड़ाना चाहते हैं।

यहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं,
जो तर्जनि देखत मरि जाहीं,
देखि कुठार शरासन बाना,
मैं कछु कहेंउं सहित अभिमाना।

यहां कोई कुम्हड़े की बतिया (तत्काल उत्पन्न) नहीं है, जो तर्जनी देखकर मर जाती है। आपको कुठार और धनुर्बाणधारी देखकर कुछ बातें स्वाभिमानपूर्वक कह डाली हैं।

भृगुसुत समझि, जनेउ विलोकि,
जो कुछ कहहु, सुनहुं रिस रोकी,
सुर, महिसुर, हरिजन अरु गाई,
हमरे कुल इनपर न सुराई।

भृगु का वंशधर समझकर और कन्धे पर जनेऊ देखकर आप जो कुछ कह रहे हैं, वह सब मैं अपने रोष को रोक कर सहन कर रहा हूँ। क्योंकि देव, ब्राह्मण, भगवद्भक्त- इन सब पर प्रभुत्व जमाने—इन्हें दबाने की आकांक्षा हमारे कुल में नहीं होती।

वधे पाप, अपकीरति हारे,
मारत हूं पां परिय तुम्हारे,
कोटि कुटिश सम वचन तुम्हारा,
वृथा धरहु धनु-बाण-कुठारा।

उन्हें मारने पर पाप लगता है और हार होने पर अपयश फैलता है। आपकी वाणी ही करोड़ों वज्रों के समान है, आप वृथा ही धनुष-वाण और कुठार लिये फिर रहे हैं।

जो विलोकि अनुचित कह्यों क्षमिय महामुनि धीर,
सुनि सरोष, भृगुवंशमणि, बोले गिरा गंभीर।

आपकी इस वेष-भूषा को मैंने जो कुछ अनुचित बातें कह डालीं हैं, हे धैर्यशील महामुनि उनके लिये आप मुझे क्षमा कर दें। लक्ष्मण का कथन सुन कर व भृगुवंशमणि-परशुराम-रोष-पूर्वक गम्भीर वाणी में कहने लगे—

कौशिक सुनहु मन्द यह बालक,
कुटिल कालवश, निज कुलघालक,
भानु- वंश- राकेश कलंकू,
निपट निरंकुश, अबुध, अशंकू।

हे कौशिक-विश्वामित्र! यह बालक बुद्धिहीन जान पड़ता है और कुटिल-टेढ़ी बातें करनेवाला, कालवश अर्थात् मृत्यु के अधीन और अपने कुल का नाशक है। भानुवंशरूपी राकेश (चन्द्र) का कलंक, पूर्णतया स्वच्छन्द अबोध और निर्भीक जान पड़ता।

काल कवल हुहै क्षण माहीं
कहौं पुकार, खोरि मोहिं नाहीं,
तुम हटकहु, जो चहौ उबारा,
कहि प्रताप, बल रोष हमारा

यह क्षणमात्र में काल का कवल बन जायेगा। मैं पुकार कर कह रहा हूं, फिर मुझे दोष न देना। यदि तुम इसकी रक्षा

करना चाहते हो तो मेरे बल प्रताप और क्रोध की कहानी सुनाकर इसे धृष्टता से विरत करो।

लखन कहेउ मुनि सुयश तुम्हारा,
तुमहिं अछत को वरणै पारा?
अपने मुंह तुम आपनि करनी,
बार अनेक, भांति बहु बरनी।

लक्ष्मण ने कहा—हे मुनिवर! आपके सुयश की गाथा आपको छोड़कर—आपका अस्तित्व रहते और कौन बता सकता है। आपने अपने कर्मों का अनेक बार विविध रूपों में वर्णन किया है।

नहिं संतोष, तो पुनि कछु कहहू,
जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू,
वीरव्रती तुम धीर अक्षोभा,
गारी देत न पावहु शोभा।

यदि इतने से संतोष न हुआ, तो फिर और आगे बताइए। रोषभाव को रोक रखकर दुःसह दुख मत सहन कीजिये। आप वीरव्रतधारी हैं, धैर्यवान् हैं, क्षोभ से दूर हैं। गाली देना आपके लिये शोभा नहीं देता।

शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप
विद्यमान रण रिपु निरखि, कायर करहिं प्रलाप।

शूरवीर व्यक्ति युद्ध में कर्तव्य करते हैं—कुछ कर दिखलाते हैं, अपने मुह से उसका प्रचार नहीं करते। शत्रु को रण-भूमि में कटिबद्ध देखकर कायर लोग प्रलाप-बकवास करने लगते हैं।

तुम तो काल हांकि जनु लावा,
बार बार मोहिं लागि बोलावा,
सुनत लखन के वचन कठोरा,
परशु सुधारि धरेउ कर घोरा।

आप तो मानो काल को ही पुकार कर उसे मेरे लिये बुला रहे हैं। लक्ष्मण की यह कठोर वाणी सुनकर परशुरामजी ने अपने भयंकर कुठार को हाथ में संभाला।

अब जनि देइ दोष मोहिं लोगू,
कटु वादी बालक वध जोगू,
बाल विलोकि बहुत मैं बांचा,
अब यह मरणहार भा सांचा।

अब मुझे लोग दोष न दें। कटु बचन बोलने वाला यह बालक वध करने ही योग्य है। बाल समझ कर अब तक इसकी बातों की बारम्बार उपेक्षा करता आ रहा हूं। लेकिन अब सच-मुच ही इसकी मृत्यु-काल निकट आ रहा है।

कौशिक कहा क्षमिय अपराधू,
बाल दोष गुण गनहिं न साधू,
खर कुठार मैं अकरुण कोही,
आगे अपराधी गुरु द्रोही।

विश्वामित्र ने कहा—आप क्षमा कर दीजिये। बालकों के दोष गुण को साधु महात्मा विशेष महत्व नहीं देते, उन पर ध्यान भी नहीं देते। परशुराम ने कहा मेरा यह कुठार तीक्ष्ण

धार का है। मैं भी निष्करुण-निर्भय और क्रोधी स्वभाव का हूं और यह मेरे गुरु का विरोधी अपराधी सामने उपस्थित है।

उत्तर देत छांड़ौं बिनु मारे,
केवल कौशिक शील तुम्हारे,
न तु यहि काटि कुठार कठोरे,
गुरुहिं उऋण होतेउं श्रम थोरे,

उत्तर देते हुये भी मैं इसे छोड़ देता हूं, मार नहीं रहा हूं। हे कौशिक ! यह तुम्हारे ही शीलसौजन्य के कारण है, अन्यथा इस बालक को कठोर कुठार से काट कर गुरु से उऋण हो ाता, मुझे अधिक श्रम उठाना न पड़ता।

गाधि-सूनु कह हृदय हँसि, मुनिहिं हरियरै सूझ,
अजगव खण्डेउ ऊख जिमि, अजहुं न बूझ, अबूझ।

गाधि के पुत्र-विश्वामित्र ने मन ही मन हँसकर कि मुनि-वर को सर्वत्र हरियाली ही दिखाई दे रही है अर्थात् राम लक्ष्मण को भी यह सामान्य क्षत्रिय मान बैठे हैं। इस विशाल शिव धनुष को ऊख की डंडी की तरह तोड़ कर डाल दिया। किन्तु यह बात मुनि की समझ में अब भी नहीं आ रही है, वे अज्ञानी बने हुये हैं।

कहेउ लखन, मुनि शील तुम्हारा,
को नहिं जान विदित संसारा,
माता पितहिं उऋण भये नीके,
गुरु ऋण रहा सोच बड़ जीके।

लक्ष्मणजी ने कहा— हे मुनिवर! आपके शील-सौजन्य से कौन परिचित नहीं, सभी उससे भलीभांति परिचित हैं। आप माता-पिता से तो पूरी तरह उऋण हो चुके हैं, अब केवल गुरु-ऋण की चिन्ता रह गई है।

सो जनु मोरे माथे काढ़ा,
दिन चढ़ि गयें व्याज बहु बाढ़ा,
अब आनिय व्यवहरिया बोली,
तुरत देहुं मैं थैली खोली।

वह गुरु-ऋण मानो हमारे ही मत्थे लिया था। दिन चढ़ जाने से व्याज भी बहुत बढ़ गया होगा; अतः अब अपने ऋणदाता को बुलाकर लाइयें, मैं उसे तुरंत थैली खोलकर दे दूंगा।

सुनि कटु वचन कुठार सुधारा,
हाय-हाय सब सभा पुकारा,
भृगुवर परशु देखावहु मोहीं,
विप्र विचारि बचौं नृप द्रोही।

लक्ष्मण की यह कटु वाणी सुनकर परशुराम ने अपना परशु सँभाला। यह देखकर सारी सभा हाय-हाय कर उठी। लक्ष्मण ने कहा—हे भृगुवर! आप मुझे परशु की धमकी दे रहें हैं। हे नृपद्रोही! मैं आपको ब्राह्मण समझकर बचा रहा हूँ—आपके कथन की अवहेलना कर रहा हूँ।

मिले न कबहुं सुभट रण गाढ़े,
द्विज देवता घरहि के बाढ़े,

अनुचित कहि सब लोग पुकारे,
रघुपति सैनहिं लखन निवारे ।

युद्ध में आपको कभी बलवान् योद्धा नहीं मिले, ब्राह्मण देव केवल घर के अन्दर ही बहादुर हैं। यह सुनकर उपस्थित लोग कहने लगे—ऐसा कहना अनुचित है। तब राम ने संकेत से लक्ष्मण को विरत किया।

लखन उतर आहुति सरिस, भृगुपति कोप कृशानु,
बढ़त देखि जल-सम वचन, बोले रघुकुल-भानु ।

भृगुपति-परशुराम के क्रोधरूपी आग पर लक्ष्मण की वाणी आहुति के समान पड़ रही थी। इस क्रोधाग्नि को वृद्धिगत देखकर उसके प्रशमित करने की इच्छा से रघु-कुल-दिवाकर राम जल के समान शीतल वाणी में कहने लगे।

—क्रमशः

उड़ीसा के केशरी-वंश के प्रसिद्ध राजा ययाति-केशरी की राजधानी जाजपुर में थी। उनका राज्यकाल ४७४-५२६ ई० है। जगन्नाथ जी का मन्दिर उन्हीं ने बनवाय था। जीर्ण हो जाने पर उसकी जगह पर गंगावंशी राजा अनंग भीमदेव ने ११९७ ईसवी में वर्तमान मन्दिर बनवा दिया। नाट मन्दिर प्रभृति अन्यान्य भाग पीछे बनायें गये हैं। मुख्य मन्दिर ही सबसे ऊंचा है। मन्दिर के भीतर रत्नवेदी है। उसी पर सिंहासन में जगन्नाथ जी विराज-मान हैं। सुदर्शन चक्र और तींनों मूर्तियों के अतिरिक्त सुवर्ण की लक्ष्मी जी और सरस्वतीं तथा नीलमाधव की मूर्तियां वेद्री पर हैं।

मन्दिर की स्थिति

मंदिर कोई १२५ हाथ ऊंचा है। उसकी लम्बाई

१०० हाथ और चौड़ाई ४५ हाथ के लगभग है। मंदिर के शिखर पर चक्र और ध्वजा हैं। चक्र मनुष्य की ऊँचाई के बराबर होगा। पण्डों के कहने से यात्री भी सवा रुपया अथवा पांच रुपया देकर मंदिर पर झंडा लगवा देते हैं। पूरा मंदिर पत्थर की दो प्राचीरों से घिरा हुआ है। इन दीवारों की ऊंचाई १८ हाथ होगी। चारों दिशाओं में मंदिर के चार दरवाजे हैं। जिनके नाम सिंहद्वार (पूर्व), हस्तीद्वार (पश्चिम), अश्वद्वार (उत्तर) और खञ्जाद्वार (दक्षिण) है। सिंहद्वार ही आने जाने का मुख्य दरवाजा है। यह पुरी की मुख्य सड़क, 'बड़ो दांड़' पर है। सिंह द्वार के दोनों ओर पत्थर के दो बड़े बड़े सिंह हैं। सिंह द्वार के सामने सड़क पर एक २३ हाथ ऊंचा अठपहला खम्भा है। यह काले पत्थर का है। पत्थर की चौकी पर ही यह खड़ा किया गया है। इसकी चोटी पर एक वन्दर वैठा हुआ है। मंदिर के भीतर की रत्न वेदी इस खम्भे की ऊंचाई पर स्थित है। इस खम्भे को १८वीं शताब्दी में मराठे 'कोणार्क से उठवा लाये थे। कोणार्क पुरी से कोई ९ कोस की दूरी पर, समुद्र के किनारे एक प्रसिद्ध स्थान है।

बेड़ा परिक्रमा

मंदिर के फाटक में प्रवेश करते ही देवी देवताओं का सिलसिला लग जाता है। उनका नाम और स्थान यथा क्रम यों है-

पतित पावनं रूपं काशीशं भोगमण्डपम्

अजानिनाथं विघ्नेशं वटेशं वटमंगलम् ॥
वट प्रदक्षिणं कृत्वा अनन्तं पुरुषोत्तमम् ।
क्षेत्रपालं नृसिंह च मध्यस्थं मोक्षमण्डपम् ॥
दृष्ट्वा दृष्ट्वा तु रोहिणीं काकमात्र चतुर्भुजम् ।
विमलाक्षीं ततो दृष्ट्वा दण्डवत् पतितो भुवि ॥
सरस्वतीं महालक्ष्मीं अर्कं क्षेत्रादिकं प्रभो ।
पाताल नाथाय ऐशान्यें उत्तरं चोत्तरायणीम् ॥
पाद पद्मं ततो दृष्ट्वा जगन्मोहन मंदिरम् ।
सुदर्शनम् महाज्वालं कोटि सूर्य सम प्रभम् ॥
बलभद्र सुभद्राभ्यां जगन्नाथाय ते नमः ।

(१) पतित पावन (२) काशी विश्वनाथ (३) णेश जी (४) अक्षय वट (और नीचे वट कृष्ण) ५) अनन्त पुरुषोत्तम (६) क्षेत्रपाल (७) नृसिंह ८) मुक्तिमण्डप (यहां बैठकर पुरी के पंडित लोग ास्त्र चर्चा करते और दक्षिणा लेते हैं।) (९) रोहिणी ुण्ड, चतुर्भुज रूप में (काक भुशुण्ड) और (१०) वमला देवी। प्रदक्षिणा में यही मुख्य देवता हैं। प्रत्येक थान में दक्षिणा चढ़ाने के लिये पण्डे और पुजारी ाग्रह करते हैं।

मूर्तियों का विवरण

सिंह द्वार में बाईं ओर 'पतित पावन' भगवान् की तिमा है। जिन लोगों को मंदिर के भीतर जाने का धिकार नहीं है वे इसी मूर्ति के दर्शन पाकर सनाथ जाते हैं। कहा जाता है कि मुसलमानों के राजत्व-

काल में पुरी के एक राजा को यवन हो जाना पड़ा था किन्तु यवन हो जाने पर भी वह जगन्नाथ जी की भक्ति को न छोड़ सक था। तब उसी के दर्शन देने को सिंहद्वार पर पतित पावन भगवान् पधराये गये। किसी की राय में इनकी प्रतिष्ठा गौरांग महाप्रभु की करायी हुई है।

विमला देवी की प्रतिमा पाषाण की है। यह स्थान देवी के इक्यावन पीठों में माना जाता है। विमला के मंदिर में भी जगमोहन आदि चार भाग हैं। देवी की प्रतिमा के पास पहुंचने के लिये मार्ग काफी चौड़ा नहीं है। यह तांत्रिकों का प्रधान स्थान है। तांत्रिकों की राय में विमला देवी ही पुरी की अधिष्ठात्री देवी हैं। जगन्नाथ जी तो देवी के भैरव हैं। 'विमला भैरवी यत्र जगन्नाथस्तु भैरवः।' महाष्टमी को वर्ष में एकबार देवी को बकरे का बलिदान दिया जाता है। उस समय जगन्नाथ जी के पट बन्द कर दिये जाते हैं।

मुख्य मन्दिर के दक्षिण-द्वार पर बाहरी ओर दीवार में बीचोबीच जैनमूर्ति है। एक ब्राह्मण इसकी पूजा कर देता है। जैन लोग मन्दिर में जाते हैं सही पर बादाम, मिश्री चढ़ाकर पूजा इसी मूर्ति की करते हैं।

यात्री को सिंहद्वार पर ही छाता, जूता और चमड़े की वस्तु छोड़ जानी पड़ती है। मन्दिर में चमड़े का मनीबेग तक ले जाने की मनाही है। छाते में चमड़ा रहता है इसीसे उसकी रोक है, पर 'गुंडिचा बाड़ी' में छाता जाता है। बाँस

की तीलियों का, भोजपत्र का छत्र मंदिरमें जा सकता है।

सिंहद्वार को पार करने पर ऊपर जाने के लिये २२ सीढ़ियां हैं। ये खासी लम्बी हैं। एक साथ ३०-४० आदमी चल सकते हैं। ऊपर फिर दरवाजा मिलता है। कुछ हटकर बायीं ओर रसोई घर है जिसमें कोई २०० रसोइए रसोई बनाया करते हैं। दाहिनी ओर आनन्द बाजार है। भीतरवाले दरवाजे को पार करने पर ऊँचा स्थान मिलता है। इसके बीचोंबीच मुख्य मंदिर है और चारों ओर बहुत-से देवी-देवता प्रतिष्ठित हैं। मंदिर के बाहरी हिस्से में तरह-तरह की मूर्तियां खुदी हुई हैं। इनमें बहुत-सी अश्लीलता को व्यंजित करती हैं।

मुख्य मंदिर के सामने जगमोहन, उसके सामने नाटमंदिर और सबके अन्त में भोगमण्डप है। ये चारों भाग परस्पर मिले हुये हैं और जगन्नाथजी का मंदिर कहलाते हैं।

२२ सीढ़ियों को लांघते हुये भीतर पहुंचने पर सामने जो मंदिर का दरवाजा दीख पड़ता है वह भोग-मण्डप का दरवाजा है जो सदा बन्द रहता है। नाट मंदिर में या तो दाहिने ओर के दरवाजे से जाते हैं या बायीं ओर के। नाट मंदिर में एक पत्थर का स्तम्भ खड़ा है। इसकी सीध में ही रत्नवेदी है। इस खम्भे पर गरुड़ की मूर्ति है, इस कारण इसको गरुड़ स्तम्भ कहते हैं। इसके आस-पास छोटे-छोटे घी के दिये जला कर रख दिये जाते हैं। इन दीपों के बेचनेवाले, दीप दान के लिये यात्रियों से आग्रह करते रहते हैं। लेकिन यह घी के नाम पर न जाने क्या जलाया जाता

है। इस खम्भे की ऊंचाई रत्नवेदी पर प्रतिष्ठित जगन्नाथजी के सिंहासन के बराबर है। नाट मंदिर ४६ हाथ लम्बा है। नाट मंदिर और जगमोहन के बीच में एक लम्बा-सा मोटा लट्ठा, रोक के लिये, पड़ा रहता है। भीड़ को रोकने के लिये आवश्यकता पड़ने पर यह काम में लाया जाता है। यह न हो तो रत्नवेदी के पास पहुंचने के लियें इतनी भीड़ हो कि आदमी कुचल कर मर जायें। इस लट्ठे के बाद ही एक बड़ा फाटक है। यही जय-विजय द्वार है। यह दरवाजा दिन के दो बजे भोग लग जाने पर और रात को जगन्नाथजी के शयन करने पर बन्द किया जाता है। सबेरे और तीसरे पहर द्वार खुलने पर दर्शन होते हैं।

मंदिर में जहां रत्नवेदी है वहां दिन-दोपहर को भी अंधेरा रहता है। भारत में सभी पुराने मंदिरों की ऐसी बनावट है कि भीतर सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंच पाता। भीतर पुन्नाग के तेल के दिये जलते रहते हैं। इन्हीं के मन्द प्रकाश में यात्री को दर्शन होते हैं। मंदिर के बाहर की परिक्रमा के मैदान में तो बिजली पहुंच गयी है, किन्तु भीतर पण्डों के विरोध के कारण इसका प्रबन्ध नहीं हो सका। रत्नवेदी तक पहुंचने के लियें कुछ सीढ़ियों को पार करना पड़ता है। एक तो अंधेरा और दूसरे सीढ़ियां चिकनी। इससे यात्री के फिसल कर गिरने का बहुत डर रहता है। पंडे के सावधान करने से दर्शनार्थी सँभल जाता है, नहीं तो गिरने से अवश्य चोट लगे। यहां पर पुष्पों की और धूप की गमक आतीं रहतीं है। रत्नवेदी पर मुकुट आदि

आभूषणों और वेश-भूषा से भूषित मूर्तियां विराजमान हैं। जगन्नाथजी साँवले, सुभद्राजी कुछ कुछ पीली और बलरामजी सफेद हैं। महाभारत में सुभद्रा श्रीकृष्ण की बहन है किन्तु पुरी के सभी उत्सवों में वे लक्ष्मीजी का कार्य किया करतीं हैं। जिस प्रकार जगन्नाथजी का प्रतिनिधित्व 'मदन मोहन' प्रतिमा को प्राप्त है उसी प्रकार सुभद्राजी का प्रतिनिधित्व 'लक्ष्मी' को।

दर्शन करके यात्री मंत्र पढ़ता हुआ सात बार रत्नवेदी की परिक्रमा करता है। दर्शन करते समय भक्त बिल्कुल गद्गद् हो जाता है। जगमोहन के उत्तर ओर की कोठरी में जगन्नाथ जी की सम्पत्ति रहती है।

मूर्ति-विषयक पौराणिक आख्यान

नारदजी ने अवन्ती के राजा इन्द्रधुम्न को पुरी का माहात्म्य बतलाया था। इसको सुनकर राजा ने अपने पुरोहित के भाई विद्यापति को पुरी का पता लगाने के लिये भेजा। पुरी में पहुंचने पर विद्यापति की भेंट वसु नामक एक शवर से हुई। उससे पूछने पर नीलाचल नाम की, साधारण ऊँचाई की, एक टेकड़ी उन्होंने देखी। नीलांचल पर 'नील माधव', 'विमला' और 'नृसिंह' प्रभृति अनेक देव-देवियों की मूर्तियां देखकर उस स्थान के माहात्म्य के संबंध में उनको विश्वास हो गया। उन्होंने अवन्ती जाकर राजा को सब ब्यौरा कह सुनाया। राजा ससैन्य, इष्ट-मित्र और मंत्री आदि को साथ लेकर पुरी आयें और आजकल जहांपर इन्द्रधुम्न सरोवर है उसके समीप उन्होंने

डेरे डाल दिये। वहां पर एक सरोवर खुदवाकर उन्होंने उसका नामकरण अपने नाम पर कर दिया। कहा जाता है कि राजा है कि राजा ने वहां पर अश्वमेध यज्ञ किया था और उसमें इतनी अधिक गौओं का दान किया था कि उनके खुरों से खुद जाने पर यह इन्द्रधुम्न सरोवर बन गया।

बसु शवर का पुत्र दयितापति हुआ। उसके वंश के लोग आज भी जगन्नाथजी के पंडे हैं। ये लोग एक महीने स्नान-पात्र से रथ-यात्रा की समाप्ति तक, जगन्नाथजी की सेवा-पूजा में रहते हैं।

इन्द्रधुम्न सरोवर पुरी के पंचतीर्थों में से एक है। बड़ा भारी तालाब है। घाट बँधे हुये हैं। मंत्र पढ़कर इसमें स्नान किया जाता है। इसमें कछवे हैं। पंडों के आवाज देने से वे घाट पर आ जाते हैं और यात्रियों की दी हुई वस्तुओं को खाने लगते हैं। इसका पानी हरा हरा सा रहता है। मार्कण्डेय तालाब, रोहिणी कुण्ड, वटकृष्ण और महोदधि यही तीर्थ पुरी में प्रधान हैं। यात्री को इनका दर्शन और स्नान करना तथा कम से कम तीन रात तक पुरी में रहना चाहिये।

नीलाचल में आकर राजा इन्द्रधुम्न ने देखा कि वहां पर सभी देवता तो हैं किन्तु नीलमाधव नहीं हैं। इससे उनको बड़ी निराशा हुई। रात को राजा को स्वप्न में आज्ञा हुई कि माधव की, लकड़ी की प्रतिमा बनाओ और नीलाचल पर जहां वे प्रतिष्ठित थे वहीं मूर्ति को स्थापित कर दो। राजाने स्वप्न में देखा था कि कुछ लकड़ियां समुद्र में बहती हुई

आयेंगी। उन्हीं को पकड़ कर मूर्ति बना लेना। बस, उन्होंने लकड़ियां मिलने पर विश्वकर्मा को बुलाकर मूर्ति बनाने की आज्ञा दी। उन्होंने मूर्ति बनाना इस शर्त पर स्वीकार किया कि सात दिन तक बन्द कमरे में काम करेंगे, जिससे कोई देखने न पावे। राजा राजी हो गये और विश्वकर्मा मूर्ति बनाने लगे। पांचवें दिन राजा (किसी-किसी की राय में रानी गुंडिचा) ने, मनाही रहने पर भी, दरवाजा तोड़कर घर के भीतर इसलिये प्रवेश किया कि देखें कहांतक काम हुआ है। उस समय मूर्तियां पूर्णतया नहीं बन पायीं थी। राजा के इस वर्ताव से विश्वकर्मा बहुत असन्तुष्ट हुयें। वे मूर्तियों के अंग-प्रत्यंग बनायें बिना ही चले गयें। इसीसे अबतक जगन्नाथजी की मूर्ति अधूरी है। न हाथ-पैर हैं, न कण्ठ है, न कान है और न उदर ही है। अपनी करनी पर राजा इन्द्रधुम्न को बड़ा पछतावा हुआ। वे बहुत समय तक देवलोक में निवास करते रहें। दुबारा जब वे पृथ्वी पर आये तब न तो उनका राज्य था न प्रजा। उनके परिवार का भी कहीं पता न था। उस समय पुरी में मालमाधव नामक एक राजा का राज्य था। उस समय की माधव की अधूरी मूर्ति नीलाचल पर यथा स्थान रक्खी हुई थी। तब राजाने मालमाधव से अनुमति लेकर होम और यज्ञ-याग आदि कर शास्त्र की विधि से उक्त मूर्ति की प्रतिष्ठा नीलाचल पर कर दी। वहीं पर पुरी का वर्तमान मंदिर बहुत समय बीत जाने पर बना। मंदिर में जगन्नाथजी तो वही हैं, पर मन्दिर के नियम के अनुसार हर बारहवें वर्ष (जिस साल दो आषाढ़ होते हैं) जगन्नाथजी का कलेवर बदला जाता

है। मंदिर में ही बगीचे के समीप एक स्थान 'वैकुण्ठ' है। वहीं पर नई मूर्तियां तैयार की जाती हैं। पास के एक कूप में पुरानी मूर्तियां छिपा दी जाती हैं।

कहते हैं कि कलेवर-यात्रा के समय एक विशिष्ट पण्डा की आंखों पर पट्टी बांध दी जाती है। उसकी हथेलियों पर कपड़ा लपेट दिया जाता है। उस स्थान में और कोई नहीं रहता। उसी समय वह पुराने विग्रह में से शालिग्राम शिला को निकाल कर नये विग्रह में रख देता है। रखने का स्थान विग्रह के पृष्ठ-देश की ओर रहता है। उसको ड्रार की तरह खोलकर और वस्तु रखकर बन्द कर दिया जाता है। फिर मूर्ति के ऊपर पाट की डोरियों का वेष्टन रहता है, उस पर वस्त्र लपेटे जाते और रंग चढ़ाया जाता है। किसी-किसी का मत है कि यह शालिग्राम शिला नहीं, बुद्ध का दांत है। यों जितने मुँह उतनी बातें हैं। असल में या तो सच बात को छिपाने की कोशिश की जाती है या फिर किसी को कुछ पता ही नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि शंकराचार्यजीने मूल निवासियों से समझौता करके, उनकी कुछ बातें मानकर शेष पर वैदिक सभ्यता का रंग चढ़ा दिया है।

मंदिर में प्रायः सभी सम्प्रदायों का समन्वय है। तिलक आदि तो वैष्णवों का है, शाक्तों की विमलादेवी और मंदिर के बाहर, ऊपरी भाग में, कामशास्त्र के संपृक्त बनी हुई बड़ी-बड़ी मूर्तियां शाक्तों की, जूठे-मीठे का खयाल न रखना अघोरियों (औघड़ों) का और भोजन में छूत-छात का विचार न रखना (जाति-पांति का विरोध) बौद्धों का

प्रतीत होता है। किसी-किसी का कहना है कि गरुड़-स्तम्भ से लेकर जय-विजय द्वार तक नीचे भूगर्भ में शालिग्राम ही शालिग्राम हैं। इसलिये जानकार लोग या तो गरुड़ स्तम्भ के पीछे खड़े होकर दर्शन करते हैं या बगल के द्वार से जाकर। वे सामने से होकर नहीं आते।

कहते हैं कि जिस रात को प्राचीन कलेवर में से नये कलेवर में ब्रह्म का परिवर्तन होता है उस रात को मंदिर में घनाघन घंटा घड़ियाल बजते रहते हैं। उस ध्वनि से एक प्रकार का भय प्रकट होता है। बस्ती में उदासी छा जाती है और उड़िया महिलायें अपने बच्चों को घर से बाहर नहीं निकलने देतीं। सवेरे से दयिता लोग दस दिनों तक अशौच मनाते और दयिता पति श्राद्ध आदि करते हैं।

मंदिर के भोग राग आदि की व्यवस्था

सन् १८०३ में उड़ीसा पर अंगरेजों का अधिकार हुआ। जिस समय उड़ीसा में मराठों की हुकूमत थी उस समय वे जगन्नाथ जी की सेवा पूजा के लियें सरकारी खजाने से ३० से लेकर ५० हजार रुपया तक दिया करते थे। वे लोग यात्रियों पर कर लगाकर यह रकम वसूल कर लेते थे। उस समय रेल न होने से यात्री पैदल ही जाते थे। पुरी में जाने के लिये उन्हें 'अठारह नाला' नामक पुल को पार करना पड़ता था। इस पुल पर ही यात्रियों से उनकी हैसियत के हिसाब से यह कर लिया जाता था। यह पुल पुरी से उत्तर की

ओर दो मील पर है। यहीं से यात्रियों की दृष्टि जगन्नाथ जी के मंदिर पर लगे नीलचक्र पर पड़ती है। इसके दर्शन से ही यात्री को बड़ी प्रसन्नता होती है। सन् १८०३ से लेकर सन् १८०७ तक अंग्रेजों ने इसी पुराने नियमको चलने दिया। उस समय खुरदा में उड़ीसा का पुराना राजघराना था। वर्तमान खुरदा जंकशन वहीं पर है।

राजा खुरदा या पुरी का राजा कहलाता था। सन् १८०८ में अंग्रेजों ने उसी राजा को जगन्नाथ जी के मंदिर का प्रबन्ध सौंप दिया और मंदिर के खर्च के लिये ६०,०००) सालाना देने का बचन दिया इस रकम को वसूल करने के लिये अंग्रेजों ने यात्रियों पर उनकी हैसियत के अनुसार नया कर लगा दिया। प्रत्येक सम्पन्न यात्री से ६) से लेकर १०) रु. तक टैक्स लिया जाने लगा। साधारण यात्रियों से २) रु. लिया जाता था। केवल उड़िया लोग दूकानदा, मंदिर में पानी भरने वाले और साधु-संन्यासी इस टैक्स से बरी थे। मुसलमानों और मरहठों के जमाने में यात्रियों से जितना टैक्स वसूल किया जाता था उसको देखते हुये यह कम था।

मंदिर के लिये यों टैक्स वसूल किया जाना पादरियों को पसन्द न आया। उन्हों ने कहा कि ईसाई सरकार का पौत्तलिकता को प्रश्रय देना अनुचित है। बड़ा विरोध हुआ। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने यह टैक्स बन्द करके मंदिर के खर्च के लिये ६५,०००) रु. सालाना आमदनी की जागीर खुरदा कें राजा को दे दी और

मंदिर के प्रबन्ध से अपना हाथ खींच लिया। तब से मंदिर का प्रधान सेवक पुरी का राजा हुआ। उसका महल जगन्नाथ जी के मंदिर के पास ही है।

जगन्नाथ जी के लिये जो नैवेद्य प्रस्तुत होता है उसकी शुद्धता का बड़ा ध्यान रक्खा जाता है। रसोई घर में सबको जाने का अधिकार नहीं। वहां पर वे लोग आ जा सकते हैं जो या तो रसोई बनाते या उस काम में रसोइयें की सहायता करते हैं। मंदिर के भीतर ही कुएँ हैं। रसोई घर के पास के कुएँ से, हांड़ी से भर भर कर रसोई के लियें जल भरा जाता और रसोई घर में पहुंचाया जाता है। चूल्हे कतारों में और इतनी ऊंचाई पर बने हुए हैं कि सुआर (रसोए) खड़े-खड़े रसोई बनाते हैं। वे इस ढंग के हैं कि उन पर एक वृत्त में कई हांड़ियां चढ़ा दी जाती हैं। इन हांड़ियों के सहारे ३-५ हांड़ियां और चढ़ा दी जाती हैं इनमें केवल अदहन गरम होता रहता है। जिन हांड़ियों (अटकों) में दाल चावल पकता होता है। उनके सिद्ध होते ही वे उतार ली जाती हैं। और अदहन वाली हांड़ियां चूल्हे पर रखकर उनमें दाल चावल आदि सिद्ध करने के लिये डाल दिया जाता है और खाली स्थान में फिर अदहन के लिये कुछ हांड़ियां चढ़ा दी जाती हैं।

जब तक भगवान् को नैवेद्य नहीं लग जाता तब तक रसोई घर वालों के सिवा और कोई नैवेद्य को नहीं छू सकता। भगवान् के समीप अथवा भोगमंडप

में जो लोग नैवेद्य को पहुंचाते हैं वे एक कपड़े से अपने मुंह और नाक बांधे रहते हैं। इसके दो कारण जान पड़ते हैं। एक तो यह कि उन लोगों के श्वास-प्रश्वास से नैवेद्य की सामग्री अछूती बनी रहे और दूसरा यह कि दगा धोखे में कहीं किसी के मुंह से लार न टपक पड़े क्यों कि उड़िया लोग पान और तम्बाकू बहुत खाते हैं। इससे मुंह में लार की अधिकता हो सकती है। किन्तु जो रसोई इतनी पवित्रता से बनाई जाती है। वही भगवान को भोग लग चुकने पर, छूत, छात की सीमा को बुरी तरह लांघ जाती है। जब महा प्रसाद (भात), दाल, कढ़ी, तरकारी आदि सामान आनन्द बाजार में बिकने को पहुंच जाता है तब उड़िया लोग हांड़ी में उंगली डालकर उसको चखते हैं और वही जूठी उंगली उसमें दुबारा तिबारा डाल देते हैं। सौदा न पटने पर दूसरी दूकान में जाकर वे फिर ऐसा ही करते हैं। ऐसा करने से उनको न तो दूकान-दार ही रोकता है और न कोई देखने वाला ही। वहां यह बिल्कुल साधारण बात है। अवश्य ही महंगी चीजों को इस तरह बार बार जूठा नहीं किया जाता क्योंकि उनके ग्राहक नहीं होते और ग्राहक की सूरत शक्ल से भांप जाता है कि वह उस वस्तु को ले सकता है या नहीं। कुछ लोग आनन्द बाजार में महाप्रसाद मोल लेकर वहीं खाने लगते हैं। हांड़ी के एक टुकड़े में महाप्रसाद दे दिया जाता और दूसरे टुकड़े में दाल तथा तरकारी।

दाल बहुत गाढ़ी होती है, इसलिये उसके बहकर गिरने की आशंका नहीं रहती एक के खा चुकने पर जो हाँड़ी के जूठे टुकड़े पड़े रहते हैं उन्हें दूकानदार बड़े यत्न से उठाकर रख लेता है और उन्हीं में दूसरे ग्राहक को दे देता है। किसी को इसमें तनिक भी घिन नहीं आती। दूकानदार पीने को पानी नहीं देता। अलग केवल एक जगह पीने का पानी रक्खा रहता है। वहां का आदमी जूठे सकोरों में पानी देता है और लोग पीते जाते हैं, पर हाथ-मुँह धोने को पानी नहीं देता। उस बाजार में प्रायः मक्खियां भिनभिनाया करती हैं। कई तरकारियां इकट्ठी बना ली जाती हैं। इससे प्राय: पता नहीं लगता कि यह किन-किन वस्तुओं का मिश्रण है। दाल, तरकारी आदि में नमक कुछ कम डाला जाता है। मिर्च मसाला तो डाला ही नहीं जाता। छौंकने-बघारने का भी नियम नहीं है। हाँड़ी में यह क्रिया ठीक-ठीक हो भी तो नहीं सकती। सिद्ध दाल-कढ़ी-तरकारी आदि का किसी-किसी हाँड़ी के ऊपर पिसी हुई कोई चीज बुरकी दीख पड़ती है। शायद यह जीरा या और कोई वस्तु हो।

दाल प्रायः बिल्कुल गली हुई होती है। स्वाद भी अच्छा होता है, पर चावल प्रायः नया होता है, इस कारण उसका स्वाद बढ़िया पुराने चावलों का सा नहीं होता। किन्तु भावुक यात्री स्वाद की ओर ध्यान कब देता है। उसके लिये तो महा प्रसाद देव दुर्लभ वस्तु है। जो लोग बढ़िया प्रसाद चाहते हैं वे अपने पण्डे मारफत बढ़िया चावल, दाल

तरकारी आदि रसोईघर में भिजवा देते हैं। इसके लिये कुछ टैक्स देना पड़ता है। नैवेद्य तैयार हो जाने पर भगवान् को भोग लगाया जाता है और मजदूर उसको झावे में रखकर यात्री के स्थान पर पहुँचा देता है।

पुरी के बहुत से मठों और आश्रमोंने महाप्रसाद मँगाने का अपना विशेष प्रबन्ध कर रक्खा है। उनके यहां से मंदिर में कच्चा सामान पहुँच जाता है और भोग लग जाने पर मजदूर यथा स्थान वह सामग्री पहुँचा आते हैं। इसके लिये मंदिर को कुछ रकम देनी पड़ती है। कुछ लोग दाल तथा कुछ लोग दूसरी चीजों का भोग लगवा कर उनको आनन्द बाजार में बेचा करते हैं। उनका यही पेशा है। पुरी में बहुत से घरों में चूल्हें-चौके का झगड़ा नहीं है। सीधा मंदिर से महाप्रसाद मँगवा लिया और सारे झगड़ों से बच गयें। लेकिन जो लोग समय पर और अपनी रुचि का भोजन चाहते हैं उनके यहां रसोई बनतीं है।

पूजा का आरम्भ मंगला आरतीं से होता है। बड़े तड़के १०-१२ आदमी मृदंग और करताल बजाते हुयें प्रभाती गाकर भगवान् को जगाते हैं। इसके बाद मुख्य पण्डा, सील-मुहर की जाँच कर जय-विजय द्वार को खोलता और मंगला आरतीं करता है। इस समय जगन्नाथजी रात्रि के राजवेश में ही रहते हैं। इसकें बाद उनको दन्तधावन और स्नान आदि प्रातःकृत्य कराया जाता है। दतून, जीभी और दन्तधावन की अन्य वस्तुएँ प्रत्येक मूर्ति के सामने रख दी जातीं हैं। प्रत्येक मूर्ति का अलग-अलग पण्डा होता है।

वह इन वस्तुओं को मूर्ति के सामने थोड़ी देर घुमा देता है। मूर्तियों के सामने आसन पर बैठे हुये पण्डे दतून करा चुकने पर उन वस्तुओं को चांदी के गमले में डाल देते हैं। फिर तीनों मूर्तियों के सामने एक-एक दर्पण रखकर उसमें प्रतिफलित मूर्ति पर दही और जल गिराया जाता है। यह स्नान हुआ। अब सूर्य या द्वारपाल की पूजा होती है।

सबेरे जो भोग लगाया जाता है उसको बालभोग कहते हैं। इसमें मीठी लाई, मक्खन, मिश्री, दही और मिठाई होतीं है। इसके बाद प्रातःकाल का धूप यानी राजभोग लगता है। पुरी में धूप शब्द का अर्थ भोग है। राजभोग राजा की ओर से लगता है। भोग लग चुकने पर कुछ सामान राजा के यहां भेज दिया जाता है और जो चीजें अधिक होती हैं वे आनन्द बाजार के राजा की दूकान में बिकने को रख दी जाती हैं। इस भोग की मुख्य वस्तु खिचड़ी है। जगन्नाथजी का प्रधान भोग 'छत्रभोग' है। यात्रियों को और पुरी के अधिकांश लोगों को इसी भोग का प्रसाद मिलता है। यह बहुत अधिक बनाया जाता है। चीजें भी कई तरह की होती हैं। दाल, भात, भुजिया, मोहर, बेसर और रायता आदि विविध व्यंजन, खटाई, दही, खीर, पिष्टक, दूध और मिठाइयों का भोग इस समय लगता है। मोहर और बेसर यथा क्रम काली मिर्च की बुकनी और पिसा हुआ सरसों मिलाकर बनाये जाते हैं। आलू, लौकी, पोई का शाक और सहँजन आदि का भोग जगन्नाथजी को नहीं लगता फिर भला गोभी का गुजर कब

होने लगा। कुम्हड़ा, बैंगन, शकरकन्द, अरुई, घुइयां आदि का भोग लगता है। कणिका प्रसाद सबसे बढ़िया भात यह महँगा बिकता है, इसलिये सब लोग इसको नहीं चख पाते। यह चावल पुराना होता है। इसमें घी और कन्द मिला रहता है। थोड़े से किसमिस और दाल के दाने भी। महँगा होने के कारण इसकी दो-एक ही हांडियां सिद्ध की जाती हैं। अधिक यात्री होने पर यह महँगा बेचा जाता है और कम ग्राहक होने पर सस्ता। ग्राहक न मिलने पर दूकानदार इस हाँड़ी के कई टुकड़े करके अलग-अलग बेच लेता है। वह कुछ इस अन्दाज से हाँड़ी को तोड़ता है कि उसके ठीक-ठीक दो टुकड़े हो जाते हैं। इसी प्रकार वह चार या आठ टुकड़े करके बेच लेता है। रूप, रंग और सुगन्ध—सभी बातों में यह बढ़िया होता है। छोटी-सी हाँड़ी खिचड़ी की भी होती है। इसमें भी घी रहता है और चावल अच्छा रहता है। अरहर, मूंग, चना और उड़द की दाल का ही भोग लगता है। उड़द की पिट्ठी से तरह-तरह के पिष्टक और मिठाइयां बनती हैं। जगन्नाथजी के भोग की किसी चीज में तेल का उपयोग नहीं होता।

बीरिताड़िया, छाना ताड़िया, तमालू, बीरी बड़ा, हंस केलि, चन्द्रकांति, माढपूलि, काकड़ा, चड्डईनेदा, सुआरपीठा आदि कई प्रकार के पिष्टक हैं जो कुछ तो सादे हैं और कुछ मीठे।

खाजा, मगद का लड्डू, जगन्नाथ वल्लभ, लक्ष्मीविलास,

खेचूर, मनोहर या कटकटी, कोरा, खुर्मा (मीठे और नमकीन), गजा, झिली और आरिषा आदि कई तरह की मिठाइयां हैं।

इन चीजों में से कुछ ऐसी हैं जो दूर-दूर तक भेजी जाने पर भी खराब नहीं होतीं। इनको यात्री और पण्डे, बांटने के लिये ले जाते हैं। आनन्द बाजार के बाहर ३-४ दूकानदार ऐसे हैं जो इन चीजों को बनवाकर भोग लगवा देते और बेचते रहते हैं।

अमृत रसावली, चकोटा, क्षीरी, गुरुन्दा, क्षीरा आदि पदार्थ दूध से बनाये जाते हैं।

छत्रधूप के बाद मध्याह्नधूप का नम्बर है। इसका प्रबन्ध भी राजा की ओर से ही होता है। इसमें भी तरह-तरह की वस्तुएँ रहती हैं। इस भोग का अधिक हिस्सा राजा के यहां चला जाता है, कुछ पण्डों को मिल जाता है जो आनन्द बाजार में बिक्री के लिये भेज दिया जाता है। इसके बाद भगवान् आराम करते हैं। दरवाजा बन्द कर दिया जाता है। शाम को पट खुलने पर भगवान् के दर्शन मिलते हैं।

सन्ध्या-आरती मंगला-आरती की तरह होती है। इस समय मंदिर में बहुत भीड़-भाड़ हो जाती है। आरती हो चुकने पर भगवान् को जलपान कराया जाता है। इसका नाम सन्ध्याधूप है। इसमें भात, मिठाई, फल-फलाहरी, दूध, मलाई और खीर आदि का भोग लगता है। इसके अनन्तर

भगवान् की देह में चन्दन लगाकर उनका वेश बदला जाता है। फूल और फलों के आभूषण तथा वस्त्र आदि पहना दिये जाते हैं। इसको शृंगार वेश कहते हैं। अधिक रात होने पर दूसरा वेश बदला जाता है। मूल्यवान वस्त्र और आभूषणों तथा फूलमालाओं से उनका शृंगार किया जाता है। यह बड़ा शृंगार कहलाता है। इस वेश के दर्शन बहुत रात बीतने पर होते हैं। इसके लिये यात्रियों को देरतक मंदिर में प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इस समय भीतर नाच-गान होता रहता है। यात्री लोग केवल गाना सुन पाते हैं, नाच नहीं देख पाते, क्योंकि वह भीतर होता है। नाचने के लियें देवदासियां नियुक्त हैं। कुछ लड़कियां बचपन में ही इसके लिये भर्ती कर ली जाती हैं और सिखाई जाती हैं। उनको विवाह नहीं करने दिया जाता। इससे उनका चरित्र पवित्र रहना कठिन होता है। दक्षिण भारत में यह दूषित प्रथा प्रायः सर्वत्र है।

इस वेश के बाद फिर भगवान् को भोग लगाया जाता है। इसका नाम है बड़ो शृंगार धूप। 'दई पकाल', दूध और मिठाइयां इसमें रहती हैं। गरम भात को धोकर उसमें दही, अदरक और भूना जीरा मिला दियें जाते हैं। यही 'दई पकाल' है। जगन्नाथजी की अन्तिम पूजा का नाम पहुड़धूप है। यह पूजा आधी रात को की जाती है। तीनों मूर्तियों के सामने चांदी की एक-एक खटिया बिछा दी जाती है। बगल में खड़ा होकर एक पण्डा इन खटियों पर फूल बिखेर देता है। प्रधान पण्डा जय-विजय द्वार के सामने एक पीतल की मूर्ति को रखकर पहुड़धूप की विधि सम्पन्न करता है। फिर दरवाजे

को बन्द करके उस पर मंदिर की सील-मुहर कर देता है। इससे पहले ही मंदिर में जाने के सब दरवाजे बन्द कर दिये जाते हैं। बन्द दरवाजे के दोनों ओर दो आदमी, चौकीदार के रूप में रातभर रहते हैं। रात को मंदिर में पहरेवालों के सिवा किसीको नहीं रहने दिया जाता। प्रातःकाल होने पर प्रधान पण्डा सील-मुहर की जाँच करके जय-विजय द्वार को खोलता है तब मंगला-आरती होती है। लोगों का विश्वास है कि जय-विजय द्वार बन्द हो जाने पर देवता लोग जगन्नाथजी से मिलने-भेटने आते और थोड़ी देर तक चौपड़ खेलकर चले जाते हैं।

नौकरशाही राष्ट्र स्वातंत्र्य घातक

ले. विश्वम्भरदत्त नौटियाल एम. ए., साहित्यरत्न

शासन करने की मनोवृत्ति राष्ट्रीय उत्थान एवं स्वतंत्रता के लिये कितनी घातक है इस सम्बन्ध में महान राष्ट्रवादियों ने अपने विचार समय-समय पर स्पष्ट रूप से प्रकट किये हैं। नवनिर्मित राष्ट्रों के लिये नौकरशाही प्रवृति तो और भी अहितकर है। स्वतंत्रता के नव अंकुरों को जल से पोषित करने की अपेक्षा वह मट्ठा का काम देती है, परिणाम यह होता है कि चंद जेबों एवं मुहों को भरने के कारण आजादी के पैर अपनी राष्ट्रीय धरती पर जमने नहीं पाते हैं और वे हमेशा परराष्ट्रोन्मुखी बने रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में न तो वह राष्ट्र आर्थिक उन्नति हासिल कर सकता है और न सामाजिक ही। राजनैतिक स्वतंत्रता भी विदेशी हवा के झोंकों से ढहढहाती रहती है। राष्ट्र का सांस्कृतिक एवं नैतिक स्वर मन्द सा पड़ जाता है। संभवतः इन्हीं पहलुओं को मध्य नजर रखते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति से कई वर्ष पहले ब्रिटिश- जेल में लिखी गई "मेरी कहानी" नामक पुस्तक के ब्रिटिश शासन का कच्चा चिट्ठा अध्याय के पृष्ठ ६२० में हमारे लोक नायक पण्डित जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं:—

जब कभी भारत स्वतंत्र होगा और कभी इस परिस्थिति में होगा कि अपने को जिस तरह बनाना चाहें बना सकें तो इस काम के लिये उसे जरूर अपने अच्छे पुत्रों

और पुत्रियों की आवश्यकता होगी। ऊंचे दर्जे के मनुष्य हमेशा बड़ी मुश्किल से हिन्दुस्तान में तो मिलना और भी मुश्किल है क्योंकि हमें ब्रिटिश राज्य में उन्नति करने का मौका ही नहीं मिला। हमें सार्वजनिक कार्यों के अनेक विभागों में विदेशी विशेषज्ञों की सहायता की आवश्यकता होगी खासकर ऐसे कामों के लिये जिनमें खासतौर पर औद्योगिक और वैज्ञानिक ज्ञान की जरूरत हो। जो लोग इण्डियन सिविल सर्विस या दूसरी शाही नौकरियों में रह चुके हैं उनमें बहुत से हिन्दुस्तानी और विदेशी होंगे जिनकी जरूरत नई व्यवस्था के लिए होगी और उनका स्वागत किया जायगा। लेकिन एक बात का मुझे पूरा यकीन है कि जबतक हमारे राज्य शासन और सार्वजनिक नौकरियों में सिविल सर्विस की भावना समाई रहेगी तबतक हिन्दुस्तान में किसी नई व्यवस्था की रचना नहीं की जा सकती। यह शासन मनोवृत्ति साम्राज्यवाद की पोषक है और स्वतंत्रता और इसका साथ साथ निर्वाह नहीं हो सकता या तो यह मनोवृत्ति स्वतंत्रता को पीस डालने में सफल होगी या स्वयं उखाड़ फेंकी जायगी इस लिए मुझे यह जरूरी मालूम देता है कि पहले सिविल सर्विस और इस तरह की दूसरी शाही सर्विसों का अन्त हो जाना चाहिए और इसके बाद ही नई व्यवस्था का वास्तविक कार्य शुरू हो सकेगा। इन सर्विसों के अलग अलग व्यक्ति अगर वे नई नौकरियों के लिए राजी हों तो खुशी के साथ आयें लेकिन सिर्फ नई शर्तों पर। यह तो कल्पना ही

नहीं की जा सकती कि उनको वही फिजूल की मोटी मोटी तनख्वाहें और भत्ते मिलेंगे जो आज उन्हें दिये जा रहे हैं, नवीन हिन्दुस्तान को ऐसे सच्चे और योग्य कार्य कर्ताओं की सेवाएं चाहियें जिन्हें अपने काम में लगन हो, जो सफलता प्राप्त करने पर तुले हों और जो बड़ी तनख्वाहों के लोभ से नहीं बल्कि सेवाजनित आनन्द और गौरव के लिए काम करते हों।

किन्तु खेद है कि लोकतंत्र के उन मूलभूत नासूरों को सार्वजनिक नौकरियों में सिविल सर्विस की भावना एवं अन्य शाही नौकरियां—आजादी मिल जाने के पश्चात् अपने दीर्घ प्रधान मंत्रीत्व काल में भी नेहरू जी काट सकने में असमर्थ रहें। वास्तविकता तो यह है कि सार्वजनिक क्षेत्रों में नौकरशाही अपनी जड़ें पहले की अपेक्षा और भी अधिक मजबूत कर सकने में सफल हुई है। फर्क इतना ही है कि तब विदेशी शासकों के लिये उनके साम्राज्य के अस्तित्व को बनायें रखने के लिये तरह तरह के अनेक अमानुषिक कार्य होते थे। विदेशी आतंक के सामने कोई चूं तक नहीं कर सकता था। लोगों की आत्मा अत्याचार सहते सहते इतनी मर अथवा दब गई थी कि वह न्याय की पुकार कर नहीं सकती थी। आज परिस्थिति भिन्न है। आज हमारे ही देशी भाई जोंकों की तरह समाज का खून चूसने पर लगे हुए हैं। वे समाज के हर क्षेत्र में इस प्रकार घुसे हुयें हैं कि हो हल्ला में जनता की आवाज दिल्ली दरबार तक पहुंच ही नहीं पाती है। भूल चूक से

कभी कदाच चुनाव के समय मंत्री महोदयों के कानों में पहुंच भी गई तो जनता की सद्भावना प्राप्त करने एवं असलियत पर पर्दा डालने के उद्देश्य से जांच के निमित्त कमीशन की नियुक्ति कर दी जाती है। फल यह होता है कि कमीशन की छान बीन पूरी होते होते जनता पुरानी जोंक को भूल ही जाती है और दूसरी जोंक की ओर सरकार का ध्यान खींचने की कोशिश करने लगती है। यह पुनरावृति क्रमिक रूप में चला करता है।

इन दो दशकों में कांग्रेस अपने मूल उद्देश्य को खो चुकी है। वह पथभ्रष्ट हो चुकी है। वे आज जब तब जनता को यही याद दिलाते अघाते नहीं कि खबरदार जो चूं भी किया। हमने तो तुम्हें आजादी दी है। अब और क्या चाहिये किन्तु आजादी कोई कल्पवृक्ष तो है नहीं कि जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः ही करता जाय, मात्र राजनीतिक आजादी और खद्दर पोशों को कुर्सी दिलाने एवं मनमाना अनाचार फैलाने के लिये तो लोगों ने खून की होली खेली नहीं थी, मां बहिनों ने घर की चहार दिवारी एवं कुलकानि छोड़कर बेइज्जती और लाठी गोली की मार इस लिए नहीं खाई थीं कि नंगी भूखी अनपढ़ जनता को मीठी और चिकनी चुपड़ी बातें बनाकर लोग कुर्सियों के लिए होड़ लगाते फिरेंगे।

सरकार आये दिन समाजवाद की दुहाई देती फिरती है। पार्टी के अध्यक्ष एवं महामंत्री और प्रधानमंत्री से लेकर खद्दरधारी नेता व उनके अवसरवादी बगुला भक्त भी

समाजवाद की ही चर्चा करते नहीं अघाते हैं। किन्तु या तो समाजवाद का तात्पर्य वे स्वयं ही नहीं समझ पाये हैं। अथवा समाजवाद के इन्द्रजाल में गरीब जनता को फसाकर अपनी कुर्सी बनाये रखना चाहते हैं। १९६२ के उत्तरार्द्ध से जीवन की हर आवश्यक वस्तुओं के मूल्य रात दिन आसमान छू रहे हैं। देश के कोने कोने से अकाल की पुकार सुनाई दे रही है। बेकारी अकाल, महामारी और मंहगाई सम्मिलित होकर नौकर- के भ्रष्टाचार का पोषण कर रही है। वास्तविकता तो यह है कि आजादी के बाद हमारा सामाजिक जीवन और अधिक विश्रृंखलित होता गया निम्न एवं निम्न मध्यमवर्ग अपनी समस्याओं एवं राष्ट्रीय समस्याओं की चक्की में पीसता गया और उच्च वर्ग एवं नौकरशाही और नेतावर्ग जनता को इन्द्रजाल में उलझाये रखकर खुद मनमाना संग्रह करता गया। अवसरवादिता उनका मुख्य गुर हो गया यदि यह तथ्य असत्य है तो उन कर्मचारियों एवं नेता एवं धनिक वर्गों को देखा जा सकता है जो आजादी के पहले फटे हाल थे और आज लाखों करोड़ों के मालिक बने हुये हैं।

लोकतंत्र में "प्रेस कान्फ्रेंस" एक अजेय अस्त्र समझी जाती है। कहीं अराजकता के संकेत मिले अथवा देश के ठेकेदारों की कुर्सी खतरे में पड़ी नहीं कि उन्होंने चट से प्रेस कान्फ्रेंस बुला कर सफाई के लिये एवं भावी कार्यक्रम के लिये लम्बे चौड़े वक्तव्य दे डाले।

किन्तु
तथ्य
एवं
वक्ता
तक
भारत
वाले
मरीज
पाते
मात्र
ठोस

पंचाय
जाता
कि
किसन
एवं
जाय।
है।
पर
ग्राम
त्तियां
ताल
सीमेंट

किन्तु विवेक पूर्वक देखने से लगेगा कि ये वक्तव्य कितने तथ्यहीन, विवेकहीन एवं भटकावपूर्ण होते हैं। किसान एवं मजदूर की मेहनत पर जीने एवं जीतने वाले ये वक्ता भूल ही जाते हैं कि उनके ये वक्तव्य तो उन तक शायद ही पहुंच पायेंगे जिनके लिये ये दिये जा रहे हैं भारत के गांवों के नंगे भूखे एवं कुत्ते की मौत मरनें वाले किसान और गली मोरी के सीलन में तपेदिक के मरीज मजदूर तक न उनके ये कर्णप्रिय शब्द पहुंच ही पाते हैं। और पहुंचे भी तो क्या आखिर वे तो शब्द मात्र ही होते हैं ? शब्दों में शक्ति तो है नहीं कि कुछ ठोस कार्य दिखावें।

पंचायतराज लोकतंत्र की नीव मानी जाती है। पंचायतें ग्रामीण जीवन के उत्थान का मुख्य स्तंभ माना जाता रहा है किन्तु पंचायतराज कोई हव्वा तो है नहीं कि सब कुछ यंत्रवत कार्य करता जाय और अमीर गरीब किसनू मोची, धनिया कहारिन और नम्बरदार प्रधान जी एवं सरपंच जी को सभी सुविधायें समान रूप से बख्शता जाय। सामान्य किसान की हालत पहले से भी खराब है। सरकार की ओर से जो कुछ सुविधायें समय समय पर दी जाती हैं। वे सार्वजनिक सुविधाओं के बदले ग्राम मुखिया पंचायत प्रधान आदि की व्यक्तिगत सम्पत्तियां बन जाती हैं। और तो और सरकारी स्कूल, अस्पताल आदि के काम आनेवाली चद्दरें पानी के नल सीमेंट आदि इनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति बन जाती है।

भारत के योजना मंत्री भी इतने अल्प समय एवं निरंकुशता पूर्वक अपना काम नहीं कर पाते होंगे जितना कि हमारे वी. एल. डब्ल्यू. जिन्हें ग्राम सेवक कहलाने से चिढ़ है और इस शब्द विशेष से ही चिढ़ है। ग्राम स्तर पर ये सरकारी व जनता की सम्पत्ति का मनमाना दुरुपयोग करते हैं इन निरंकुश शासकों को कोई पूछनेवाला नहीं है। सरकारी रकम एवम् रिश्वत खा-खाकर इनके चर्बी इतनी चढ़ जाती है कि नौकरी लगने के एक साल के अन्दर ठाठ रुतबे और पोजीशन चांद सितारों को छूने लगते हैं। मंत्री महोदयों के पास न समय है कि गांवों में जाकर वहां की समस्या देखें और न वे आवश्यकता ही समझते हैं। साथ ही वहां उन्हें कॉकटेल पार्टियों के न मिलने का पूरा भरोसा रहता है। यही नहीं दुधिया खादी टोपी और जाकेट पर गांव की मिट्टी लगने का भी अँदेशा बना ही रहता है। अधिकारियों की भी बला से वे गांव की जनता से पूछताछ कर अपना मूड क्यों बिगाड़ें? जब उनके चोचले उनके आमोद प्रमोद की सामग्री जुटाने में खून पसीना एक कर रहे होते हैं। वे तो उन्हीं की सच्ची झूठी कैफियतों को ब्रह्मवाक्य समझ बैठते हैं। फिर चाहे किसी का खून ही क्यों न हुआ हो अथवा किसी गुण्डे बदमाश ने किसी कुल वधू की इस्मत ही ले ली हो। तात्पर्य यह कि गांव की हालत में आज भी कुछ विशेष सुधार नहीं हुआ है। आज भी उनकी अनेक समस्यायें मुंह बाये खड़ी हैं, नौकरशाही एवं चंद चलते पुर्जे लोग घुन की तरह गांवों

को मजे से कुतर रहे हैं और आगे भी मनमाने ढंग से कुतरते ही रहेंगे।

तात्पर्य यह है कि देश की आम जनता की हालत में अभी भी कुछ भौतिक सुधार नहीं हुआ है। आर्थिक सामाजिक प्रगति के संदर्भ में ही राजनीतिक स्वन्त्रता का सही मूल्यांकन सम्भव है। यह तभी हो सकता है जब कि जन सामान्य के व्यक्तित्व के विकास एवम् जीवन स्तर के उत्थान के लिये समुचित वातावरण का निर्माण हो सके। स्वतन्त्र भारत में जिस नवजीवन और नये मानव की कल्पना पिछले दशकों में की गई थी उसकी पूर्ति होनी अभी शेष है। व्यक्तित्व के विकास के लिये राजनीतिक वातावरण की अनुकूलता के साथ ही यह देखना भी आवश्यक है कि सत्ता की गहरी छत्र छाया में सामान्य नागरिक जीवन यापन के लिये कितनी जीवनी शक्ति ग्रहण कर रहा है। विधान द्वारा प्रदत्त अधिकार ही पर्याप्त नहीं हैं बल्कि यह देखना भी वांछनीय है कि अधिकारी वर्ग उन अधिकारों का उपभोग कराने में कितने सुलभ हो सकते हैं। अन्यथा वे सरकार की कथनी और करनी के स्पष्ट भेदक ही साबित होंगे और यह तभी सम्भव है जब जन सामान्य की दृष्टि में चाहे वह सामान्य नागरिक हो अथवा सरकारी अफसर मानवीय दृष्टि को समझने एवम् लोकतांत्रिक जीवन व्यवस्था के अनुरूप अपने को ढाल सकने की क्षमता आ जाती है।

÷ ÷ ÷

* धर्मोपदेश *

(प्रथम खण्ड)

स्वामी रामतीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी तथा चुने हुये धार्मिक (वेदान्त परक) प्रवचनों का संग्रह। मानव जन्म सार्थक कर नित्य सुख प्राप्त करने के लिये अतीव सुन्दर सुयोग्य रूप से स्वामी रामतीर्थ जी ने देश--विदेशों में पर्यटन करके अपने स्वानुभव को बताया है। हरेक घरमें नित्य पठन पाठनकर सुख--शांति का लाभ लीजिये।

पृष्ठ संख्या ३८४ कीमत ४-०० डाक व्यय अलग।

बहुरंगी आसन चित्रपट

बहुरंगी आसन चित्रपट में नित्य उपयोगी १७ आसनों का संग्रह है। रोगों से मुक्त होकर सदा सुदृढ़ शरीर बनाए रखने के लिये आकर्षक चित्रपट अवश्य मंगवाइये। आसनों के नाम तथा लाभ अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं। डाक व्यय के साथ ३--०० रु.

प्राप्तिस्थान

श्री. रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई १४

(१) आपका 'रामतीर्थ मासिक हमने पढ़ा, लेकिन वह हमें कैसा लगा, यह हम बता नहीं सकते, क्यों कि उसकी स्तुतिप्रशंसा के लिये हमारे पास शब्दों का सर्वथा अभाव है। 'रामतीर्थ' के उपदेशात्मक लेखों को पढ़कर हमारी वाणी अवरुद्ध हो रही है और स्तुति-बोधक शब्द मिल नहीं रहे हैं। हम निश्चय नहीं कर पा रहे हैं कि क्या प्रशंसा करनी चाहिये और क्या नहीं।

पी० एस० हलिंगले,
६२०, ई. एम. ई. बी. एन.,

आनन्द का स्रोत कहां है?

(२) दिव्यानन्द का अनन्त स्रोत सभी प्राणियों के अन्दर और बाहर तरंगायित हो रहा है। उस दिव्यामृत की उपलब्धि और आस्वाद के लिये अनेक प्रकार के प्रयास और मन्थन करता रहा, किन्तु कुछ परिणाम

नहीं निकला। किन्तु कालान्तर में जब 'रामतीर्थ' मासिक का सान्निध्य प्राप्त हुआ, तब उसके प्रभाव से मुझमें जीवन की अनन्त रसधारा उमड़ उठी तथा जीवन का सच्चा स्वरूप तथा दृष्टिकोण प्राप्त हुआ।

आपका धन्य आज्ञापालक
सुरेशनन्दन वात्स्यायन
गोहाटी (असाम)

(३) हतभागी बालक पथ निर्देशक व्यक्ति के मार्ग-दर्शन के अनुसार कर्मभूमिमें प्रवृत्त नहीं हुआ और मन-माने मार्ग पर आगे बढ़ते हुयें भटक गया। जब उसे कोई मार्ग न सूझा तब वह रोने लगा। एकान्त स्थान पर भूत समझ लोग उसे मारने दौड़े। वह भागा और गहरे गढ़े में जा गिरा। फिर प्रयत्न पूर्वक गढ़े से बाहर आकर मार्गदर्शक के आदेशानुसार अपने घर पहुंचा यही हाल माया-मोह में फंसे हुये स्त्री पुरुषों का है और इसी श्रेणी के प्राणियों में मेरी भी गणना है। प्रसंगो-पात 'रामतीर्थ' मासिक के दर्शन हुयें और उसका मार्गद-र्शन प्राप्त कर मैं अपने अभीष्ट स्थान पर पहुंच गया।

मंगलानन्द सरस्वती
मथुरा (उ. प्र.)
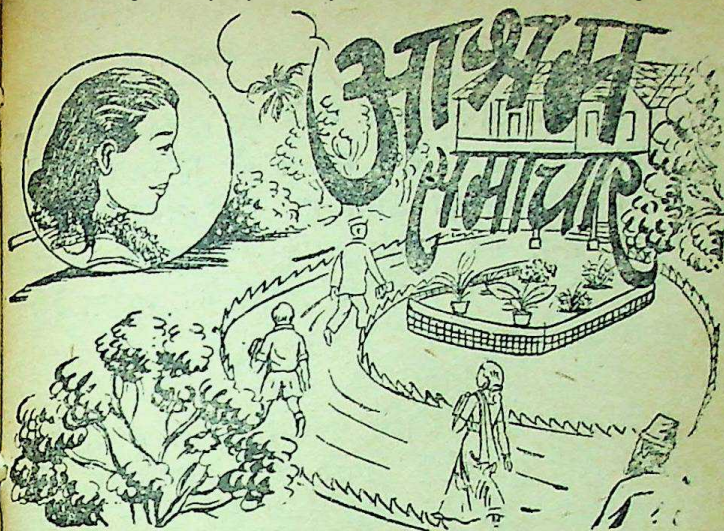
वक्ता:—डा० परमानन्द तुलसियान

विषय रोग और प्राकृतिक चिकित्सा तथा यौगिक इलाज।

विज्ञ उपस्थित सज्जनो! आज का विषय रोग और प्राकृतिक चिकित्सा है। इतिहास के अवलोकन से यह मानना पड़ता है कि आधुनिक सभ्यता के युग का आरम्भ जब से हुआ और उसकी ओर प्रवृत्त हुये तभी से रोगों की शृंखला शुरू हुई और उसमें रोगों की नई नई कड़ियां जुड़ती जा रही हैं। जमाने के प्रभाव से नीति में परिवर्तन होता जा रहा है और उच्च कोटि के सभ्य कहे जाने वाले परिवारों में शराब, चाय और सिगरेट आदि दुर्व्यसन अत्यधिक सम्मान भाजन बनते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा का आधार

प्रकृति के आधाररूप पंच महा भूतों के आधार पर

स्थूल शरीर की सार-संभाल रखने को प्राकृतिक चिकित्सा कहा जाता है। जैसे मकान की मरम्मत सीमेंट ईंट, रेती आदि से की जाती है, उसी तरह बिना दवा के अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी आदि पंच भूतों के आधार पर शारीरिक रोग निवारण के प्रयास की गणना उक्त इलाज में की जाती है।

मिट्टी की पट्टी

पृथ्वी तत्व के प्रतिनिधि स्वरूप पीली, काली आदि मिट्टी की पट्टी (जल से तैयार कर) पेट पर तीन घंटे तक लगा रहने से पतला दस्त बँध जाता है और नियमित रूप से मल विसर्जन होता है और यदि मलावरोध होगा तो मिट्टी की गीली पट्टी के प्रभाव से सामान्यतया जैसा चाहियें तदनुसार मल त्याग उचित रूप से होता रहेगा। इसके अतिरिक्त हाई ब्लड प्रेसर, वीर्य दोष, जीर्ण ज्वर और ऐसे ही अन्य रोगों पर भी मिट्टी की पट्टी अनुकूल प्रभाव डालती है।

प्राणायाम का प्रभाव

योगीजन दीर्घायु क्यों होते हैं? उनके अधिक आयु तक अरोग्य रहने और जीवित रहने का कारण क्या है? क्योंकि वायु तत्व का उचित उपयोग करते हैं और ब्रह्माण्ड में व्याप्त प्राणशक्ति को अपने अन्तर में धारण करते हैं। योगाभ्यास प्रत्येक घर में चालू रहना अनिवार्य है। प्रातःकाल स्नान के पश्चात् सन्ध्या-वन्दन के समय कम से कम ६ बार अनुलोम विलोम प्राणायाम

करना पड़ता है। यह योगाभ्यास का एक अंग ही है। प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से वायु-तत्व सूक्ष्म तत्व को ग्रहण और धारण करना पड़ता है, फलतः अनेक रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। हृदय रोग, रक्त दोष, अधो रक्त चाप, पित्त विकार, गैस रोग, सन्धिवात आदि अनेक रोगों से पूर्णतया छुटकारा मिलता है। इस दृष्टि से प्राणायाम का अभ्यास अत्यन्त महत्व पूर्ण है।

अलसर का निवारण

अलसर (फोड़ा) के निवारण के लिये मिट्टी की पट्टी लगानी चाहियें। गाजर रस पीने से अलसर की व्याधि से मुक्ति मिलती है।

मूत्र की रुकावट

मूत्र की रुकावट होने पर गरम पानी में नमक छोड़कर और उसमें कपड़ा भिगोकर नाभि के नीचे के भाग में एक घंटे तक बांध रखें, मूत्र छूट जायेगा।

नकसीर रोग (नाक से रक्त गिरना) में प्रातःकाल जल-नेति करनी चाहियें तथा गरम तली हुई वस्तुओं का त्याग करना चाहियें। शिर पर ठण्डे तेल की मालिश करनी चाहिये।

मुंहासों को मिटाने के लिये ठण्डे पानी का टबबाथ १० मिनट तक लेना चाहिये। रात को पानी में पीली मिट्टी मिलाकर खोपरे (नारियल) के तेल में मिलाकर ३० मिनट तक लगाते रहें। यह क्रिया एक महीने तक चलती रहनी चाहियें।
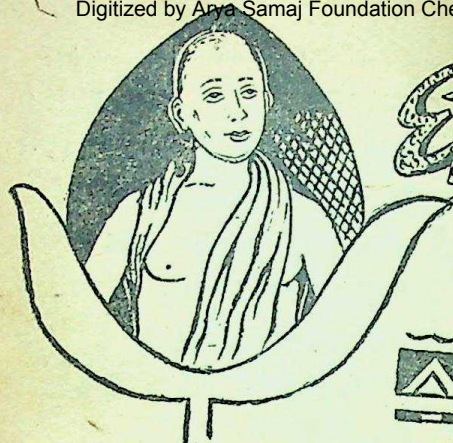
(गतांक से आगे)

एक दृष्टान्त है कि एक वेगवान् नदी में दो आदमी बहे जा रहे थे। उनमें एक आदमी ने एक लकड़ी का टुकड़ा पकड़ रखा था और दूसरे व्यक्ति ने एक पतली रस्सी पकड़ रखी थी। अन्त में इन दोनों में से पतली रस्सी पकड़ रखनेवाला बच गया। इस प्रकार नाम रूपात्मक स्थूल पदार्थों का जो अवलम्बन करते हैं, जो बाह्य दृष्टि में महान् दीखने वाले मिथ्या आधार पर अवलम्ब रखते हैं, वे अन्ततः असफल ही सिद्ध होते हैं। सत्य के सूक्ष्म सूत्र पर अवलम्ब रखो। यदि आप अपने सत्य स्वरूप की अनुभूति करें, तो फिर आप चाहें वनवासी बनें अथवा जन-समाज के बीच रहें, इसका कोई प्रश्न नहीं। मात्र एकबार आप सत्य का स्वानुभव करें, फिर प्रत्येक वस्तु और यह अखिल विश्व रूपान्तरित हो जायेगा।

यहां एक यह टेबल है। मानलें कि आप उसे वहां उसे स्थानान्तरित करना चाहते हैं। उस टेबल का एक कोना ठीक तरह से पकड़ कर आप उसे हटाते हैं। ऐसा करने से आप समस्त टेबल को अभीष्ट स्थान पर हटा सकते हैं। इसी प्रकार यह अखिल विश्व एक महान् स्थूल पदार्थ है और आपका यह शरीर उसके एक कोने के समान है। वह इस विश्वरूप टेबल का एक कोना है, यदि आप उसके एक ही कोने को पकड़ें, उसे उठायें, उसे ऊँचा करें, उसे ईश्वर बनायें, दिव्य बनायें, जो इस एक ही पक्ष को ईश्वर में लीन किया जायें, यदि इस कोण को बलपूर्वक ऊंचा किया जायें, तो अखिल विश्व को हटाया जा सकेगा, क्यों कि अखिल विश्व एक महान् टेबल के समान है। तुम अपने आपको उन्नत बनाओ, उच्च उठाओ, अतः समग्र विश्व स्वयमेव उच्च उन्नत होगा। स्वयं की उन्नति और उद्धार के लियें संस्थाएं, महामंडल, महान् संप्रदाय और मिशन आदि पर विश्वास रखना बहुत बड़ी भूल है-महान् भ्रान्ति है। इससे निष्फ-लता ही प्राप्त होती है। जो लोग अपने आप पर ही विश्वास रखते हैं और किसी मण्डल या संस्था पर निर्भर नहीं रहते वही समग्र विश्व को परिवर्तित कर सकते हैं। सभाएं और सभासद धन एकत्र कर सकेंगे, इमारतें बनवा सकेंगे और वस्त्र खरीद सकेंगे, परन्तु ऐसी विजय से जनता को आध्यात्मिक उन्नति कदापि संभव नहीं।

जंगल में शृगाल समूह बद्ध रहते हैं। उनके असंख्य समूह चक्कर लगाते रहते हैं। वह साथ ही रहते हैं, साथ ही खाते हैं और साथ ही बोलते हैं। उनके समूह भी विशाल होते हैं और उनकी आवाज भी बहुत ऊंची होतीं है, भेड़ों के भी झुंड होते हैं और झुंड में रहकर घूमते फिरते तथा चरते हैं। परन्तु शृगालों और भेड़ों में शत्रु का सामना करने का सामर्थ्य नहीं होता। किन्तु क्या कभी किसी ने सुना है कि सिंह भी समूह बद्ध रहते हैं और उनके समूह घूमते फिरते हैं।

गरुड़ को पक्षियों का राजा कहा जाता है, किन्तु क्या वह कभी अपना समूह बनाते हैं? कभी नहीं। छोटे पक्षी ही समूह बद्ध होकर उड़ते हैं। सिंह और गरुड़ तो हमेशा अकेले ही रहते हैं। गरुड़ पक्षी अकेला ही होता है, फिर भी पक्षियों के विशाल समूह को भगा देता है।

हाथी भी स्वभावतः झुण्ड बनाकर ही रहते और घूमते फिरते हैं। यह प्राणी शरीर से भी विशाल होता है, किन्तु यदि वहां एक ही सिंह आ पहुंचे, तो उसे देखते ही वह झुण्ड के झुण्ड भाग खड़े होते हैं। अतः समुदाय, मण्डल, या संस्थाएं या बड़ी बड़ी जमातों पर आधार रखना उचित नहीं। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह स्वयं को ही शक्तिवान् बनायें। अतः वेदान्त का जन-समाज में प्रसार करने का प्रयास करना चाहिये क्योंकि जीवन का सर्वोत्तम मार्ग वेदान्त ही है। अतः

वेदान्त के अनुसार आचरण करना ही सुरुचि और गौरव का द्योतक है—भले ही मानव अज्ञानी हो या ज्ञानी। वेदान्त निर्दशित-अहं-भाव रहित जीवन व्यतीत करो, फिर आप देखेंगे कि आपके आस पास का वातावरण भी वैसा ही बनने के लिये बाध्य हो गया है। चन्द्र सूर्य, नक्षत्र और अन्य सभी तत्त्व भी तदनुसार आचरण में निबद्ध हो गये हैं। ऐसा करने से ही वेदान्त का विस्तार होगा।

क्या ईसा ने कोई सभा संस्था बनाई थी? नहीं, नहीं। वह बेचारे तो अकेले ही रहते। क्या भगवान् शंकराचार्य को कभी किसी सभा संस्था की आवश्यकता का अनुभव हुआ था? वह भी एकाकी विचरण करते थे, अतः प्रत्येक जिज्ञासु का कर्तव्य है कि वह सर्व-प्रथम स्वयं को उन्नत स्थिति में प्रतिष्ठित करे, स्वयं ही दैवी जीवन की प्रतीति एवं अनुभूति करे। जिस क्षण से आपको आत्मानुभूति होने लगेगी, आपके जीवन और प्रत्येक व्यवहार में उसका साक्षात्कार होने लगेगा और उसी क्षण से वेदान्त आपके द्वारा इस प्रकार फैलने लगेगा जैसे सूर्य से प्रकाश का प्रस्फुटन होकर चारों ओर व्याप्त हो जाता है।

आप निश्चयतः स्मरण रखें कि सुधार के प्रयत्न, मानवजाति की उन्नति के प्रयत्न जो धन, साधन और बाह्य सहयोग पर ही अधिकांशतः निर्भर रहते हैं और दूसरे से याचना करते हैं—अन्ततः निष्फल सिद्ध होते हैं।

यह प्रकृति का सामान्य नियम है। आप अपने अन्तर्निहित परम अनन्त सत्य पर अवलम्बन रखें और यदि कभी बाह्य सहायता आपको खोजती हुई स्वतः आपके पास आ पहुचे तो आप उसे सानन्द स्वीकार करें। लोग स्वयं ही तुम्हारे अनुवर्ती होना चाहते हों, तो भले ही उन्हें स्वीकार करें, परन्तु यदि आप उनपर आधार रखेंगे तो वह तुम्हें छोड़कर चले जायेंगे। प्रकृति का यही अटल नियम है। परावलम्बी बनना कदापि उचित नहीं। सदैव स्वावलम्बी बनकर रहें। आपके अन्दर जो चैतन्यतत्त्व है मात्र उसी का आश्रय ग्रहण करें। बड़े-बड़े भड़कीले स्वरूप, लम्बी-लम्बी पूंछ जैसी उपाधियां सभी निष्फल और निरर्थक हैं। वे अपने वास्तविक लक्ष्य से विमुख हैं। वह किसी को छोड़ने में समर्थ नहीं। वह किसी को मुक्त कर नहीं सकते, स्वतंत्र करने में सक्षम नहीं। इसके विपरीत वह दुःखों और क्लेशों को जन्म देते हैं।

हम मृतदेह (शव) को विद्युत शक्ति के आधार पर हिला डुला और चला सकेंगे। हममें यह भी क्षमता है कि हम उस शव के होठों को हिला सकेंगे हम उसके हाथों को ऊपर नीचे ले जा सकेंगे, परन्तु इसे जीवन नहीं कहा जा सकेगा। इसी प्रकार जो कुछ भी बाह्य सहायता उपलब्ध होती है, धन-सम्पत्ति और वस्त्राभूषण आदि के रूप में जो सामर्थ्य संचित होता है, समाचार पत्रों में प्रशंसा की जाती है, वह सब मृत

शरीर में बिजली की शक्ति संचार करने जैसा ही है। इससे यथार्थ जीवन की उपलब्धि नहीं होती या दुःख-कष्टों का नाश नहीं होता। वह हमें मुक्त और स्वतंत्र स्थिति नहीं पहुंचाता। ढोल या नगाड़े बजाने से जीवन संचार नहीं होता। जीवन जो बीज से विकसित होता है एक छोटा सा गर्भ है, उसमें चैतन्यतत्त्व विद्यमान है, फलतः वह अन्दर से ही विकसित होता जायेगा। विकास में कुछ समय लगेगा सही, परन्तु वह सत्य जीवन ही होगा, असत्य जीवन नहीं।

बिजली की शक्ति द्वारा मृत देह के हाथ, पैर अधरोष्ठ सिर आदि अवयवों को हिलाकर अद्भुत क्षणिक परिणाम उत्पन्न किया जा सकेगा, परन्तु यह स्थिति उस शव में अनन्त जीवन का संचार करने में समर्थ नहीं। हमें तो शाश्वत जीवन चाहियें। अतः राम का कहना है कि 'बीजारोपण होने दो, सत्य का श्रवण होने दो, सत्य क्या है, इस तथ्य को अपने अन्तर में प्रविष्ट होने दो। वेदान्त का प्रचार और उपदेश करने के लिये आपको भी सत्य से परिचित होना चाहिए, बीजारोपण होने के पश्चात् तो उसके विकास और वृद्धि के लिये आपको चिन्ता करने की जरूरत नहीं। सत्य स्वयमेव वृद्धिगत और विकसित होगा।

एक साधु थे और उनका एक अनन्य निष्ठावान् शिष्य था। वह शिष्य प्रतिदिन साधु के दर्शनार्थ पहुंचता। एक बार वह साधु महाराज प्रसंगवश कुछ समय के लिये बाहर चले गये और कुछ समय के बाद पुनः अपने स्थानपर वापस

आ गये। परन्तु साधु के चले जाने और लौट आने के बाद भी उनका वह शिष्य उनके दर्शनार्थ आया ही नहीं, अतः अन्य लोग साधु के पास आकर उनके शिष्य की आलोचना करने लगे और कहने लगे--'आप के जाने के पश्चात् आपका शिष्य अबतक यहां एक दिन भी नहीं आया।' यह सुनकर साधु हंस पड़े और कहने लगे--'भाइयो! आप उसका दोष-दर्शन क्यों कर रहे हो? उसपर आरोप क्यों लगा रहे हो? उस शिष्य को यहां आने की आवश्यकता ही क्या है? इस शरीर के साथ चिपके रहने की उसे क्या जरूरत है? मैं शरीर नहीं। मैं यह जो कुछ दिखाई पड़ रहा हूं, वह नहीं हूं। यदि कोई मुझे शरीर मानता हो, तो वह स्वयं अपने आपका घातक है। सत्य आत्मा है और वही मेरा स्वरूप है। मेरा शिष्य भलीभांति समझता है कि मैं दिव्य परम सामर्थ्य हूं। उसे मेरे उपदेश पर पूर्ण निष्ठा है, अतः वह मुक्त होकर परमानन्द की अनुभूति में मस्त रहेगा। साधुने पुनः कहा--'एक बार घोड़ी के गर्भ धारण कर लेने के पश्चात् उसे घोड़े के पास पुनः जाने की जरूरत नहीं रहती। बीजारोपण हो चुका है, तो समय आनेपर वह घोड़ी बछेड़े को जन्म देगी ही। मैं एक बार बीजारोपण करता हूं, तदुपरान्त उस बीज के परिणाम की चिन्ता नहीं करता।'

आप लोग सभाओं का आयोजन चलाते रहें या नहीं। राम-नाम का स्मरण करो या उसे अपने पैरों के नीचे कुचलो, उसकी प्रशंसा करो या निन्दा, उससे राम का कोई सरोकार नहीं। यदि सतत बीजारोपण किया जायेगा, तो उसका परि-

णाम निश्चय ही प्रकट होगा। इसके अतिरिक्त इस जगत् और इसके अन्दर के पदार्थों के सम्बन्ध में हम क्यों चिंतित हों? जिस क्षण हम इस जगत् के सुधारक के रूप में आगे बढ़ते हैं, उसी क्षण हम इस दुनिया को विकृत करने वाले बन जाते हैं। हे वैद्य! तुम स्वयं को ही नीरोगी बनाओ।

वेदान्त की दृष्टि से अखिल विश्व ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। समग्र संसार संपूर्ण है। मेरा आत्मस्वरूप है। वह 'एकमेवाद्वितीयम्' है। वस्तुस्थिति यह होने पर भी यदि हम संसार के सुधार की पद्धति पकड़ कर जब हम यह कहते हैं, कि तुम पैरों तले कुचले हुए हो, हीन इच्छाओं ने तुम्हें हीन और दुखी बना रखा है, तब मैं तुम्हें सुधारता नहीं, बल्कि और भी अधिक अधम बना देता हूं, क्योंकि इस प्रकार मैं तुम सबको स्मयं से भिन्न मानता हूं। वेदान्त का कथन है कि सुधार का झण्डा फहराने वाले हे सुधारको! तुम इस दुनिया को पापी मानते हो, उसकी निन्दा करते हो, किन्तु दुनिया को इतना अधिक कंगाल क्यों रहना चाहियें कि उसे तुमसे सहायता मागनी पड़े? ईसा ने आकर इस दुनिया का उद्धार करने उसे जाग्रत करने का पर्याप्त प्रयत्न किया, परन्तु दुनिया तो यथावत् रही। वह सुधरी नहीं। भगवान् कृष्ण ने विश्व कल्याण के लिए सभी संभव प्रयास किये। इस जगत् के लियें भगवान् बुद्ध भी बहुत कुछ दे गयें और अनेकशः तत्त्ववेत्ता भी आये और चले गये, परन्तु जगत् में आज भी पूर्ववत् दुःख, कष्ट और आपदाएं विद्यमान हैं। हम जगत् को पूर्ववत् देख रहें हैं। किसी रूप में

वर्तमान जगत भूतकालीन जगत् की तुलना में अधिक सुखी-सन्तुष्ट प्रतीत हो रहा है। रेलगाड़ियां, तार के यन्त्र, वातचीत करने के यन्त्र (टेलिफोन), विशाल काम जलयान, वायुयान आदि वैज्ञानिक आविस्कारों ने जनसाधारण को सुखी बनाने में हाथ बटाया। यह तो एक अपूर्णांक है, जिसके अंश और छेद में वृद्धि करने-जैसा है। यह अपूर्णांक भिन्न रूप में दिखाई देता है और उसमें वृद्धि भी दिखाई देती है, परन्तु वस्तुतः वह समान रूप से वृद्धिमत वही-का-वही अपूर्णांक है। यदि आपकी आय संपत्ति बढ़ गई है, तो उसके साथ ही आपकी आकांक्षाएं भी बढ़ी हुई हैं। यह तो एक कुत्ते की पूंछ-जैसी ही स्थिति है। जबतक आप उस पूंछ दबा कर खींचकर सीधी पकड़ रखेंगे, तभी तक वह सीधी रहेगी और छोड़ देने पर वह पुनः पूर्ववत् टेढ़ी हो जायेगी। इस प्रकार जो लोग समाज को सुधाने के लिये कटिबद्ध होते हैं और जगत् में चारों ओर कोलाहल मचा देते हैं, वह वह वास्तव में स्वकल्पना जन्य भ्रान्ति में ही पड़े हुए हैं। हे युवकों ! स्मरण रखो कि जगत् में किसी सांसारिक कार्य का सूत्रपात करने में तुम बहुत बड़ी भूल करते हो। अपने गुरुत्वाकर्षण का मध्य-बिन्दु अपने से बाहर मत फेंको। तुम अपने वास्तविक ईश्वरी स्वभाव का स्वानुभव करो। जिस क्षण तुम अपने दिव्य स्वरूप में निष्ठावान् बनोगे, उसी क्षण जीवन, शक्ति और सामर्थ्य का झरना अपने आप ही तुम्हारे अन्तरतम से फूट निकलेगा। सत्य के प्रचार का यही सत्य मार्ग है।

आर्कमेडिस नाम का गणितज्ञ हमेशा कहा करता था कि "यदि मुझे किसी बराबर नियत मध्य-बिन्दु का पता चल आयें, तो मैं समग्र पृथ्वी को भी स्थानान्तरित कर सकता हूँ।" परन्तु उस बेचारे को ऐसा कोई मध्य-बिन्दु नहीं मिला। इसी प्रकार आपके अन्तर्गत आपका जो नियत मध्यबिन्दु है, उसे हस्तगत करें और अनुभव करें कि आप दिव्य स्वरूप देवों के भी देव, न्यायाधीश के भी न्यायाधीश हैं और सर्वसौन्दर्य, सर्वशक्ति और सर्व सामर्थ्य के मूलरूप हैं। आप समस्त विश्व के राजाधिराज हैं। यही आपका स्वरूप है और अपने इस सत्य स्वरूप का साक्षात्कार अपने आप ही अखिल विश्व पर विजय प्राप्त करेगा और जगत् को जीवन-रस से सींच कर उसे वास्तविक पथ पर ले चलेगा।

वेदान्त के सिद्धान्तानुसार सूर्य सभी क्रियायें करता रहता है, वही अखिल विश्व के सामर्थ्य और जीवन का मूल है। सूर्य एक वेदान्ती है और रामने आपको जो उपदेश दिया है, तदनुसार ही वह अपनी जीवन-चर्या चलाता है। अखिल विश्व को वह सर्व जीवन और सर्व शक्ति समर्पित करता है। फिर भी, कर्त्ताभाव से रहित रहकर ही वह काम करता है। उसके मन में किसी प्रकार का भी अहंभाव नहीं, आत्मश्लाघा नहीं, किसी प्रकार की क्षुद्र स्वार्थ भावना नहीं। वह असीम-अटूट शक्ति से भरपूर है। सर्वशक्ति वह स्वयं ही है। सर्व सामर्थ्य, सर्व प्रकाश और स्फूर्ति स्वयं वही है।

जब आप प्रातःकाल उठते हैं और सूर्यनारायण उदित

होते हैं, तब क्या वह अपने आगमन के विशेष नगाड़े बजवाते हैं ? क्या वह कोई पुस्तक या नोटिस बंटवाते हैं ? क्या वह ऐसी किसी भी प्रकार की धांधली करते हैं ? नहीं, बिल्कुल नहीं। परन्तु आप देखते हैं कि वह समग्र जगत् में नवीन चैतन्य का विस्तार कर देते हैं। अहा ! किस प्रकार धीरे-धीरे और क्रमबद्ध रूप से प्रकृति जाग्रत होती है ! नदियां जागरित हो उठती हैं। नदियां (शीतप्रधान देश में) रात्रिकाल में जम जाती हैं, परन्तु सूर्य आकर उन्हें उष्ण चैतन्य प्रदान करता है और वह कल-कल करती हुई प्रवाहमान हो उठती हैं। सरोवरों और झरनों के तटवर्ती गुलाब और अन्य पुष्प उनकी रमणीय और रुचिर रश्मियों का स्पर्श पाकर विकसित हो उठते हैं।

इसके अतिरिक्त मानव के नेत्रकमल खुलते हैं और दूसरे रूप में कहा जायें तो मानव जाग्रत होकर जीवन और प्रवृत्ति में लग जाते हैं। पक्षी कलरव करते हुये गीत गाने लगते हैं। पुष्प विकसित हो उठते हैं। इन सबके मूल में जो महान् सामर्थ्य काम कर रहा है, वह सूर्य तो एतदर्थ किसी प्रकार के भी यश की चाह नहीं रखता। दुनिया में उसी के आधार पर प्रत्येक वस्तु की स्थिति है, क्योंकि वह केवल अपने आप पर ही आधार रखता है, वह अपने आन्तरिक जीवन पर निर्वाह करता है। यही सत्य है। आप भी अपने अन्तरात्मा में स्थित हो जायें। आपके अन्दर जो आत्मा निहित है, उसका अनुभव करें। आप भी तेज के तेज, देव के भी देव और न्यायाधीश के भी न्यायाधीश हैं। ओजस, सौन्दर्य और अन्य जो

कुछ भी इस विश्व में हैं, उसके आधारभूत तत्त्व आप ही हैं, ऐसा अनुभव करें। एक बार ऐसा आध्यात्मिक अनुभव करने के पश्चात् उसकी यथार्थता देखें!

लोग बच्चे को प्रसन्न रखने के लियें क्या करते हैं? उत्तम माता-पिता तो मानो उस बालक के शिष्य ही बन बैठते हैं। प्रत्येक व्यक्ति उस बालक का पढ़ाया पाठ पढ़ता है। वह बालक के समान ही बातें करने लगता है, बालक के समान ही नाचने लगता है, बालक के समान ही उसकी चेष्टाएं प्रकट होने लगतीं हैं। वह बालक उसके कंधेपर सवार होता है। वह छोटा अत्याचारी (!) बच्चा निर्दोष जीवन व्यतीत करता है, स्वतंत्रता से रहता है और किसीसे भी भयभीत नहीं होता। बच-बच की आवाज करते हुए उसके छोटे-छोटे होठ महान् दार्शनिक विचारकों से भी अधिक आज्ञापक और प्रभावशाली उपदेशक है। बस, उसकी इच्छा-पूर्ति होनी ही चाहिये। उसकी दुर्बलता में भी बलवत्ता है। उसे अपने अंदर पूर्ण श्रद्धा-विश्वास होने से वह कभी झुकता नहीं, वृद्ध माता-पिता इस स्वेच्छाचारी बालक के हितार्थ अपनी धन-सम्पत्ति सर्वस्व को बलिदान पर चढ़ा देते हैं और मानव बालक के आज्ञानुसार बर्ताव नहीं करता, वह अपना दुर्भाग्य मानता है। बालक की अंतर्निहित शक्ति का रहस्य ही वेदांत है। उसके लिये दुनिया दुनिया नहीं, उसके लिये जगत् की बुद्धिमत्ता बुद्धिमत्ता नहीं। उसके लियें परमानंद और सर्वशक्ति के सिवा अन्य कुछ भी नहीं। सर्वशक्ति उस निर्दोष और प्रिय बालक के अन्दर विद्यमान है और उस बालक के विजय का रहस्य भी वही है।—क्रमशः
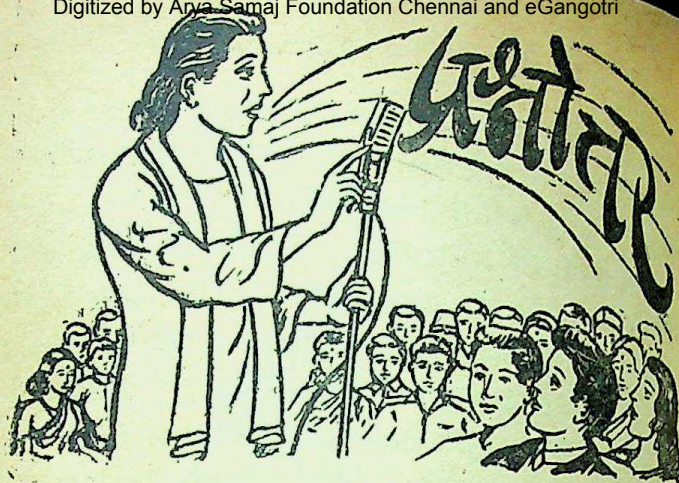
[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों के समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या का समाधान चाहते हों तो लिख भेजें—सम्पादक]

श्री शम्भुदयाल ठाकुर सिंहपुर

पत्र—१—प्रश्न—१—धौति कर्म तथा बस्तिकर्म की क्रिया-विधि तथा लाभों से अवगत करायें।

प्रश्न—२—गर्मी और शीत के राग कौन-कौन से हैं?

उत्तर—१—१५ फुट लम्बा और ४ अंगुल चौड़ा शरबती मलमल का (महीन) कपड़ा लें। एक बर्तन में जल और लोटा पास में रखना चाहिये। ६ फुट लम्बा कपड़ा जल में भिगो लेना चाहिये और इस भींगे हुये भाग के अग्रभाग को मुंह में डालें और निगलते जायें। आदत न होने से तीन-चार दिन तक यह वस्त्र गले के नीचे नहीं उतरेगा। इस समय जल पीना और वस्त्र को नीचे

उतारने का प्रयास करना। पांच मिनट तक जितना भी वस्त्र नीचे जा सके, ले जाना। तदुपरांत बाहर निकाल लेना और जल में धोकर पुनः उसे साफ-सुथरा बना लेना और दुबारा बिना चर्वण कियें गले के नीचे उतारना, फिर धो लेना। इसी प्रकार अभ्यास करते रहें। ८ से ३० दिन तक १४ फुट तक वस्त्र आमाशय में पहुंचाने का अभ्यास पूर्ण हो जायेगा। धौति आमाशय में १४ फुट तक पहुंच जाने के पश्चात् एक गिलास ठण्डा या गरम जल पी लेना चाहियें और तदुपरांत नौलि कर्म करके जलको बाहर निकाल देना चाहियें। यही धौतिकर्म की क्रिया-विधि है यदि वात, पित्त और कफ का विकार हो तो यह विकार होने तक धौति कर्म प्रतिदिन प्रातःकाल करते रहें। इसके पश्चात् केवल अभ्यास बनाये रखने के उद्देश्य से १५ दिन अथवा एक मास में धौतिकर्म अवश्य करें। विशेष जानकारी के लियें रामतीर्थ मासिक १९६० का पढ़ें अथवा उमेश योगदर्शन (प्रथम खण्ड पढ़ें।)

धौति-कर्म के लाभ

दमा, जुकाम, खांसी तथा अन्य अनेक प्रकार के कफजन्य, वातजन्य तथा पित्तजन्य रोग दूर हो जाते हैं। कण्ठ का स्वर मधुर बन जाता है। आमाशय की अशक्ति दूर होगी। मन्दाग्नि मिट जायगी। क्षुधा की वृद्धि होगी और फेफड़े कफविकार दूर होगा। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक लाभ धौति कर्म से उपलब्ध होंगे। कदाचित्

किसी कारणवश अथवा संयोगवश धौति आमाशय से बाहर न निकले तो गरम जल पीने से धौति का वस्त्र उल्टी द्वारा बाहर निकल आयेगा। यदि ऐसा करने से भी बाहर न निकले तो धौति को काट देना। दूसरे दिन मल विसर्जन के समय मलद्वार से बाहर निकल जायेगा। किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नहीं। १५ फुट की धौति में से केवल १४ फुट तक आमाशय में पहुंचानी चाहियें और एक फुट मुख के बाहर रखना चाहियें।

उत्तर—२- शरीर में उष्णता का अंश अधिक रहने से चेचक, हैजा, उष्णज्वरपित्त, श्वेतकुष्ठ, खुजली, उच्च रक्तचाप, शिरोवेदना, आंखों के रोग, कान के रोग, पतला दस्त (मल का पतला बन जाना), छाती का दाह रोग, पित्त वायु के विकार से पेट में गैस का रोग, वीर्य का पतला बन जाना, वीर्य का त्वरित स्खलन (शीघ्रपतन), स्वप्नदोष, विषय भोग की तीव्र इच्छा, अकाल अवस्था में बालों का झड़ जाना, गंजापन; अकाल अवस्था में बालों का श्वेत हो जाना, जीभ में छाले पड़ना, मुख में छाले पड़ जाना, । मेद-मांस भाग का शरीर में कम मात्रा में रहना, जीर्ण ज्वर, असहिष्णुता, क्रोध, स्वप्नमय निद्रा, हाथ की हथेलियों और पैर के तलवों में जलन, पित्तवायु का प्रकोप शिर की ओर बढ़ने से चक्कर आना आदि अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। अधिक उष्णता से जैसे पुरुष को वीर्य दोष होते हैं उसी तरह स्त्रियों को रजस दोष—अनियमित

मासिक धर्म, मासिक धर्म के समय रक्त का अधिक स्राव मासिक धर्म के समय स्वाधिष्ठान चक्र में अधिक वेदना कमर में वेदना, ल्युकोरिया आदि रोग-विकार हो जाते हैं। जैसे पुरुषों का वीर्यस्राव हो जाता है, उसी तरह स्त्रियों का रजसस्राव अधिक गर्मी के फलस्वरूप हो जाता है। इसीको ल्युकोरिया रोग कहा जाता है। इस रोग से स्त्रियों का मुखमंडल निस्तेज बन जाता है। शरीर में चर्वी बढ़ जाती है, अशक्ति भी बढ़ती है। शरीर में चर्वी अधिक न बढ़े तो वजन अधिक घट जाता है। शेष सभी रोग पुरुषों के समान हैं।

शरीर में शीत अधिक बढ़ने से शीतज्वर कफविकार जुकाम, बलगम, खांसी, भूख न लगना, शिरोवेदना, आलस्य, प्रमाद, शिर में जड़ता उत्पन्न हो जाना, सायनस रोग (कपाल तथा नाक के अगल-बगल के स्थान में सूजन हो जाना, कफ का बढ़ जाना, शरीर में सूजन रहना, कफ और वात के विकार से उत्पन्न पेट में, सन्धियों-जोड़ों में, फेफड़े में वात-पित्त का विकार होने से फेफड़ों में जलन, जीर्णज्वर, पेट में गैसविकारादि अनेक विकार होते हैं। यहां पर केवल त्रिधातुजन्य विकारों के बारे में बताया गया है।

श्री० नारायण प्रसाद

पत्र—२—प्रश्न—१—कभी-कभी दस्त काले रंग का आता है और इसके बाद तत्काल ही अत्यन्त कमजोरी महसूस होने लगती है। दस्त की परीक्षा करने पर कोई विशेष बात नहीं निकली।

प्रश्न—२—मोतियाबिन्द प्रारम्भ हो रहा है। त्रिफला से रोज सुबह आंख धोते हैं और सुबह सूर्योदय के समय आंख खोलकर ४ मिनट तक देखते रहते हैं। बाद में पानी का छींटा आंख पर देते हैं। आपके विचार से और क्या करना चाहियें ?

उत्तर—१—आहार परिवर्तन तथा वायु के कारण मल काले रंग का होता है। मल विसर्जन के बाद स्फूर्ति में वृद्धि होनी चाहियें। कमजोरी किसी अन्य कारण से आ जाती होगी।

उत्तर—२—त्रिफला चूर्ण के जल से आंखें प्रातःकाल धोनी चाहियें। सूर्य किरणों का प्रवेश आंखों में न कराना चाहियें। सूर्योदय के समय आंखें मूंदकर कोमल किरणों के सामने २ मिनट बैठ सकते हैं। मोतियाबिन्दु दूर करने के लिये सूर्य किरण के उपयोग का कोई महत्व नहीं है। जल के छींटे से १ मिनट तक दिन में धोने से आंखों की रोशनी बढ़ने में सहायता मिलेगी, किन्तु मोतियाबिन्दु नहीं दूर होगा। शुद्ध मोती का सुरमा आंखों में आंजना चाहिये। त्राटक हरे पत्तों में करें। गुलाब जल से आंखें १ मिनट तक धोयें। फल और दूध का सेवन अधिक मात्रा में करें। आंखों की कसरतें करें। अंधकार में आंखें खोल कर किसी वस्तु को देखने का अभ्यास करें। सप्ताह में एक उपवास करें। नेति कर्म करें। गाजर का रस दिन में दो बार १२ औंस पीना चाहिये। भस्त्रिका प्राणायाम दिन में दो बार करें। मत्स्यासन के समय आंखों को अच्छे ढंग से खोलनेका प्रयास करें।

एक प्रार्थना एक कविता

लेखिका— कु. गुणवन्ती बालानी एम. ए., एलटी. प्रभाकर

(प्रार्थना)

प्रभु दे नव ज्योति नव जीवन,
परोपकार परहित बने जीवन लक्ष्य;
दुःख निवृत्ति सब का बने जीवन तथ्य,
प्रभु दे नव ज्योति, नव जीवन।

सत्य पालन सर्व लालन,
यह हो मेरा ध्येय।
दीन सेवा, अर्चना देवा,
बने मेरा पेय।

प्रभु दे नव ज्योति, नव जीवन।

हिंसा वृत्ति से नित मन हटे,
झूठ पाप से बचे,
सत्कृतियों में जीवन कटे,
प्रभु दे नव ज्योति, नव जीवन।

(कविता)

जीवन नैया फंसी मंझधार,
प्रभु पहुंचायेगा पार।
पग-पग पर है डगमगाती,
दुःख तरंगों से है टक्कर खाती,
कोई न है पतवार,
प्रभु पहुंचायेगा पार।

आंधी पानी ने है घेरा,
मिलता कहीं न है बसेरा,
चहुं ओर है अंधेरा,
कोई न है पतवार,
प्रभु पहुंचायेगा पार ।

बाधाएं ये जीवन की,
हैं ये सब पल भर की,
मिलेगा तुम्हें शीघ्र करार,
हे मांझी तू हिम्मत न हार।
प्रभु पहुंचायेगा पार ।

बचपन के दिन

लेखक— नामवर

याद कर रहा हूँ मैं बचपन,
वक्त जैसे मुँह बिराता है।
मांगती है हंसी जैसे कट्टी,
कोई बागों से दौड़ा आता है।

सुबह का वक्त ढोर जाते हैं,
कोई टीले पे खड़ा गाता हैं।
और जब देर मदरसे की जरा होती है,
कोई लो दौड़ता हुआ यें कहां जाता है।

दूर खेतों में कोई पगडंडी,—
किसके स्वागत में कहां जाती है?
हवा भी हौले-हौले बहती है,
फसल भी चंवर सी डुलाती है।

कौन यें दौड़ता पगडंडी से—
फसल के फूल नोचता जाता?
धूल भी राह की उड़ाता है,—
कौन छुट्टी को सोचता जाता?

किसने यें जिन्दगी को बिन जाने,

दौड़ में जीतने की बात कही ?
किसने मंजिल को बिना समझे ही—
दौड़ में जीतने की बात कही ?

कौन यें खेलता कबड्डी है—
कौन हंस-हंस के ताल देता है ?
कौन लो हारकर अब जीत गया ?
बिना मूछों के ताव देता है ?

कौन यें चढ़ रहा है पेड़ों पर
कौन यें डालियां हिलाता है
कौन यें अपनी प्यारी गैया को—
तोड़कर पत्तियां खिलाता है ?

कौन लो अब शहर में आकर के—
सड़क को सड़क से बदलता है।
कौन लो दोस्तों से पछताकर—
जिन्दगी को जलील कहता है।

कौन लो आईने में शरमाकर—
खुद अपने से झेंप जाता है।
मुझको लगता है नामवर होगा,
अपनी चाहों से झेंप जाता है।

(पृष्ठ १६का शेष)

चाहियें। कुछ ही दिनों में दाद मिट जायेगी और स्थानीय त्वचा स्वच्छ, कोमल और स्वाभाविक बन जायेगी। नारियल के १० सेर पानी को तबतक उबाला या औटा जाये, जबतक वह शहद जैसा गाढ़ा न हो जाये। शहद (मधु) जैसा बन जाने पर उसमें जायफल, जावित्री, काली मिर्च, सोंठ और लींडी पीपर का थोड़ा सा चूर्ण मिलाकर बोतल में भरकर रख लें। अम्लपित्त, शूल, प्लीहा आदि का विकार उत्पन्न होने पर नित्य प्रातः-सायं एक तोला से ढाई तोता तक यह औषधि १४ दिन तक देते रहना चाहिये। इसके सेवन से पूर्ण लाभ होगा। मिलावें के उठने पर अथवा उस्तरे के उठने पर नारियल की कठोर गिरी (गूदा) घिसकर अथवा जलाकर लगाना चाहियें। इससे पर्याप्त राहत मिलेगी। इसके अतिरिक्त नारियल (श्रीफल) अन्य अनेक औषधिक गुणों से परिपूर्ण है, जिनका वर्णन करना यहां स्थानाभाव से संभव नहीं।

नारिकेल–खण्डपाक

पतले छिले हुये १६ तोला नारियल एक छटांक-५ तोला घी में अच्छी तरह भूने। फिर उसमें २० तोला शक्कर और १२८ तोला नारियल का पानी डाल कर उसे तबतक उबालना या औटाते रहना चाहिये, जबतक वह गुड़ के पाक जैसा न हो जाय। इसके बाद उसमें धनिया, लींडी पीपर, नागरमोथ, वंशलोचन, जीरा, स्याह जीरा, तज, तमाल पत्र और नागकेशर प्रत्येक का आधा-आधा तोला चूर्ण डालना चाहिये। इस पाक के सेवन से अम्ल-पित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, शूल और उलटी आदि विकार शान्त होते हैं और धातु-वृद्धि होती है।

इसके अतिरिक्त कृमि-रोग की पुरानी और सफल औषधि है। नाश्ते समय एक चम्मच नारियल का तेल पीना चाहियें और इसके तीन घण्टे के बाद शुद्ध एरण्डी के तेल का जुलाब देना चाहिये। दो तीन घण्टे के अन्दर ही कृमि बाहर निकल आयेंगे। जबतक पेट के कृमि पूरी तरह से दूर न हो जायें, तबतक यह प्रयोग जारी रखना चाहिये।

नारियल में ३६.३ जल, ४.५ प्रोटीन, ४.६ चर्बी, १० खनिज पदार्थ ३ कारबोहाइड्रेट, ०.१ कैलशियम, ०.४२ फासफरस, १.७ मिलिग्राम प्रति लौह तथा विटामिन ए, बी और सी होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे दैनिक जीवन में नारियल अत्यन्त उपयोगी और लाभदायक वस्तु है यह रोग निवारक और आरोग्यदायक फल है, साथ ही इसका आर्थिक महत्व भी कम नहीं है। भारत में इसका उत्पादन कम होने से निर्यात द्वारा इससे लाभ नहीं उठाया जा सकता, किन्तु लंका हिन्देशिया आदि देश नारियल का अधिकाधिक उत्पादन करके और विदेशों को निर्यात करके पर्याप्त विदेशी मुद्रा का अर्जन करते हैं। भारत की अर्थ व्यवस्था में भी नारियल का बहुत बड़ा स्थान है क्यों कि इसका कोई भी अंग निरर्थक नहीं है। पेड़, पत्ते, फल सभी किसी न किसी रूप में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रहें हैं। नारियल (श्रीफल) हमारे धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन का आधार है।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

(बम्बई १४) के

महत्त्वपूर्ण निर्माण तथा प्रकाशन

(घर-घर में उपयोगी)

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

(स्पेशल नं, १)

बाल, मस्तिक तथा शरीर की मालिश के लिये सभी प्रकृतिके लोगों के ये सभी ऋतुओंमें अनुकूल है। सर्वत्र प्राप्य है।

उमेश योगदर्शन

(प्रथम खण्ड)

(लेखकः—योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी)

अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, मराठी भाषाओंमें मिलता है। यह ६ प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राकृतिक चिकित्सासे रोगनिवारण और मानसोपचारका ज्ञान करानेवाला परमोत्तम ग्रन्थ है। ग्लेज आर्ट पेपर पर विभिन्न आसनों तथा षट्कर्मों के १०८ चित्र हैं। पृष्ठ-संख्या ४०० के अन्तर्गत योगाभ्यासका विस्तृत बोध कराया गया है। मूल्य १५ रु.. डाकव्यय २ रु.

योगासन चित्रपटः—योगासन चित्रपट अनेक रंगोंसे तैयार किया गया है। यह चित्रपट अनेकों आसनों से परिचित कराता है। इसके आधारपर अपने घरपर ही आसनों का अभ्यास करके सदैव नीरोग तथा सशक्त रह सकते हैं।

मूल्यः—डाकव्यय सहित ३ रु.

रुपया भेजनेका पताः—श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, पो. दादर,(बम्बई १४)

रामतीर्थ
ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
REGD.
मगज, बाल और शरीर मालीश के लिये श्रेष्ठ
श्री रामतीर्थ योगाश्रम
दादर, बम्बई १४